# संस्कृत महाकाव्यों में चामत्कारिक शैली का उद्भव, विकास एवं प्रवृत्तियाँ

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

## शोध प्रबन्ध
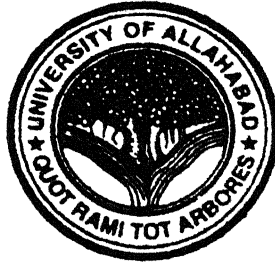
निर्देशिका
डॉ० (श्रीमती) रञ्जना
एम०ए०, डी०फिल्०, डी०लिट्०
उपाचार्य
संस्कृत-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तोत्री
कु० रंजना अग्रवाल
एम०ए०

संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

दिसम्बर, 2002

श्री कामतानाथ जी के दर्शन

कामदगिरि भय रामप्रसादू। अवलोकत अपहरत विषादू
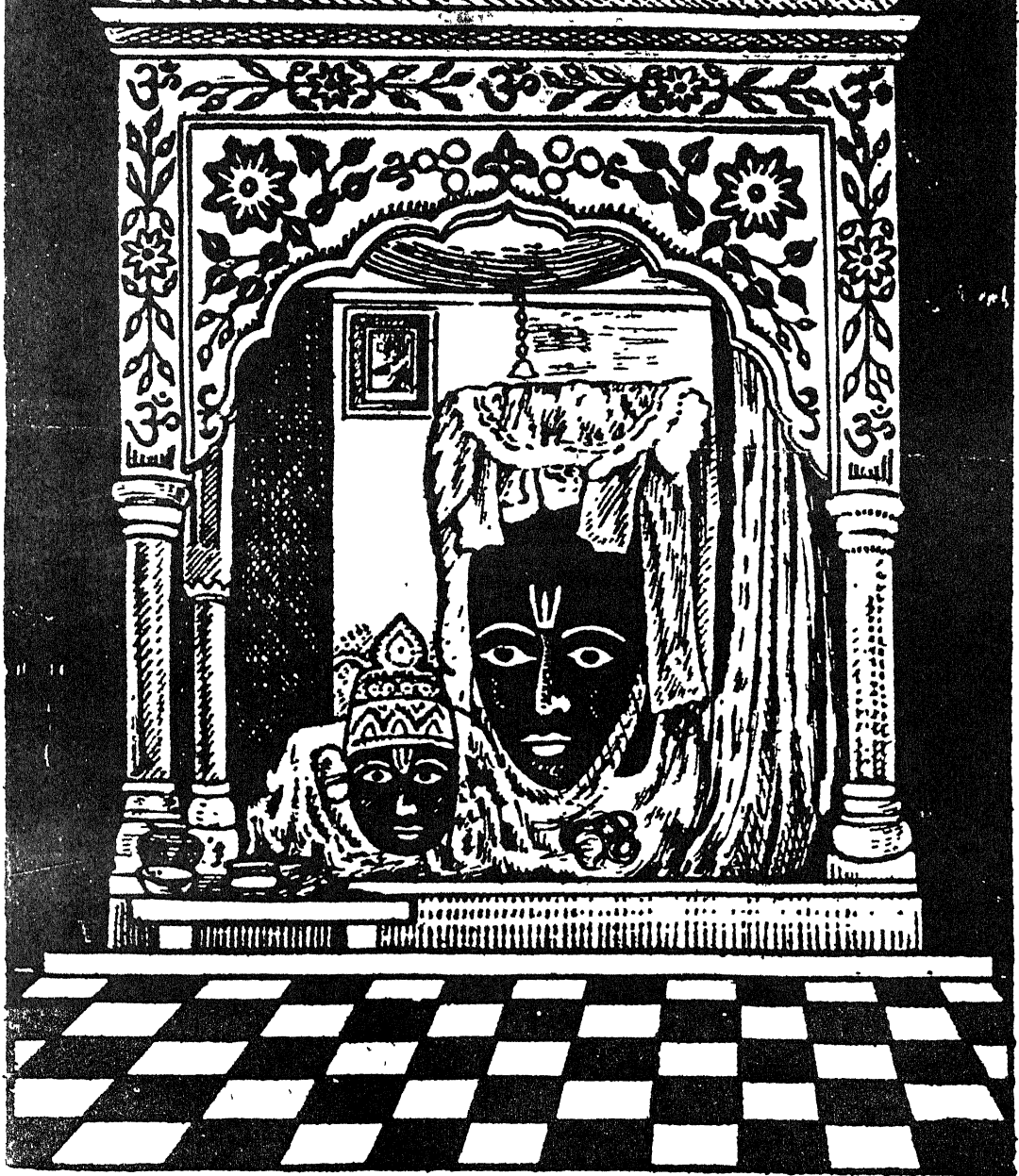
# —: समर्पण :—

परमपूजनीया ममतामयी माता **श्रीमती पुष्पलता अग्रवाल**

एवं

परमपूज्यनीय प्रेरणास्रोत पिता **श्री विजय कृष्ण अग्रवाल**

को

सादर समर्पित

—: :—

# प्राक्कथन

आज अनिर्वचनीय खुशी का अनुभव कर रही हूँ, क्योकि कई वर्षों की सुदीर्घ–साधना पूर्ण हो गयी है। इस शोध–प्रबन्ध को पूर्ण करने के लिए जितने सघर्षों को झेलना पडा, उन्हे कभी विस्मृत नही कर पाऊँगी।

प्रारम्भ से ही सस्कृत साहित्य वर्ग की छात्रा होने के कारण इस विषय मे मेरी अत्यधिक रूचि थी, जिसके कारण ही इस आयाम तक पहुँचने मे सफल हुई। सस्कृत की विविध परीक्षाओ मे उत्साहवर्धक सफलता के फलस्वरूप मेरा झुकाव इस विषय की ओर निरन्तर बढता गया और मैने यह निश्चय कर लिया कि सस्कृत विषय मे ही शोध–कार्य करूँगी। उस दिन से ही सस्कृत भाषा मेरी चिरसगिनी बनी रही।

समय आने पर मैने अपनी श्रद्धेया डा0 रञ्जना जी से शोध विषयक कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारी ली और उन्ही से मैने अपने शोधकार्य करने की जिज्ञासा व्यक्त की। उन्होने जब मेरी अभिरूचि जाननी चाही तो मैने अपनी रूचि महाकाव्यो के विधिवत् गहन अध्ययन की ओर व्यक्त किया। फलत. मेरे मनचाहे विषय को ध्यान मे रखते हुए ''सस्कृत महाकाव्यो मे चामत्कारिक शैली का उद्भव, विकास एव प्रवृत्तियॉ'' विषय पर शोध कार्य करने को कहा और मेरे अनुरोध पर निर्देशन का कार्य भार स्वीकार कर लिया। एतदर्थ मै उनकी बहुत आभारी हूँ। इस शोध विषयक रूचि को और भी ज्यादा प्रोत्साहन प्रदान किया मेरे पूज्य पिता जी एव माताजी ने जिनके आशीर्वाद का सबल लेकर मै इस क्षेत्र मे प्रविष्ट हुई।

इस शोध–प्रबन्ध के प्रथम अध्याय मे काव्य का उद्भव विभिन्न मत, काव्य की परिभाषा विभिन्न मत, काव्य का प्रयोजन तथ काव्य के शोभाधायक तत्त्व यथा अलङ्कार, गुण, रीति, वृत्ति, औचित्य, रस (रस ध्वनि), छन्द आदि का वर्णन किया गया है।

द्वितीय अध्याय मे –अ– आर्षकाव्य रामायण एव महाभारत, वाल्मीकि की करूण से उद्भूत आदिकाव्य, रामायण एव महाभारत की विषयवस्तु, ऐतिह्यतत्त्व की प्रधानता, भावपक्ष एव कलापक्ष का सीमित क्षेत्र एव उद्देश्य वर्णित किया गया है।

–ब– वैदर्भी के उद्‌गाता महाकवि कालिदास की सारस्वत प्रधान शैली, उनका काव्य–वैशिष्ट्य तथा रस–ध्वनि, शेष शोभाधायक तत्त्व।

–स– अश्वघोष, उनकी शैली तथा वर्ण्यविषय, कालिदास से पूर्णत प्रभावित।

तृतीय अध्याय मे– अलङ्‌कृत शैली के प्रणेता महाकवि भारवि, नूतन शैली का उदय, चमत्कृति की पक्षधरता विभिन्न शोभाधायक तत्त्वो एव चित्रबन्धो द्वारा। भट्टि का अभ्युदय, उनका विशेष आग्रह व्याकरण–शिक्षण का, इसके अलावा कालिदास के सहज मनोरम शैली के विपरीत भट्टि तथा कुमारदास की चमत्कृतिपूर्ण शैली।

चतुर्थ अध्याय मे– महाकवि माघ और भारवि की प्रतिस्पर्धा, भारवि को पीछे छोडने की ललक, अलङ्कार, रीति, गुण, वृत्ति तथा चित्रबन्धो द्वारा चमत्कृति प्रदर्शन, हरविजय पर बाण तथा माघ की अलङ्‌कृत शैली का प्रभाव, साथ ही इनके समय तक भारवि द्वारा आरम्भ की गयी शैली का ख्याति प्राप्त काव्य शैली के रूप मे होना, ऐसा वर्णित है।

पञ्चम अध्याय मे– हरिश्चन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय तथा कविराज का राघवपाण्डवीयम्, श्रीहर्षकृत नैषधीयचरितम् (पचनली) वेकटाध्वरि का यादव राघवीय महाकाव्य, साहित्य समाज का दर्पण, समाज के अनन्त घटको का तत्कालीन साहित्य पर प्रभाव, वर्णित किया गया है।
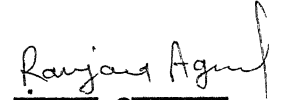
इतना ही नही सस्कृत विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अन्य पूज्य प्राध्यापको से मुझे यदा–कदा परामर्श मिलता रहा है। अत मै उन सबका आभार मानती हूँ। इस शोध–प्रबन्ध के लिखने मे मेरी प्रेरणा का स्त्रोत मेरी बहने भी रही है, जिनकी सद्भावना से मै इस शोध–प्रबन्ध को पूर्ण कर सकी। इतना ही नही सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान तो मै श्री शिव आनन्द सिह को दूगी जिनके सार्थक एव सहयोग पूर्ण परिश्रम से मै इस शोध–प्रबन्ध को कार्य रूप मे परिणत कर सकी।

इस शोध प्रबन्ध के लिखने मे मैने जिन–जिन ग्रन्थो का अवलम्बन लिया है, उन सब के प्रति मै परम कृतज्ञ हूँ। परमआदरणीया डा0 रञ्जना जी के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए मेरे पास शब्द ही नही है, उन्ही के स्नेह एव निर्देश से यह शोध कार्य

सम्पन्न हो सका। इसके अलावा गगानाथ झा, केन्द्रीय सस्थान सस्कृत विद्यापीठ, इलाहाबाद विश्वविद्यालय पुस्तकालय तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय के अधिकारियो के प्रति भी मै आभारप्रकट करना चाहूॅगी जिन्होने समय–समय पर वाञ्छित पुस्तके उपलब्ध करायी।

अन्त मे मै पुन अपने सभी गुरूजनो, समस्त मित्रो तथा शुभचिन्तको के प्रति अभार प्रकट करती हूॅ, विशेषकर अपनी निर्देशिका महोदया को जिनके वैदुष्यपूर्ण एव सफल निर्देशन मे यह शोध–कार्य सम्पन्न हुआ।

Ranjana Agrawal
**रंजना अग्रवाल**

**संस्कृत–विभाग**
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
इलाहाबाद।

# विषयानुक्रमणिका

**प्रथम अध्याय –** काव्य का उद्‌भव एव एतत् सम्बन्धी विभिन्न मत, काव्य की परिभाषा–विभिन्न मत, काव्य का प्रयोजन, काव्य के शोभाधायक तत्त्व– अलङ्कार, गुण, रीति, वृत्ति, औचित्य, रस (रसध्वनि), छन्द आदि।

**द्वितीय अध्याय –** (अ) आर्षकाव्य– रामायण एव महाभारत– महर्षि वाल्मीकि की करूणा से उद्‌भूत आदिकाव्य, रामायण एव महाभारत की विषयवस्तु– इतिवृत्तात्मकता अथवा ऐतिहासिक तत्त्व की प्रधानता, भावपक्ष एव कलापक्ष का सीमित क्षेत्र एव उद्‌देश्य।

(ब) सहज सारस्वत प्रवाह के शिल्पी एव वैदर्भी के उद्‌गाता महाकवि कालिदास उनकी शैली तथा उनका काव्य वैशिष्ट्य, रस ध्वनि का प्राधान्य, शेष शोभाधायक तत्त्व, आनुषंगिक अथवा अनुपोषक अर्थात् रसानगुण योजना।

(स) अश्वघोष का प्रतिपाद्य बौद्ध धर्म एव दर्शन का काव्य शैली में प्रतिपादन, उनकी काव्य–कला, महाकवि कालिदास का वर्ण्य एवं शैलीगत प्रभाव।

**तृतीय अध्याय –** कालिदासोत्तर महाकाव्य– महाकवि भारवि, चमत्कार पूर्ण नूतन शैली का उद्‌भव, काव्य के विविध माध्यमो द्वारा चमत्कृति–प्रदर्शन, अनावश्यक अलङ्कारप्रियता, चित्रकाव्य सर्वतोभद्र, यमक, एकाक्षर श्लोक रचना आदि। इस अलङ्कृत शैली का मुख्य उद्‌देश्य वैदर्भी सम्राट कालिदास को पीछे छोडना था। संस्कृत की काव्य–परम्परा मे कालिदास की सहज एव मनोरम शैली के विपरीत धारा बहायी गयी। तत्कालीन समाज मे अलङ्करणप्रियता भी चमत्कृतिप्रियता का एक प्रबल कारण बना।

भट्टि तथा कुमारदास मे यद्यपि चमत्कृति की पक्ष–धरता, किन्तु शैली की अपनी विशिष्टता है। भट्टि का व्याकरण–शास्त्र के प्रति आग्रह, कुमारदास– वैदर्भी तथा चमत्कृति के समन्वयक।

**चतुर्थ अध्याय –** माघ–भारवि की प्रतिस्पर्धिता, इनकी चमत्कारप्रियता, भारवि को पराजित करने की ललक, विषयवस्तु, अलङ्कार, रीति, वृत्ति, गुण मे चमत्कृति (वैचित्र्य) प्रदर्शन, चित्रबन्ध।

रत्नाकर– 'हरविजय' पर बाणभट्ट तथा माघ के अलङ्कृत शैली का प्रभाव, माघ और रत्नाकर के काल तक अलङ्करणप्रियता ख्याति काव्य–शैली के रूप मे सर्वथा स्थिर हो गयी।

**पञ्चम अध्याय –** हरिश्चन्द्र का (धर्मशर्माभ्युदय) और कविराज का राघवपाण्डवीयम्, श्रीहर्ष का नैषधीयचरितम् (पचनली), यादवराघवीयम् वेकटाध्वरि, साहित्य समाज का दर्पण, समाज के अनन्त घटको का तत्कालीन साहित्य पर प्रभाव।

# प्रथम अध्याय

**काव्य का उद्भव** – काव्य का जन्म कब, कैसे और किन परिस्थितियो मे हुआ? यह एक जटिल प्रश्न है। हमारी परम्परा मे काव्य का जन्म सनातन माना गया है, क्योकि किसी भी प्रबन्ध काव्य की सृष्टि के मूल मे काव्यप्रणेता का कोई महान उद्देश्य कारण रूप मे सन्निविष्ट रहता है, जिसकी प्रेरणा के परिणाम स्वरूप वह काव्य विशेष का प्रणयन करता है। कवि का यही लक्ष्य सर्वस्व रूप होता है, क्योंकि कवि किसी काव्य की रचना किसी अन्तर्भावना विशेष से प्रेरित होकर ही करता है। उस काव्य का वही मुख्य उद्देश्य होता है।

काव्य काएक चिरन्तन प्रवाह हुआ करता है। काव्य का प्रारम्भ वैदिक काल से ही है। वेदो के बाद उपलब्ध लौकिक साहित्य मे वाल्मीकि रामायण ही काव्य का प्रथम निदर्शन है। अत रामायण की रचना से ही काव्य का उदय माना जा सकता है। एक ओर तो रामायण मे काव्य प्रणयन के तत्त्व सुरक्षित है तो साथ ही साथ उसके द्वारा संस्कृत की वृहत् काव्य परम्परा का श्रीगणेश भी होता है। यद्यपि रामायण एक महाकवि की रचना है तथापि उसके अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि सदियों के अध्यवसाय के फलस्वरूप काव्य निर्माण का प्रवाह निरन्तर चलता रहा।

'आचार्य राजशेखर' ने काव्यशास्त्र की उत्पत्ति का सम्बन्ध नटराजशकर से स्थापित किया है। उनका कहना है कि भगवान शकर ने सर्वप्रथम ब्रह्मा जी को आदेश दिया, तदनुसार ब्रह्मा ने अपने मानसजात अट्ठारह शिष्यो को काव्यशास्त्र का उपदेश दिया।[1] इन अट्ठारह शिष्यो ने सम्पूर्ण काव्यशास्त्र का अट्ठारह अधिकरणो मे विभक्त कर प्रत्येक अधिकरण पर एक–एक ग्रंथ लिखकर काव्यशास्त्र का विकास किया। इन आचार्यों के सम्बन्ध में ऐसा कोई प्रमाण नही मिलता। यह विवरण राजशेखर तक ही सीमित है।

उन अट्ठारह शिष्यों मे आज भी 'नन्दिकेश्वर' और 'भरत' ही ऐसे है जिनके ग्रथ उपलब्ध है। आचार्य भरत का नाट्यशास्त्र तो आज के काव्यजगत् का मूर्धन्य आधार ही है। 'राजशेखर' ने अपनी 'काव्यमीमांसा' में काव्य को चतुर्दश विद्यास्थानों के अतिरिक्त पन्द्रहवॉ विद्या स्थान कहकर उसे समस्त विद्याओं का आधारपीठ माना।[2] इस प्रकार इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि भारतीय काव्यधारा की सृष्टि सहस्त्रों वर्ष पूर्व हो चुकी थी जो आज भी अपने उत्कृष्ट अर्वाचीन स्वरूप को लेकर प्रवाहित होती चली आ रही है।

---

1. तत्र कविरहस्यं सहस्त्राक्ष· समाम्नासीत्, भौक्तिकमुक्तिगर्भ·, रीतिनिर्णयं सुवर्णनाभ आनुप्रासिक प्रचेता, यमकवम, चित्र चित्रागद, शब्दश्लेष शेष वास्तव पुलस्व्यः, औपम्यमौपकायन का मी अ 1 अतिशय पराया, अर्वश्लेषमुत्तत्य उभयालकारिक कुवेर वैनोदिक कामदेव . कुचुमार।
2. सकल विद्या स्थानैकायतन पञ्चदश काव्यं विद्यास्थानम्। काव्यमीमांसा (राजशेखर)

इस प्रकार सामान्य दृष्टि से हम यह कह सकते है कि मानवीय भावनाओ का प्रतिनिधित्व करने के कारण काव्य मानव जाति की सृष्टि के साथ ही उत्पन्न हुआ है। कारण यह है कि काव्य मे मानवीय भावनाओ की ही प्रधानता है। इसलिए काव्य को सहृदय-हृदयसवेद्य सहृदयाह्लादजनक आदि कहा जाता है।

कवि जो कुछ देखता है वह चर्म चक्षु से ही नही बल्कि हृदय की दृष्टि से भी देखता है। कवि मनुष्य के भावजगत् मे एक ऐसा उन्मेष पैदा कर देता है, और उसे ऐसा अलौकिक बना देता है कि वह हमारे आनन्द और मगल का कारण बन जाता है। ऐसे कवि की सौन्दर्य–दृष्टि कभी मलिन नही होती है। वह सहसा ही उस अनुभूति से अनुस्यूत होकर उन भावो को प्रकट करना चाहती है। जब कवि तन्मय हो जाता है तो उसका दृष्टि माधुर्य बाहर निकल कर सुधोपम छलकते हुए काव्य धारा के रूप मे प्रवाहित हो चलता है।

मनुष्य की आत्माविभक्ति की आकुलता ही साहित्य सृष्टि का मूल है। मनुष्य की रागात्मक भावना उनसे घुलमिलकर उन्हे साहित्य के रूप मे असाधारण बना देती है। अत साहित्य मानव की अन्त प्रवृत्तियो का उद्घाटन करता है। तात्पर्य यह है कि जब मन एव हृदय हर्षातिरेक से परिपूर्ण हो जाता है तब वह आनन्द रूप मे कविता के रूप को लेकर लोक के समक्ष प्रकट हो जाता है। काव्य मे यह वैशिष्ट्य विद्यमान है कि चाहे सुख का भाव हो या दु ख, निर्वेद, ग्लानि इत्यादि का सभी भाव आनन्द देने वाले होते है। क्योकि उसकी सृष्टि मे जब हम इन्दुमती के वियोग मे अज को विलाप करते हुए सुनते है[1] और भवभूति के उत्तर रामचरित मे कवि को सीता के वियोग मे रोते हुए, मर्यादा पुरूषोत्तम राम को देखकर पत्थरो को रूलाते हुए पाते है[2] तब उस करूण रस मे भी आनन्द का ही अनुभव करते है। उस आनन्दातिरेक से द्रवीभूत होकर नेत्रो से भी अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है।[3] इस प्रकार कवि की सृष्टि मे रूदन एव क्रन्दन से भरा हुआ करूणरस भी वास्तव मे आनन्दानुभूति स्वरूप ही है। स्पष्ट है कि सस्कृत काव्य मूलत आनन्द मूलक है। पाश्चात्य अवधारणा के अनुसार इसमे दु खान्त कुछ भी नही है।

**एतत् सम्बन्धी विभिन्न मत** – लौकिक सस्कृत काव्य की सृष्टि के सदर्भ मे अन्य विद्वदगणो का अभिमत है, कि काव्य के सृष्टिकर्ता आदि कवि महर्षि वाल्मीकि है और उनका ग्रथ आदि काव्य रामायण है। इसके प्रणयन मे भावात्मकता ही मूल है, क्योकि किसी समय जब

---

1 अभितप्त मयोऽपि मार्दव भजते कैव कथा सरीरिषु। रघुवश – 8/43

2 अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्"– उत्तररामचरित 1–28

3-एकोरस करूण एव निमित्त भेदात्"। उत्तर रामचरित – 3–47

महर्षि वाल्मीकि समित्कुशाहरण के लिए वन प्रान्त मे घूमते हुए तमसा नदी पर पहुँचते है वहॉ ब्याध द्वारा बाण से बिधे एक क्रौञ्च युगल मे से एक को विलाप करते हुए देखकर सहसा उनके मुख से शापयुक्त छन्दोमयी वाणी प्रस्फुटित हुई–

मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगम शाश्वती समा ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी काममोहितम् ।। राoबाo, 2–15

ये वाक्य वाल्मीकि के मानस के ही उद्‌गार है, जो शोकाकुल हृदय से सहसा निकलकर काव्य को जन्म देते है। वस्तुतस्तु वाल्मीकि का वह शोक ही कविता या काव्य है जो उनके विह्वल हृदय का स्पर्श कर उन्हे कुछ बोलने के लिए विवश कर दिया। यह उनकी रागात्मिका वृत्ति ही है जो उन्हे काव्य व्यापार या काव्य–सर्जना मे प्रवृत्त करती है। उनका वह शोक ही जनमानस के लिए काव्य का रूप ले लेता है।

"सोऽनुव्याहरणाद् भूय शोक श्लोकत्वभागत"

इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से विदित होता है कि– काव्य की सृष्टि का मूल कारण भावना है जो जन–जन के हृदय मे समाहित है और यही मानव की सुख दु खात्मक अनुभूति ही कविता या काव्य को जन्म देने मे सहायक होती है। इस प्रकार काव्य को मानव जीवन से पृथक् नही किया जा सकता, क्योकि मानव जाति के उद्‌भव के साथ ही काव्य का भी उद्‌भव होता रहा और उसी से अविच्छिन्न रूप से काव्यधारा का विकास भी होता रहा। अत काव्य के रूप को देखने से यह प्रतीत होता है कि काव्य का विकास भी अनुकूल परिस्थितियो मे होता है और प्रतिकूल परिस्थितियो के आने पर काव्य प्रवाह मन्द हो जाता है।

विद्वद्‌गणो का कहना है कि समस्त शास्त्रो का उद्‌भव वेद से ही हुआ है। इसलिए काव्य का उद्‌भव भी वेद से ही माना जाता है, क्योकि उच्चकोटि की काव्यशास्त्रीय विद्याओ के दर्शन हमे वैदिक साहित्य मे प्राप्त होते है। वेदो मे ही देवताओ की स्तुतियो का वर्णन है साथ ही साथ राजाओ की कीर्ति का भी गायन है, अनेक यशस्वी राजाओ की कथाए भी वर्णित है। इस दृष्टि से वेद भारतीयो के दिव्य ग्रथ सिद्ध हुए जिनसे हमारी काव्य परम्परा का जन्म हुआ, क्योकि काव्यो मे हृदय के भावो की उतनी ही स्वाभाविक अभिव्यक्ति विद्यमान रहती है जितनी किसी भी प्रौढ साहित्य के महनीय काव्यो मे हो सकती है। इसलिए प्राचीन कवियो ने भी रसमयी पद्धति का ही आश्रय लिया। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल के विद्वानो की प्रवृत्ति

भारविकृत विरातार्जुनीयम – शिवबालक द्विवेदी और महेशभव चतुर्वेदी उपोद्घात् – पृ0 3

श्रेय–प्रेय रूपी काव्यो के अध्ययन मनन की ओर ज्यादा रही जिससे हमे यथार्थ काव्यो की सही जानकारी प्राप्त हुई। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि– सत् काव्य का प्रारम्भ वैदिक काल से ही हुआ और इसके विद्वद्गण ही प्रथम काव्यास्वाद के कारण बने।

वैदिक काल के अनेक अधकारावृत्त तथ्यो का साक्षात् करने मे समर्थ होते आर्यकाव्य। यह काल पूर्व काल की अपेक्षा एकदम भिन्न था। सर्वप्रथम काव्य जगत् मे रामायण का आविर्भाव हुआ जिसने काव्य को सही दिशा निर्देश देने मे काफी सहयोग दिया। यही काव्य आदि काव्य का प्रथम बीज है, जिसमे अवगाहन कर कवि तथा पाठक अपने को कृतकृत्य समझता है। रामायण मे हमे उस रसमयी काव्यशैली का भाव मिलता है जो अन्यत्र नही विद्यामान है।

रामायण का जन्म करूण रस के वातावरण मे हुआ। महर्षि बाल्मीकि की कल्याणमयी वाणी 'मा निषाद प्रतिष्ठा' को सुनते ही कविवर ब्रह्मा ने उन्हे हठात् काव्य रचना की प्रेरणा दी। रामायण इसी रचना का फल है। इस प्रकार वाल्मीकि की मूल रचना का प्रामाणिक स्रोत आदिकाव्य रामायण ही था जो काव्य रचना को जन्म देने वाला प्रथम प्रामाणिक ग्रथ माना जाता है।

आचार्य आनन्दवर्धन ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक मे इसका उल्लेख किया है–

"काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तया चादिकवे पुरा।
क्रौन्चद्वन्दवियोगोत्थ शोक श्लोकत्वमागत ।।" ध्वन्यालोक 1–5

"अथ स ब्रह्मर्षिरेकदा माध्यन्दिनसवनाय नदी तमसामनुप्रपत्र। तत्र युग्मचारिणो क्रौञ्चयोरेके त्याधेन विध्यमान ददर्श। आकस्मिक प्रत्यवभासा च देवी वाचमव्यक्तानुष्टभेन छन्दसा परिणताम मभ्युदैरयत्।" उत्तर रामचरित 4|4 गद्य

इस प्रकार वाल्मीकि का काव्य करूणार्णव मे निमज्जित काव्यकला का उदात्त निदर्शन है। वाल्मीकि की कल्पना मे मञ्जुल साम रस्य विद्यमान है। वेदो मे प्रस्फुटित काव्य शैली का विस्तृत एव परिवर्धित रूप आदि काव्य रामायण मे ही परिलक्षित होता है। यही उस काव्य धारा का उद्गम है जो कालिदास, भारवि, अश्वघोष, माघ आदि विभिन्न स्रोतो मे विभक्त होकर सस्कृत काव्यकानन को सीचती आयी है और यही से सबल–प्राप्त कर परवर्ती कवियो ने विविध काव्यो–महाकाव्यो का प्रणयन किया।

**काव्य की परिभाषा –** भारतीय परम्परा मे काव्य को कवि की कृति अथवा कवि द्वारा सम्पादित कर्म कहा गया है। "कवेरिद कार्यं कवेर्भावो वा काव्यम्"। "कवयतीति कवि तस्य कर्म वा काव्यम्"। काव्य के स्वरूप को जानने से पूर्व कवि शब्द के अर्थ को जानना अपेक्षित है। कवि शब्द कु धातु मे अच प्रत्यय 'इ' जोडकर निष्पन्न हुआ है। 'कु' शब्द का अर्थ है– 'सर्वज्ञता या व्याप्तता"। फलत सर्वज्ञ या सभी विषयो का समुचित वर्णन करने वाले को 'कवि' कहते है। महान् वैयाकरण 'श्री भानु जी दीक्षित' ने 'कवि' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा– कि "कवते श्लोकान् ग्रथते वर्णयति वा कवि" अर्थात वर्णन करने वाले को 'कवि' कहते है और कवि के कर्म को 'काव्य' कहते है।

'श्रुतियो' मे कहा गया है कि जो अपनी अनुभूति मे सभी कुछ ग्रहण कर ले और जो अपनी अनुभूति के लिए किसी का मुखापेक्षी न हो, बल्कि स्वय ही अपनी–अपनी अनुभूति का उत्स हो ऐसे ही मनीषी की सृष्टि है 'काव्य'।[1]

'कवि एव काव्य' मे कर्त्ता और कर्म का सम्बन्ध होता है या यो कहिए एक जनक होता है और दूसरा जन्य। इस प्रकार कवि द्वारा जो कार्य किया जाय उसे काव्य कहते है। 'राजशेखर' के अनुसार– 'कवि' शब्द कवृ= वर्णे इस धातु से बनता है।[4] कवि जिस अनुभूत अर्थ को हमारे अत करण मे जागृत कराता है इसी कारण कवि क्रान्तदर्शी कहलाता है।[2] एक सच्चे कवि मे दर्शन और वर्णन कवि इन दो गुणो का होना आवश्यक है। इसलिए इतिहास के सन्दर्भ को ध्यान मे रखते हुए कहा जा सकता है कि कवि शब्द वर्णनकर्ता, दृष्टा, पण्डित, क्रान्तिसर्जक और रचनाकार के अर्थ मे प्रयुक्त होता रहा है। ऋग्वेद मे सूक्तो के उद्गाता और द्रष्टा ऋषि कहे गये है।[3] वस्तुत. वैदिक साहित्य मे ऋषि और कवि शब्द इतने समानान्तर क्रम मे मिलते है कि किसी भी निश्चय पर पहुँचना कठिन हो जाता है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कवि शब्द का अर्थ ऋषि तो अवश्य होता है।

वैदिक साहित्य मे कवि विशिष्ट शक्तिमान् और प्रतिभावान् के प्रतीक के रूप मे भी प्रयुक्त हुआ है। उपनिषदो मे कवि का क्रान्तदर्शी के रूप मे प्रयोग मिलता है। उपनिषदो के काल मे दर्शन और चिन्तन का विशिष्ट क्रम होने के कारण कवियो को ब्रह्म माना जाता था। धीरे–धीरे कवि शब्द वैदिक काल मे भी प्रचलित था तथा उपनिषदकाल मे कवि प्राय सर्जक अर्थ मे था।

---

1 "कविर्मनीषी परिभू स्वयम्भू"। वेदवाक्य – शुक्लयजुर्वेद– 40/8
2 कवय क्रान्तदर्शिन।
3 ऋषयो मत्र द्रष्टारः।
4 काव्यमीमासा– अध्याय 3, पृष्ट 15,

इस प्रकार कवि क्रान्तदर्शी होता है उसका काव्य लोकोत्तर वर्णना का आकर होता है। कवि मे कुछ अतिशय होता है जो सामान्य जन मे नही होता है तथा जिसके कारण कवि अलौलिक वर्णनाए करता है।

इस प्रकार उपर्युक्त गुणो मे से किसी एक का भी अभाव होने पर काव्य सृष्टि का सृजन नही हो सकता। उक्त गुणो का मधुर मिलन होने पर ही काव्य का उदय होता है, क्योकि काव्य मानवीय भावो का एक विशेष उद्बोधक तत्त्व होता है, जैसे कि महर्षि वाल्मीकि का दर्शन स्वच्छ होने पर भी उनकी कविता तब तक प्रस्फुटित नही हुई जब तक कि उनके दर्शन का वर्णन से मिलन नही हुआ। अस्तु इस काव्य सृष्टि के कार्य मे उसकी सहायक शक्ति का नाम है ''प्रतिभा''। 'भट्टतौत' ने कहा है [1]– नव–नव उन्मेष करने वाली प्रज्ञा का ही नाम प्रतिभा है और ऐसी श्लाघनीय शक्ति से अनुप्राणित सजीव वर्णना मे निपुण व्यक्ति का नाम है 'कवि'।

सृष्टि निर्माणकर्ता के अर्थ मे ही उसे प्रजापति की सज्ञा दी गयी है।[2] वह अपनी सृष्टि मे नितान्त स्वतन्त्र होता है। वह अपने मनोवाछित के तरग के अनुसार रसस्यन्दिनी सृष्टि निर्मित करता चलता है। कवि जब अपनी लेखनी को उठाता है तो इस प्रकार के भाव जो उसे काव्य ग्रन्थो मे अत्यन्त मार्मिक तथा शालीन प्रतीत हुए है तथा जिन्होने कवि के अत करण मे अपना स्थान बना लिया है, यत्र–तत्र उसकी कृति मे बरबस समुच्छलित होने लगते है। अनुकृति का यही स्वरूप काव्य मे भी अपेक्षित होता है। धन्य है कवि की भावना–शक्ति जिसकी प्रेरणा से वह काव्य मे काल्पनिक उपादानो को भी मूर्त रूप प्रदान करता है।

इस प्रकार काव्य रचना कवि–कर्म है। इसलिए भारतीय आचार्य काव्य विवेचन कवि पक्ष से करने प्रवृत्त हुए। आचार्य 'मम्मट' ने ''लोकोत्तरवर्णना निपुर्ण कवि कर्म काव्यम्'' कहकर काव्य का स्वागत किया।[3]

**<u>एतत् सम्बन्धी विभिन्न मत–</u>** काव्य का स्वरूप क्या है? काव्य के लक्षण का निर्धारण साहित्य शास्त्र के आचार्यो की प्राचीन समस्या रही है। इसलिए काव्य के स्वरूप का ज्ञान परमावश्यक है जिससे यह विदित हो सके कि कौन सी रचना काव्य है और कौन सी अकाव्य। काव्य स्वरूप के परिज्ञान के लिए हमे आदिकाल से लेकर अद्यावधि आलकारिको द्वारा

---

अपूर्व वस्तु निर्माणक्षमा प्रज्ञा प्रतिभा। — अभिनव का कथन है।
1 नवनवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा प्रतिभा मता। काव्यकौतुक मे भट्टतौत का कथन है
2 अपारे काव्य ससारे कविरेक प्रजापति। का0प्र0 प्रथम उल्लासरस पृ0 5
3 मम्मत कृत काव्य प्रकाश – आचार्य विश्वेश्वर सिन्द्धान्त शिरोमणि पृ0 10

किये गये काव्य लक्षणो पर एक दृष्टि डालनी होगी। सर्वप्रथम काव्य लक्षण निर्धारण का प्रयास नाट्य शास्त्र के प्रणेता भरतमुनि से आरम्भ हो जाता है।

आचार्य भरत का मुख्य विवेच्य विषय नाट्य है, इसलिए उनकी काव्य परिभाषा भी इस दृष्टि से प्रभावित है। इन्होने काव्य का लक्षण दिया– कि "जो मृदु एव ललित पदो से समृद्ध, गूढ शब्दार्थ से रहित, जनपदो मे सरलता से समझ मे आने वाला, युक्ति युक्त नृत्य प्रयोग के योग्य, बहुरसमार्ग समन्वित, सधियो के प्रयोग से युक्त हो वह नाटक प्रेक्षको के लिए शुभकाव्य है।"[1]

भरत के अनन्तर सर्वप्रथम अग्निपुराण मे काव्य के स्वरूप पर विचार किया है। 'अग्निपुराणकार' काव्य लक्षण का निरूपण करते हुए कहते है–

सक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्य व्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्य स्फुरदलङ्0कार गुणवद् दोषवर्जितम्।। अग्निपुराण

अर्थात इष्ट अर्थ से युक्त पदावली को काव्य कहते है और स्फुट अ लङ्कार से युक्त, गुणयुक्त एव दोषरहित वाक्य को काव्य कहते है।

किन्तु परवर्ती आचार्यो ने सभ्यता के आदिकाल से ही शब्द और अर्थ के माध्यम से साहित्य का निर्माण होता है ऐसा स्वीकार करते रहे। इसी दृष्टि से प्रत्येक अलङ्कारवादी ने अपने–अपने विभिन्न प्रकार के काव्यलक्षण बताये।

सर्वप्रथम छठी शता0 के आलकारिक "आचार्य भामह" ने काव्य का लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहा कि– शब्द और अर्थ का साहित्य काव्य है। तात्पर्य यह है कि– काव्य मे शब्द और अर्थ की योजना रहती है ये दोनो अन्योन्याश्रित है। काव्य लक्षण मे आया हुआ शब्दार्थ साहित्य का आशय– अलकार युक्त शब्द एव अर्थ से है। इस प्रकार आचार्य भामह ने काव्य मे शब्द और अर्थ दोनो को समान महत्त्व प्रदान किया।[2]

आचार्य भामह के पश्चात् आचार्य रूद्रट ने काव्य का लक्षण देते हुए कहा कि– काव्य वह है जिसमे शब्द और अर्थ साथ–साथ रहते हो, क्योकि शब्द काव्य का ही बोधक है। शब्द और अर्थ का सम्मेलन ही साहित्य है।

---

1 मृदुललित पदराढ्य गूढशब्दार्थ हीन, ना शा – 16/128
जनपद सुख बोध्य युक्तिमन्नृत्ययौज्यम्।
बहुकृतरसमार्ग, सन्धिसन्धान युक्त,
स भवति शुभकाव्य नाटक प्रेक्षकाणाम्।।

2 शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् – भामह – काव्यालकार – 1/16

तत्पश्चात् आचार्यकुन्तक' काव्य का लक्षण देते हुए कहते है– कि शब्द और अर्थ के सयोग से ही साहित्य की सृष्टि होती है– वे शब्द और अर्थ तभी काव्यत्व लाभ कर सकते है जब उनमे वक्रोक्ति (उक्तिवैचित्र्य) हो। 'कुन्तक' का स्पष्ट कहना है कि सहित अर्थात् मिलित शब्द और अर्थ काव्यमर्मज्ञो के आह्लादजनक और वक्रतामय कवि व्यापार से पूर्ण रचना बन्ध मे विन्यस्त हो तभी काव्य हो सकता है।

'आचार्य कुन्तक' के पश्चात् 'आचार्य दण्डी' ने अपने 'काव्यादर्श' मे काव्य का स्वरूप विवेचन करते हुए कहा कि– इष्ट अर्थ से व्यवच्छिन्न (नपीतुली) पदावली काव्य का शरीर है। इनका काव्य लक्षण कुछ–कुछ अग्निपुराणकार के काव्य लक्षण से मेल खाता है।

'दण्डी' के मत मे– इष्ट अर्थ से तात्पर्य "अलङ्‌कार जन्य आह्लाद" से है, क्योकि 'दण्डी' अलकार को काव्य का शोभाकारक धर्म मानते है।

इसके अनन्तर 'सूत्रकारवामन' ने काव्य लक्षण के विषय मे कुछ और नवीन बात कही। इनका कहना है कि काव्य उस शब्दार्थ को कहते है जो दोष रहित हो तथा जिसमे गुण नित्य रूप से और अलकार अनित्य रूप से विद्यमान हो और इसकी आत्मा है रीति। आचार्य वामन का उक्त लक्षण कुछ–कुछ आचार्य मम्मट के काव्य लक्षण पर घटित होता है।

इसके बाद 'धाराधीशभोज' ने अग्निपुराण का अनुसरण करते हुए काव्य लक्षण प्रस्तुत किया और कहा कि काव्य वह है जो निर्दोष, गुणयुक्त तो हो ही साथ ही वह रसान्वित भी हो। तात्पर्य यह है कि दोषहीन, गुणसमन्वित, अलङ्‌कार विभूषित और रसान्वित वाक्य काव्य है। इस उक्ति से यह स्पष्ट है कि वे भी शब्दार्थ युगल को काव्य मानते है, क्योकि शब्द मात्र को काव्य मानने पर सरस विशेषण सर्वथा सङ्गन्त नही हो सकता। कारण–रस का केवल शब्द से साक्षात् सम्बन्ध नही होता और अलङ्‌कारो से इस बहुवचन से शब्दालङ्‌कार तथा अर्थाअलङ्‌कार दोनो ही उनके विवक्षित ज्ञात होते है। तात्त्पर्य यह है कि यदि उन्हे शब्द मात्र मे काव्यत्व अभिमत होता तो अर्थालङ्‌कारो का समावेश क्यो करते? अर्थालङ्.कार शब्द को अलङ्‌कृत नही कर सकता।

---

"ननु शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्"। रूद्रट– काव्यालकार, 2/1

1 शब्दार्थौ सहितौ वक्रकवि व्यापार शालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्य तद्विदह्लादकारिणि।। वक्रोक्तिजीवित – 1/7

2. शरीर तावदिष्टार्थ व्यवछिन्ना पदावली। काव्यादर्श 1/10

3 काव्य ग्राह्यमलङ्‌कारात्। सौदर्यमलङ्‌कार। स च दोष गुणालङ्‌कार हानोपादानाभ्याम्। रीतिरात्मा काव्यस्वय। विशिष्ट पद रचना रीति विशेषो गुणात्मा। कात्यालङ्‌कार सूत्रवृकत्त–

4. अदोष गुणवदकाव्यलङ्‌कारैरलकृतम्।
रसान्वित। कवि कीर्ति प्रीति च विन्दति।। सरस्वतीकण्ठाभरण–

इसके बाद अलड्कार ग्रन्थो मे सबसे अधिक प्रचलित काव्यप्रकाश के लेखक 'आचार्य मम्मट' का उदय हुआ। आचार्य मम्मट ने काव्य के विविध अङ्ग–उपाङ्गो की विशिष्टता का सूक्ष्मवर्णन किया है। इनके मतानुसार काव्य मे शब्द और अर्थ का हृदयहारी समन्वय होता है। इसी अर्थ का प्रतिपादन महाकवि कालिदास ने अपने रघुवश महाकाव्य मे किया है–

"वागर्थाविव सपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगत पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।।" रघुवश – 1/1

अर्थात् शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य होता है शब्दोच्चारण के साथ ही साथ अर्थ स्वय ही चला आता है। ये दोनो पक्षो मिलकर ही हृदह्लाद को जन्म देते है। किन्तु आचार्य मम्मट के अभिमत मे वे शब्द और अर्थ निर्दोष, सगुण एव प्राय अलकार युक्त होने चाहिए। परन्तु कभी–कभी अलड्कार रहित भी शब्दार्थ युगल काव्य होता है।[1] ध्वनिवाद के पूर्ववर्ती आचार्य अलड्कार के अभाव मे कभी भी काव्यता स्वीकार नही करते जबकि आचार्य मम्मट ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि – काव्य कहलाने वाले शब्दार्थ युगल को सदैव अलड्कार युक्त होना चाहिए। लेकिन यदि किसी काव्य मे अलड्कार का अभाव है तो भी उसकी काव्यता मे कोई हानि नही होती।[2]

एक बात और है, यद्यपि 'मम्मट' ने काव्य लक्षण मे रस की चर्चा नही की, तथापि उनके विचार से काव्य मे रस का सर्वोच्च स्थान है। यह बात काव्यप्रकाश के अन्य अशो से विदित होती है, क्योकि जिन गुणो का रहना काव्य मे उन्होने आवश्यक बताया, उनको वे स्पष्ट शब्दो मे रस का धर्म मानते है।[3]

'आचार्य मम्मट' के काव्यलक्षण मे प्रयुक्त उपर्युक्त विशेषणो के विरूद्ध कुछ विद्वानो ने कहा कि दोष का सम्बन्ध काव्य शरीर से न होकर उसके उत्कर्ष या अपकर्ष से है। श्रुतिकटुता आदि दोष से काव्य काव्यत्व से हीन कदापि नही हो सकता, क्योकि मनुष्य एक आँख से हीन होने पर भी अपने मनुष्यत्व से हीन नही होता, उसी प्रकार दोष होने पर काव्य के काव्यत्व मे अपकर्ष हो सकता है, किन्तु वह काव्य तो अवश्य रहेगा। फलत मम्मटोक्त 'अदोषौ' विशेषण काव्य के शरीर हेतु, नितान्त आवश्यक मानना उचित नही प्रतीत होता है।

---

1 "तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलड्कृती पुन क्वापि"। का प्र –प्रथम उल्लास

2 "क्वापीत्यनेनैतदाह यत् सर्वत्र सालड्कारौ क्वचिन्तु स्फटालड्कार विरहेऽपि न काव्यत्व हानि"।
का प्र प्रथम उल्लास

3 ये रसस्याङ्गिनो धर्मा शौर्यादिव इवात्मन।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्पुस्चलस्थितयो गुणा का प्र– अष्टमउल्लास पृ0– 380

किन्तु इस आलोचना का सारगर्भित उत्तर मम्मट ने पूर्व से ही अपने ग्रन्थ मे समाविष्ट कर रखा है। मम्मट ने मुख्यार्थ के विधातक को दोष कहा है। मुख्यार्थ से तात्पर्य कवि के प्रयोजनभूत अथवा उद्देश्यभूत अर्थ से है। चूकि रस ही मुख्यार्थ होता है इसलिए रसादि के अपकर्षक को दोष कहते है। केवल दोषो की सत्ता होने से काव्य के काव्यत्व की हानि नही होती, क्योकि कोई भी दोष स्वरूपत दोष नही होता।

कुछ दोष नित्य एव कुछ अनित्य होते है। इनमे से कुछ तो रस, भाव, वाच्य आदि की महिमा से गुणरूप हो जाते है। काव्य मे रस–दोष ही मुख्य होते है। उनका परिहार परमावश्यक है। इस प्रकार मम्मटोक्त 'शब्दार्थौ' का 'अदोषौ' विशेषण सर्वथा उचित ही है।

'सगुणौ' इस विशेषण पर भी विश्वनाथ ने आपत्ति की है। 'आचार्य मम्मट' ने गुणो प्रसाद, माधुर्य, ओज को रस के अचल धर्म होने से नित्य माना है और अलङ्कारो को अनित्य। काव्य मे गुणो का सम्बन्ध प्रधान रूप से है और गौण रूप से शब्द और अर्थ से। उक्त आपत्ति के अनुसार ही यहॉ भी यही कहा गया है। गुणो से मण्डित न होने पर भी मनुष्य के मनुष्यत्व की हानि नहीं होती। अत गुणो का सम्बन्ध काव्य के स्वरूप से नही है, इसलिए काव्य लक्षण मे रखना इन्हे अनिवार्य नही है। किन्तु यह तो अनुभव सिद्ध है कि गुण मण्डित होने पर उत्कर्ष होता है और उनके अभाव मे अपकर्ष। यदि काव्य अपने लक्ष्य की सिद्धि नही कर सका तो काव्यत्व होने या न होने के बराबर ही है। निष्कर्षत काव्य मे गुणो का होना परमावश्यक है।

'शब्दार्थौ' का तृतीय विशेषण 'अनलङ्कृती पुन. क्वापि' है। तात्पर्य यह है कि शब्द और अर्थ को अलकृत होना चाहिए। कितु अलकृत न होने पर भी कोई आपत्ति नही। आचार्य मम्मट अलङ्कार की अनिवार्यता नहीं मानते है, क्योकि रस दशा में काव्य मे अलंकार आवश्यक नही होते। इस प्रकार मम्मट के लक्षण मे प्रयुक्त सभी विशेषण उपयुक्त है। इस प्रकार आचार्य मम्मट ने आदर्श काव्य का स्वरूप प्रस्तुत किया।

'आचार्य मम्मट' का समर्थन करते हुए हेमचन्द्र ने भी अपना काव्य लक्षण दिया– कि काव्य मे शब्दार्थ युगल के साथ–साथ अलङ्कारो का सर्वथा सद्भाव होना चाहिए।

मम्मट के लक्षण से इनके लक्षण मे सिर्फ इतना अतर है कि आचार्य मम्मट अलङ्कारो का सर्वथा सद्भाव नही मानते, जबकि ये मानते है।

अपने काव्य लक्षण मे गुण के माध्यम से रस का सकेत करके ध्वन्यमान अर्थ के प्राधान्य का उल्लेख करने वाले मम्मट प्रभृति ध्वनिवादी आचार्यों के अतिरिक्त कुछ आलकारीक ऐसे भी

है जिन्होने अपने काव्य लक्षणो मे रस का प्रत्यक्ष रूप से निर्देश किया है। इन आलकारिको मे भोज, वाग्भट्ट, विश्वनाथ इत्यादि है।

'आचार्य मम्मट' के अनन्तर 14वी शताब्दी के आचार्य 'विश्वनाथ' अवतीर्ण हुए। इन्होने अग्निपुराणकार से लेकर जयदेव तक के आचार्यो ने जो उत्तरोत्तर लम्बा काव्य लक्षण तैयार किया था, उसको काट-छाट कर सक्षिप्त कर दिया और काव्य मे केवल रस, भाव आदि असलक्ष्यक्रम कहे जाने वाले व्यड्ग्यार्थो का रहना आवश्यक समझा। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार– अलड्कार केवल उत्कर्ष के कारण है, उसके स्वरूपाधायक नही। और दोष केवल अपकर्ष के हेतु है, स्वरूप विघटक नही।

'आचार्य विश्वनाथ' के अनुसार रसात्मक वाक्य को काव्य कहा जाता है।[1] इन्होने रस को सह्रदय सवेद्य, अलौकिक काव्यार्थ तत्त्व कहा है। किन्तु इस रस का आस्वादन सबको नही होता। इसका अनुभव उसी को होता है जिसके ह्रदय मे सत्त्व का उद्रेक होता है। रजोगुण एव तमोगुण के सस्पर्श से रहित चित्त 'सत्त्व' कहलाता है। इस सत्त्व के उद्रेक से सह्रदयो के द्वारा अनुभूत रस, अखण्ड स्वय प्रकाश एव आनन्दमय इत्यादि स्वसवेदनरूप है। उस समय किसी ज्ञेयवस्तु का ज्ञान नही रहता। यह अलौकिक चमत्कार एव अनुभव सह्रदय के चित्त का विस्तार मात्र है। यह चमत्कार रसरूप ~~अनुरूप~~ अनुभव का प्राण है और रस काव्य की आत्मा है। उन्होने रस को काव्य का जीवन कहा।

इसके अनन्तर –पडित जगन्नाथ' का काल आता है– इन्होने काव्यलक्षण का जो रूप स्थिर किया उसके सम्बन्ध मे कुछ मार्मिक बाते कही है। इन्होने कहा कि– रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द ही काव्य है[2]। अर्थात् जिस शब्द द्वारा रमणीय अर्थ प्रतिपन्न हो वह काव्य है। इन्होने 'रमणीयता' का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा कि– "अलौकिक आनन्द का ज्ञान गोचर होना अर्थात् अनुभव होना ही रमणीयता है।" तात्पर्य यह है कि ह्रदय मे रमणीय अलौकिक आनन्द का सचार करने वाले शब्द या अर्थ रचना ही काव्य है।

इस प्रकार भारतीय काव्यशास्त्रियो एवं अलकारवादियो के काव्यलक्षणो की विश्लेषणात्मक चर्चा हमे इस निष्कर्ष पर ले आती है कि यद्यपि दोनो अर्थात् काव्यशास्त्रियो एव अलकारवादी काव्यशास्त्रियो के मार्ग भिन्न–भिन्न होने पर भी दोनो का गन्तव्य एक ही है।

---

"अदोषौ सगुणौ सालड्कारौ च शब्दार्थौकात्यम्"। काव्यानुशासन

1 वाक्य रसात्मक काव्यम्।विश्वमन्तटत साहित्यदर्पण

2 रमणीयार्थ प्रतिपादक. शब्द काव्यम्। पडित राजजगताक्षकृम– रसगमाघर पृष्ठ 1

इस सन्दर्भ मे यह उल्लेखनीय है कि प्रारम्भ मे सौन्दर्यपूर्ण अथवा सौन्दर्यरहित सभी वर्णनो को काव्य कहा जाता था। इस समय तक काव्य का कोई विशिष्ट लक्षण नही बना था। सर्वप्रथम 'अग्निपुराण' ने काव्य का लक्षण किया गया, जिसके अनुसार सौन्दर्यमय अर्थों का रमणयी ढग से प्रतिपादन करने वाले शब्द काव्य समझे जाने लगे।

तदनन्तर छठी शताब्दी के 'आचार्य भामह' शब्द और अर्थ के साहित्य मात्र को काव्य मानते है। इनका कहना है कि शब्द और अर्थ एक दूसरे से मिलकर ही काव्य का निर्माण करते है, क्योकि वाच्य और वाचक के नित्य सम्बन्ध के कारण शब्द और अर्थ मे साहित्य का कभी अभाव नही होता। वह तो सहज होता है।

'भामह' के पश्चात् 'आचार्य रूद्रट' ने काव्य लक्षण मे एक महान परिवर्तन किया। अभी तक जो केवल शब्द को काव्य कहा जाता था, वह उनकी गवेषणात्मक बुद्धि मे ठीक नही जचा। अत उन्होने उसमे अर्थ को भी जोड दिया, अर्थात् वे शब्द और अर्थ दोनो को काव्य कहने लगे। तात्पर्य यह है कि– उनके विचार से सम्मिलित शब्दार्थ–युगल ही काव्य सिद्ध हुआ, क्योकि काव्य पद का जो मूल–मूल अर्थ जो 'कवि की कृति' है उसके अनुसार अर्थ को भी काव्य मानने मे किसी तरह की आपत्ति नही होती। कारण यह है कि शब्द की तरह उसका अर्थ भी वस्तुत कवि की कृति होता है। अत 'रूद्रट' का 'शब्दार्थ युगल' काव्यतावाद नितान्त तर्कसङ्गत है।

'आचार्य दण्डी' ने काव्य मे मूर्तिमत्ता को महत्त्व दिया। उनकी दृष्टि मे प्रत्येक भाव या विचार बिम्बरूप है। इसी को दृष्टि मे रखकर उन्होने अभीष्ट अर्थ सबलित पदावली को ही काव्य माना। वास्तव मे भाव–बिम्बन के माध्यम तो शब्द ही है। उनके अभाव मे कवि कर्म असम्भव है।

'वामन' आदि आचार्य सौन्दर्य का कारण समान रूप से गुण तथा अलङ्कार को मानते रहे।

'आनन्दवर्धन' भी शब्द और अर्थ के साहित्य को ही काव्य स्वीकार करते है। ये ध्वनि को ही काव्य की आत्मा मानते है। तात्पर्य यह है कि वैसे तो आनन्दवर्धन ने भी सहृदयो के हृदय मे आह्लाद उत्पन्न करने वाले शब्द और अर्थ को सामान्य काव्य बताया है और सार रूप मे स्थित सहृदयश्लाध्य प्रतियमान अर्थ के ललित एव उचित सन्निवेश के कारण चारू शब्दार्थ युगल रूप उस काव्य शरीर की आत्मा कहा है।

'ध्वनिकार' रसादि ध्वनि को ही काव्य की आत्मा स्वीकार करते है, वस्तु ध्वनि, अलकार ध्वनि को नही।

'राजशेखर' ने ''गुणवदलङ्कृतश्च वाक्यमेव काव्य'' कहकर केवल शब्दो को ही काव्यता का प्राधान्येन प्रतिपादन किया।

इसके अतिरिक्त 'भोज', 'मम्मट', 'हेमचन्द्र' आदि ने शब्द और अर्थ दोनो के सम्मिलित रूप को काव्य स्वीकार किया। 'विश्वनाथ' ने रसात्मकता की जो अपरिहार्य शर्त लगा दी है उससे निश्चय ही वस्तुध्वनि और अलङ्कारध्वनि प्रधान काव्य को काव्य मानने मे कठिनाई होगी। 'विश्वनाथ' और 'पण्डित राज' ने शब्द की काव्यता को स्वीकार किया। इन लोगो ने दोषो का अभाव, गुणो का सद्भाव, अलङ्कारो की सत्ता और रसादिक की स्थिति अनिवार्य रूप से स्वीकार की।

इस प्रकार यह विदित होता है कि सस्कृत काव्य शास्त्र मे काव्य की अनेक परिभाषाएं हुई है, किन्तु यदि कोई परिभाषा अधिक से अधिक विविध काव्य राशि को अपने अक मे सही ढग से समेट सकती है तो वह 'आचार्य मम्मट' की काव्य परिभाषा कही जा सकती है।

इस प्रकार आचार्यो ने काव्य के स्वरूप का विवेचन काव्य के कर्त्ता और कवि कौशल के दृष्टि कोण से किया। यह समीचीन भी है कि काव्य कवि का कर्म है ''लोकोत्तर कवि कर्म'' और उसकी रमणीयता कवि कर्म की रमणीयता है। इसलिए काव्य मे प्रधानता निश्चित रूप से कवि के व्यापार की है। अतएव आचार्यो ने काव्य के शब्दो एव अर्थो का जो विशिष्ट स्वरूप प्रतिपादित किया निसदेह वह परम श्रेयास्पद है।

महाकवि माघ ने काव्य मे शब्द और अर्थ के इस समान महत्त्व को उपदिष्ट करते हुए कहा है–

नालम्बते दैष्टिकता न निषीदति पौरूषे।

शब्दार्थौ सत्कविखिद्वय विद्वानपेक्षते।।     शिशुपाल/2/86

---

1 शब्दार्थयो साहित्येन काव्यत्वे। — ध्वन्यालोक
काव्यस्यात्मा ध्वनि। — ध्वन्यालोक
''सहृदय हृदयाह्लादिमेव शब्दार्थमयत्वेव काव्य लक्षणम्''। — ध्वन्यालोक प्रथम कारिका की वृत्ति
2 लोकोत्तर वर्णना निपुण कवि कर्म काव्यम्। — का प्र/पृष्ठ 6
3 लोकोत्तर कवि कर्म्म काव्यम्''। — हेमचन्द्र का व्यानु शासन/पृ 3

इस प्रकार आचार्यों ने काव्य के स्वरूप का विवेचन काव्य के कर्त्ता और कवि कौशल के दृष्टि कोण से किया। यह समीचीन भी है कि काव्य कवि का कर्म है "लोकोत्तर कवि कर्म" और उसकी रमणीयता कवि कर्म की रमणीयता है।[1] इसलिए काव्य मे प्रधानता निश्चित रूप से कवि के व्यापार की है। अतएव आचार्यो ने काव्य के शब्दो एव अर्थों का जो विशिष्ट स्वरूप प्रतिपादित किया नि सन्देह वह परम श्रेयास्पद है।

महाकवि माघ ने काव्य में शब्द और अर्थ के इस समान महत्त्व को उपदिष्ट करते हुए कहा है—

नालम्बते दैष्टिकता न निषीदति पौरुषे।

शब्दार्थौ सत्कविखिद्वय विद्वानपेक्षते।। शिशुपाल/2/86

**काव्य प्रयोजन** मानव स्वभाव है कि वह कोई भी कार्य बिना प्रयोजन के नही करता। किसी न किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए कार्य – विशेष का सम्पादन किया जाता है, तथा कार्य का फल प्रयोजन सिद्धि के साथ सम्पन्न होता है।

आशय यह है कि—मनुष्य के प्रत्येक कर्म का भले ही वह निष्काम प्रकृति का हो कुछ न कुछ प्रयोजन रहता है – "प्रयोजनमनुद्दिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते"। इस दृष्टि से शास्त्र तथा काव्य निर्मिति के भी कुछ प्रयोजन होते है जिससे प्रेरित होकर कवि काव्य का प्रणयन करता है, क्योकि यदि प्रयोजन ही न हो तो उसकी क्या सार्थकता? कहा भी गया है –

"सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो नापि कस्यचित्।

यावत्प्रयोजन नोक्त तावत् तत्केन गृह्यते।।"

सस्कृत वाङ्मय मे प्रत्येक शास्त्र के चार अनुबन्ध अधिकारी, विषय, सम्बन्ध एवं प्रयोजन माने गये है। यहाँ भी प्रयोजन बताया जाना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योकि काव्य ग्रन्थो का उद्देश्य किसी व्यक्ति को किसी कार्य विशेष मे प्रवृत्त करना ही हुआ करता है। जो वस्तु जिसके लिए उपादेय एव ग्रहणीय होती है उसकी प्रवृत्ति भी उसी मे निहित रहती है।

काव्य के प्रयोजन के विषय मे प्राचीनकाल से ही मनीषियो मे विचार होता रहा है। हमारे यहाँ 'कला केवल कला के लिए' (Art for Arts Sake) के सिद्धान्त को स्वीकार नही किया गया है, और न नवीन आधुनिक उपयोगितावाद को ही काव्य भूमि मे प्रतिष्ठित किया गया है, अपितु काव्य के दृष्ट और अदृष्ट दोनो प्रकार के प्रयोजन माने गये है।

---

1. लोकोत्तर कवि कर्म काव्यम्"। हेमचन्द्र का व्यानुशासन/पृ0 3

काव्य के प्रयोजन पर सर्वप्रथम तृतीय शती0 के नाट्यशास्त्र के प्रणेता आचार्य भरतमुनि ने विचार किया था – उनके अनुसार "काव्य का प्रयोजन, लोक का मनोरजन तथा शोकपीड़ित एव परिश्रान्त जनो को विश्रान्ति प्रदान करना है [1]। आचार्य भरत के बाद जैसे – जैसे काव्य कलेवर का विकास हुआ, लोगों की कवि प्रतिभा मुखरित हुई वैसे–वैसे काव्य प्रयोजन का भी विस्तृत एव विशद विवेचन किया गया।

'भरत' के पश्चात् छठी शती के 'आचार्य भामह' ने इसमे थोडा परिवर्तन–परिशोधन कर अपना काव्य प्रयोजन प्रस्तुत करते हुए कहा कि –सत्काव्य के सेवन से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, एव कलाओ मे विदग्धता प्राप्त होती है तथा अध्येता मे कीर्ति एव प्रीति का सन्निवेश होता है [2]। आचार्य 'भामह' के अनन्तर रीतिवादी आचार्य 'वामन' ने भी अपना सुप्रतिष्ठित एव परिमार्जित काव्य प्रयोजन प्रस्तुत करते हुए कहा कि, सत्काव्य दृष्ट और अदृष्ट दोनो प्रकार के प्रयोजन सिद्ध करता है ये है 'प्रीति और कीर्ति' [3]। इन्होने सत्काव्य की रचना को यश की सरणि और कुकवियो की बिडम्बना को अपयश की सरणि कहा है, विद्वानो ने 'कीर्ति' 'को स्वर्गफला कहा है जो सृष्टि पर्यन्त रहती है और अपकीर्ति को आलोक हीन नरक की दूतिका कहा है। तात्पर्य यह है कि काव्य कवि के लिए कीर्ति विधायक होता है, कुकवित्व साक्षात् मृत्यु की भॉति कुकीर्तिकर होता है।

धाराधीश 'भोज' ने भी वामन द्वारा प्रथित सरणि का अनुकरण करते हुए 'कीर्ति एव प्रीति' को ही काव्य का मुख्य प्रयोजन माना [4]।

आलङ्कारिक 'आचार्य कुन्तक' ने काव्य प्रयोजन का उल्लेख करते हुए कहा–कि धर्मादि की प्राप्ति, व्यवहार का सुन्दर ज्ञान, आदि तो काव्य के प्रयोजन है ही परन्तु सबसे बडी बात यह है कि काव्यामृत के रस से चतुर्वर्ग फल की प्राप्ति से भी बढकर अन्तश्चमत्कार की उत्पत्ति होती है [5]।

---

1 वेदविद्येतिहासानामाख्यान परिकल्पनम्।
विश्रान्तिजनन लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।। — ना0शा01 / 109–124
दु खार्त्ताना श्रमार्त्ताना शोकार्त्ताना तपस्विनाम्।
विश्रामजनन लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।।

2 धर्मार्थकामोक्षेषु वैचक्षण्य कलासु च।
करोति कीर्ति प्रीति च साधुकाव्य निषेवणम्।। — भामह–काव्यालङ्कार, प्रथम परिच्छेद, द्वितीय श्लोक

3 काव्य सद् दृष्टादृष्टार्थ प्रीतिकीर्तिहेतुत्त्वात्।
कीर्ति स्वर्गफलामाहुराससार विपश्चित ।। — (काव्यालङ्कार सूत्रवृत्ति 1 1.5)

4 निर्दोष गुणवत्काव्यमलङ्कारैरलङ्कृतम्।
रसान्वित कवि कुर्वन्कीर्ति प्रीति च विन्दति।। — भोजकृत–सरस्वतीकण्ठाभरण

5. धर्मादिसाधनोपाय सुकुमारक्रमोदित ।
काव्यबन्धोऽभिजाताना हृदयाह्लादकारक ।। — वक्रोक्तिजीवितम्–प्रथम उन्मेष, 3–5

तात्पर्य यह है कि धर्म, अर्थ कामादि चारो पुरूषार्थो के अतिरिक्त व्यवहार के औचित्य का ज्ञान हृदय का आह्लाद अथवा अन्तश्चमत्कार है।

आचार्य कुन्तक के पश्चात् काव्य के प्रयोजन पर विचार करते हुए चौदहवी शती० के कविराज विश्वनाथ ने कहा कि काव्य के द्वारा अल्पबुद्धि मानव को भी सुखपूर्वक अर्थात् अनायास बिना किसी विशेष परिश्रम के धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप पुरूषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति हो जाती है[1]।

काव्य प्रयोजन रूपी इसी उपादेयता को ध्यान मे रखते हुए– 'अग्निपुराण' मे कहा गया है "पहले तो ससार मे मानव जन्म ही दुर्लभ है, फिर विद्या प्राप्ति इससे भी दुर्लभ है और उससे भी दुर्लभ है कवित्व प्राप्त करना, और अति दुर्लभ है कवि प्रतिभा को प्राप्त करना, अर्थात् कविता करने की स्वभाव सिद्ध शक्ति पाना परम दुर्लभ है [2]।

'ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन' ने तो केवल 'प्रीति' को काव्य का प्रमुख प्रयोजन माना। जैसा कि उन्होने कहा है –

"तेन ब्रूम सहृदय मन प्रीतये तत्स्वरूपम्"। (ध्वन्यालोक – 1 1)

उनका कथन है कि, यह 'प्रीति' ही सहृदयो के हृदय की आनन्दानुभूति का विषय है जिसे रसवादी आचार्य 'रसानुभूति' कहते है– क्योकि रस आनन्द रूप है – "आनन्दो रस"

'आनन्दवर्धन' के समान 'अभिनवगुप्त' ने भी 'प्रीति' को ही काव्य का प्रयोजन माना[3]।

इसके अनन्तर एकादश शती० के ध्वनिप्रतिष्ठाता वाग्देवतावतार 'आचार्य मम्मट' ने उक्त सभी मतो मे समन्वय स्थापित करते हुए तथा उनमे सशोधन एव परिमार्जन करके एक निश्चित शब्दावली अपनाते हुए विस्तारपूर्वक काव्य के छह प्रयोजनो का उल्लेख किया। (1) काव्य से यश प्राप्ति (2) अर्थलाभ (3) लोक व्यवहार का ज्ञान (4) अमङ्गल का नाश (5) सद्य परमानन्द की अवाप्ति और (6) कान्ता सम्मित मधुर वचनो द्वारा सरस उपदेश [4]।

---

1 चतुर्वर्गफलप्राप्ति सुखादल्पधियामपि।
काव्यादेवयतस्तेन तत्स्वरूप निरूप्यते।। सा० दर्पण–1/2

2 नरत्व दुर्लभ लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्व दुर्लभ तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।। अग्निपुराण – 327/3

3 कवेस्तावत् कीर्त्याऽपि प्रीतिरेव सम्पाद्या।
श्रोतृणा च व्युत्पत्तिर्यद्यप्यस्ति तथापि प्रीतिरेव प्रधानम्।। ध्वन्यालोक लोचन टीका–

4 काव्य यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्य परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।। काव्यप्रकाश 1/2

आचार्य मम्मट ने प्रथम प्रयोजन काव्य यश के लिए माना अर्थात् सत्काव्य के स्फुरण से प्रतिभावान् सहृदयजनो को कालिदास आदि के समान यश की प्राप्ति होती है, जैसा कि – उन्होने स्वय कहा है –

"कालिदासादीनामिवयश"

तात्पर्य यही है कि, यदि कालिदास की कविता स्वकीर्ति की अर्जना के लिए थी तो 'धावक' नामक कवि ने विपुल धनार्जन हेतु 'रत्नावली नाटिका' की रचना की थी [1]।

'व्यवहार ज्ञान' की चर्चा अध्येता की दृष्टि मे रखकर की गयी थी, क्योकि विभिन्न परिस्थितियो मे पात्रो के परस्पर व्यवहार की शैली का ज्ञान, विशेषकर साधारण जनो को राजादि के साथ उचित शिष्टाचार विषयक ज्ञान काव्य के द्वारा ही होता है। कहा जाता है कि मयूर कवि ने 'सूर्यशतक' की रचना करके कुष्ठरोग से मुक्ति प्राप्त की थी।

जिस प्रकार तुलसीदास को 'हनुमानबाहुक' की रचना से बाहुपीडा से छुटकारा मिल गया था। 'आचार्य मम्मट' ने सद्य परनिर्वृति को सर्वोत्कृष्ट प्रयोजन माना। यह अवस्था अलौकिक आनन्दानुभूति की अवस्था होती है। इसमे सहृदय तन्मय हो जाता है और आनन्द के सागर मे लीन होकर ससार की वस्तुओ को विस्मृत कर देता है – कहने का तात्पर्य है कि – यद्यपि आनन्द की प्राप्ति भी स्वर्गादि लोक के साधक यज्ञादि धार्मिक क्रियाओ द्वारा अवश्य होती है पर कालान्तर और देहान्तर मे, तत्काल नही। किन्तु काव्यजनित आनन्द काव्य के श्रवण या मनन के अनन्तर तत्काल ही उपलब्ध होता है। वह साधारण आनन्द नही होता, बल्कि ब्रह्मानन्द के सदृश परम आनन्द को देने वाला होता है। इस प्रकार काव्य जन्य आनन्द अलौकिक है, अनिर्वचनीय है।

तथा कान्ता सम्मित उपदेश को उद्देश्य मानकर प्रणीत काव्यग्रन्थ का ज्वलन्त उदाहरण अश्वघोष का सौन्दरानन्द महाकाव्य है। काव्य के उक्त प्रयोजनो मे अंतिम प्रयोजन कान्तासम्मित उपदेश विशेष महत्त्व का विषय है।

---

1 धावकनामा कवि श्री हर्षनृपनाम्ना रत्नावली नाम्नी नाटिका कृत्वा बहुधन लब्धवानिति प्रसिद्धि।
(काव्यप्रकाश की भट्टवामिनीटीका पृष्ठ 7)

उपदेश ज्ञान के लिए जब नीतिशास्त्र, व्याकरणशास्त्र आदि तो है ही तो फिर उसके लिए काव्य की क्या आवश्यकता? इसी सन्देह के निराकरण के लिए उसमे कान्तासम्मित विशेषण का प्रयोग किया गया है।

उपदेश की तीन प्रधान शैलिया होती है – (1) प्रभुसम्मित शैली (2) सुहृत् सम्मित शैली (3) और कान्तासम्मित शैली।

प्रभुसम्मित शैली शब्द प्रधान वेदमूलक होती है। जैसे प्रभु इष्टसाधन, अनिष्ट साधन एव निष्फल सभी प्रकार के प्रयोजनो मे प्रवर्तित करता है। वही वेद इष्टसाधन रूप ज्योतिष्टोम आदि अनिष्ट साधन रूप [1] श्येनयागादि तथा निष्फल कार्य रूप सध्यावन्दन प्रभृति के सम्पादन के लिए प्रेरणा प्रदान करता है [2]। दूसरे शब्दो मे प्रभुसम्मित या वैदिक उपेदश–शैली नीरस होने के साथ आदेशपरक होती है तथा उसका पालन करना एक अनिवार्य विषय होता है।

सुहृत्सम्मित शैली इतिहास–पुराण आदि की तरह केवल वस्तुतत्व का स्पष्टीकरण कर देती है। यह किसी भी दिशा मे प्रवृत्त होने की प्रेरणा न देकर मित्रवत् कर्त्तव्य को इङ्गित मात्र करके मौन साध लेती है। ठीक उसी प्रकार इतिहास–पुराणादि भी 'ऐसा करने से ऐसा इष्टफल प्राप्त होता है', इस प्रकार वस्तुतत्व का बोध कराते है। किसी दिशा मे प्रवृत्त नही करते है, किन्तु कान्तासम्मित शैली का स्वरूप उक्त दोनो शैलियो से भिन्न होता है। जिस प्रकार कोई अपूर्व सुन्दर रमणी गुरूजनो के अधीन रहने वाले प्रियतम को इतर लोगो की अपेक्षा विलक्षण रीति से अपने हाव, भाव, कटाक्ष–भुजाक्षेप एव अन्य अङ्गो के विलास द्वारा सरसता की सर्जना करके अपने वश मे कर लेती है, उसी प्रकार कविताकामिनी शुष्क नीतिशास्त्र एव व्याकरणशास्त्र आदि से पराङ्मुख सुकुमार राजकुमारो एव अन्य सामाजिक जनो को ललितपदविन्यास से अभिव्यक्त श्रृङ्गार आदि रस मे रमाकर सदुपदेश रूप स्वार्थ मे प्रवर्तित करती है [3]।

यहॉ यह सन्देह नही किया जा सकता, तो फिर शास्त्र आदि के रहते हुए सुकुमारमति जनो से भिन्न–भिन्न परिपक्व बुद्धि रखने वाले वे पुरूष काव्यो मे क्यो श्रम करे, क्योकि यदि कडवी ओषधि से शमित होने वाले रोग यदि किसी मीठी दवा से शान्त होने लगे तो ऐसा कौन अभाग्यशाली रोगी होगा जो मीठी ओषधि खाना न चाहे ।

---

1 ज्योतिष्टोगेन स्वर्गकामो यजेत्। — मीमासा अर्थसग्रह – पृष्ठ–46
2 श्येनेनाभिचरन् यजेत्। — मीमासा अर्थसग्रह – पृष्ठ–11
3 सत्यवद, धर्मचर इत्यादि – 'वेदवाक्य'

इस प्रकार कोमल मति जनो के लिए प्रयुक्त यह विषय परिपक्व बुद्धि वाले पुरूषो के लिए भी उपादेयता की कसौटी पर खरा उतरता है[1]।

यह सत्य है कि – वेदो और शास्त्रो द्वारा प्रतिपादित शुष्क एव दुरूह विषय काव्य का माध्यम पाकर सर्वसामान्य के मस्तिष्क एव हृदय पर एक अमिट प्रभाव डालते है। काव्य मानवीय भावो का एक विशेष उद्‌बोधक तत्त्व है। वह मानव को इष्ट कर्त्तव्यपथ पर प्रवर्तित करने का सर्वोत्तम एव सर्वाधिक प्रभावशाली साधन है।

कविता मानव के अन्तस्तल पर मार्मिक चोट करती है, वह मनुष्य को तन्मय बना देती है। तथा मानव हृदय को तुरन्त प्रेरणा प्रदान करती है। यही कारण है कि धर्मप्रचारक एव सिद्धान्त प्रवर्तक आचार्यगण अपने उपदेशो को लोकप्रिय बनाने तथा जनसाधारण तक उसके प्रचार एवं प्रसार के लिए अति प्राचीनकाल से कविता का प्रश्रय लेते आये है। तात्पर्य यही है कि, वेद और शास्त्रजन्य उपदेश अविद्यारूपी व्याधि को सम्यक् रूप से नष्ट कर देने मे समर्थ है, और वे उस कडवी ओषधि के समान है, जो अत्यन्त गुणयुक्त एव हितकर होते हुए भी सेवन नही किये जा सकते, किन्तु काव्य का उपदेश सहज एव सुखसाध्य होने के कारण अन्य मार्गो से विलक्षण है। इस प्रकार 'कला केवल कला के लिए' नही होती। उसका उद्‌देश्य मानव कल्याण भी होता है। मानव कल्याण रूप प्रयोजन भिन्न –भिन्न प्रकार के चरित्रो की सृष्टि के द्वार से ही सिद्ध होता है। तात्त्पर्य यही है कि – रसोद्रेक के साथ समाज के सम्मुख उच्च आदर्श चरित्रों को प्रस्तुत करना भी प्रयोजन होता है।

मम्मट के उक्त छह प्रयोजनो मे से किनका अधिकारी कवि है और किनका सहृदय। स्पष्ट है कि – यश, धन, और रोगनाश का सीधा सम्बन्ध कवि के साथ है और व्यवहार ज्ञान तथा कान्तासम्मित उपेदश का सीधा सम्बन्ध सहृदय के साथ। शेष बचा एक प्रयोजन–रसास्वाद प्राप्ति"। मम्मट के टीकाकारो के अनुसार–सहृदय ही इसका भोक्ता है कवि को भी यदि अपने काव्य से रसास्वाद प्राप्त होगा तो उसे तत्क्षण के लिए सहृदय ही मानना होगा।

---

1 ननु तर्हि परिणतबुद्धिभि सत्सु वेदशास्त्रेषु किमिति काव्येयत्नः करणीय इत्यपि न वक्तव्यम्। कटुकौषधोपशमनीयस्य रोगस्य सितशर्करोपशमनीयत्वे कस्य वा रोगिण सितशर्कराप्रवृत्ति साधीयसी न स्यात्। साहत्यदर्पण–प्रथम परिच्छुद पृष्ठ – 12

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि काव्य–प्रयोजन काव्य द्वारा प्राप्त फल को कहते है। किन्तु काव्य प्रयोजन काव्य रचना के अनन्तर फल की उपलब्धि है।

मम्मट के समस्त छह प्रयोजनो मे से सद्य. परनिर्वृति सर्वोत्कृष्ट प्रयोजन है। इसके बाद कान्तासम्मित उपदेश का स्थान है। शेष काव्य प्रयोजनो का सम्बन्ध कवि और सहृदय दोनो के साथ साक्षात् रूप से अथवा प्रकारान्तर से है।

इस प्रकार काव्य का प्रयोजन नैतिकता का आधान है पर साथ ही साथ उसे लोकमङ्गल एव आनन्द सापेक्ष होना चाहिए।

**काव्य के शोभाधायक तत्त्व –** काव्य–शरीर की शोभा मे अभिवृद्धि करने वाले तत्त्वो को काव्य के शोभाधायक तत्त्व माना जाता है। काव्य शोभा का आधार होता है, जबकि समस्त शोभाधायक तत्त्व आधेय होते है अर्थात् इनमे परस्पर अलङ्कार्य – अलङ्कार सम्बन्ध रहता है।

**अलङ्कार तत्त्व –** यद्यपि काव्य के सौन्दर्यवर्धक तत्त्वो मे अलङ्कार, गुण, रीति, रस, छन्द, औचित्य आदि अनेक है, किन्तु अलङ्कार तत्त्व की कुछ अपनी अलग ही महिमा है।

काव्यशास्त्र मे काव्य को सुसज्जित करने और अलङ्कृत करने वाले तत्त्व को 'अलङ्कार' कहते है। 'अलङ्कार' शब्द की निष्पत्ति – अलम् उपपदवाली √ कृ धातु से घञ् प्रत्यय करने पर होती है। इसके अतिरिक्त 'अलङ्कार' शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से और की गयी है – (1) अलङ्क्रियतेऽनेनइति अलङ्कार जिसके द्वारा अलङ्कृत किया जाता है। (2) अलङ्करोति इति अलङ्कार जो अलङ्कृत करता है। यद्यपि दोनो करण परक व्युत्पत्ति मे कोई ज्यादा अन्तर नहीं है। दोनो का तात्पर्य यही है – कि जिस तत्त्व से काव्य की शोभा होती है उसे अलङ्कार कहते है।

किन्तु फिर भी वाच्य प्रयोग के आधार पर पहली व्युत्पत्ति कवि की दृष्टि से मानी जा सकती है जो कि काव्य रचना के समय सायास अथवा अनायास रूप से अलङ्कारो का प्रयोग करता है।

और दूसरी व्युत्पत्ति आलोचक की दृष्टि से मानी जा सकती है जो यह देखता है कि कवि द्वारा किन अलङ्कारो का प्रयोग समीक्ष्य रचना मे किया गया है।

"अलङ्कृति अलङ्कार." यह अलङ्कार की भावपरक व्युत्पत्ति है। अर्थात् अलङ्करण (शोभा सौन्दर्य) को अलङ्कार कहते है।

अलङ्कारो का सर्वप्रथम निरूपण किसने किया? इस सम्बन्ध मे निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता। लेकिन अनेक प्रकार की गवेषणा करने के उपरान्त यही सम्भावना की जाती है – कि सर्वप्रथम भरत के नाट्य शास्त्र मे ही प्राथमिक चार अलङ्कारो (दीपक, उपमा, रूपक, यमक) का उल्लेख मिलता है। लेकिन अभी भी अलङ्कारो की सम्यक् प्रकार से उत्पत्ति नही हुई थी।

छठी शता0 के 'आचार्य भामह' को अलङ्कार सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना जाता है, जिन्होने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'काव्यालङ्कार' मे अलङ्कार को काव्य का अनिवार्य तत्त्व घोषित किया। तथा इस मत के पोषक एव अनुयायी आचार्य दण्डी, कुन्तक, वामन, रूद्रट, उद्भट्ट इत्यादि है।

'भामह' द्वारा प्रथित सरणि का अनुसरण करते हुए आचार्य 'दण्डी' ने भी अपने ग्रन्थ 'काव्यादर्श' मे अलङ्कार को ही काव्य का मुख्य तत्त्व माना। इनका कहना है कि काव्य के शोभाकारी धर्म अलङ्कार है[1]।"

'आचार्य वामन' ने 'सौन्दर्य ही अलङ्कार' है और अलङ्कार के कारण ही काव्य ग्राह्य है। आचार्य वामन ने काव्यशोभा के उत्पादक धर्म को गुण तथा उनके अतिशय हेतुओ को 'अलङ्कार' कहा है।[2]

'भामह' ने वक्र अर्थ सम्गुम्फन और शब्द रचना को अलङ्कार कहा[3]। अलङ्कारवादी आचार्यों को कविता–कामिनी के सौन्दर्य का प्रयोजक तत्त्व वाह्य अलङ्कार ही प्रतीत हुआ। उनकी दृष्टि मे काव्यरूप नारी का कान्त मुख भी अलङ्कारो के अभाव मे शोभावह नहीं होता।[4]

'आचार्य कुन्तक' ने वक्र अभिधा प्रकार विशेष भङ्गी–भणिति को अलङ्कार माना।[5]

---

1 काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलङ्कारान् प्रचक्षते। काव्यादर्श–2/1

2 सौन्दर्यमलङ्कार /काव्यशोभाया कर्त्तारो धर्मा· गुणा । तदिशय हेतवस्त्वलङ्कार"।

काव्यालङ्कार सूत्र–3 11

3 वक्राभिधेय शब्दोक्तिरिष्टा वाचामलङ्कृति"। काव्यालङ्कार – 1/36

4 न कान्तमपि निर्भूष विभाति वनिताननम्। भामह–काव्यालङ्कार –1/13

5 वक्रोक्ति जीवित, प्रस्तावना, पृ 17

इस प्रकार अलङ्कारवादी आचार्यों के अनुसार– सारे काव्यतत्त्व अलङ्कार मे ही समाहित है, क्योकि दण्डी का यह वाक्य– कि यद्यपि अनुप्रास, उपमा आदि तो अलङ्कार है ही गुण, रस, ध्वनि, आदि अनेक काव्यतत्त्व भी इसी नाम से अभिहित होते है।

इस प्रकार अलङ्कारवादी आचार्यों यथा– भामह, दण्डी, उद्भट, वामन इत्यादि ने काव्य के शोभाधायक तत्त्वो को अलङ्कार कुक्षि मे ही सन्निविष्ट मान लिया। वे चमत्कारहीन रचना को 'वार्त्ता' मात्र मानते है। इनका कहना है कि– काव्य मे सौन्दर्य का घटक एकमात्र अलङ्कार है। इन लोगो ने 'अलङ्कार एव अलङ्कार्य' दोनो मे अभेद माना।

अलङ्कारवादियो के उक्त मत को ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन समुचित रूप से खण्डित करते हुए कहते है कि अलङ्कार एव अलङ्कार्य वस्तुत एक नही है। दोनो मे भेद है, क्योकि अलङ्कार एव अलङ्कार्य वस्तुत. एक नही है। दोनो मे भेद है, क्योकि 'अलङ्कार' उसे कहते है जो शोभाधायक होता है और जो स्वय शोभित किया जाता है, वह ' अलङ्कार्य' है।

अलङ्कारवादियो को ध्वनितत्त्व को भी अलङ्कारो मे अन्तर्भूत करना अभीष्ट था और यही कारण है कि 'ध्वन्यालोककार ने' अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ मे ही ध्वनिविरोधियो मे 'भाक्त' और अनिर्वचनीयतावादियो के अतिरिक्त अभाववादियो अर्थात् ध्वनि को न मानने वाले अलङ्कारवादियो का भी खण्ड किया। और अलङ्कार विषयक अनेक उदाहरण प्रस्तुत कर यह सिद्ध किया कि, ध्वनि का क्षेत्र अलङ्कारो से कही आगे है। ध्वनि महाविषयीभूत है। अत अलङ्कारो का अन्तर्भाव ध्वनि मे ही किया जायेगा न कि ध्वनि का अन्तर्भाव इनमे।

इस प्रकार अलङ्कार को ही काव्य का व्यापक रमणीय एव अनिवार्य तत्त्व मानने वाले अलङ्कारवादियो के सिद्धान्त को पूरी तरह उन्मूलित करके ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन ने अलङ्कार की विवक्षा गौण रूप मे मानी, अगी रूप मे कभी नही मानी। इसलिए वे अलङ्कारो को बहिरङ्ग की सज्ञा से विभूषित करते है। किन्तु जब ये व्यङ्ग्य होते है तो स्वय अलङ्कार्य हो जाते है।

इन्होने अपना अलङ्कार का लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहा कि काव्य मे इनकी स्थिति ऐसी है – जैसे कि शरीर के कटककुण्डल आदि शोभाकारक आभूषणो की होती है।[1] अङ्ग से तात्पर्य शब्दार्थ रूप काव्यशरीर से है। आनन्दवर्धन तथा अभिनवगुप्त आदि ध्वनिवादी आचार्यों ने 'अलङ्कार विच्छिति' अथवा 'चमत्कार' को उपादान माना।

---

1 अङ्गाश्रितास्त्वलङ्कारा· मन्तव्या कटकादिवत्। ध्वन्यालोक 2/6

अभिनव ने कहा है– कि सुकवि अलङ्कार को श्लिष्ट रूप मे संयोजित करता है जैसे कि– विदग्ध अपूर्व लावण्यवती रमणी कुकुमपीतिका से शरीर को। तथापि इसको शरीर मानना भी कठिन है, आत्मता की तो सभावना ही क्या? अत जहॉ रस नही, वहॉ अलङ्कार शवशरीर पर कुडल सरीखा है।[1]

'आनन्दवर्धन' द्वारा प्रथित इसी सरणि को आगे बढाते हुए 'आचार्य मम्मट' और फिर 'विश्वनाथ' ने अलङ्कार का लक्षण निम्नोक्त रूप मे प्रस्तुत किया–

अलङ्कार उन्हे कहते हैं जो शब्दार्थ रूप काव्यशरीर के अस्थिर धर्म के रूप मे उसकी अतिशय शोभा बढाते हुए रसादि का भी उपकार करते है[2]।

इसके अनन्तर पण्डितराज जगन्नाथ ने अलङ्कार का स्वरूप वर्णित करते हुए कहा कि – जो काव्य की आत्मा व्यङ्ग्य की रमणीयता के प्रयोजक है'' वे ही अलङ्कार है[3]।

इस प्रकार अलङ्कारवादियो का अलङ्कार अब काव्य का अनिवार्य तत्व न रहकर शब्दार्थ की शोभा के माध्यम से रस का उपकारक बन गया। और वह भी नित्य रूप से नही। मम्मट का 'अनलङ्कृती पुन ' क्वापि' कथन इसी अवहेलना का द्योतक है। इस प्रकार अलङ्कार को काव्य की आत्मा मानने का प्रश्न आनन्दवर्धन, मम्मट, विश्वनाथ आदि आचार्यों के मत मे तो उत्पन्न नही होता।

भामह, दण्डी, वामन के मत मे भी अलङ्कार को काव्य की आत्मा नही मान सकते, क्योकि उनके मत मे भी अलङ्कार काव्य का बाह्य साधन होते हुए भी अधिकाशत एक बाह्यपरक तत्त्व है, किन्तु आत्मा कहाने योग्य काव्यतत्त्व वह होता है जो कि काव्य का एक अनिवार्य एव आन्तरिक साधन हो।

मम्मट की दृष्टि मे अलङ्कार काव्य का एक सौन्दर्याधायक तत्त्व है, लेकिन आवश्यक रूप से इसकी स्थापना पर जोर नही दिया[4]।

---

1 यथा हि पृथग्भूतेन द्वारेण रमणी विभूष्यते तथोपमानेनशशिना तत्सादृश्येन व कविबुद्धि चचलतया परिवर्तमानत्वात् पृथक् सिद्धेनैव प्रकृत वर्णनीय वनितावदनादि सुन्दरी इति तदेवालङ्कार।
नाट्यशास्त्र अभि भारती भाग 2 पृष्ठ 321

2 (क) उपकुर्वन्ति त सन्त येऽङ्ग द्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादय ।। काव्यप्रकाश – 8 / 381 पृ0
(ख) शब्दार्थयोरस्थिरा. ये धर्मा शोभातिशायिन ।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत् ।। सा0दर्पण – 10 0

3 काव्यात्मनोव्यङ्ग्यस्य रमणीयता प्रयोजका अलङ्कारा । रसगगाधर

4 सगुणावनलङ्कृती पुन क्वापि काव्यप्रकाश–प्रथम उल्लास, पृष्ठ – 19

'चन्द्रालोककार जयदेव' का कहना है कि – जो निरलङ्कार शब्दार्थ को काव्य मानता है, उस कृती को तो मानने वाले को तो आग को ठडी ही मानना चाहिए[1]।

ध्वनिकार ने रसकर्तक आक्षिप्त वा आकृष्ट होने से जिसकी रचना सम्भव हो और रस के सहित एक ही प्रयत्न द्वारा जो सिद्ध हो वही अलङ्कार ध्वनिकार को मान्य है[2]।

इस प्रकार काव्यशास्त्र मे अलङ्कार तत्त्व की एक बहुत बडी परम्परा का निर्वाह होता रहा और सभी का एक मात्र उद्देश्य रहा – 'काव्योत्कर्ष की साधना'। इसे अनेक मनीषी पण्डितो ने इस प्रकार समझाया है कि – "सुन्दर काव्य भी अलङ्कारो के बिना वैसे ही सुशोभित नही होता जैसे कि बिना भूषण के वनिता का सुन्दर मुख दीपित नही होता।"

काव्य के समग्र घटको मे अलङ्कार काव्य का मूलभूत तत्त्व है। इसी से काव्य मे सौन्दर्य का आधान होता है। अलङ्कार की काव्य मे अपनी अलग महिमा एव विशिष्टता है। इसी कारण काव्यशास्त्र को 'अलङ्कारशास्त्र' भी कहते है। 'राजशेखर' ने तो इसे वेद का सातवॉ अग भी माना है जो उसकी प्रधानता को प्रमाणित करता है।

इस प्रकार अलङ्कारवादी आचार्यों को ही व्यापक रूप से अलङ्कार को चर्चा करने का श्रेय दिया जाता है। अलङ्कारवादियो का अलङ्कार के प्रति जो दृष्टिकोण था वह 'आनन्दवर्धन' के प्रभाव से परवर्ती प्रमुख आचार्यों का नही रहा।

निष्कर्षत अलङ्कारवाद मे सब प्रकार के सौन्दर्य–विधायक तत्त्वो का वाचक अलङ्कार साधन है और रीतिवाद मे अनुप्रास, उपमा आदि का वाचक अलङ्कार द्वितीय कोटि का साधन है।

रसवादी और ध्वनिवादियो की दृष्टि मे अलङ्कार रस के असाक्षात् उत्कर्षक है। अलङ्कार शब्दार्थ के माध्यम है, काव्य मे अलङ्कार आभूषण के समान है।

इस प्रकार अलङ्कार काव्य के बाह्यात्मक कलापरक, शब्दार्थ रूप काव्यशरीर के सौन्दर्य का सर्वाधिक प्रबल तत्त्व है। काव्य मे अलङ्कार क़ा सद्भाव अनिवार्यत· रहता है। अत. अलङ्कार काव्य का केवल बाह्यशोभाकारक उपकरण मात्र ही है।

---

1 अङ्गीकरोति य काव्य शब्दार्थावनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती।। — चन्द्रालोक – प्रथममयूख/8 श्लोक

2 रसक्षिप्ततया यस्य बन्ध शक्यक्रियो भवेत्।
अपृथग्यत्ननिर्वत्य सोऽलङ्कारौ ध्वनौमत ।। — ध्वन्यालोक

**रीति तत्त्व –** काव्य के अन्य सौन्दर्याधायक तत्त्वो की भॉति रीति का भी अपना कुछ अलग ही महत्त्व रहा। इसका भी प्रारम्भ काव्यशास्त्र के आदिकाल मे ही होता है। अन्य तत्त्वो यथा गुण, अलङ्कार, वृत्ति आदि की भाति इस रीति नामक तत्त्व का भी काव्यशास्त्र की विभिन्न अवस्थाओ मे प्रयोग होता रहा।

जिज्ञासा होती है कि यह रीति क्या है? बताया गया कि – रसो का उपकार करने वाली शरीर के अवयव के गठन की भॉति स्थित पदो की सघटना को 'रीति' कहते है। आत्मा की अभिव्यक्ति के लिए शरीर के अवयवो का समुचित रूप मे सन्निवेश आवश्यक है। यदि उनमे औचित्य न हुआ तथा अवयव असमीचीन रूप से सलग्न हुए तो शरीर कुरूप हो जाता है एव फलत आत्माभिव्यञ्जन भी समुचित नही होता है। ठीक उसी प्रकार रीति की भी स्थिति है। काव्य के आत्मभूत रस की अभिव्यक्ति के लिए उसका समुचित रूप मे होना अति आवश्यक है।

रीति का सर्वप्रथम सुस्पष्ट एव सैद्धान्तिक विवेचन करने वाले आचार्य है 'वामन'। वामन के पश्चात् रीति सिद्धान्त के बीज हमे भरत, दण्डी, उद्भट, रूद्रट, भोज, आनन्दवर्धन, इत्यादि आचार्यों के ग्रन्थो में भी मिलते हैं, परन्तु रीतिविषयक महत्त्वपूर्ण सामग्री को विधिवत् वर्णित करने का सर्वाधिक श्रेय 'काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति' के प्रणेता आचार्य वामन को ही है। आचार्य वामन गुण–विशिष्ट पदरचना को 'रीति' कहते है, और रीति को ही काव्य की आत्मा मानते है। इनके मतानुसार रीति तीन प्रकार की – वैदर्भी, गौडी तथा पाञ्चाली है[1]। इसमे वैदर्भी रीति समग्र गुण समन्विता है। ओजगुण एवं कान्तिगुण से समन्वित तथा समासबहुला गौडी रीति है तथा पाञ्चाली सौकुमार्य एव माधुर्य गुण से समन्वित है।

कहने का तात्पर्य यह है कि "जिस प्रकार चित्र रेखाओ का समन्वय होता है उसी प्रकार ये रीतिया भी अपने–अपने गुणो का समन्वय है[2]।

'आचार्य वामन' गुणो को ही रीति का नियामक मानते है। रीति को काव्य की आत्मा मानने पर भी काव्य की चारूता गुण तथा अलङ्कार मे ही खोजते है। तात्पर्य यह है कि जिन दस शब्दगत और दस अर्थगत गुणो से यह निर्मित होती है उनमे काव्य के अधिकाश तत्त्व किसी न किसी रूप में अनुस्यूत रहते है।

---

1 रीतिरात्मा काव्यस्य। विशिष्ट पदरचना रीतिः। विशेषो गुणात्मा।
सा त्रिधा वैदर्भी, गौडीया, पाञ्चाली चेति।। काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति–पृष्ठ 34

2 एतासु तिसृषु रीतिषु रेखास्विव चित्र काव्य प्रतिष्ठमिति। का० सू० वृ० 1 2 13

वामन के बाद वामनसम्मत रीति का किसी ने अनुमोदन एव अनुकरण नही किया, इसकी सवृद्धि मे किसी भी प्रकार का योगदान नही दिया, बल्कि इसके विपरीत वामन का उपहास तक किया गया –

'आनन्दवर्धन' के शब्दो मे – "ध्वनि जैसे अवर्णनीय काव्यतत्त्व को समझ सकने मे असमर्थ लोगो द्वारा काव्यशास्त्रीय जगत् मे रीतिया चला दी गयी[1]।

'कुन्तक' ने तो इस प्रकार के स्वर मे कहा – "अजी हटाओ भी, कौन रीति जैसी 'नि सारवस्तु' के साथ अपना मगज खपाये"[2]।

इतना ही नही 'वाग्देवतावतार मम्मट' ने 'रीति' को वृत्ति का पर्याय मानते हुए उद्भट के अनुरूप इसे वृत्यनुप्रास नामक शब्दालङ्कार के अन्तर्गत निरूपित कर दिया। और इसकी रही सही कसर को आचार्य विश्वनाथ ने पूरी कर दी। उनका कहना है कि – रीति तो पदसघटना मात्र है। वह काव्य का स्वरूपाधायक तत्त्व भी नही है, केवल शरीर के अङ्गो की बनावट के समान शब्दार्थरूप काव्यशरीर का उपकार करती हुई काव्य की आत्मा रस का प्रकारान्तर से उपकार कर देती है। इस प्रकार वामन के दृष्टिकोण को समझे विना ही आचार्यों द्वारा उसके रीति सिद्धान्त का खण्डन किया जाता रहा। वस्तुत खण्डन उसकी मान्यता का ही करना था, न कि रीति का ।

'आचार्य विश्वनाथ' कहना है कि – इनके मत मे सबसे बडा दोष यह था कि 'रीति' काव्य की आत्मा नही कही जा सकती क्योकि आत्मा से तात्पर्य होता है – "काव्य का अनिवार्य एव आन्तरिक साधन" । परन्तु वामन की रीति अधिकाशत बाह्ययपरक साधन है। इस प्रकार यद्यपि परवर्ती आचार्यो ने वामनसम्मत रीति को उक्त रूप से स्वीकार नही किया, फिर भी रीति को काव्य के सौन्दर्याधायक तत्त्व के रूप मे विभिन्न आचार्यों द्वारा स्वीकार किया जाता रहा। इन आचार्यो मे भोज, मम्मट, विश्वनाथ, आनन्दवर्धन आदि का प्रतिपादन अपेक्षाकृत अधिक उपादेय एव ज्ञातव्य है, जिन्होंने रीति को नये सिरे से परिभाषित किया। एकादश शता० के आचार्य धाराधीश भोज ने 'रीति' शब्द की व्युत्पत्ति 'रीङ्गतौ' धातु से निष्पन्न की है[3]। इस प्रकार इनके मतानुसार रीति का अर्थ है – 'कवि का एक विशिष्ट मार्ग'।

---

1 अस्फुट स्फुरित काव्यतत्त्वमेतद् यथोदितम्।
अशक्नुवद्भिर्व्याकर्त्तुं रीतिय सम्प्रवर्तिता ।। — आनन्दवर्धन का कथन

2 तदलमनेन निस्सारवस्तु–परिमलव्यसनेन। — कुन्तक का कथन है –

3 रीङ्ताविति धातोस्या व्युत्पत्या रीतिरूच्यते। — स० क० 2/17

दूसरी भाषा मे इसे 'शैली' नाम से भी अभिहित किया जाता है। अलङ्कारशास्त्र मे इसके अनेक पर्याय है – जैसे – प्रस्थान, मार्ग, गति इत्यादि।

भोज ने 'रीति' का अर्थ प्रतिपादित करते हुए उसके छह भेद स्वीकार किये। वामन के वैदर्भी, पाञ्चाली तथा गौडी एव रूद्रट के लाटी भेदो में उन्होने आवन्ती तथा मागधी को मिलाकर उनकी सख्या मे वृद्धि कर दी[1]।

'वामनसम्मत' रीति को अस्वीकार करते हुए आनन्दवर्धन ने 'रीति' को 'सघटना' नाम दिया। सम्यक् अर्थात् यथोचित्घटना–पदरचना का नाम संघटना अथवा रीति है। आनन्दवर्धन ने वास्तव मे वामन की परिभाषा को सक्षिप्त कर दिया।

वामन का 'पदरचना' और अनन्दवर्धन का सघटना शब्द तो पर्याय ही है। दोनो के विशेषणो मे कोई मौलिक अन्तर नही है। वामन ने पदरचना को शब्द और अर्थगत सौन्दर्य से युक्त कहा है क्योकि वामन के पास कोई मानदण्ड नही था जबकि आनन्दवर्धन के सामने रस का मानदण्ड था। इसलिए उन्होंने तदनुकूल 'सम्यक् यथोचित' शब्द का प्रयोग किया। 'वामन' शब्द अर्थ का ही चरममान स्वीकार करते हुए शब्द और अर्थगत सौन्दर्य को विशेष माना। इस प्रकार आनन्द एवं वामन की परिभाषाओं मे मौलिक साम्य होते हुए भी विशेषणो मे सूक्ष्म अन्तर है।

'आनन्दवर्धन' के अनुसार – रीति रसाश्रयी है जिससे रस परिपोष होता है जबकि– 'वामन' की रीति स्वतंत्र है। अतएव उनके मत से पदरचना का वैशिष्ट्य अपने शब्दगत और अर्थगत सौन्दर्य से अभिन्न है।

इस प्रकार आनन्दवर्धन 'पदसघटना' को ही रीति का परिष्कृत रूप स्वीकार करते है। जो 'रस आदि को व्यक्त करती है'' [2]।

'राजशेखर' के अनुसार–वचनविन्यास का क्रम ही रीति है – ''वचनविन्यासक्रमोरीतिः'' 'विद्याधर' ने रीति को 'पाक' की सज्ञा दी है [3]।

---

1 सरस्वती कण्ठाभरण – 2 87

2 ''व्यनक्ति सा रसादीन्''। ध्वन्यालोक – /5

3 रसेचित शब्दार्थ निबन्धनम्। 'एकावली'

रीति के सम्बन्ध मे 'नीलकण्ठदीक्षित' का कथन है – कि भाषा मे अक्षरों की भरमार है, अनेक शब्द है, शब्दार्थ भी है, किन्तु जिस शब्दार्थ के बिना कविवाणी सुशोभित नही होती वही 'मार्ग' है रचना पद्धति वा रीति'' है।

'वक्रोक्तिकार कुन्तक' ने कवि स्वभाव को प्रधानता देते हुए 'रीति' के लिए पुन मार्ग शब्द का प्रयोग किया। उन्होने सुकुमार, विचित्र तथा मध्यम तीन भेद किये है[1]। इसके अनन्तर आनन्दवर्धन से प्रेरणा प्राप्त कर आचार्य मम्मट और विश्वनाथ ने रीति का लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किया – आचार्य मम्मट ने – 'नियतवर्णों का रस विषयक व्यापार' वृत्ति (रीति) कहलाता है[2(क)]। तथा आचार्य विश्वनाथ ने रीति का लक्षण 'पदसघटना' को बताया। इनका कहना है कि यह अङ्ग सस्था के समान है, अर्थात् काव्य मे इसकी स्थिति शरीर के अवयवो की बनावट के समान है और इसी रूप मे रहकर वह रस का उपकार करती है[2(ख)]। तात्त्पर्य यह है कि शरीर के अवयव साक्षात् रूप मे आत्मा का सौन्दर्यवर्धन कर शौर्य आदि गुणो की वृद्धि करते है। वे गुण आत्मा के उत्कर्ष के हेतु है, अङ्ग सस्थान उनके द्वारा आत्मा की शोभावृद्धि करता है। रीति का भी रस से साक्षात् सम्बन्ध नही है – वह माधुर्य आदि गुणो का आश्रय लेकर रसो का अभिव्यञ्जन करती है। स्वतत्र रूप से वह अपने कार्य मे समर्थ नही, गुणो का आश्रय भी वर्णों के द्वारा प्राप्त करती है मुख्य रूप से उसका वर्णों से ही सम्बन्ध है।

इस प्रकार आचार्य मम्मट तथा विश्वनाथ दोनो ने ही त्रिविध रीतिया वैदर्भी, गौडी, तथा पाञ्चाली को स्वीकार किया और क्रमश इन्हे माधुर्य, ओज, प्रसाद के रचनागत स्वरूप के साथ सम्बद्ध किया[3]। आचार्य मम्मट ने रीति और वृत्ति की अभिन्नता ही मानी है।

उन्होने माधुर्य व्यञ्जक वर्णों वाली उपनागरिका वृत्ति को वैदर्भी का , ओजगुण व्यञ्जक परुषा वृत्ति को गौडी रीति का, तथा प्रसाद व्यञ्जक कोमला ग्राम्यावृत्ति को पाञ्चाली रीति का ही पर्याय माना[4]।

---

1 वक्रोक्ति जीवित – 1/24
2(क) वृत्तिर्नियतवर्णगतो रसविषयो व्यापार। काव्यप्रकाश – पृष्ठ 404
2(ख) पदसघटनारीतिऽङ्गसस्थाविशेषवत्। उपकर्त्रीरसादीना। साहित्यदर्पण – 9–1
3 माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णैरूपनागरिकोच्यते।
ओज प्रकाशकैस्तैश्च परूषा कोमला परै।। काव्यप्रकाश – 9/पृष्ठ 406
4 केषाञ्चितादेवा वैदर्भी प्रमुखा रीतयोमता। काव्यप्रकाश – 9/पृष्ठ 406

'शारदातनय' ने भी चार रीतियो यथा – वैदर्भी, पाञ्चाली, लाटी तथा गौडी को मान्यता प्रदान किया[1]। किन्तु हेमचन्द्र ने पुन उपनागरिका, परूषा, एव कोमला वृत्ति को ही प्रमुख माना[2]।

इस प्रकार काव्यसाहित्य मे रीति अथवा पद रचना को भी बहुत महत्त्व प्रदान किया गया – साहित्यदर्पणकार के अनुसार – रीति और सघटना एक ही वस्तु है। रीति अथवा सघटना रस की अभिव्यक्ति का निमित्त है इसी कारण इसे रस भाव की उपकर्त्री माना गया है।

इस प्रकार वामनसम्मत रीति एक 'विशिष्ट पद रचना' है जो गुणो से निर्मित होती है। तात्पर्य यह है कि – वामन के अनुसार – गुण रीति पर ही आश्रित है। इसी 'रीति' को वामन ने काव्य की आत्मा कहा है।

इसी आधार पर 'आनन्दवर्धन' ने रीति के स्थान पर 'सघटना' शब्द का प्रयोग करते हुए इसे केवल समास वद्धता से सम्बन्धित कर दिया। दूसरी आरे इसे गुणो से सम्बद्ध करने तथा रसोपकारिक मानने के उद्देश्य से 'मम्मट' ने इसका लक्षण दिया – कि ऐसी पद सघटना रीति कहलाती है जो गुण व्यञ्जक वर्णों पर आश्रित रहकर रस का उत्कर्ष करती है।

'विश्वनाथ' के शब्दो में रीति 'रस' का उत्कर्ष उसी प्रकार करती है जिस प्रकार हमारी 'अङ्गसस्था' हमारी आत्मा का प्रकारान्तर से उत्कर्ष करती है[3]। कहॉ तो वामन के मत मे रीति पर गुण आश्रित थे और रीति काव्य की आत्मा थी और कहॉ अब मम्मट और विश्वनाथ के मत मे रीति गुणो पर आश्रित है और रस आत्मा का प्रकारान्तर से उत्कर्ष करती है। अब यह केवल रचनामात्र है अर्थात् आधुनिक शब्दावली मे यह एक शैली मात्र है।

**वृत्ति तत्त्व –** सस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों ने काव्य के नैसर्गिक स्वभाव को इङ्गित करने के लिए विविध तत्त्वो का प्रतिपादन किया और काव्य के रीति, गुण, अलङ्कार आदि तत्त्वो के साथ शोभाधायक तत्त्वो मे वृत्तियो की भी परिगणना की। इन वृत्तियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ऐसी किंवदन्ती है – कि सृष्टि के आदि में जब भगवान् विष्णु क्षीरसागर मे प्रगाढ निद्रा मे शयन कर रहे थे उस समय समस्त देवगण महादानवमधु कैटभ के भय से पीडित थे।

---

1 भावप्रकाशन – पृष्ठ 11
2 काव्यानुशासन – पृष्ठ 292।
3 पदसघटना रीतिरङ्गसस्था विशेषवत्। सा0 दर्पण – 9/1 चौखम्बासस्करण
उपकर्त्री रसादीनाम् –

तभी सुरसमुदाय ने मिलकर ब्रह्मा जी के पास जाने का निर्णय किया। तत्पश्चात् चतुर्भुज श्री ब्रह्मा जी सम्पूर्ण सुरवृन्द को लेकर क्षीरसागर मे भगवान् श्री विष्णु के सम्मुख उपस्थित हुए। अपनी अतिपूर्ण विनती करके भगवान् विष्णु को प्रसन्न किया और मधुकैटभ के भय की अपनी विपत्ति सुनाई। देवो को इस कष्ट से त्राण दिलाने के लिए भगवान विष्णु ने दैत्य एव दानवो से भयकर युद्ध किया। बहुत समय तक भगवान् विष्णु का दैत्य एव दानवो से युद्ध चलता रहा। परन्तु विजय एव पराजय का कोई निर्णय नही हो सका। बहुत अधिक समय से युद्ध चलने के पश्चात् दानव समुदाय विष्णु के पराक्रम से बहुत प्रसन्न हुआ। और भगवान विष्णु से वर मागने को कहा। सर्वशक्ति सम्पन्न भगवान् विष्णु को भी उनसे वर प्राप्त करने की आन्तरिक इच्छा हुई । इस प्रकार दैत्यो ने अपने ही सहार का वर भगवान् विष्णु को दे दिया, और अपना वध युद्ध मे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार देवताओ की दानवो पर विजय प्राप्त हुई। इस प्रकार सस्कृत–साहित्य मे आचार्य भरत के अनुसार इन चारो वृत्तियो (कैशिकी, सात्त्वती, आरभटी और भारती) का जन्म उपर्युक्त युद्ध से हुआ, ऐसा ही प्रमाण है।

काव्य के अन्तश्चमत्कार के लिए इन उक्त वृत्तियो की आवश्यकता पडी। अन्यत्र यह तत्त्व अप्राप्त था। ब्रह्मा ने आचार्य भरत को इन वृत्तियो को वेदो से प्राप्त करने के लिए आज्ञा प्रदान की। आचार्य भरत ब्रह्मा की आज्ञा का अनुपालन करते हुए वेदो से इन वृत्तियो का ग्रहण किया। ऋग्वेद से भारती, यजुर्वेद से सात्त्वती, सामवेद से कौशिकी तथा अथर्ववेद से आरभटी वृत्ति की उत्पत्ति हुई[1] ।

युद्ध करते समय भगवान् विष्णु के विभिन्न क्रियाकलापो से इन वृत्तियो की उत्पत्ति हुई। युद्ध के समय योद्धा की शारीरिक एव मानसिक स्थिति मे अन्तर होता है। उसके हाव–भाव, हस्तसञ्चालन, पादसञ्चालन एव मुखरवाणी मे भी परिवर्तन होता है। सामान्य वीर की जब ऐसी दशा होती है तो उस समय विचार करे कि भगवान् विष्णु के साथ युद्ध करते समय दानवो की दशा भी सदा क्रोध एव वीरता से परिपूर्ण रही होगी। उस समय भगवान् विष्णु ने दानवो से ओजस्विता के साथ अपने पदन्यास किये। समस्त भूमण्डल मे भगवान् विष्णु के चरण सञ्चालन से पृथ्वी अधिक भारवती हो गयी। यही पर भारती वृत्ति का निर्माण हुआ। यही भारती वृत्ति की उत्पत्ति का प्रथम स्त्रोत था। आचार्य भरत का कहना है कि भारती वृत्ति का क्षेत्र अन्य वृत्तियो

---

1 ऋग्वेदाद् भारतीक्षिप्ता यजुर्वेदाच्च सात्त्वती।
कैशिकी सामवेदाच्च शेषा चाथर्वणादपि।। ना०शा० – 20–25

से भिन्न है। भारती वृत्ति मे केवल आलाप–सलाप का ही अवकाश है। इस वृत्ति मे केवल पुरूष पात्र ही विद्यमान रहते है। साथ ही साथ केवल सस्कृत भाषा का प्रयोग होता है। भरतो (कुशीलवो) द्वारा प्रयुक्त होने के कारण इसे भारती वृत्ति कहते है[1]। भारती वृत्ति की स्थिति करूण और अद्भुत रसों मे होती है।

युद्ध के समय भगवान् विष्णु ने अनेक रूप धारण कर दानवो से युद्ध किया। अस्त–वयस्त हो जाने पर भगवान् को अपनी शिखा का बन्धन भी करना पडा। वही पर कौशिकी वृत्ति की उत्पत्ति हुई। 'आचार्य भरत' ने कैशिकी वृत्ति उसे कहा है–जो सुन्दर नेपथ्य–विशेष से सुशोभित होती है। जिसमे स्त्रीपात्र भी विद्यमान होते है तथा नृत्य एव गीतो का बाहुल्य होता है एव जो कामविषयक उपभोगो के उत्पादक प्रयोगो से समन्वित होती है[2]।

युद्ध के समय जब भगवान् विष्णु ने अपने सारङ्ग धनुष से घोर टङ्कार किया तो उस टङ्कार से युक्त शब्द से सात्त्वती की उत्पत्ति हुई।[3]

"सत्सत्त्व प्रकाशस्तत् सत्त्ववन्मनस्तत्र भवां सात्त्वती
सज्ञा शब्दत्वेन बाहुलकात् स्त्रीत्वम्।"

अर्थात् सात्त्वतीवृत्ति वह वृत्ति है – जिससे चित्त प्रकाशयुक्त अर्थात् मोहहीन होता है। 'आचार्य भरत' ने इस सात्त्वतीवृत्ति का लक्षण इन शब्दो मे दिया है –

या सात्त्वतेनेह गुणेनयुक्ता न्यायेन वृत्तेन समन्विता च।
हर्षोत्कटा सहृत शोकमाया, सा सात्त्वतीनाम भवेत्तु वृत्ति ।। नाट्यशास्त्र–

अर्थात् सत्त्व या प्रकाश से युक्त वृत्ति का ही नाम सात्त्वती वृत्ति है। यह वृत्ति न्यायाचरणयुक्त तथा हर्षातिरेक से समन्वित होती है। इसमे शोक का भाव यदि है, तो निगूहित है।

---

1 स्वनामधेयैर्भरतै प्रयुक्ता, सा भारती नाम भवेत्तुवृत्ति । ना०शा०
भारतीसस्कृतप्रायो वाग्व्यापारो नटाश्रय ।
भेदै प्ररोचना युक्तैर्वीथी प्रहसनामुखै.।। दशरूपक – पृ० – 210

2 याश्लक्ष्णनेपथ्य विशेषचित्रा स्त्री सयुता या बहुनृत्तगीता।
कामोपभोग प्रभवोपचारा ता कैशिकीवृत्ति मुदाहरन्ति।। ना०शा०

3 तत्रकैशिकी। गीतनृत्यविलासाद्यैर्मृदु श्रृङ्गारचेष्टितै । दशरूपक – पृ० 184

आचार्य धनञ्जय ने सात्त्वती वृत्ति का लक्षण निम्न रूप से दिया है[1]। तदनन्तर विष्णु के आवेग तथा भिन्न–भिन्न पादसञ्चालन से भिन्न–भिन्न दैत्यो से युद्ध करने के अवसर पर आरभटी वृत्ति की उत्पत्ति हुई।

आचार्य धनञ्जय ने माया, इन्द्रजाल, सयम , क्रोध उद्भ्रान्त चेष्टाए तथा वध आदि क्रियाओ से युक्त उद्धतवृत्ति को आरभटी वृत्ति कहते है[2]। इस वृत्ति की स्थिति भयानक, वीभत्स और रौद्र रसो मे होती है।

इस प्रकार उक्त चारो वृत्तियो मे भारती वृत्ति शब्द प्रधान तथा शेष को अर्थ प्रधान माना गया है। आचार्य भरत का कहना है – कि पृथ्वी के विभिन्न देशो के वेष, भाषा, तथा व्यवहार की बातो को जो प्रकट करे वही प्रवृत्ति है। वृत्ति एक ओर जहॉ शब्दो एव चेष्टाओ के द्वारा अभिव्यञ्जना की पद्धति है, वही प्रवृत्ति रहन–सहन रीतिरिवाज को प्रकट करने की पद्धति है। आचार्य भरत ने पॉच प्रवृत्तियॉ मानी है। आवन्ती, दाक्षिणात्या, पाञ्चाली, मध्यमा तथा औड्रमागधी वृत्ति शब्द का अर्थ है – व्यवहार या व्यापार आचार्य मम्मट ने वृत्ति शब्द का अर्थ किया है – "नियतवर्णों का रसानुकूल व्यापार"[3]।

'आचार्य उद्भट' के अनुसार ये वृत्तिया वर्ण व्यवहार मात्र है। 'आचार्य रूद्रट' शब्द व्यवहार रूप वृत्ति मानते है। अर्थात् वृत्तिया अनुप्रास भेद के अतिरिक्त कुछ नही है। क्योकि वे स्वय कहते है –

मधुरा प्रौढा परूषा ललिता भद्रेतिवृत्तय पञ्च।
वर्णाना नानात्वादस्यैति यथार्थणामफला ।। 2/19

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार रीति का गुणों मे और गुणो का रस मे पर्यवसान होने से परम्परया रीति का रसध्वनि में ही पर्यवसान होता है, उसी प्रकार वृत्तियो का भी पर्यवसान रस– ध्वनि मे ही होता है। कठोर वर्णों वाली परूष वृत्ति का रौद्र आदि मे, उपनागरिका वृत्ति का श्रृङ्गारादि कोमल रसो मे तथा ग्राम्यावृत्ति का हास्यादि रसो में पर्यवसान होता है। क्योकि वर्णों की कोमलता एव परूषता का रस व्यञ्जकता की दृष्टि से ही महत्त्व सिद्ध होता है। अतएव रस–व्यञ्जकता के अतिरिक्त वृत्तियो की कोई अलग सत्ता नही है। वृत्तियो को केवल

---

1 विशोका सात्त्वती सत्त्वशौर्य त्याग दयार्जवै । दशरूपक – पृ0 190
2 मायेन्द्रजालसग्रामक्रोधोद् भ्रान्तादिचेष्टितै । दशरूपक – पृ0 193
3 वृत्तिर्नियतवर्णगतो रसविषयो व्यापार । काव्यप्रकाश नवम उल्लास

अनुप्रास की जाति मान लेने पर भी जैसा कि अभिनवगुप्त मानते हैं – वृत्तियो की अनुप्रास मे अनधिक व्यापारता ही सिद्ध होती है। और अनुप्रास भी ध्वनिसिद्धान्त के अनुसार रसादि का परम्परया व्यञ्जक होते हुए अपनी अलङ्कारता को चरितार्थ करता है। इस दृष्टि से वृत्तिया रस पर्यवसायी ही सिद्ध होती है। आचार्य आनन्दवर्धन – रसानुकूल वाचक व्यवहार ही वृत्ति है, ऐसा कहा है। रसव्यञ्जकता की दृष्टि से रीति एव वृत्ति दोनो एक ही आसन के अधिकारी है।

आचार्य मम्मट ने रीति एव वृत्ति की इस अभिन्नता के सम्बन्ध मे वामन के मत का उल्लेख किया है। आचार्य वामन माधुर्य व्यञ्जक वर्णों वाली उपनागरिका वृत्ति को वैदर्भी, ओजोगुण व्यञ्जक परूषा वृत्ति को गौडी तथा प्रसादव्यञ्जक कोमला को (ग्राम्या को) पाञ्चाली रीति स्वीकार करते हैं[1]।

इस प्रकार वामन, मम्मट, आनन्दवर्धन इत्यादि सभी आचार्यों ने रीति एव वृत्ति मे कोई भेद स्वीकार नही किया है, जबकि चन्द्रालोककार जयदेव ने वृत्ति एव रीति को अभिन्न नही स्वीकार किया है। चन्द्रालोककार रीतियें को समास व्यङ्ग्यत्व तथा वृत्तियो को वर्णानुपूर्वी व्यङ्ग्यत्त्व मानते है।

**गुण तत्व –** काव्यमर्मज्ञ साहित्य मनीषियों ने काव्य के जिन तत्त्वो का विवेचन किया उनमे गुण भी अपना प्रमुख स्थान रखता है। साहित्य शास्त्र मे चिन्तन किये जाने वाले तत्त्वो मे गुणो का भी अतिशय महत्त्व है। प्रत्येक आचार्य ने अपनी मनीषा के अनुसार ही इसका चितन किया है। इसके चिन्तन की प्रक्रिया उतनी ही प्राचीन है जितनी स्वय साहित्य शास्त्र की।

काव्य के तत्त्वो का विवेचन हमे सर्वप्रथम 'भरत' से प्राप्त होता है। वह ही इस गुण विवेचन के प्रथम चिंतक है। उनके पश्चात् विभिन्न सिद्धान्त के प्रतिपादक आचार्य उत्पन्न हुए। उन्होने रस, रीति, अलङ्कार, वृत्ति, छन्द आदि विविध तत्वो पर विस्तृत विचार प्रस्तुत किये। उनके अन्य विवेचन के साथ गुण विवेचन भी स्थान प्राप्त करता रहा।

यद्यपि अनेक आचार्यों ने गुणो पर विचार प्रस्तुत किये, किन्तु उनमे सरसता नही है। गुणो के उनके विचार एक रूप न होकर विषमता रखते है। यदि एक ओर उन्हे शब्द और अर्थ से सम्बद्ध किया जाता है तो दूसरी ओर रीतिवादी आचार्य उन्हे रीतियो से सम्वर्द्धित करते है। साथ ही ध्वनिवादी आचार्य उन्हे रसो से सम्बद्ध सिद्ध करते है। रस और गुण मे ध्वनिवादी

---

1 एतास्तिस्त्रो वृत्तयो वामनादीना मते वैदर्भी गौडीया पाञ्चाल्याख्या रीतिया उच्यन्ते।
काव्यप्रकाश – नवम उल्लास।

आचार्य 'अपृथक्सिद्धि' का सम्बन्ध मानते है। नाट्यशास्त्र के प्रणयन कर्त्ता 'आचार्य भरत' ही गुण विवेचन के भी आदि आचार्य है। काव्य के अन्य तत्त्वो की भॉति गुण तत्त्वो का सूत्रपात वही से होता है। 'आचार्य भरत' दोषो के अभाव को ही गुण स्वीकार करते है [1]। उनकी यह विचारधारा निषेधात्मक कही जा सकती है। यहॉ 'भरत' ने गुणो की भावात्मक परिभाषा न देकर अभावात्मक परिभाषा प्रस्तुत की।

'भरत' के अनुसार गुणो की सख्या दश है– कान्ति, उदारता, श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओजस, सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उन्होने गुणो को शब्द एव अर्थ से सम्बद्ध किया [2]। उनके प्रतिपादन के अनुसार–ये शब्द तथा अर्थ के गुण है । इनसे शब्द और अर्थ की विशेषता प्रतीत होती है।

कालान्तर मे 'दण्डी' और 'वामन' ने भी इन्ही दश गुणो पर विवेचन प्रस्तुत किया [3(क)]। किन्तु 'भरत' से उनका मत भिन्न है। उन दोनो आचार्यों ने इन गुणो को मार्गों एव रीतियो से सम्बद्ध किया। [3(ख)]

'दण्डी' इन गुणो को शब्द एव अर्थ से सम्बन्धित करते है। किन्तु 'वामन' ने शब्द तथा अर्थ के अलग–अलग गुण स्वीकार किये। गुणो के निषेधात्मक लक्षण को परिवर्तित कर भावात्मक रूप देने का श्रेय सर्वप्रथम 'वामन' को ही प्राप्त है।

जैसा कि पूर्व में देखा गया कि 'भरत' आदि आचार्यों ने दोषो के अभाव को गुण कहा है किन्तु 'वामन' ने इसकी रूपरेखा मे परिवर्तन कर दिया। उनके अनुसार काव्य की शोभा के आधायक धर्म ही गुण है। शब्द तथा अर्थ के वे धर्म जो काव्य की शोभा का सम्पादन करते है गुण नाम से अभिहित किये जाते है। 'वामन' के विवेचन के अनुसार–गुण शब्द और अर्थ के धर्म है। उनका सम्बन्ध शब्द एवं अर्थ से ही है। मूलरूप मे वे ही काव्य की शोभा का आधान करते है। यद्यपि अलङ्कारो का भी काव्य की शोभा मे स्थान है, किन्तु वे शोभा उत्पन्न नही करते। अपितु वे उसे अतिशयित करते रहते है।

---

1 गुणा विपर्यया दोषा। ना0शा0 16–95

2 श्लेष प्रसाद समता समाधिर्माधुर्यमोज पद सौकुमार्यम्।
अर्थस्य च व्यक्तिरूदारता च कान्तिश्च काव्यार्थगुणा दशैते।।

3 (क) इति वैदर्भमार्गस्य प्राणादश स्मृता । काव्यादर्श–1–42
(ख) विशिष्ट पद रचना रीति विशेषो गुणात्मा – काव्यालङ्कार सूत्र – 1–2–7–8

काव्य नाम के सार्थक होने के लिए गुणो का होना अनिवार्य है। यदि गुण नही है तो रचना कुछ भी हो, किन्तु काव्य नही हो सकती। 'वामन' के काव्य की आत्मा रीति के वे ही विशेष है।

इस रूप मे उनका होना परम आवश्यक है। कालान्तर मे ध्वनिवादी आचार्य गुणो को रस से सम्बन्धित करते है। किन्तु 'वामन' ने गुणो के भेद –विशेष कान्ति गुण से सम्वर्द्धित किया है।

'धाराधीश भोज' ने वामन के दश शब्दगुणो के अलावा उदात्त, ऊर्जितता, प्रेयान्, सुशब्दता, सूक्ष्मता, गम्भीरता, विस्तार, सक्षेप, समितत्व, भाविक, गति, रीति, उक्ति और प्रौढि ये चौदह अन्य गुण मिलाकर अपने गुणो की सख्या 24 कर दी।

'जयदेव' ने तो 'आचार्य भरत' के गुणो मे से कान्ति नामक गुण को श्रृङ्गार रस मे तथा अर्थव्यक्ति नामक गुण को प्रसाद गुण मे अन्तर्भूत कर उनकी सख्या दश से घटाकर आठ कर दी । इससे यही प्रतीत होता है कि इन आचार्यों के काल मे गुण विवेचन पर कोई खास ध्यान नही दिया गया। इनके समय तक गुण के विषय मे अराजकता की सी स्थिति बनी रही।

भामह, 'मम्मट', 'आनन्दवर्धन' आदि विचारको का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यही रहा कि उन्होने विस्तार–प्रसार की अपेक्षा नियमन तथा समञ्जन की प्रक्रिया का प्रयत्न ही अधिक किया।

यद्यपि 'भामह' ने ही माधुर्य ओजस्, तथा प्रसाद गुणो का नामकरण किया था, किन्तु 'आनन्दवर्धन' का विवेचन इस ओर एक युगान्तरकारी घटना है। पूर्व के सभी आचार्य गुणो का सम्बन्ध शब्द तथा अर्थ से ही सम्बद्ध किया करते है, किन्तु उन्होने इसका सम्बन्ध रस से ही स्थापित किया है।

कालान्तर मे 'पण्डित जगन्नाथ' ने गुण को शब्द तथा अर्थ से भी सम्बन्धित किया है। किन्तु साहित्य जगत् आनन्दवर्धन के मत को ही प्राथमिकता देता है।

आनन्दवर्धन ने रस को अङ्गी या प्रधान स्वीकार किया है काव्य के प्रतिपादन मे सर्वप्रथम इसी की आवश्यकता होती है। प्रत्येक ध्वनिवादी की यही धारणा है। इस अङ्गी अर्थ का अवलम्ब ग्रहण करने वाले तत्त्व ही गुण है। जिस प्रकार शौर्य आदि गुण आत्मा के धर्म है – शरीर के

नही, वे आत्मा की ही शोभा का उपादान करते है। इसी प्रकार माधुर्य आदि गुण आत्मभूत रस के नित्य धर्म है। यदि काव्य मे रस है तो वे उसी को सुशोभित करते है। आनन्दवर्धन का यह प्रतिपादन सभी ध्वनि सम्प्रदाय के आचार्यों को मान्य है [1]।

माधुर्य, ओज, प्रसाद गुण क्रमश चित्त की द्रुति, दीप्ति तथा व्याप्ति पर आधारित है। श्रृङ्गार रस की अनुभूति से चित्त मे जो एक प्रकार की आर्द्रता का सञ्चार होता है वही माधुर्य है।

वीर रस के अनुभव से उसमे जो एक प्रकार की दीप्ति उत्पन्न होती है। वही ओजस् है और सभी रसो के अनुभव से चित्त मे जो एक व्यापकत्व आता है वही प्रसाद है।[2]

मम्मट[3(क)], विश्वनाथ[3(ख)], जगन्नाथ आदि आचार्यों ने गुणो की सख्या तीन ही स्वीकार किया है। वे माधुर्य, ओजस् तथा प्रसाद को ही गुण रूप मे स्वीकार करते है। अन्य गुण, दोष, दोषो के अभाव वैचित्र्य मात्र अथवा इन गुणो के ही स्वरूप है। इसीलिये इन आचार्यों ने गुणो की इस सीमित सख्या का प्रतिपादन किया है। इस प्रकार मम्मट, हेमचन्द्र, विश्वनाथ, जगन्नाथ आदि आचार्यों ने आनन्दवर्धन तथा अभिनव की प्रथित सरणि का अनुसरण किया।

इस प्रकार काव्य के तत्त्वों में गुणो का कुछ अपना अलग ही महत्त्व रहा। प्राचीन मत के अनुयायियो मे आचार्य भरत है जिन्होने गुणो की सख्या दस स्वीकार किया। प्राचीन परम्परा की सरणि मे आने वाले आचार्य वामन ने भी गुणो का विशद विवेचन किया है। प्राचीन परम्परा के सभी आचार्यों मे से सबसे अधिक प्रसार आचार्य वामन के ही मत का हुआ। इन्होने दस शब्दगुणो तथा दस अर्थगुणो को मिलाकर गुणो की संख्या बीस मानी।

'धाराधीश भोज' ने इन गुणों की सख्या 24 कर दी। इसके अतिरिक्त दण्डी, वाग्भट्ट जयदेव आदि कवियो ने भी गुण विवेचन का वर्णन किया, किन्तु कोई खास नवीनता इनके मतो मे नही प्राप्त होती।

---

1 तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिन ते गुणा स्मृता । ध्वन्यालोक – 2/6
अङ्गाश्रितास्त्वलङ्कारा मन्तव्या कटकादिवत्।।

2 रौद्रादयो हि रसा परा दीप्तिमुज्ज्वलता जनयन्तीति लक्षणया त एवदीप्यिरित्युच्यते।
तत्प्रकाशनपर शब्दोदीर्घसमास रचनालङ्कृत वाक्यम्।। ध्वन्यालोक

3 (क) ये रसस्याङ्गिनो धर्मा शौर्यादय इवात्मन ।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणा ।। काव्यप्रकाश – 8/380 पृ0
(ख) रसस्याङ्गित्वमाप्तस्य धर्मा शौर्यादयो, यथा गुणा – सा0दर्पण –8/1

नवीन मत के अनुयायी भामह थे , जिन्होने गुणो के त्रित्ववाद होने का जोर दिया और पूर्ववर्ती सभी मतो की आलोचना करके गुण तीन ही है, ऐसा मत स्थिर किया। इसका समुचित प्रसार एव प्रचार आचार्य मम्मट के समय मे हुआ।

'आचार्य मम्मट' ने प्राचीनो के कतिपय गुणो को दोषाभाव रूप कह दिया। कुछ को ध्वनि और गुणीभूतव्यङ्ग्य रूप तथा कुछ वैचित्र्य मात्र रूप प्रमाणित कर दिया और कुछ को अपने प्रसाद, माधुर्य, ओज मे अन्तर्भूत कर लिया। तब से त्रिगुणवाद की परम्परा सार्थक हो आयी[1]।

'पडित जगन्नाथ' ने भी मम्मट तथा अभिनव[2] द्वारा निर्धारित परम्परा का अनुकरण करते हुए गुणो की सख्या तीन ही स्वीकार की। काव्य मे गुणतत्त्वो का कुछ एक अलग सा ही भाव है। आचार्य वामन तथा भोज ने काव्य मे गुण होना अनिवार्य बताया। इनका कहना है कि – "काव्य युवती के तुल्य है, क्योकि जैसे – युवती का रूप शील, पातिव्रत्य आदि अच्छे गुण और अच्छे अलड्कारो के योग से अधिक आकर्षक होता है वैसे ही काव्य भी माधुर्यादि गुण तथा अनुप्रास उपमा आदि अलड्कारो के सम्बन्ध से अधिक रूचिकर हो जाता है एव गुण विहीन काव्य यौवन विहीन नायिका के शरीर के समान है। इससे यह सिद्ध होता है कि गुण अलड्कारो की अपेक्षा अधिक अपेक्षित वस्तु है" [3]।

'आचार्य भोज' ने गुणो की अनिवार्यता मे कुछ और कहा – "कि सालड्कार होने पर भी गुणहीन काव्य सुनने योग्य नहीं होता, क्योकि गुण और अलङ्कार के योग मे गुण का योग प्रधान है [4]।

आचार्य मम्मट ने काव्य में अलड्कारो की अपेक्षा गुणो के अतिशय महात्म्य का वर्णन किया उनका कहना है कि गुण रस के साक्षात् उत्कर्ष के आधायक होते है। गुण आत्मा के शौर्यादि धर्मों के सदृश काव्य के अङ्गभूत धर्म होते है।

---

1 गुणवृत्यापुनस्तेषा वृत्ति शब्दार्थयोर्मता। का0 प्र0

2 आत्मभूतस्य रसस्यैव परमार्थतोगुणा माधुर्यादय, उपचारेण तु शब्दार्थयो। लोचन पृ0–219

3 युवतेरिव रूपमङ्ग काव्य स्वदते शुद्धगुण तदप्यतीव। – वामन तथा भोज का कथन–
विहित प्रणय निरन्तराभि सदलङ्कार विकल्पनाभि ।।

4 अलड्कृतमपि श्रृव्य न काव्य गुणवर्जितम्। – सरस्वती कण्ठाभरण
गुणयोगस्तयोर्मुख्यो गुणालङ्कार योगयो ।।

अग्निपुराणकार का कथन है –कि काव्य मे विपुल शोभा को जन्म देने वाली वस्तु शब्दगुण, उत्कृष्ट बनाने वाली वस्तु अर्थगुण, तथा शब्द एव अर्थ दोनो का उपकारक वो शब्दार्थोभय गुण है।

दण्डी ने कहा – जो वस्तु विशिष्ट रचना का प्राण हो वही गुण है। 'वामन' का कथन है – कि काव्य शोभा के कारक धर्मगुण कहलाते है [1]।

इस प्रकार गुण तीन ही है – उसके मूल मे कोमल, कठोर और स्पष्टार्थक यह रचना की त्रिविधता ही है। इससे यह निश्चय हुआ कि कोमल रचनायुक्त रसास्वादन से चित्त द्रुत होता है, कठोर रचनायुक्त रसास्वादन से चित्त उद्दीप्त होता है और स्पष्टार्थक रचनायुक्त रसास्वाद से चित्त विकसित होता है।

इस प्रकार गुण अगी है काव्य के तत्त्वो मे उसकी महत्ता अत्यन्त आवश्यक है। काव्य मे गुणो का रहना काव्य के सार्थक एव सफल होने का प्रभाव है। गुणविहीन रचना काव्य नही हो सकती।

**औचित्य तत्त्व –** ईसा की एकादश शताब्दी के आरम्भ तक सस्कृत काव्यशास्त्र के क्षेत्र मे काव्य के विभिन्न तत्त्वो यथा रीति, अलङ्कार, गुण, रस, वृत्ति इत्यादि विविध तत्त्व प्रतिष्ठित हो चुके थे, किन्तु फिर भी काव्य के आधारभूत तत्त्व के सम्बन्ध मे कोई एक सर्वमान्य निर्णय नही हो सका था। रस, अलङ्कार, गुण इत्यादि तत्त्व अपने–अपने मतो को प्रमुखता देते थे। तथा अन्यो के मत को नीचा दिखाने का प्रयत्न करते थे। ऐसी स्थिति मे काव्य के सामान्य अध्येता के सामने यह समस्या थी कि वह किसके मत को स्वीकार करे और किसके मत को अस्वीकार करे।

ठीक इसी समय 'आचार्य क्षेमेन्द्र' ने औचित्य नामक काव्य तत्त्व की स्थापना कर इस मत को सुलझाने का गहरा प्रयास किया। उन्होने कहा कि काव्य मे रस, गुण, अलङ्कार, छन्द, वृत्ति इत्यादि सभी तत्त्वो का महत्त्व है, किन्तु उसी अवस्था मे जबकि ये सभी तत्त्व औचित्य से समन्वित हो। औचित्य के अभाव मे ये सभी तत्त्व व्यर्थ है।

---

1 काव्यशोभाया कर्तारोधर्मा गुणा तदिशयहेतवस्त्वलङ्कारा। काव्यालङ्कार सूत्र – वामन

यद्यपि औचित्य को एक पृथक काव्य तत्त्व के रूप मे स्थापित करने का श्रेय 'आचार्य क्षेमेन्द्र' को ही है। किन्तु इनसे पूर्व भी अनेक आचार्य इसकी चर्चा सामान्य रूप से कर चुके थे। नाट्यशास्त्र के प्रणेता 'आद्याचार्य भरत' ने यद्यपि 'औचित्य' शब्द का स्पष्ट प्रयोग तो नही किया लेकिन उन्होने नाट्य के प्रत्येक वृत्ति, प्रवृत्ति, भाषण आदि तत्त्वो के उपनिबन्धन मे औचित्य का निरूपण किया है।

आचार्य क्षेमेन्द्र का निम्न श्लोक आचार्य भरत के अधोलिखित कथन का ही अनुवाद मात्र है[1]। तात्पर्य यह है कि यद्यपि भरत ने औचित्य शब्द का प्रयोग नही किया फिर भी 'औचित्य तत्त्व' चितन की ओर स्पष्ट ही मार्ग–निर्देश, वृत्तियो, प्रवृत्तियो, भाषा, अभिनय, लक्षण, गुण, अलड्कार आदि सभी के औचित्यानुकूल रसाश्रित प्रयोग का विधान प्रस्तुत कर किया है[2]।

इस प्रकार 'भरत' के अनन्तर आलड्कारिक 'आचार्य भामह' ने भी यद्यपि स्पष्ट रूप से औचित्य का प्रतिपादन नहीं किया फिर भी उनके दोषो के वर्णन में अनौचित्य का ही वर्णन है। वे दुष्ट एक पद का भी प्रयोग नही स्वीकार करते [3]।

इस प्रकार जब वे कुछ दोषो की किन्ही सन्निविशेष आदि विशेष परिस्थितियो मे अदोषता का प्रतिपादन करते है तो निश्चय ही उसका नियामक औचित्य ही है। काव्य को अग्राम्य होना चाहिए और काव्य मे निश्चित ही, ग्रम्यता, अन्यायता और आकुलता औचित्य के परित्याग से आती है।

'आचार्य भरत' की इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए 'आचार्य दण्डी' काव्य मे अनौचित्य रूप दोष की स्थिति कथमपि स्वीकार नही करते है।

तदल्पमपि नोपेक्ष्य काव्ये दुष्टं कथञ्चन।
स्याद्वपु सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन दुर्भगम्।। दण्डी–काव्यादर्श – 1/7

---

1 कण्ठे मेखलया नितम्बफलके तारेण हारेण वा,
पाणौ नूपुरबन्धनेन, चरणे केयूर पाशेन वा।
शौर्येण प्रणते, रिपौकरूणया नायान्ति के हास्याता
औचित्येन बिना रूचि प्रतनुते नालकृतिर्नो गुणा ।। औचित्य विचार चर्चा–पृ0 7

2 अदेशजो हि वेषस्तु न शोभा जनयिष्यति।
मेखलोरसि बन्धे च हास्यैवोपजायते।। ना0 शा0–

3 सर्वथा पदमप्येक न निगाद्यमवद्यवत्।
विलक्ष्मणा हि काव्येन दु:सुतेनेव निन्द्यते।। भामह–काव्यालङ्कार – 1/11

आचार्य दण्डी का कहना है कि – वाणी कामधेनु होती है, कब उसका सम्यक् प्रयोग किया जाता है यह सम्यक् प्रयोग निश्चित ही औचित्य का प्रतिपादक है। यदि वाणी वाणी का दुष्प्रयोग हुआ तो वही वक्ता या प्रयोक्ता को बैल बना देती है[1]।

समस्त अलङ्कारो के होते हुए भी यदि ग्राम्यता अथवा अनौचित्य रहा तो अलङ्कारो का अलङ्कारत्व ही बेकार है। वे रस निष्पत्ति नही करा सकते।

इसके अतिरिक्त 'दण्डी' का कव्यदोषो का तृतीय परिच्छेद मे किया गया वर्णन उनके औचित्य विषयक मन्तव्य को ही व्यक्त करता है। देशकाल आदि के विरोध रूप दोषो का वर्णन करते हुए उन्होने देशादिक के औचित्य का निरूपण तो किया ही रसादि विषयक औचित्य की ओर भी उन्होने स्पष्ट ही कला विशेष के अन्तर्गत निर्देश किया है। लेकिन यह समग्र विरोध रूप दोष कवि कौशल के बल से कभी दोष गणना को त्यागकर गुण वीथी का अनुसरण भी करने लगता है। स्पष्ट ही ऐसा कहकर वे 'आनन्द' आदि के मार्गनिर्देशक बनते है। आनन्दवर्धन का कथन है –

"यत्त्वेव विधे विषये महाकवीनामप्य समीक्ष्य कारिता लक्ष्ये दृश्यते स दोष एव।
स तु शक्तितिस्कृतत्वात् तेषां न लक्ष्यते।।" ध्वन्यालोक – तृतीय उद्योत–पृ0–192

'आचार्य वामन' भी 'औचित्य' का स्पष्ट उल्लेख तो नही करते परन्तु दोषादि की काव्य मे त्याज्यता का निरूपण कर औचित्य को समर्थन देते है। काव्य को उपादेय बनाने वाला अलङ्कार या सौन्दर्य अलङ्कारो या गुणो के उपादान के साथ–साथ दोषो के परित्याग से सम्पन्न होता है[2]।

बल्कि यह भी कहना अनुचित न होगा कि 'वामन' की दृष्टि मे गुणो एव अलङ्कारो के उपादान की अपेक्षा दोषो अथवा अनौचित्य का परित्याग कही अधिक अपेक्षित है। इसलिए सूत्र मे उसका सर्वप्रथम उपादान किया गया है।

'आचार्य रूद्रट' प्रथम आचार्य है जिन्होने औचित्य का शब्दत प्रयोग करने के साथ–साथ काव्य के क्षेत्र मे औचित्य की प्रधानता का स्पष्ट रूप से निर्देश किया है।

---

1 काम सर्वोऽव्यलङ्कारो रसमर्थे निषिञ्चतु।
तथाऽप्यग्राम्यतेवैन भार वहति भूयसा।। काव्यादर्श–

2 काव्य ग्राह्यमलकारात्। सौदर्यमलकार। स दोषगुणालकारहाना दानाम्या। का0सू0वृ0 1/1/1–3–

काव्य की कारणभूता व्युत्पत्ति ही युक्तायुक्त अथवा उचित–अनुचित की विवेकरूपा है। छन्द, व्याकरण कला, पद–पदार्थ के विशिष्ट ज्ञान से उचित और अनुचित का विवेक ही व्युत्पत्ति है। परूषा आदि वृत्तियो का प्रयोग पात्रगत तथा अभिधेयगत औचित्य के अनुसार होना चाहिए। यमकादि अलड्कारो का प्रयोग औचित्य का सम्यक् विचार करने के अनन्तर ही करना चाहिए क्योकि यमकादि सरस काव्यो मे विशेषत श्रृङ्गार और करूण रस युक्त काव्यो मे प्रयुक्त होकर रसभग कर देते है।

अत उनका प्रयोग औचित्य को ध्यान मे रखते हुए ही करना चाहिए। उनका पदगत ग्राम्यादोष वक्ता और वस्तु विषयक अनौचित्य के कारण ही प्रस्तुत होता है।

यह बात अवश्य है कि – वे रसौचित्य का उतना सूक्ष्म विवेचन नही करते जितना कि आनन्द ने किया है। पर निश्चित ही आनन्दवर्धन के मार्गनिर्देशक 'रूद्रट' ही रहे होगे। अन्य रस के प्रसङ्ग मे अन्य रस का प्रसङ्ग विरूद्ध प्रयोग रसविषयक अनौचित्य को प्रस्तुत करता है।

वैदर्भी आदि रीतियो का रसों मे प्रयोग औचित्य के अनुरूप ही होना चाहिये। जैसे वैदर्भी और पाञ्चाली को प्रेयस्, करूण, भयानक, और अद्भुतरस मे, लाटीया, गौडीया का रौद्ररस मे प्रयोग होना चाहिए। इस प्रकार अलड्कारो, रसों, रीतियो तथा वृत्तियो के सम्यक् प्रयोग की बात कहकर अनेकश 'रूद्रट' औचित्य का ही प्राधान्य प्रतिपादित करते है। और ठीक भी है औचित्य के बिना काव्य क्या? कही भी सौन्दर्यानुभूति नहीं हो सकती।

'रूद्रट' के इस औचित्यविषयक विवेचन से स्पष्ट है कि क्षेमेन्द्र का औचित्य सिद्धान्त के निरूपण मे वस्तुत कोई भी मौलिक चितन विषयक योगदान नही है।

'रूद्रट' के बाद काव्य में औचित्य की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रतिष्ठा आनन्दवर्धन ने की, यहॉ तक कि उनका –

अनौचित्यादृते नान्यद् रसभङ्गस्यकारणम्।<br>
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत् परा।।  ध्वन्यालोक – पृ0 190

उक्त कथन उनके परवर्ती आचार्यों के लिए उपनिषद् वाक्य सिद्ध हुआ। उन्होने वर्ण से लेकर प्रबन्ध–पर्यन्त औचित्य का सम्यक् निरूपण किया। 'श्री आनन्द' के मत मे तो अनौचित्य ही रसभङ्ग का प्रमुख कारण है। औचित्य के अभाव में रस का परिपाक काव्य मे नही हो

सकता। औचित्य ही रस का परम–रहस्य, परा उपनिषद है। अधिक क्या कहा जाय छोटे–मोटे कवियो की तो बात तो दूर महाकवियो का मुख्य कर्म ही उन्होने रसादि विषयक के अनुसार शब्द और अर्थ के औचित्य पूर्ण प्रयोग को स्वीकार किया है[1]।

इनके द्वारा ही 'औचित्य' की काव्य के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप मे स्थापना कर देने के अनन्तर किसी भी परवर्ती आचार्य को उसका विरोध करने का साहस नही हुआ।

आनन्दवर्धन के पश्चात् राजशेखर ने रूद्रट की भाति काव्य की जननी व्युत्पत्ति को उचित और अनुचित की विवेकरूप प्रतिपादित किया। साथ ही काव्यपाक का कारण रसोचित शब्दार्थ की सुन्दर उक्ति को स्वीकार कर आनन्दवर्धन को समर्थन दिया [2]।

आचार्य कुन्तक ने अपने वक्रोक्ति सिद्धान्त मे 'औचित्य की महनीय प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण बनाये रखा। उनकी वक्रता यदि काव्य का जीवित है तो वक्रता का प्राण है औचित्य बिना औचित्य के वक्रता सम्भव नही। कुन्तक के अनुसार – जिस उक्ति वैचित्र्य के द्वारा वस्तु के स्वभाव का उत्कर्ष स्पष्ट ढग से परिपोष को प्राप्त करता है और जिसका प्राण उचित कथन होता है उसे औचित्य कहते है क्योकि औचित्य के अनुरूप ही अलङ्कार अर्थात् वक्रोक्ति का विन्यास सौन्दर्य का सवहन करता है। साथ ही जहॉ पर वक्ता या प्रमाता के शोभातिशायी स्वभाव के द्वारा अभिधेय वस्तु आच्छादित हो जाती है वहॉ भी औचित्य ही होता है[3]।

इस प्रकार जहॉ आनन्दवर्धन ने औचित्य की दृष्टि से प्रधानता रस को प्रदान की थी और औचित्य का विवेचन प्रधानतया रस की दृष्टि से किया था वहॉ कुन्तक ने सर्वोपरि प्राधान्य स्वभाव को दिया। वस्तुत कुन्तक के इस स्वभावौचित्य मे ही रस, गुण, अलङ्कार सभी का औचित्य निहित है। क्योकि काव्य का वर्ण्यविषय प्रधानतया किसी वस्तु का स्वभाव ही होता है, कवि का परम कर्त्तव्य उसी वस्तु स्वभाव की सम्यक् परिपुष्टि करना होता है। वही स्वभाव वर्णन सरस, सगुण और सालङ्कार हुआ करता है। अत उसी के औचित्य में काव्य के समग्र तत्त्वो का

---

1 वाच्याना वाचकाना च यदौचित्येन योजनम्।
रसादि विषयेणैतत् कर्म मुख्य महाकवे ।। — ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत – 32 कारिका

2 तस्माद्रसोचित शब्दार्थसूक्ति निबन्धन पाक। — काव्यमीमासा – पृ0 75

3 'वक्रोक्ति जीवित' – 1/53 तथा वृन्ति।

औचित्य निहित है। उस प्रस्तुत वस्तु की ही प्रतीति कभी रसपरिपोष से पेशल होती है, कभी अलङ्कार परिपोष से, लेकिन जब वस्तु स्वभाव की प्रतीति रस परिपोष से पेशल होती है उस समय उसकी रमणीय ढग से प्रतिपत्ति विभावो, अुनभावो एव व्यभिचारिभावो के औचित्य से व्यतिरिक्त किसी अन्य प्रकार के द्वारा सम्भव नही यह कुन्तक का स्पष्ट कथन है[1]।

कुन्तक के पश्चात् क्षेमेन्द्र ने औचित्य का विधिवत् विवेचन किया। क्षेमेन्द्र के मत मे औचित्य रस का जीवित भूत तत्त्व है। इसी से काव्य मे सौन्दर्य की वृद्धि होती है।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य की व्यु्त्पत्ति बतलाते हुए कहा है कि "जिस वस्तु का जिस वस्तु से सगति–सादृश्य हो उसे उचित कहते है और उचित का भाव ही औाचेत्य है[2]। अलङ्कार, गुण, रस आदि औचित्य रूपी सूत्र मे ही ग्रथित है। उसके अतिरिक्त क्षेमेन्द्र ने औचित्य की व्यापकता बतलाने के लिए पद, वाक्य, देश,काल, के साथ क्रिया/कारक/वचन/लिग आदि का काव्यदृष्ट्या औचित्य और इनके अभाव मे अनौचित्य की साङ्गोपाङ्ग एव बडी हृदयङ्गम चर्चा की है।

काव्य के समग्र घटको मे औचित्य का महत्त्व पण्डित बलदेव उपाध्याय ने अपने सस्कृत– साहित्य के इतिहास मे दिखलाया है।

किन्तु जो स्थिति काव्य मे अलङ्कार, रीति, गुण आदि की है, वही स्थिति औचित्य की है। इसपरिपोष के लिए अपरिहार्य गुण होने पर भी वह गुण की स्थिति मे ही सीमित है। वह गुणी नही बन सकता। वह काव्यतत्त्व का एक अङ्ग है, अङ्गी नही। वह उसके सौन्दर्य का एक घटक है, धर्म है, धर्मी नही। इस बात को दृष्टि से ओझल नही करना चाहिए। गुण या धर्म को गुणी या धर्मी का आत्मभूत स्थान नही मिल सकता। औचित्य मे आखिर प्रकार का ही तो महत्त्व होता है। अर्थात् अभिव्यक्ति के लिए शब्दार्थ रीति की योजना पर ही तो ध्यान दिया जाता है।

---

1 "रसपरिपोषपेशलाया प्रतीतेर्विभावानुभाव व्यभिचार्यौचित्य व्यतिरेकेण प्रकारान्तरेण प्रतिपत्ति शोभापरिहारकारितामवहति" — व0जी0–पृ0 137

2 उचित प्राहुराचार्या सदृश किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्य प्रचक्षते।। — औचित्यविचारचर्चा –

इसलिए औचित्य काव्य का जीवित नही हो सकता। यद्यपि क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य का आत्मा कही नही कहा है, फिर भी जीवित कहने से उसका आत्मा से ही तात्पर्य है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने कहा है –

औचित्यस्य चमत्कारकारिणि चवारूचर्वणे।
रस जीवितभूतस्य विचार कुरूतेऽधुना।। — औचित्यविचारचर्चा –

इस प्रकार औचित्य तत्त्व वस्तुत कोई अलग सिद्धान्त अथवा सम्प्रदाय न होकर गुण, अलड्कार, रस आदि विभिन्न काव्याङ्गो को परिष्कृत एव उपादेय बनाने का हेतु मात्र है।

भारतीय काव्यशास्त्र मे काव्य के आत्मतत्त्व अथवा मूलतत्त्व की खोज सदा से होती रही है। काव्य मे औचित्य के महत्त्व के सम्बन्ध मे कहा जा सकता है कि काव्यशास्त्र मे औचित्य की प्रतिष्ठा से एक बहुत बडे अभाव की पूर्ति हुई। एक ओर तो इससे अलङ्कारवादियो, रीतिवादियो एव वक्रोक्तिवादियो की अति चमत्कारवादी प्रवृत्तियो के नियत्रण मे योग मिला, दूसरी ओर काव्य मे स्वाभाविकता को अत्यधिक सम्मान प्राप्त होने लगा।

'आचार्य क्षेमेन्द्र' ने यह स्पष्ट कर दिया कि केवल अलड्कार और रीति का प्रयोग काव्य के सौन्दर्य के बढाने में सहायता तो देता नही, अपितु उसे ठेस भी पहुँचा सकता है। औचित्य का विचार प्रारम्भ से ही अलङ्कारशास्त्र मे किसी न किसी रूप मे मिलता ही है, किन्तु उसे स्वतत्र सत्ता के रूप मे समस्त काव्य तत्त्वो मे ग्रथित करते हुए व्यापक रूप से चर्चा करने का श्रेय क्षेमेन्द्र को ही है। औचित्य विचार का 'सूक्ष्मततु' भरत नाट्यशास्त्र मे ग्रथित है। भरत प्रणीत् सूत्र के आधार पर औचित्य का महत्त्व प्रतिपादन करते हुए उचित वस्तु के और अनुचित वस्तु के सन्निवेश से क्रमश. क्या उपादेयता और क्या अनुपादेयता होती है, सुन्दर ढग से विवेचन किया[1]।

आचार्य भरत ने यह प्रतिपादित किया कि जैसा पात्र हो उसी के अनुरूप उसकी भाषा व चरित्र आदि भी होने चाहिये।

औचित्य के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए 'आचार्य मम्मट' ने कहा – कि औचित्य के कारण गुण भी दोष या दोष भी गुण बन सकता है। अत उसके आधार पर गुण दोषो की परीक्षा की जा सकती है।

---

1 वयोऽनुरूप प्रथमस्तु वेष वेषानुरूपश्च गतिप्रचार। — नाट्यशास्त्र
गतिप्रचारानुगत च पाठ्य पाठ्यानुरूपोऽभिनयश्च कार्य।।

इस प्रकार औचित्य एक विधेयात्मक तत्त्व है यही समस्त सौन्दर्य का मूल है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने औचित्य का प्रतिपादन सर्वत्र काव्य–सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लक्ष्य से ही किया है। उनके अलङ्कार, गुण, रीति, रस आदि का ऐसा आयोजन जो काव्यत्व के विरूद्ध पडता उनके द्वारा निषिद्ध घोषित किया गया। औचित्य के द्वारा रस और अधिक आस्वादनीय बनकर सब हृदयो मे व्याप्त हो जाता है। इसलिए आचार्य क्षेमेन्द्र औचित्य रूप काव्यात्मा की चर्चा रससिद्धि के ही प्रकाश मे करते है। क्षेमेन्द्र ने औचित्य को काव्य का जीवित तत्त्व कहा है, किन्तु जीवित से तात्त्पर्य आत्मा से नही है अपितु इसका तात्पर्य है " किसी काव्याङ्ग को उपादेय बनाने के हेतु" से है[1]।

इस प्रकार काव्य के शोभाधायक तत्त्वो मे औचित्य की सर्वोपरि महत्ता सिद्ध होती है। औचित्य काव्य का प्राण होता है। उसका उद्देश्य नूतन औचित्य से युक्त सौन्दर्य की प्राप्ति कराना।

**रस तत्त्व – (रसध्वनि) –** सस्कृत साहित्यशास्त्र मे अनेक विद्वानो की अनुपमकृतिया विद्यमान है जिन्होने अपनी प्रखर एवं तीक्ष्ण प्रतिभा से इस साहित्य को गौरवान्वित किया। किन्तु एक ही तत्व को देखने मे प्रत्येक मनीषी की अपनी स्वतत्र विचारधारा रही है। सभी ने अपने ही ढग से विवेचन प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि एक ही तत्त्व के चितन मे भी विविध विद्वानो मे मतैक्य नही रहा।

काव्य मे सौन्दर्याधायक तत्त्व को लेकर काव्यर्मज्ञ[2] विद्वज्जनो मे बडा वितर्क रहा। कोई रस को चमत्कार जनक तत्त्व मानता है तो कोई अलङ्कार को, तो कोई औचित्य को , कोई, ध्वनि को , कोई रीति को। किन्तु सभी विवादो का पर्यवसान कही न कहीं अवश्य ही होता है। साहित्य मे इस तरह के विवाद अधिक समय तक चलते रहे, किन्तु एक समय ऐसा भी आया जब उनका उपशमन हो गया और सामान्यत आचार्यों ने ध्वनि को और विशेषत रस ध्वनि को ही सर्वप्रधान तत्त्व घोषित किया।

---

1 औचित्य रससिद्धस्यस्थिर काव्यस्य जीवितम्। औ0 चर्चा0

वर्तमान काल मे प्राय. सभी आचार्य रस का महत्त्व मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते है एव काव्य मे चमत्काराधायक तत्त्व के रूप मे रस को ही प्रधानता प्रदान करते है। रस ही प्रधान तत्त्व है जिससे काव्य आह्लाद बन सकता है। गुण, अलड्कार, रीतिया इत्यादि काव्य के तत्त्व तो गौण है सहृदय[1] ग्राह्य होने के लिए अलङ्कारादिको का नही अपितु रस का होना परम आवश्यक है। रस की प्रतिष्ठित नाट्यशास्त्र मे उस समय से ही थी जब काव्यशास्त्र के चिन्तन का आरम्भ हो रहा था।

रूद्रट के काव्यालङ्कार मे पहली बार सविस्तार काव्यरस के दर्शन होते है। रूद्रट के थोडे ही समय बाद 'आनन्दवर्धन' काव्यशास्त्र के चिन्तन मे आये और उन्होने ध्वनि को काव्य के 'जीवित' रूप मे प्रतिष्ठित किया। उन्होने रस का विन्यास ध्वनि के सुष्ठुतम भेद मे किया।

रूद्रट ने पहली बार काव्यक्षेत्र मे रस को ले आकर अलङ्कार और रस की प्रतिद्वन्द्विता पैदा कर दी। ध्वनिसिद्धान्त ने इस प्रतिद्वन्द्विता मे रस को जबर्दस्त सहायता पहुँचाकर अलड्कार को मर्माहत कर दिया और काव्य की आत्मा ध्वनि को (न केवल रस ध्वनि को ही) सर्वोपरि प्रतिष्ठित कर गुण, अलड्कार, रीति , वृत्ति आदि सभी को उसी मे अन्तर्भूत कर गये थे।

प्राचीन आचार्यों ने काव्य की आत्मा के रूप मे 'रस' की स्थापना की है। रस ही काव्य मे मुख्य तत्त्व होता है। सौन्दर्य का आधान करने वाला तत्त्व रस ही होता है इसलिए इस रस को आचार्यों ने 'ब्रह्मानन्द सहोदर' होने की कल्पना की है।

यह 'रस' है क्या – ? रस्यते आस्वाद्यते इति रस। जिसका रस या आस्वाद लिया जाय, वह रस है। यद्यपि रस शब्द का प्रयोग वैदिक काल से ही होता चला रहा है। किन्तु काव्य मे उत्कृष्ट महत्त्व प्राप्त रस एव वेदादि मे प्रयुक्त रस मे महान् भेद है। काव्य का रस उन सभी अर्थों से सर्वथा भिन्न है जो वैदिक साहित्य मे प्रयुक्त रस शब्द से ग्रहण किये जाते है[2]। काव्य का रस सहृदयो के हृदय को अलौकिक रूप से आनन्दित करता है।

सस्कृत साहित्य के काव्यो मे इसरस का महनीय महत्त्व है। नाट्यशास्त्र के प्रणयनकर्त्ता भरत से लेकर अनेक मनीषियों ने नाटको एव काव्यो मे रस की महत्ता स्वीकार की[3]।

---

1 येषा काव्यानुशीलनाभ्यास वशाद्विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीय तन्मयी भवन योग्यता ते स्वहृदय सवादभाजा सहृदया। — ध्वन्यालोक लोचन पृ0 38–39

2 रसो वै स – — तैत्तिरीयोपनिषद, ब्रह्मानन्दबल्ली

3 (क)नहि रसादृतेकश्चिदर्थ प्रवर्तते। — नाट्यशास्त्र प्रभम भाग पृष्ठ 272

3 (ख)अवस्थानुकृतिर्नाट्यम् रूप दृश्यत्तयोच्यते
रूपक तत्समारोपात् दशधैव रसाश्रयम्।। — दशरूपक – 1– 7

'भरत' ने अपना समस्त विवेचन नाट्य की पृष्ठभूमि मे प्रस्तुत किया है। सम्भवत उस समय नाट्य ही काव्य का प्रमुख अङ्ग था। उस समय काव्य के अन्य भेदो की रचना नही हुई थी। – "अभिनव' ने रस के लिए नाट्य की परिभाषा ग्रहण की है। नट के द्वारा किये जाने वाले, अभिनय के प्रभाव से प्रत्यक्ष सा दिखाई देने वाला, एकाग्रमन की निश्चलता के कारण , अनुभव होने वाला समस्त नाटको एव किसी–किसी काव्यविशेष से प्रकाशित होने वाला अर्थ नाट्य है। नायक तथा सामाजिक को चित्तवृत्ति के तादात्मक होने के कारण ही अनुमान तथा आगम एव योगि प्रत्यक्ष से उत्पन्न तटरूप प्रमाता एव प्रमेय से विलक्षण तथा परकीय लौकिक चित्तवृत्ति से भिन्न रूप से प्रेरित होने वाली अपने परिमित स्वरूप के आश्रय से प्रतीत न होने के कारण लौकिक प्रमदादि से उत्पन्न रति और शोक के समान, अन्य चित्तवृत्ति के उत्पादन मे अक्षम होने से ही निर्विघ्न अनुभूति की विश्रान्तिरूप आस्वाद नाम से कहे जाने वाले व्यापार के द्वारा ग्रहीत 'होने के कारण' रस शब्द से कही जाती है। रस सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य नन्दिकेश्वर को ही बताया गया है। रस के विषय मे सबसे प्राचीन विवेचन भरतकृत नाट्यशास्त्र मे ही स्थित है । आचार्य भरत का सुप्रसिद्ध रससूत्र परवर्तीकाल मे रस विवेचना का आधार रहा। 'भरत' ने कहा कि रस के बिना नाट्य का कोई अर्थ नही।

'आचार्य भामह' ने रस को काव्य मे 'अनिवार्य तत्त्व' के रूप मे विवेचित किया। काव्य का मुख्यरूप भावानुभूति या रसानुभूति है। आचार्य भामह ने रस की सत्ता अलङ्कार रूप मे ही स्वीकार की। श्रृङ्गारादिको का स्पष्ट प्रतिपादन ही रसवद् अलङ्कार है।

आचार्य दण्डी ने भी रस को अलङ्कार रूप मे स्वीकार किया दण्डी ने आठ प्रकार के रसवद् अलङ्कार स्वीकार किये है[1]। अपने पूर्ववर्ती आचार्यो की सरणि का अनुसरण कर उद्भट ने भी रसवत् प्रेय, ऊर्जिस्व, अलङ्कारो का प्रतिपादन किया। इसी कारण आचार्य रूय्यक ने रस को महत्त्व प्रदान किया।

सस्कृत साहित्य के आलङ्कारिको मे भरत के पश्चात् रूद्रट प्रथम आचार्य है जिसने रसो का समुचित एवं सम्यक् विवेचन किया[2]। यपि रूद्रट के पूर्व अन्य आचार्यो ने रस पर दृष्टिपात अवश्य किया, किन्तु उनकी विचारधारा के अनुसार वह अलङ्कार मात्र था। यही दशा अधिक काल तक अक्षुण्ण बनी रही। रूद्रट प्रथम आचार्य है जिन्होने रस को अलङ्कार की श्रेणी से बाहर निकाला और काव्यशास्त्र मे एक स्वतत्र स्थान निर्धारित किया।

---

1 इह त्वष्टरसयत्ता रसवत्ता समृता गिराम्। काव्यादर्श–श्लोक 292

2 श्रृङ्गारवीर करूणभयानकाद्भुता हास्य ।
रौद्र शान्त प्रेयानिति मन्तव्या रसा सर्वे।। काव्यालङ्कार – 15 – 3

भामह, दण्डी इत्यादि अलङ्कारवादियो ने रस तत्त्व को महाकाव्य के लिए आवश्यक तत्त्व के रूप मे स्वीकृत किया।

यह 'रस' वह तत्त्व है जिसके बिना विभावादि का बुद्धि मे अवगम सम्भव नही। इसके बिना आनन्दपूर्ण ज्ञान रूप प्रयोजन नही बन सकता है। सामाजिक वर्ग की भी रस के प्रति असीम निष्ठा होती है। वह रस को ही आदर की दृष्टि से देखता है। उसके आनन्द की एक मात्र विश्रान्ति रसात्मक प्रतीति से ही होती है। विभावादि की प्रतीति रस के अभाव मे सम्भव नही। अत नट तथा सामाजिक सभी के अभिप्राय से रस की ही प्रधानता है।

इस प्रकार अलौकिक तथा निर्विघ्न सवेदन रूप चर्वणा का विषय बनाया गया रत्यादि रूप स्थायिभाव से विलक्षण अर्थ ही 'रस' है[1]। इस रस की एक मात्र सारवस्तु चर्वणा है। यह सिद्ध स्वभावनही है रस प्रतीति तात्कालिकी ही होती है। यह चर्वणा अलौकिक विभावो के सयोग से होती है। चर्वणा का उपयोगी विभावादि का यह व्यापार अलौकिक ही है। किसी अन्य स्थल पर इसका न प्राप्त होना उसकी अलौकिकता का भूषण ही है दूषण नही। आशय यह है कि–रत्यादि स्थायीभाव वैयक्तिक लिङ्ग भेद से बहुत ऊपर उठ जाता है और दर्शक का व्यकितगत हृदय विशुद्ध मानव हृदय या लोक हृदय मे लीन हो जाता है।

यह शक्ति वेदशास्त्र इत्यादि मे नही होती यह ही साधारणीकरण की प्रक्रिया है। रस सिद्धान्त ऐसा चक्रव्यूह है जिससे बाहर निकलना बहुत दुष्कर है। रसात्मकता या रागात्मकता ही एक ऐसी वस्तु है जो काव्य साहित्य को इस नाम का अधिकारी बनाती है। काव्य का चरम तत्त्व रस ही है, क्योकि उसका परिणाम सहृदयो की रस चर्वणा या रसानुभूति ही है। इस रस का आस्वादन बाह्येन्द्रियो से सम्भव नही इसका उपयुक्त रसनेन्द्रिय साहित्यको का अन्तरिन्द्रिय है। अनुभूति प्रवणचित्त है।

भारतीय साहित्य में 'आनन्द' का प्रतिशब्द रस ही है। रस कोई स्वतत्र वस्तु नही है। भाव की प्रबलता से हमारी अनुभूति जो आस्वादन की क्रिया करती है, आस्वाद की वही अवस्था रसावस्था है। इस प्रकार अनेक आचार्यों ने रस के अनेक लक्षण किये। आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति को काव्य का जीवित स्वीकार करते हुए भी रस को काव्य का अमृत एव अन्तश्चमत्कार का वितानक मानते हुए प्रकारान्तर से इसे सर्वप्रमुख काव्य प्रयोजन के रूप मे घोषित किया।

---

1 विभावानुभाव वृयभिचारिसयोगाद्रस निष्पत्ति । ना0शा0 प्रथम – पृष्ठ 272

आचार्य 'अभिनव' का कहना है कि – शब्दो मे समर्पित होने और हृदय संवाद से अर्थात् एकरूपता द्वारा सुकर होने पर विभाव और अनुभाव से सामाजिको के चित्त मे पहले से ही वर्तमान रति आदि वासना उद्बुद्ध होती है। उस वासना के अनुराग से सुकुमार होने पर निजसवित् अर्थात् ज्ञान के आनन्द की चर्वणा के व्यापार का जो रसनीय रूप है, वही रस है[1]।

आचार्य 'आनन्दवर्धन' ने ध्वनि (रसध्वनि) को काव्य विशेष कहकर उसे काव्यात्मा घोषित किया। आनन्दवर्धन ने ध्वनि का प्रयोग इसे व्यापक रूप मे, शब्द, अर्थ, वस्तु, अलङ्कार, रस जिसकी व्यञ्जना हो सभी के लिए प्रयुक्त किया।

आनन्द ने रीति और अलङ्कार की व्यापकता का निराकरण करते हुए उसे ध्वनि के अन्तर्गत समाहित कर लिया और रस को ध्वनि का सर्वोत्तम भेद घोषित करके रस को महत्तम स्थान प्रदान किया। 'आनन्द' ने काव्य के सब विशिष्ट तत्त्वो को ध्वनि मे समाहित करने के उद्देश्य से रसध्वनि के साथ–साथ अलङ्कार ध्वनि और वस्तुध्वनि की कल्पना की।

गुण अलङ्कार, रीति, वृत्ति, आदि काव्य तत्त्व वाच्यार्थ द्वारा मन को आह्लाद नही करते अपितु वे सब ध्वन्यर्थ के सम्बन्ध से उसी का उपकार करते हुए अपना अस्तित्त्व सार्थक करते है। गुणो का सम्बन्ध रस के साथ उसी प्रकार होता है जैसे – शौर्यादि का आत्मा के साथ। अलङ्कारो की स्थिति आभूषण जैसी है जो अनित्यरूप से शरीर की शोभा को बढाते हुए अन्तत आत्मा की ही शौर्यवृद्धि करते है। गुण रस के उत्कर्षक धर्म घोषित किये गये और रीति को पद सघटना मानकर रस की उपकर्त्री के रूप मे स्वीकृत किया गया[2]।

'आनन्द' ने सभी आचार्यों को (रसध्वनि) रस की ओर अधिक प्रवर्तित रहने का आदेश दिया[3]।

वस्तु, अलङ्कार, गुण, रीति, वक्रोक्ति प्रभृति काव्य तत्त्वो की अपेक्षा रस ही काव्य का एक ऐसा काव्यतत्त्व है जो व्यापक रूप से उन सभी स्थलो मे विद्यमान रहता है।

---

1 शब्द समर्पयमाण हृदय संवादसुन्दरविभावानुभाव समुचित प्राग्विनिविष्टरत्यादि वासनानुराग सुकुमार स्वसविदानन्द चर्वणाव्यापार रसनीयरूपो रस। स काव्य व्यापारैकगोचरो रसध्वनिरिति, स च ध्वनिरेवेति स एव मुख्यतयात्मेति। ध्वन्यालोक लोचन – पृ0 50

2 ये रसस्याङ्गिनो धर्मा शौर्यादयइवात्मन।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युश्चल स्थितयो गुणा।। काव्यप्रकाश – 8/पृ0 380

3 काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवे पुरा।
क्रौञ्चद्वन्दवियोगोत्थ शोकः श्लोकत्वमागत.।। ध्वन्यालोक 1/5

यह रसध्वनि ऐसा तत्त्व है जो काव्य मे स्फुट या अस्फुट रूप मे विद्यमान रहता है। रस–ध्वनि की सर्वग्राह्य का मुख्य कारण यह है कि ध्वनि की इसमें इतनी व्यापक परिकल्पना है कि परवर्ती औचित्य वक्रोक्ति आदि भी इसकी सीमा से बाहर नही जा सकते। इसलिए आनन्द ने रसध्वनि को अनिवार्य तत्त्व माना। काव्य मे ध्वनि को रमणीय, सरस, एव व्यङ्ग्य होना चाहिए।

ध्वनि एक नितान्त आन्तरिक तत्त्व है, क्योकि ध्वनिकार को कविताकामिनी का यह बाह्यालङ्करण शोभाधायक न लगा। उन्होने काव्य के अन्तस्तल मे प्रवेश किया। उसके मर्म को पहचाना और उसके सौन्दर्य के रहस्यमय मूल को खोज निकाला। उन्होने काव्य के रमणीयतत्त्व की तुलना नारी के अङ्गो मे रहने वाले किन्तु उनसे सर्वथा भिन्न लावण्य नामक तत्त्व से की। इसी तत्त्व का नाम है काव्य का प्रतीयमान अर्थ अर्थात् ध्वनि[1]।

उनका कहना था कि जिस प्रकार नारी लावण्य के अभाव में हृदयावर्जक नही हो सकती, उसी प्रकार ध्वनि तत्त्व के अभाव मे अलङ्कृत काव्य भी सहृदयो के लिए हृदयावर्जक नही[2] हो सकता। इसलिए उन्होने "काव्यस्यात्मा ध्वनि" कहकर ध्वनि को निर्भय रूप से काव्य का आत्मभूत तत्त्व उद्घोषित किया।

यह ध्वनि समस्त सत्कवियो के काव्य मे अन्तर्लीन एक रमणीय तत्त्व है। काव्य तत्त्व को इस दृष्टि से देखने पर अलङ्कृति तत्त्व का महत्त्व क्षीण हो जाता है[3]। महाकवियों की अलङ्कृति वाणी मे भी यह प्रतीयमान तत्त्व ही सौन्दर्य का कारण बनता है। इसका काव्य मे वही स्थान है जो स्त्रियो मे लज्जा का[4]।

इसप्रकार आनन्दवर्धन ने रस को स्वतंत्र काव्य तत्त्व स्वीकार करके ध्वनि का एक भेद असलक्ष्यक्रम व्यङ्ग्य ध्वनि माना। और रसभावादि आठो भावो को इसी मे अन्तर्भूत किया।

ध्वनि काव्य का अस्तित्त्व तत्त्व है। इसके बिना काव्य का अस्तित्त्व सम्भव नही। यहॉ तक कि शास्त्रीय दृष्टि से रस रसध्वनि का चमत्कार भी ध्वनि (व्यङ्ग्यार्थ) पर आश्रित है।

---

1 प्रतीयमान पुनरन्यदेव वस्त्वस्तिवाणीषु महाकवीनाम्।
यत् तत् प्रसिद्धावयवाति रिक्त विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।। ध्वन्यालोक – 1/4 कारिका

2 काव्यस्यात्माध्वनि । ध्वन्यालोक – 1/1 कारिका

3 "अलङ्कारा हि वाच्य सौन्दर्यसारा प्रायश स्वान्तर्गते प्रतीयमान पृष्ठत कुर्वन्ति"।
रसगगाधर–पृ0–137

4 प्रतीयमानच्छायैषा भूषा लज्जेव योषिताम् – ध्वन्यालोक–3/37

इसके अतिरिक्त यह साधन है स्वयसिद्धि अथवा साध्य नही है सिद्धि अथवा साध्य तो काव्याह्लाद काव्यानन्द अथवा रस है। निष्कर्षत काव्यशास्त्रीय क्षेत्र मे जितना समादर रस तत्त्व को मिला उतना किसी अन्य काव्य तत्त्व को नही। आचार्य भरत ने ही रस विषयक सभी सामग्री साक्षात् रूप से अथवा प्रकारान्तर से प्रस्तुत की।

अलङ्कारवादी आचार्यों ने यद्यपि रस, भाव, आदि को रसवद् 'आदि अलङ्कार' नाम से अभिहित किया। तथापि अपने दृष्टिकोण से इसे समुचित समादर भी दिया। अग्निपुराणकार ने रस को आवश्यक तत्त्व के रूप मे स्वीकार करते हुए कहा कि जिस प्रकार बिना त्याग के लक्ष्मी शोभित नही होती उसी प्रकार वाणी भी रस के बिना शोभित नही होती है। इसी के समय रस को आत्मा पद पर आसीन कर दिया गया।

"वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्"।

आचार्य 'मम्मट' ने अपने गुण स्वरूप मे इस ओर प्रकारान्तर से सङ्केत किया और विश्वनाथ ने सर्वप्रथम अपना काव्य लक्षण भी इसी मान्यता के आधार पर प्रस्तुत किया[1] –

रस को आत्मा स्वीकृत करने का कारण यही भी है कि आनन्द और उनके अनुकर्त्ताओ मम्मट, विश्वनाथ, ने तथा इनके उत्तरोत्तरवर्ती आचार्यों ने अन्य काव्य तत्त्वो गुण, अलङ्कार, रीति, छन्द , को रस के साथ सम्बद्ध करते हुए इन्हे उसके पोषक रूप मे प्रस्तुत किया। इसी कारण रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया जाता है।

इस प्रकार काव्यमर्मज्ञ आचार्यों के विश्लेषण से रसतत्त्व और भी महनीय होता चला गया। क्योकि रस का प्रतिपादन सर्वप्रथम आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र मे किया अत उत्तरकालीन सभी आचार्य भरतमुनि के ऋणी है।

भरत ने अपने रस विषयक सूत्र से रस का स्वरूप बताया – जिसका सर्वग्राह्य अर्थ है – विभावानुभाव और व्यभिचारिभाव के सयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इस सूत्र के विवेचन पर ही सभी आचार्यों की विचारधारा पल्लवित होती है।

इस प्रकार रस काव्य का एक आवश्यक तत्त्व है जो सर्वसम्मत है। सरस काव्य की मर्यादा ही सर्वोपरि है। रस कभी भी काव्य मे बाधक नही होता है। रस ही काव्य की आत्मा है

---

1 "वाक्य रसात्मक काव्य"।

जो रसात्मक काव्य है वही उत्तमोत्तम काव्य है। काव्य मे व्यञ्जना की प्रधानता को सभी आचार्य मानते है।

व्यङ्ग्यो मे रस व्यञ्जना ही प्रधान है और वह ध्वनि काव्य होता है। काव्य का चरम तत्त्व रस ही है। रस परिपोष के लिए अपरिहार्य गुण होने पर भी वह गुण की स्थिति मे ही सीमित है वह गुणी नही बन सकता। वह काव्य तत्त्व का एक अलौकिक अङ्ग है। रसानुभूति हृदय की द्रवणशीलता का परिणाम है जिसमे हृदय बाह्य कारणो से प्रभावित होकर इतना अधिक द्रवीभूत हो जाता है कि उसकी आस्वाद्य विषय के साथ तन्मयता स्थापित हो जाती है। रसानुभूति जन्य आनन्द को 'ब्रह्मानन्द सहोदर' कहा गया।

यह रस ध्वनि असलक्ष्यक्रम ध्वनि की उपलक्षण है। अत इससे रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावशबलता, आवश्यकता इत्यादि का भी ग्रहण होता है।

इस प्रकार काव्य के समस्त सौन्दर्याधायक तत्त्वो मे रस ही प्रधान काव्य का आत्मतत्त्व है। आचार्य आनन्दवर्धन का कहना है कि – ध्वनितत्त्व काव्य में अनिवार्यत विद्यमान रहता है तथा रस के उपलक्षणो भी इस तत्त्व का अस्तित्त्व अनिवार्यत. अपेक्षित है। ध्वनितत्त्व रस कीअपेक्षा कही अधिक व्यापक है।

**छन्दस् –** काव्य मे सौन्दर्य और चमत्कार की सृष्टि करने मे 'छन्दस्' का भी अपना अपूर्व योगदान है। 'आचार्य पाणिनि' के अनुसार छन्द. शब्द "चदि आहलादने – दीप्तौ च" धातु से बना है। 'चदेरादेश्च छः' सूत्र द्वारा चदि का चकार छकार मे परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार "छन्दयति आह्लादयति दीपयति प्रकाशयतीति छन्द" अर्थात् जो आह्लादित करे अथवा प्रकाशित करे वह छन्द है।

'निरूक्ताचार्ययास्क' के मत मे 'छन्द' शब्द 'छदिसवरणे' धातु से निष्पन्न होता है। और इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'छन्द' शब्द का अर्थ है – 'आच्छादन करना'[1]।

छन्दो का प्रथम प्रयुक्त स्थल 'वेद' है। ऋग्वेद तथा सामवेद मे छन्दोबद्ध मत्रो का प्रयोग स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। यजुर्वेद तथा अथर्ववेद का भी अधिकाश भाग छन्दोबद्ध रचना के रूप मे उपलब्ध होता है।

---

1 "छन्दासि छादनात्"। निरूक्त, दैवतकाण्ड, 7/12

काव्य के शरीर पक्ष मे ही 'छन्द' का अन्तर्भाव होता है। नाट्यशास्त्र प्रणेता 'आचार्य भरत' ने अपने नाट्यशास्त्र के अट्ठारहवे अध्याय मे छन्दविषयक् कुछ महत्वपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है।

छन्द शब्द के आच्छादन अर्थ का इङ्गित प्रयोग वैदिक साहित्य मे उपलब्ध होता है। यह निश्चित है कि देवताओ का आवाहन करने हेतु तथा उन्हे प्रसन्न करने हेतु से आर्य लोग वैदिक छन्दो का ज्ञान करते रहे होगे।

छन्दो का उद्भव कैसे हुआ यह भी एक विचारणीय प्रश्न है ऋग्वेद दशममण्डल के 'पुरूषसूक्त' मे यज्ञ पुरूष का वर्णन हुआ है। उसी यज्ञ पुरूष के द्वारा ऋक्, यजु, साम तथा छन्दो की व्युत्पत्ति बतलाई गयी।

'कविकुलगुरू 'कालिदास' ने भी छन्दो का मूल 'प्रणव' मे माना है[1]। किन्तु लौकिक–सस्कृत मे छन्द की उत्पत्ति आदिकवि वाल्मीकि के मुखारबिन्द से हुई। विराध द्वारा क्रौञ्च दम्पत्ति मे से अन्यतर का प्राणापहार किये जाने पर इतर के हृदय–विदारक करूण क्रन्दन–द्वारा आदिकवि के आभ्यन्तर का शोकभाव सद्य पोषित होकर अन्तस्तल के मर्मस्थलो एव ग्रन्थिसन्धियो को विदीर्ण करता हुआ बरबस समुच्छलित होकर करूण के रूप मे बाह्य जगत् मे प्रस्फुटित हो श्लोकत्व के रूप मे परिणत हो गया[2]।

मा निषाद। प्रतिष्ठाम् त्वमगम शाश्वती समा.।

यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी· काममोहितम्।। रामायण–बा0का0 2–15

अर्थात् हे निषाद। चूँकि तुमने क्रौञ्च मिथुन मे से काम मोहित एक नर क्रौञ्च की अकारण हत्या की है अतएव तुझे कभी शान्ति न प्राप्त हो।

तत्पश्चात् वे एक निश्चय पर पहुचते है तथा अपने शिष्य से कहते है हे तात् शोक से पीडित मेरे मुख से निकला हुआ यह वाक्य पादबद्ध है। इसमे चार चरण हैं। प्रत्येक पाद मे बराबर अक्षर विद्यमान है अतएव यह मेरा वचन श्लोक रूप हो।

---

1 वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्।
आसीन्महीक्षितामाद्य प्रणवश्छन्दसामिव।। रघुवश – 1/11 श्लोक

2 निषाद विद्धाण्ऽजदर्शनोत्थ श्लोकत्वमाद्यत यस्यशोक। रघुवश – 14/70

आचार्य पिङ्गलकृत "छन्द.सूत्रम्" छन्द के विषय मे प्राचीनतम आधिकारिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ मे वैदिक एव लौकिक दोनो प्रकार के छन्दो पर प्रकाश डाला गया है। इसी 'छन्द सूत्रम्' पर सर्वाधिक प्रसिद्ध टीका हलायुधभट्टकृत मृत–सञ्जीविनी"टीका है। इस टीका के अनुसार अक्षर सख्या का परिणाम ही छन्द है[1]।

नाट्यशास्त्र के प्रणेता 'आचार्य भरत' क कथन है – कि अनेक अर्थो से सम्पन्न चार पदो एव वर्णों से युक्त वृत्त ही 'छन्द' कहलाता है[2]। गतिसयम को भी छन्द कहा जाता है[3]।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ' ने भी छन्दोबद्ध रचना को पद्य सज्ञा प्रदान की है। 'छन्दोबद्ध पद पद्यम्' सा0 दर्पण–6 अध्याय ।

छन्दो के द्वारा भावाभिव्यक्ति समुचित ढंग से सम्पन्न होती है। छन्दो का प्रमुख कार्य रस या भाव को व्यञ्जित करना ही है। छन्दोबद्ध रचनाए गद्य की अपेक्षा अधिक रमणीय एव प्रभावोत्पादक होती है। कवि अपनी अनुभूतियो को छन्दोबद्ध करके उन्हे अनन्त एव जीवन्त रूप प्रदान करता है। छन्द एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा किसी वस्तु या पदार्थ को अधिक सरलतापूर्वक स्मृतिपथ पर स्थिर एव दृढ किया जा सकता है। छन्द भाषा मे लालित्य की सृष्टि करते है।

भाषा की स्निग्धता तथा रमणीयता का सम्पूर्ण उत्तरदायित्त्व उसके छन्दप्रयोग की प्रकृति पर निर्भर करता है। भाषा और छन्द का यह सम्बन्ध उभयात्मक है। छन्दो की भी उपादेयता उनकी भावानुकूलता या रसानुकूलता मे होती है। अनुकूल छन्दोबद्ध भाषा द्वारा रस की सुष्ठु एव सम्यक् अभिव्यञ्जना सभव होती है। छन्दो के साथ भाषा–भाव तथा रस का यह सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। वैदिक युग मे भी रस तथा छन्द का उक्त समन्वय देखा जा सकता है। लौकिक संस्कृत मे छन्द तथा रस का यह सम्बन्ध अधिक व्यापक रूप मे दृष्टिगोचर होता है।

विभिन्न स्थितियों के वर्णन के सदर्भ मे विविध छन्दो का विधान प्रदर्शित करते हुए आचार्य भरत की उक्ति है कि वीर रस के वर्णन में स्रग्धरा छन्द का प्रयोग होना चाहिए[3]।

---

1 छन्द शब्देनाक्षर सख्यावच्छन्दोऽत्राभिधीयते। — पिङ्गलछन्दसूत्रम् – 2/1

2 एव नानार्थ सयुक्तै पदैर्वर्णविभूषितैः।
चतुर्भिस्तु भवेद् युक्त छन्दोवृत्ताभिधानवत्।। — ना0शा0 – 14/42
गतिसयमश्छन्द । — ना0शा0 – पृष्ठ 317

3 वीरस्य भुजदण्डाना वर्णने स्रग्धराभवेत्।
नायिका वर्णने कार्यं वसन्ततिलकादिकम्।। — ना0शा0 अध्याय 14

छन्दस् की गणना वेद के छह अङ्गो मे की गयी है। इसे वेदपुरूष का चरण बताया गया है[1]। छन्दस् के बिना किसी भी काव्यग्रन्थ मे गतिशीलता नही आ सकती। छन्दस्शास्त्र के बिना वैदिक तथा लौकिक दोनो काव्य पङ्गु है।

आचार्य क्षेमेन्द्र ने 'सुवृत्ततिलक' नामक अपने ग्रन्थ में छन्दयोजना के विषय मे व्यापक रूप से नियम प्रयोग करते हुए लिखा कि सर्ग के प्रारम्भ मे कथा का विस्तार कम करने के लिए सदुपदेश तथा वृत्तान्त कहने मे सज्जन लोग अनुष्टुप छन्द का प्रयोग करते थे। श्रृङ्गार और उसके आलम्बन नायिका आदि के सौन्दर्य वर्णन और वसन्त तथा उसके अङ्गो के वर्णन मे उपजाति का प्रयोग किया। इनका कहना है कि श्रृङ्गार रस मे रूपदीपक, सयुक्त आर्यायो और वृत्तो का प्रयोग होना चाहिए।

क्षेमेन्द्र ने अपने 'सुवृत्ततिलक' के तृतीय परिच्छेद मे काव्य रस और वर्णन के अनुसार वृत्तो का प्रयोग बताया है। रसादि की दृष्टि से इनके विषय मे कोई नियम नही है। वर्षा एव प्रवास के व्यसन मे मन्दाक्रान्ता छन्द रमणीय बनाता है। राजाओ की स्तुति एव उनके वीरतापूर्ण शौर्य वर्णन मे शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग, तथा दोधक, त्रोटक आदि छन्दो का प्रयोग मुक्तक सूक्तियो मे ही शोभा देता है। सर्ग के अन्त मे द्रुततालवाली मालिनी छन्द का प्रयोग, रूचि एव औचित्य के विचार मे हरिणी छन्द का प्रयोग होता है। परिच्छेद या विभाजन के समय शिखरिणी छन्द का प्रयोग होता है। शेष बचे हुए छन्द जिनकी चर्चा यहॉ नही की गयी है केवल उक्ति वैचित्र्य के लिए होते है। इनके भी प्रयोग के विषय मे कोई विशेष नियम नही है।

'आचार्य विश्वनाथ' का कथन है कि – एक सर्ग मे एक ही प्रकार के छन्दो का प्रयोग होता है। तथा सर्ग के अन्त मे छन्दो के प्रयोग परिवर्तित हो जाना चाहिए[1]। 'आचार्य दण्डी' को भी सर्ग के अन्त मे भिन्न छन्दोयोजना अभीष्ट है[2]।

रससिद्ध कवीश्वरो के समय मे ही विशाल छन्दो के वैविध्य एव छन्द के प्रौढ प्रयोगो के दर्शन होते है। किसी युग के छन्दो वैभव को स्पष्ट करना उस युग की साहित्य अभिरूचि एव सामाजिक गरिमा का इतिहास अङ्कित करना है। अस्तु सारत· काव्य के सामान्य स्वरूप को स्पष्टाङ्कित करने के लिए यदि हम पुन अङ्कित करे तो कोई आपत्तिजनक नही होगा। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन हमे इस निष्कर्ष पर ले जाता है कि शब्दार्थ काव्यपुरूष का शरीर ओज,

---

1 छन्द पादौ तु वेदस्य। पाणिनीय शिक्षा।

2 "एक वृत्तमयै पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकै·।" विश्वनाथकृत – सा0दर्पण परिच्छेद

3 सर्वत्रभिन्नवृत्तान्तैरूपेत लोकरञ्जनम्। काव्यादर्श– 1/19

माधुर्य आदि गुण काव्य पुरूष के शौर्य औदार्यादिगुण उभयादि अर्थालङ्कार व यमकादि शब्दालङ्कार उसके किरीट–कुण्डलादि भूषणादि रीति उसके अवयव आदि की तथा दोष उसके शरीर के काणत्वादि, छन्द उसके शब्द और अर्थ के शरीर पर रहने वाले रोमादि और रस उसकी आत्मा है।

काव्य के सौन्दर्याधायक तत्त्वो मे छन्दो की भी कुछ अपनी अलग ही महत्ता रही। 'छन्दासि छादनात्' अर्थात् छन्द आच्छादित करते है इस अर्थ मे छन्दवाणी के आवरण माने गये है। इसके अतिरिक्त छन्द शब्द की व्युत्पत्ति 'छद्' धातु से मानी गयी है। जिसका तात्पर्य आवृत करने या हर्षित करने या दीप्त करने से है।

'श्रीमद्भगवद्गीता' मे भी वेदो को 'छन्दस्' कहा गया है। 'आचार्य पाणिनि' की अष्टाध्यायी मे भी 'छन्दस्' शब्द वेदो का वाचक है। छन्द को वेदाङ्गो का आधार स्तम्भ माना गया है। वस्तुत काव्य मे छन्द शब्द का अर्थ मात्राओ और वर्णों का वह व्यवस्थित रूप माना जाता है जिसमे कवि की वाणी सहज प्रस्फुटित होती है।

भारतीय छन्दस्शास्त्र का उद्भव वैदिक साहित्य से माना जाता है। वैदिक साहित्य मे छन्दोबद्धता है। 200 ई0पू0 मे निबद्ध इस ग्रथ मे (छन्दस् सूत्र) छन्दो का लक्षण सूत्र शैली मे प्रयुक्त हुआ है। यह शास्त्र वर्णिक एव मात्रिक दोनो छन्दो के विकास की दृष्टि से महत्त्व रखता है। वाल्मीकि रामायण के अनुष्टुप छन्द से लौकिक छन्दो का भी आरम्भ हुआ। आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र के सोलहवें अध्याय मे उन छन्दो का रस से सम्बन्ध स्थापित किया है। काव्यशास्त्र मे रसानुरूप वृत्तो का प्रयोग आवश्यक है। वस्तुत छन्द और रस का अभिन्न सम्बन्ध है किन्तु छन्द है बाह्य तत्त्व। मानव की भावनोत्कटता के स्तर के अनुसार ही शब्दविचार भी दीर्घ, ह्रस्व, मन्द या तीव्र निकलता है। व्यक्ति के सस्कार–विशेष, समाज मे प्रचलित नैतिक मूल्यो, विश्वासो जीवन विषयक विचारो आदि से निर्मित होते है। इन सस्कार वृत्तियो को रस रूप मे परिणत करना महाकवि का कर्म है। कवि जितना जीवन की गम्भीरता से परिचित होगा और उसकी अभिव्यक्ति जितनी कुशलता से कर सकेगा, रस निष्पत्ति उतनी ही सफलता से होगी।

रससिद्ध कवीश्वरो के काल मे ही विस्तृत छन्दो 'वैविध्य एव छन्द के प्रौढ प्रयोगो के दर्शन होते है। किसी युग के छन्दो–वैभव को स्पष्ट करना उस युग की साहित्यिक अभिरूचि एव सामाजिक गरिमा का इतिहास अङ्कित करना है।

# द्वितीय अध्याय

**आर्षकाव्य–रामायण एवं महाभारत** – प्रत्येक विकसित राष्ट्र मे कुछ ऐसे ग्रन्थरत्न हुआ करते है। जिनमे वहॉ की राष्ट्रीय सस्कृति धार्मिक मर्यादा एवं दार्शनिक विचार धारा की त्रिवेणी का सगम होता है ऐसे ही ग्रन्थ राष्ट्र के अक्षय्य जीवन स्त्रोत होते है, गौरव होते है, प्राण होते है यहॉ तक कि सर्वस्व होते है। इन ग्रन्थो मे राष्ट्र की साहित्यिक सुधा के भी अनेक उत्स होते है जहॉ से साहित्यानुरागी रससिद्ध साहित्यकार अपनी सवेदना के अनुरूप कथानक का आहरण करके अपनी प्रतिभा के बल पर नियतिकृत नियमरहिता, वैदिकमयी, अनन्य परतन्त्रा एव नवरसरूचिरा साहित्यसर्जना करते है जिससे देश की साहित्यिक सम्पदा मे स्पृहणीय वृद्धि होती है और धर्म के गौरव का विकास होता है। ऐसे ही ग्रन्थो मे आर्षकाव्य रामायण एव महाभारत है। चूँकि इन ग्रन्थ रत्नो से अनेक साहित्यकारो की साहित्य सम्पदा को आधार मिलता है, जीवन मिलता है इसलिए इन्हे उपजीव्य काव्य की सज्ञा से विभूषित किया गया तथा ऐसे ही ग्रन्थो को पाश्चात्य मनीषियो ने 'एपिक आफ ग्रोथ' कहा है।

महर्षि बाल्मीकि कृत 'रामायण' तथा 'महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास' कृत महाभारत दोनो ही ग्रन्थ आर्षकाव्य है।

वैदिक काल के पश्चात् जो साहित्य अवतरित हुआ उसे सामान्यत इतिहास, पुराण और काव्य के अन्तर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है। इसी दृष्टि को ध्यान मे रखते हुए रामायण एव महाभारत इन दो विशाल ग्रन्थो को भारतीय साहित्य परम्परा मे इतिहास की पदवी से विभूषित किया गया।[1] 'इतिहास' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा गया है –

"इति हेत्यव्यय पारम्पर्योपदेशाभिधायि।
तस्यासनम् आस अवस्थानमेतेष्विति इतिहासा पुरावृत्तानिः।।"

और भी– धर्मार्थकाम मोक्षणामुपदेश समन्वितम्।
पूर्ववृत्त कथायुक्तमिति हास प्रचक्षते।।

वेदार्थ को स्पष्ट करने के लिए वैदिक ऋषियो ने जो कुछ कथाओ का आश्रय लिया वे कालक्रम मे इतिहास, आख्यान और उपाख्यान के नाम से प्रसिद्ध हुए। जब दीर्घकालीन यज्ञो का वितान होता था तो इन इतिहासो के आख्यानो उपाख्यानों का पाठ किया जाता था।

---

1 इतिहासपुराणाम्या वेद समुपवृहयेत्। महाभारत

संस्कृत साहित्य मे महर्षि बाल्मीकि द्वारा प्रणीत 'रामायण' को आदिकाव्य की सज्ञा से विभूषित किया जाता है। इसके प्रणेता आचार्य बाल्मीकि को 'आदि कवि' भी कहा जाता है। बाल्मीकि के विषय मे ऐसा कहा जाता है कि ये महर्षि वरूण के दशम पुत्र थे।

"योगीन्द्रश्छन्दसां स्त्रष्टा रामायण महाकवि ।
वल्मीक जन्माजयति प्राच्य प्राचेतसो मुनि ।।"

युवावस्क्था मे वे तस्करो एव दस्युओ के समुदाय मे सम्मिलित थे। सहसा अपने पतन का ध्यान आते ही उनमे एक नवीन चेतना एव स्फूर्ति जागृत हुयी और सत्पुरूषो के ससर्ग मे वे सदाचार एव परिष्कृत जीवन व्यतीत करने लगे। दीर्घकाल तक सत्य का दर्शन करने के लिए उन्होने एक ही स्थान पर बैठकर तपश्चर्या की थी। जब वे ध्यानमग्न होने पर समाधि से उठे तो उन्होने अपने को चारो ओर से दीमक की एक विशाल बाम्बी से आवृत देखा। उसे तोडकर उन्हे बाहर आना पडा। इस प्रकार वल्मीक से समुद्भूत होने के कारण उन्हे बाल्मीकि कहा जाता है।

एक बार नारद मुनि से उनकी भेट हुई। नारदमुनि ने बाल्मीकि के यह पूछने पर कि ससार का पुरूष श्रेष्ठ कौन है बताया कि वह पुरूषोत्तम राम है और उन्होने उनके जीवन का एक सक्षेप बाल्मीकि को प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ के प्रणयन के विषय मे जनश्रुति है कि एक दिन प्रात काल वह जब नित्यकर्म से निवृत्त होने के लिए तमसा नदी पर जा रहे थे तो इन्होने देखा कि एक व्याध ने अपने बाण से क्रौञ्च युगल मे से एक को आहत कर दिया और उसकी सहचरी क्रौञ्ची आर्त्तनाद कर रही है। बाल्मीकि इस घटना से इतने अधिक विचलित हुए कि इन्होने व्याध को इन शब्दो में शाप दे डाला। जो अनुष्टुप् छन्द मे निबद्ध था–

"मा निषाद प्रतिष्ठाम् त्वमगमः शाश्वती समा ।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी काममोहितम् ।।" (रामायण – बालकाण्ड, 2, 15 )

इसके पश्चात् उन्होने तमसा मे स्नान किया और आपने आश्रम को वापस आये। चतुर्मुख ब्रह्मा ने प्रकट होकर बाल्मीकि को आदेश दिया कि वे राम के जीवन से सम्बद्ध काव्य की रचना करे और उन्होने बाल्मीकि को वह शक्ति व तेज प्रदान किया जिसके द्वारा ये राम के जीवन से साक्षात्कार कर सके।

अन्तत उन्होने एक प्रबन्ध काव्य की रचना की जिसको उन्होने काव्य कहा, जिसका नाम 'रामायण' है।[1]

रामायण सात काण्डो– यथा बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड मे विभक्त है। यह पाच सौ सर्गों, 24 हजार श्लोको तथा सौ उपाख्यानो से युक्त है। जो मुख्य रूप से अनुष्टुप् छन्द मे ही निबद्ध है। इस आदि काव्य को "चतुर्विशति साहस्त्री सहिता" भी कहते है।

अत सार यही है कि जब तक कवि अपनी आन्तरिक भावनाओ को शब्दो द्वारा व्यक्त नही कर पाता और पाठक या श्रोता को उन्ही भावनाओ से सयुक्त नही करता तब तक वह वास्तव मे 'कवि' कहा ही नही जा सकता। बाल्मीकि प्रथम कवि थे जिनकी कृति मे यह विशेषता दिखाई दी। इसी कारण इन्हे 'आदि कवि' और इनके ग्रन्थ रामायण को आदि काव्य की सज्ञा प्रदान की गयी। भारतीय सस्कृति का जितना सुन्दर, समुज्ज्वल, एव स्वाभाविक रूप इस महाकाव्य मे चित्रित किया गया, उतना किसी अनन्य देश के महाकाव्य मे अङ्कित नही किया गया। मनुष्य के चूडान्त आदर्श की स्थापना के लिए बाल्मीकि ने इस महाकाव्य की रचना की और इसे आर्षरामायण या आदि काव्य की पदवी से मण्डित किया।

लौकिक साहित्य मे बाल्मीकि रामायण के पश्चात् महर्षि व्यास रचित 'महाभारत' का नाम लिया जाता है। यदि रामायण को सस्कृत साहित्य का आदि काव्य कहा जा सकता है तो महाभारत को 'इतिहास' ग्रन्थ की सज्ञा से विभूषित किया जाता है।

'महाभारत' महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास द्वारा रचित माना जाता है। ये कृष्ण वर्ण के थे और द्वीप मे इनका जन्म हुआ था इसलिए इनका यह नाम पडा।

यह ब्राह्मण पराशर और शूद्रा मत्स्यगन्धा के पुत्र थे वह बहुत बडे विद्वान और धर्मवेत्ता हुए, उन्होने युग धर्म से प्रेरित होकर वेद और ब्राह्मणो की रक्षा के लिए वेद का विस्तार किया। अर्थात् एक वेद को चार भागो मे विस्तृत किया, इसलिए वे वेदव्यास के नाम से प्रसिद्ध हुए।

---

1 तच्चाप्यविदित सर्वविदित ते भविष्यति।
न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति।।

इन्हे सक्षेप मे व्यास नाम से भी अभिहित किया जाता है। इन्होने चारो वेदो और पञ्चम वेद महाभारत को सुमन्तु, जैमिनि, पैल, शुकदेव और वैशम्पायन को पढाया था। जिन्होने महाभारत की अपनी–अपनी सहिताए प्रकाशित की।[1]

इससे स्पष्ट है कि 'वेदव्यास' जो कि कौरवो और पाण्डवो के वास्तविक पितामह थे, जिन्होने महाभारत के प्रचण्ड युद्ध और उसके परिणाम का स्वय साक्षात्कार किया था और उस कथा का वर्णन उन्होने अन्य व्यक्तियो के अतिरिक्त वैशम्पायन से किया था। प्रस्तुत महाभारत वैशम्पायन की सहिता है जो व्यास के मुख से वैशम्पायन द्वारा सुनी गयी थी।

महाभारत का पहला नाम 'जय' था। जैसा कि सभी को स्पष्ट है, किन्तु महाभारत के आभ्यन्तर उदाहरणो से ऐसा प्रतीत होता है कि 'जय आख्यान' भारत के नाम से प्रसिद्ध था। महाकवि ने 'भारत' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है कि यह काव्य 'भारत' के नाम से इसलिए विख्यात है कि इसमे भरतो का महान् चरित्र निबद्ध है।

"निरूक्तमस्ययोवेद सर्वपापै प्रमुच्यते।
भरताना यतश्चायमितिहासो महाद्भुत ।।" आदिपर्व –

एक अन्य स्थल पर महाभारत का अर्थ कौरवो का महानचरित बताया गया है। महान् वैयाकरण पाणिनि ने 'भरत' शब्द के साथ 'अण्' प्रत्यय का प्रयोग करके 'भारत' शब्द से उस सग्राम का वाचन किया है जिसके योद्धा भरत थे। इससे स्पष्ट है कि पुल्लिङ्ग मे प्रयुक्त भारत शब्द (भारत) भरतों के चरित्र के अर्थ मे न होकर सग्राम के अर्थ मे होता था, और नपुंसकलिङ्ग मे प्रयुक्त 'भारतम्' शब्द का अर्थ "जिसमे भरतो के सग्राम का वर्णन हो"।

इस प्रकार कालक्रम मे भारत महाभारत हो गया, जिसका तात्पर्य – वह महान् काव्य जिसमे भरतो के युद्ध का वर्णन किया गया है।

"महत्त्वाद् भारत्वाच्च महाभारतमुच्यते।" आदिपर्व – 1/300

---

1 वेदानध्यापयामास महाभारत पचमान्।
सुमन्तु जैमिनि पैल शुक चैव स्वमात्मजम्।
प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च
सहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिता ।। आदिपर्व–

महाभारत के अन्तसाक्ष्य से स्पष्ट है, कि महामुनि व्यास ने कौरवो और पाण्डवो के विनाश के पश्चात् महाभारत का प्रकाशन किया था। उनके शिष्य वैशम्पायन ने जनमेजय के नागयज्ञ के अवसर पर इस आख्यान का वाचन किया, जिसे सुनकर नैमिषारण्य मे शौनक के आग्रह पर सूतपुत्र ने महाभारत का पाठ उस यज्ञसत्र में किया था जो बारह वर्षों तक चलता रहा। इससे यह प्रतीत होता है कि महाभारत व्यास, वैशम्पायन और सूतपुत्र के द्वारा विभिन्न अवसरो पर उदीरित होने के कारण कलेवर वृद्धि करता गया, और अन्त मे उसमे एक लाख श्लोक हो गये।

"इद शत सहस्त्र हि श्लोकाना पुण्यकर्मणाम्"।

यह निर्विवाद रूप से नही कहा जा सकता कि व्यास द्वारा उदीरित मूल जयग्रन्थ मे कितने श्लोक थे। इसका सङ्केत हमे महाभारत मे मिलता है कि इसमे 8800 श्लोक रहे होगे।[1] वैशम्पायन ने जनमेजय के नागयज्ञ मे जिस भरत युद्ध का वर्णन किया था उसमे केवल चौबीस हजार श्लोक थे और वह उपाख्यानो से रहित था। वह व्यास द्वारा रचित 'भारतसहिता' के नाम से विख्यात है।

"चतुर्विंशति साहस्त्री चक्रे भारतसहिताम्"।
उपाख्यानैर्विना तावद् भारत प्रोच्यते बुधै"।। महाभारत

इस भारत सहिता मे जब उपाख्यानो का संयोग कर दिया गया तो यह भारत आख्यान एक लाख श्लोको का हो गया। सौति का यह वचन – "एक शतसहस्त्र तु मयोक्त वै निबोधत"। इस प्रकार भारत सहिता का कलेवर परिवर्द्धित एव परिशोधित होकर महाभारत के रूप मे सामने आया।

**<u>रामायण एवं महाभारत का रचनाकाल</u>** – भारतीय विचारधारा के क्रमानुसार मर्यादा पुरूषोत्तम राम त्रेतायुग मे थे, और आदि कवि महर्षि बाल्मीकि उनके समकालीन थे जिन्होने चतुर्मुखी ब्रह्मा से आदेश पाकर आर्षकाव्य रामायण की रचना की थी। अत रामायण का रचनाकाल त्रेतायुग है। त्रेतायुग ईसा से 8 लाख 67 हजार एक सौ वर्ष ईसा पूर्व समाप्त हुआ था।

---

1 "अष्टौ श्लोक सहस्त्राणि अष्टौ श्लोक शतानि च।"
अह वेद्मि शुको वेत्ति सजयो वेत्ति वा न वा।। महाभारत

'जय' इस नाम से महाभारत की रचना व्यास ने पाण्डवो के जीवन काल मे कर दी थी, और कलियुग के समारम्भ मे तक्षक नाग द्वारा मारे गये अपने पिता परीक्षित का बदला लेने के लिए जनमेजय ने जब नाग यज्ञ किया था तो वैशम्पायन ने व्यासदेव द्वारा विरचित 'जयकाव्य' का भारतसहिता के रूप मे पाठ किया था। कलियुग का समारम्भ तीन हजार एक सौ वर्ष ईसा पूर्व हुआ था। इसलिए यह कहा जा सकता है, कि मूल महाभारत की रचना इसी समय हुई, परन्तु आधुनिक विद्वान इन काल गणनाओ को स्वीकार नही करते, और उनके मत के अनुसार– महाभारत की घटना रामायण की घटना से प्राचीनतर है। जो ईसा पूर्व ग्यारहवी या तेरहवीं शता0 के आस पास घटी थी। महाभारत का वर्तमान स्वरूप उनके मत से ईसापूर्व चौथी शता0 से चौथी ई0 तक की अवधि मे पूरा हुआ। यह सम्भव है कि मूल रामायण की रचना प्रचीन आख्यानो के आधार पर ईसा पूर्व तीसरी शता0 मे बाल्मीकि ने की हो। इस प्रसग मे इतना कहना पर्याप्त होगा कि काव्यशास्त्रियो की दृष्टि मे बाल्मीकि व्यास से पहले हुए और रामायण की रचना महाभारत से पहले हुई।

यह भारतीय दृष्टिकोण अधिक मान्य और उचित प्रतीत होता है। वैसे भी जहॉ तक प्रस्तुत प्रबन्ध का सम्बन्ध है इन आर्ष महाकाव्यों का काल निर्धारण महत्त्वपूर्ण बिन्दु नही है। इस सम्बन्ध में यहॉ मात्र इतना ही महत्त्वपूर्ण है कि महाकवि कालिदास के उपजीव्यभूत उनके पूर्ववर्ती ये दोनो आर्ष ग्रन्थ सस्कृत काव्यधारा के प्रारम्भिक सोपानो का परिचय कराते है। इनकी काव्यकला में मुख्यतया ऐतिह्य तत्त्व प्रधान था, काव्य का कलागत शैलीगत अङ्ग अपेक्षाकृत गौण था साथ ही इनकी रूझान उपदेशात्मक अधिक थी, कान्तासम्मित उपदेश की मनोग्राहिता उतनी प्रबल और स्फुट नही थी जितनी कालिदासीय युग मे और परवर्ती काव्यो मे चलकर हुई।

**महर्षि बाल्मीकि की करूणा से उदभूत आदिकाव्य रामायण एवं महाभारत की विषयवस्तु :–** आदिकाव्य होने पर भी बाल्मीकि रामायण की वर्ण्य सामग्री अत्यन्त विलक्षण तथा स्पृहणीय है। इस ग्रन्थ में मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम के सम्पूर्ण जीवनवृत्त को अति समृद्ध एवं सूक्ष्म विस्तार के साथ प्रस्तुत किया गया है।

काव्य का उत्स अपौरूषेय वेदो मे ही निहित है। वेद अपौरूषेय, स्वत· प्रमाण एव स्वत पूर्ण ज्ञान के पवित्रतम अक्षय्य भाण्डार है। काव्य वस्तुत शब्दार्थ का रसात्मक सयोजन होता है। शब्द उसका अर्थ और शब्द एव अर्थ के मध्य विद्यमान सम्बन्ध परम्परानुसार नित्य एव स्थायी माना गया है। इसलिए वैदिक शब्द राशि नित्य है, और स्वय मे प्रमाण है।

वैदिक मत्र एव ब्राह्मण भाग मिलकर वेदो का प्रणयन करते है। पवित्र मत्रो के समूह को 'सहिता' का नाम दिया गया है। वैदिक मत्र को प्राचीन ऋषियो ने साक्षात् देखा था, अतएव ऋषिगण मन्त्रो के द्रष्टा कहे गये है, कर्त्ता नही।[1] मत्र प्रायेण छन्दोबद्ध होते है। ये युगो–2 के ऋषियो के मनन् चितन से उत्पन्न हुए, इसीलिए वैदिक परम्परा मंत्रो के बारे मे 'मत्रों मननात्' मानती आयी है।

लौकिक साहित्य मे काव्य की उत्पत्ति– लौकिककाव्य का उदय आदि कवि बाल्मीकि की वाणी से प्रस्फुटित हुआ है। मिथुनरत अत्यन्त ऐकान्तिक और सुखदायी मिलन के क्षणो मे व्यापृत क्रौञ्चपक्षी युगल मे से बहेलिये द्वारा एक की हत्या कर दिये जाने के फलस्वरूप ऋषि की करूणा विगलित होकर आदिकवि के हठात् मुखारविन्द से फूट पडी थी।

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगम· शाश्वती समा·।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधी· काममोहितम्।। राoबाल– 2–15

स्पष्ट है कि कविता को मूल में मानव की अपार करूणा विद्यमान रही जो सवेगो के झकझोरे जाने पर शब्दार्थ बनकर निःसृत हुई। यह रहस्य एव आश्चर्य की बात है कि ऋषि की करूणा से उत्पन्न यह प्रथम काव्य अन्ततोगत्वा आनन्द लोक में ही स्थित रहता है। क्योंकि समग्र भारतीय दर्शन चिन्तन का पर्यवसान आनन्दानुभूति मे ही बताया जाता है। गीता मे इसे आत्मरति कहा गया है। अर्थात् जब मनुष्य अपनी ही आत्मा के अनुराग में डूब जाये। इस प्रकार करूण रस प्रधान उक्त काव्य मे रति को

---

1 ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः न तु कर्तार· । वेद–

स्थान मिला। यह रति जिस प्रकार श्रृङ्गार रस का स्थायी भाव है, किन्तु यदि व्यापक दृष्टि से देखा जाय तो यह काव्य एक अनिवार्य घटक है। क्योकि बिना रति के न तो कोई काव्य हो, ओर न ही शब्दार्थ रूप साहित्य। इसीलिए साहित्य को जीवन नही अपितु जीवन का एक व्यापार माना गया है। इसी आधार पर साहित्य अथवा काव्य से उत्पन्न आनन्दातिरेक को ब्रह्मानन्द सहोदर माना गया है, ब्रह्मानन्द नही। ब्रह्मानन्द अथवा आत्मानन्द जीवन मे तो सम्भव है साहित्य जगत् मे सम्भव नही हो सकता, क्योकि साहित्य जीवन पर आरोपण है, जीवन नही।[1]

सहोदर का अर्थ ही है– एक कोख से जन्म लेना। अतएव ब्रह्म के समान ही काव्य जन्य आनन्द भी ब्रह्म के उद्भव मे ही निहित होगा।

भारतीय दर्शन मे ब्रह्म को अजन्मा, अमर शाश्वत् सत् चित् आनन्दस्वरूप माना गया है। इसी विचार सरणि को यदि हम आगे बढाये तो हम कह सकते है कि काव्य भी मानव की आत्मा मे आत्मिक गुणो की भॉति ही विद्यमान रहता है।

इसका उद्रेक शब्दार्थ की रसवती सयोजना मे कवि की प्रतिभा से सम्भव होता है, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से जैसे ऊपर कहा गया है लौकिक सस्कृत काव्य का जन्म बाल्मीकि की उपर्युक्त प्रथम कविता मे ही हुआ, और तभी से काव्य की महासरिता अद्यावधि अविच्छिन्न रूप से बहती आ रही है।

सस्कृत मे यह लोक काव्य का उदय था। इसके अनन्तर ही बाल्मीकि ने ऋषि वाणी मे राम कथा को अमर काव्य का रूप दिया। इसी रचना के बाद आध्यात्मिक भावधारा के साथ रामायण की जो कथावस्तु जनसाधारण मे फैली, उनमे से एक अध्यात्म रामायण और दूसरी योग वशिष्ठ रामायण के नाम से प्रचारित हुई, लेकिन मूलत रामकथा को अमरता प्रदान करने का श्रेय महर्षि बाल्मीकि को ही है, उस उद्गम से फूटकर ही यह रामकथा सहस्त्र धाराओ मे विस्तार पा सकी।

रामायण काव्य मे राम और सीता का चरित्र और उनसे सम्बद्ध रावणवध की कथा वर्ण्य विषय है।

---

1 सस्कृत को रघुवश की देन – डॉ0 शङ्करदत्त ओझा

रामायण संस्कृत वाड्मय मे प्रथम काव्य है और बाल्मीकि आदिकवि इन्होने इक्ष्वाकुवश की कीर्ति को रामायण के रूप मे मूर्त कर दिया। सूर्यवश की कीर्ति–कथा का गान करने वाले प्रथम कवि बाल्मीकि और उनके द्वारा निर्मित महाकाव्य रामायण है।[1]

इसलिए भारतीयता से युक्त इस ग्रन्थ को राष्ट्रीय महाकाव्य की गौरवपूर्ण उपाधि से अलङ्कृत किया गया है। यह महाकाव्य केवल शिक्षा 'ही नही प्रदान करता, अपितु आनन्द की भी अनुभूति भी कराता है। रामायण के काव्य रस रूपी अमृत का आस्वाद करके सहज ही परमानन्द को प्राप्त किया जा सकता है। जीवन को ओजस्वी तथा उदात्त बनाने के लिए रामायण मे जिन आदर्शो को बाल्मीकि ने अपनी अमर तूलिका से चित्रित किया वे भारतवर्ष के लिए ही मान्य नही है अपितु मानव के समक्ष उच्च नैतिक स्तर तथा सामाजिक उदात्तता की भावना को प्रस्तुत करते है।

रामकथा का अस्तित्व बहुत प्राचीन है। वेद, ब्राह्मण, आरण्यक आदि जितने भी भारतीय साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ है उन सभी मे सर्वत्र रामकथा की व्यापकता वर्तमान है। रामकथा के मूल उद्गम के सम्बन्ध मे विद्वान एक मत नही है। डा० बेवर का कहना है कि बौद्ध ग्रन्थ 'दशरथजातक' मे वर्णित रामकथा की प्रेरणा को ग्रहण कर आदिकवि ने अपने ढग से उसको रामायण मे विस्तार दिया –

डा० याकोबी ने रामायण के वर्ण्य विषय के दो भागो मे विभक्त किया (1) अयोध्या की घटनाए जिनके केन्द्र दशरथ है (2) दण्डकारण्य एव रावण सम्बन्धी घटनाए। इनकी दृष्टि में अयोध्या की घटनाए ऐतिहासिक है, जिनका आधार किसी निर्वासित इक्ष्वाकुवशीय राजकुमार से है, और दण्डकारण्य सम्बन्धी घटनाओ का उद्गम वेदो मे वर्णित देवताओ की कथाओ से हुआ है।

बहुत सम्भव है कि रामकथा की प्राचीनता को मौखिक रूप से सुरक्षित कर सूतवंश ने ही उसको बाल्मीकि तक पहुँचाया हो। यद्यपि रामायण मे वर्णित रामकथा की रचना का श्रेय पूरा–पूरा महर्षि बाल्मीकि को ही जाता है, इस सुदीर्घ परम्परा को श्रुतिजीवी रखने का बहुत बड़ा श्रेय सूतवश को ही था।

---

1 वाल्मीके कविसिहस्य कवितावनचारिण.।
श्रृण्वन् रामकथा नाद को न याति पर पदम्।। सस्कृत साहित्य का इतिहास– डा० राज किशोर सिह

राम सम्बन्धी गाथा साहित्य की उत्पत्ति इक्ष्वाकुवंश द्वारा हुई और सूतो द्वारा कविताओ एव गीतियो के रूप मे रचित होकर स्फुट काव्यो की सज्जा लेकर वह लोकविश्रुत हुई।

बाल्मीकि मुनि से भी पहले सूतो एव कुशीलवो द्वारा प्रवर्त्तित प्रचारित राम सम्बन्धी कथाओ का सकलन कर किसी दूसरे ही मुनि महर्षि ने रामायण काव्य की रचना की। उनका नाम सम्भवत भार्गव च्यवन था। इसका प्रमाण हमे महाभारत मे मिलता है। 'अश्वघोष' के बुद्धचरित महाकाव्य से हमे उक्त बात की सत्यता इस रूप मे मिलती है कि च्यवन महर्षि जिस रामकथा की रचना मे सफल न हो सका था उसको बाल्मीकि ने पूरा किया यही कारण है कि बाद मे च्यवन और बाल्मीकि को एक ही नाम दिया गया। किन्तु यदि च्यवन ऋषि ने सचमुच ही रामकथा को काव्य रूप दिया हो तो उस कथा को आदि रामायण कहा जा सकता है।

बाल्मीकि से पहले रामकथा मौखिक रूप मे वर्तमान थी। बाल्मीकि द्वारा रामायण काव्य की रचना हो जाने के पश्चात् उसको सर्वप्रथम कुश, लव ने गाकर सुनाया। रामायण के अन्तर्गत आई हुई राम की कथा भी बडी चिन्ताकर्षक तथा आश्चर्यजनक है। रामायण के मुख्यपात्रो की बडी ही सुन्दर कलापूर्ण मूर्तिया वैदिक साहित्य मे उपलब्ध है। तैत्तिरीय ब्राह्मण मे जनक विदेह का उल्लेख मिलता है। अश्वपति कैकेय के सम्बन्ध मे छान्दोग्योपनिषद प्रमाण है।

जनक के पाण्डित्यपूर्ण व्यक्तित्व का वर्णन हमे ब्राह्मण ग्रन्थो आरण्यको और उपनिषदो मे बहुलता से मिलता है।

इस प्रकार वेदो से लेकर ब्राह्मण ग्रन्थो और उपनिषद् ग्रन्थो मे रामायण के पात्रो की चर्चा समुचित रूप से मिलती है। रामायण मे केवल युद्ध एवं विजयो का ही

---

महाभारत, वनपर्व 173/6
शतपथ ब्राह्मण – 10/6/1/2
छान्दोग्य उपनिषद – 5/11/4
तैत्तिरीय ब्राह्मण – 3/10/9
रामायण बालकाण्ड – 47/11–20

वर्णन नही है, अपितु इसमें मानव जीवन तथा प्रकृति के भी अत्यन्त रमणीक चित्र अङ्कित किये गये है।

रामायण के प्रथम बालकाण्ड एव सप्तम उत्तरकाण्ड को बहुत से विद्वान बाल्मीकि मुनि द्वारा रचित नही मानते। उन लोगो का मत है, कि ये दोनो काण्ड तथा पौराणिक उपाख्यान जो बीच–बीच में आते है वे बाद मे कुशीलवों तथा अन्य कवियो द्वारा जनता की अभिरूचि के अनुसार जोडे गये है। रामायण के बालकाण्ड मे अनेक ऐसी कथाए आई हैं जो ब्राह्मण धर्म से सम्बन्ध रखती है तथा जिनका उल्लेख रामायण एव महाभारत में मिलता है। इनमें से ऋषि श्रृङ्ग, वशिष्ठ, विश्वामित्र, शुनःशेप, सगरपुत्र आदि के आख्यान हैं। जो मुख्य कथा के साथ सम्बद्ध है। बाल्मीकि ने राम को एक आदर्श महापुरूष के रूप में चित्रित किया है किन्तु बालकाण्ड में और उत्तरकाण्ड मे कुछ ऐसे श्लोक मिलते है जिनमे राम को अवतार के रूप में पूजा गया है। साथ ही साथ इन दोनो की कथा मे उतना प्रवाह नही मिलता जितना अन्य काण्डो मे विद्यमान है। इस प्रकार विटरनिब्ज आदि विद्वान् प्रथम तथा सप्तम काण्ड को प्रक्षिप्त ही मानते है।

बौद्धकवि अश्वघोष (प्रथम शता० ई०) रामकथा तथा वाल्मीकीय रामायण से भी सुपरिचित थे। उन्होने अपने महाकाव्य 'बुद्धचरित' मे रामायण की घटनाओ तथा विशेषत सुन्दरकाण्ड से सम्बन्धित प्रसंगो का उल्लेख किया है।

इस प्रकार बाल्मीकिकृत रामायण के कलेवर का मूलरूप क्या था? उसमे कितने श्लोक थे? इस विषय में कहना असम्भव है। वर्तमान समय में इसका जो उपलब्ध स्वरूप है वह मूल रूप न होकर परिवर्द्धित रूप है। इस विषय मे बालकाण्ड के चतुर्थसर्ग मे एक श्लोक प्राप्त होता है। जिसके आधार पर रामायण के आकार का अनुमान लगाया जा सकता है। अत निम्न श्लोक के अनुसार– 24 हजार श्लोक 500 सर्ग तथा 6 काण्ड है।[1]

---

1 चतुर्विंशत्सहस्त्राणि श्लोकानामुक्त वानृषि।
तथा सर्गशतान् पञ्च षट् काण्डानि तथोत्तरम्।।          बालकाण्ड चतुर्थ सर्ग –

परन्तु यदि बालकाण्ड के इस निम्न श्लोक को प्रामाणिक मान लिया जाय तो प्रक्षिप्त अश 645 है। इसका तात्पर्य यही है कि हम न तो मूल रामायण के वास्तविक परिमाण के बारे मे जानते है और न ही प्रामाणिक स्वरूप के विषय मे। इस प्रकार काण्डो के विषय मे भी विद्वानो के तीन वर्ग प्राप्त होते ।

(1) प्रथम वर्ग– पूर्ण रूप से बालकाण्ड एव उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त मानता है।

(2) द्वितीय वर्ग– उपरोक्त काण्डो को आंशिक रूप से प्रक्षिप्त मानता है।

(3) तृतीय वर्ग– यह वर्ग पूर्ण रूप से उन्हे बाल्मीकि प्रणीत मानता है।

उत्तरकाण्ड के प्रक्षिप्त होने का यह प्रबल प्रमाण है, कि युद्धकाण्ड की समाप्ति के बाद ही ग्रन्थ समाप्ति की सूचना सी मिलती है, क्योकि इसके अन्त मे ग्रन्थ माहात्म्य बताया गया है। इसका तात्पर्य यह नही है कि– अयोध्याकाण्ड से युद्धकाण्ड तक प्रक्षिप्त अश है ही नही। इन काण्डो मे भी कई प्रक्षेप है जिनकी सृष्टि सूतो एव कुशीलवो द्वारा हुई, जिसके द्वारा इन कुशीलवो को अपने वाग्विस्तार का अच्छा अवसर प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार मूल रामायण की कथा सीता परित्याग के साथ ही समाप्त हो जाती है और यह ग्रन्थ आदि से अन्त तक करूण रसात्मक ही बना रहता है। बाल्मीकि का काव्य मानव जीवन के स्थायी मूल्यवान तत्त्वो को लेकर निर्मित किया गया। इस सम्बन्ध मे ध्वन्यालोक का निम्न वाक्य प्रमाण स्वरूप है।[1]

इसीलिए सस्कृत की आलोचना परम्परा मे 'रामायण सिद्धरस' प्रबन्ध कहा जाता है। विषयवस्तु की विवेचना के अवसर पर 'आनन्दवर्धन' का यह प्रख्यात श्लोक है–

"सन्ति सिद्धरसप्रख्या ये च रामायणादय ।
कथाश्रया न तैर्योज्या स्वेच्छा रसविरोधिनी।।" ध्वन्यालोक

तात्पर्य यह है कि जिसमे रस की भावना नही करनी पडती प्रत्युत रस आस्वाद के रूप मे ही परिणत हो गया रहता है वह काव्य सिद्धरस कहलाता है और वह है– रामायण।

---

1 रामायणे हि करूणो रस स्वयमादि कविना सूत्रित "शोक श्लोकत्वमागत" इत्येववादिना। निर्व्यूढश्च स एव सीतात्यन्त वियोग पर्यन्तमेव स्व प्रबन्धमुपश्चयता।
ध्वन्यालोक – चतुर्थ उद्योत

**महाभारत** – महर्षि कृष्णद्वैपायनव्यास कृत 'महाभारत' प्राचीन आर्षग्रन्थ है। आदरणीय वीरो की कहानी होने के कारण महाभारत को 'इतिहास' की सज्ञा प्रदान की गयी है। किन्तु इसके रचयिता महर्षि व्यास ने इस ग्रन्थ के लिए 'काव्य' शब्द का प्रयोग किया है। काव्य होने के साथ ही साथ महाभारत भारतीय सस्कृति का एक धर्म ग्रन्थ भी है। इसके द्वारा तत्कालीन सामाजिक एव राजनीतिक विचारो का पता चलता है। यह ग्रन्थ नीति धर्म, तथा आचार की दृष्टि से भारतीय आत्मा का दर्पण है। इसमे मानव के पुरूषार्थ चतुष्टय का सम्यक् निरूपण हुआ है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष के विषय मे जो महाभारत मे उपलब्ध होता है, वही अन्यत्र भी प्राप्त हो सकता है और जो यहॉ नही है वह अन्यत्र भी नही है।[1]

स्वय 'व्यास' के शब्दों मे महाभारत, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, कामशास्त्र आदि सब कुछ है।[2] 'व्यास' जी का कहना है कि कौरव–पाण्डवो के युद्ध का वर्णन ही इस महाभारत का लक्ष्य नही है, अपितु इस भौतिक जीवन की नि.सारता दिखलाकर प्राणियो को मोक्ष के लिए उत्सुक बनाना है।

महाभारत के अनुसार–भारतीय धर्म रागमूलक होता है। राजा के भय से ही प्रजा एक दूसरे का भक्षण नही करती। यदि राजा राज्य का पालन न करे तो धर्म का लोप हो जाय तथा वेदत्रयी का अस्तित्व रसातल मे चला जाय। इस प्रकार राजनीति के विशेषज्ञो के लिए भी महाभारत एक उपादेय ग्रन्थ है। इन्ही सब कारणो से 'ध्वन्यालोककार' 'आनन्दवर्धन' ने 'महाभारत' को 'शास्त्र काव्य' की सज्ञा प्रदान की है तथा शान्त रस को उन्होने इसका अङ्गीरस स्वीकार किया है। महाभारत का ही एक अङ्ग भगवद्गीता है। महाभारत मे काव्याश के अतिरिक्त धर्मशास्त्र, दानधर्म, मोक्षधर्म आदि विषयो के अतिरिक्त कर्म, भक्ति एव ज्ञान के ऊपर विशद विवेचन किया गया है।[3]

---

1 धर्मे ह्यर्थे च कामे मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।। महाभारत–

2 अर्थशास्त्रमिद प्रोक्त धर्मशास्त्रमिद महत्।
काव्यशास्त्रमिद प्रोक्त व्यासेनाभितु बुद्धिना।। महाभारत – आदिपर्व 2/83/

3 महाभारतेऽपि शास्त्र काव्यरूपच्छायान्वयिनि वृष्णिपाण्डव विरसावसान वैमनस्य
शरीरस्ये वाङ्गभूतस्य रसस्य च स्वप्राधान्येन चारूत्वमप्यविरूद्धम्।
अत्रोच्यते–सत्यम्, शान्तस्यैव रसस्याङ्गित्व महाभारते, मोक्षस्य च सर्व पुरूषार्थेभ्य
प्राधान्यमित्येतन्न स्वशब्दाभिधेयत्वेनानुक्रमव्या दर्शितम्। ध्वन्यालोक – चतुर्थ उद्योत

महाभारत की विषयवस्तु का प्रमुख पक्ष वीर भावना है। महाभारत मे कौरव–पाण्डव का युद्ध वीर भावना का ही द्योतक है। महाभारत के मूल कथानक का चरमोत्कर्ष एकाङ्गी काव्यभावना मे परिणत न होकर पौराणिक एव इतिवृत्तात्मक विषयो के प्रतिपादन मे है। इन ऐतिहासिक और पौराणिक वृत्तान्तो के प्रभाव मे उसका काव्यपक्ष पराभूत सा हो जाता है।

महाभारत मे अट्ठारह खण्ड या पर्व है। इन पर्वों मे अनेक अध्याय विद्यमान है। इन्ही अध्यायो में अनेक श्लोक निबद्ध है। इस प्रकार रामायण मे जहॉ सर्ग, काण्ड व श्लोक ये वही महाभारत में पर्व, अध्याय एव श्लोक है। इस प्रकार महाभारत मे जो 18 पर्व है वे अधोलिखित है–

(1) आदि पर्व (2) सभा पर्व (3) वन पर्व (4) विराट पर्व (5) उद्योग पर्व (6) भीष्म पर्व (7) द्रोण पर्व (8) कर्ण पर्व (9) शल्यपर्व (10) सौप्तिक पर्व (11) स्त्री पर्व (12) शान्ति पर्व (13) अनुशासन पर्व (14) अश्वमेघ पर्व (15) आश्रमवासी पर्व (16) मौसल पर्व (17) महाप्रस्थानिक पर्व (18) स्वर्गारोहण पर्व।

महाभारत के इन पर्वो मे निहित विषयवस्तु कुछ इस प्रकार है।

आदिपर्व में चन्द्रवश से सम्बन्धित आख्यान तथा कौरवो और पाण्डवो की उत्पत्ति का वर्णन है। सभापर्व मे द्यूतक्रीडा का मार्मिक प्रसङ्ग उपस्थित है। वन पर्व मे पाण्डवो के वनवास गमन एवं वहॉ पर घटी हुई अनेक घटनाओ का वर्णन है। विराट पर्व मे पाण्डवों के अज्ञातवास का निरूपण है। उद्योग पर्व मे श्रीकृष्ण दूत का वेश धारण कर कौरवों की सभा में आते है तथा शान्ति का उद्योग करते है। भीष्म पर्व मे सुप्रसिद्ध गीता उपदेश अर्जुन को प्रदान किया गया है। युद्ध प्रारम्भ होता है, भीष्म का युद्ध और भीष्म का शरशय्या में पड़ना। द्रोण पर्व मे अभिमन्यु की निर्मम हत्या एव द्रोणाचार्य के पतन का वर्णन है। कर्ण पर्व में कर्ण के सेनापतित्व, कौरवपाण्डवो के भीष्म युद्ध एव कर्ण के मारे जाने का वर्णन। सौप्तिक पर्व में सेनापति बनाये गये अश्वत्थामा द्वारा रात्रि मे सोये हुए पाण्डवों के पांचों पुत्रों की हत्या का मार्मिक प्रसङ्ग उपस्थित है। स्त्री पर्व मे युद्ध मे मारे गये एवं आहत पुरुषो की स्त्रियों के करूण विलाप का मार्मिक वर्णन है।

शान्तिपर्व मे भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को मोक्ष धर्म के उपदेश का वर्णन किया गया है।[1] अनुशासन पर्व मे धर्म तथा नीति की कथाएं विद्यमान है। अश्वमेघ पर्व मे युधिष्ठिर द्वारा अश्वमेघ यज्ञ किये जाने का वर्णन है। आश्रमवासी पर्व में धृतराष्ट्र गान्धारी आदि के द्वारा वानप्रस्थाश्रम मे प्रवेश वर्णन है। मौसल पर्व में यादवो का मूसल द्वारा विनाश का उल्लेख है। महाप्रस्थानिक पर्व मे पाण्डवो की हिमालय यात्रा का वर्णन है। स्वर्गारोहण पर्व मे पाण्डवो का स्वर्ग मे जाना वर्णित है। इस प्रकार आदि पर्व से स्वर्गारोहण पर्व तक कौरव–पाण्डवो के शैशव से लेकर अन्त मे परीक्षित पर प्रजापालन का भार डालकर पाण्डवो के स्वर्गारोहण तक का वर्णन है।

इसके अतिरिक्त महाभारत मे अनेक शिक्षाप्रद एव रोचक उपाख्यान भी है, जिनमे शकुन्तलोपाख्यान जो कि महाभारत के आदि पर्व मे विद्यमान है। मत्स्योपाख्यान जो महाभारत के वन पर्व मे है। जिसमे प्रलयकाल मे मत्स्य के द्वारा मनु के बचाये जाने का वर्णन है। रामोपाख्यान भी वनपर्व मे ही है। शिवि उपाख्यान का वर्णन भी वनपर्व मे मिलता है। राजा शिवि ने अपने प्राण न्योछावर कर शरणागत कपोत की रक्षा बाज से की थी। 'सावित्री उपाख्यान' जिसमें महाराज द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान तथा सावित्री के पातिव्रत्य धर्म की पराकाष्ठा का वर्णन इसी महाभारत के वनपर्व मे विद्यमान है। इसके अतिरक्ति 'नलोपाख्यान' जिसमे नल और दमयन्ती की प्रणयकथा का सजीव चित्रण है इसी वन पर्व मे उपस्थित है।[2]

इसके अतिरिक्त हरिवश पर्व भी महाभारत का एक अंश समझा जाता है। जिसमे यादवो की कथा का विस्तृत वर्णन विद्यमान है। इस पर्व के भी तीन खण्ड है–

(1) हरिवंश पर्व (2) विष्णु पर्व (3) भविष्य पर्व

हरिवंश पर्व मे कृष्ण के वंश वृष्णि–अन्धक की कथा विस्तार से दी गयी है। विष्णु पर्व में श्रीकृष्ण की विविध लीलाओ विशेषतः बाल लीलाओ का साङ्गोपाङ्ग विवरण है। भविष्य पर्व मे विविध वृत्तो का पौराणिक शैली मे परस्पर असम्बद्ध सकलन है। तात्त्पर्य यह है कि भविष्य पर्व मे कलियुग के प्रभाव का विस्तृत वर्णन है।

---

1 महाभारत का काव्य विमर्श – डॉ0 मृदुला त्रिपाठी
2 महाभारत वनपर्व – अध्याय – 274–291

इस प्रकार महाभारत ऐतिहासिक उपाख्यानो, कथाओ एव ख्यातियो से परिपूर्ण है। इसमे उपदेशात्मक कथाओ की अधाधुंध भरमार है जो राजनीति के दावपेच की कथाओ द्वारा सरल ढग से समझाए गये है।

महाभारत की विषयवस्तु का सम्यक् परिशीलन करने से यह विदित होता है कि उसमे कौरव पाण्डव युद्ध के अतिरिक्त बहुत सी महत्त्वपूर्ण बातो का समावेश है। यह एक विश्वकोश है, एक सग्रह ग्रन्थ है। इसी दृष्टि से इसको प्रत्येक पर्व की पुष्पिका मे 'सहिता' कहकर बार–बार स्मरण किया गया है। महाभारत की असामान्य विशेषताओ और अपने गुण बाहुल्य के कारण महाभारत को 'पञ्चमवेद' के रूप मे याद किया गया। महासागर स्वरूप इस महाभारत के गर्भ से ही गीता, विष्णुसहस्त्रनाम, अनुगीता, भीष्मस्तवराज और गजेन्द्रमोक्ष नामक पञ्चरत्नो की सृष्टि हुई।

महाभारत मे आध्यात्मिक, राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक सभी विषयो के बीज बिखरे है। महाभारत की विषयवृद्धि का यही कारण है कि उसमे साधारण, सूतों, विद्वानो, पुरोहितो और वीतराग साधुसन्तों की विचित्र वाणियो का सग्रह होता गया। इसी कारण इसका नाम 'शतसाहस्त्री सहिता' पडा। गुप्त काल के 197 सवत् के एक शिलालेख मे महाभारत के उक्त नाम का उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार महाभारत की विषय विविधता स्वतः ही स्पष्ट हो जाती है। विद्वद्जनो का यह कथन उचित ही है– "महाभारत का रचयिता अपने युग की समग्र साहित्यिक एव सास्कृतिक निधि को अपनी कला के माध्यम से एक सूत्र मे उपनिषद् करने मे सफल हुआ।"

यह महाभारत जिसे व्यास ने तीन वर्षो के अथक परिश्रम के बाद रचा था वही यह महाभारत भावी कवियो के लिए उसी प्रकार आश्रय है जिस प्रकार प्राणियो के लिए मेघ।[1]

"सर्वेषाम् कवि मुख्यानामुपजीव्यो भविष्यति।
पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रुम ।।"

---

त्रिभिर्वर्षै सदोत्थाय कृष्णद्वैपायनो मुनि ।
महाभारतमाख्यान कृतवानिदमुत्तमम्।। महाभारत आदिपर्व – 56 32

रामायण एव महाभारत की विषयवस्तु का सम्यक् रूप से अनुशीलन करने पर यह विदित होता है कि रामायण महाकाव्य है तथा महाभारत इतिहास है। रामायण मे कथावस्तु की अपेक्षा काव्य चमत्कार अधिक मात्रा मे विद्यमान है और उसमे एक ही राम का चरित्र तथा राम–रावण के युद्ध की घटना ही सब प्रकार से प्रमुख है, किन्तु महाभारत मे कुछ अशो को छोडकर काव्यत्व नही के बराबर है इसकी प्रधानकथा मे युद्धो के वर्णन के साथ–साथ तत्कालीन राजाओ के इतिवृत्तो का वर्णन विशेष रूप से मिलता है।

रामायण और महाभारत की विषयवस्तु का प्रमुख पक्ष वीरभवना है। रामायण मे राम–रावण युद्ध और महाभारत मे कौरव पाण्डव का युद्ध उस वीरभावना का द्योतक है। दोनो ग्रन्थो का एक ही उद्देश्य होने के बावजूद दोनो को एक ही कोटि मे नही रखा जा सकता। रामायण की प्रमुख कथा के साथ अनेक उपकथाए जुडी है। जबकि महाभारत का मूल कथानक एकाकी काव्यभावना मे परिणत न होकर पौराणिक एव इतिवृत्तात्मक विषयों से परिपूर्ण है।

रामायण और महाभारत की रचना अलग–अलग युगो मे तो हुई है फिर भी इसके रचना का एक निश्चित समय अभी तक निर्णीत नही हो सका। डा0 वेबर का कहना है कि रामायण मे सुन्दर लालित्य एव सुबोध रचना मिलती है जो कि उसे महाभारत की अपेक्षा अर्वाचीन सिद्ध करती है जबकि भारतीय परम्परा इसके विरूद्ध है क्योकि बाल्मीकि आदि कवि माने जाते है जबकि व्यास उसके पश्चात् हुए है तात्पर्य यह है कि बाल्मीकि त्रेतायुग के तथा व्यास द्वापर युग के है। बाल्मीकि ने रामचरित वर्णित किया व्यास ने कृष्ण चरित अतः युग की दृष्टि से भी रामायण महाभारत से प्राचीन सिद्ध होती है।

रामायण के कथानक से महाभारत का कथानक अत्यधिक प्रभावित है। महाभारत के रामोपाख्यान मे बाल्मीकि रामायण के श्लोक और भाव ज्यों के त्यो है। कहने का तात्त्पर्य यह है कि महाभारत का रामोपाख्यान रामायण का सक्षिप्तीकरण है। इसके अतिरिक्त रामायण में वर्णित श्रृङ्गवेरपुर इत्यादि स्थल को महाभारत मे तीर्थों जैसा सम्मान प्राप्त है।

रामायण और महाभारत दोनो का भौगोलिक विस्तार भी सिद्ध है। रामायण मे भारत की दक्षिणी सीमा विन्ध्य और दण्डक वन तक थी पूर्व सीमा का विस्तार विदेह राज्य तक था, पश्चिमी सीमा सौराष्ट्र परन्तु महाभारत के समय आर्यावर्त का विशेष विस्तार हो गया था। इसकी पूर्वी सीमा गगासागर सगम तक हो गयी थी। दक्षिणी सीमा चोल मालावार प्रान्त तक थी। इस प्रकार भौगोलिक दृष्टि से भी महाभारत का रामायण के पश्चात् होना ही सिद्ध होता है।

रामायण का समाज आदर्शवादी था। पिता, पुत्र, भ्राता, मित्र आदि सभी आदर्शवाद के पोषक है, परन्तु यह आदर्श महाभारत मे नही दिखाई देता। भीम अपने बडे भाई की आज्ञा मानने को तैयार नही। यहॉ पर विजय तथा राज्यलाभ के लिए चोरी एवं असत्य भाषण मे कोई पाप नही। इस दृष्टि से भी महाभारत रामायण के पश्चात् सिद्ध होती है।

रामायण मे राम–रावण युद्ध के संवादों अथवा कार्य–व्यापारो मे उतनी उत्तेजना नही दिखाई देती जितनी की कर्ण अर्जुन आदि के युद्ध मे है। इन सभी बातो से भी स्पष्ट है कि रामायण की रचना महाभारत से पहले हुई।

रामायण की नैतिक भावना का स्तर महाभारत की अपेक्षा ऊॅचा है। परन्तु महाभारत मे उस भावना का पर्याप्त ह्रास हो गयाहै। सीता जी को हनुमान अपनी पीठ पर लाने का प्रस्ताव करते है, परन्तु सीता पर पुरूष के स्पर्श के दोष के कारण उसे स्वीकार नही करती। परन्तु द्रौपदी काम्यक वन मे जयद्रथ द्वारा हरण कर ली जाती है और उसके पुनर्ग्रहण मे कोई विरोध खडा नहीं होता। अतः उक्त कथानक के आधार पर भी रामायण प्राचीन सिद्ध होता है।

इस प्रकार दोनो ग्रन्थो का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह सुनिश्चित होता है, कि रामायण की रचना महाभारत से पहले और सम्भवत 'भारत' से बाद मे हुई थी। रामायण और महाभारत का अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व भी है। दोनो ही भारतवर्ष के आर्षकाव्य हैं। दोनो ही ग्रन्थ भारतीयो के धार्मिक ग्रन्थ है। दोनो ने ही भारतीय जीवन, नैतिक विचारो, धार्मिक विश्वासों और परवर्ती साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया। दोनो ही वैदिक साहित्य के सीमान्तक और लौकिक साहित्य के सीमोदय के प्रारूप है।

**भावपक्ष एवं कलापक्ष** – सस्कृत वाड्मय में 'बाल्मीकि रामायण' तथा व्यास कृत 'महाभारत' दोनो ही ग्रन्थ भावपक्ष की दृष्टि से समृद्ध है। इनमे प्रथम बाल्मीकिकृत रामायण नि सन्देह एक महान् कृति है। उसमे एक ओर तो अपने महान निर्माता की अनुपम पाण्डित्य प्रतिभा का समावेश है, तो दूसरी ओर जिस देश की धरती मे उसका निर्माण हुआ वहॉ के सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और आदर्शमय जीवन की समग्रताओ का भी समावेश है। रामायण नि.सन्देह सस्कृत साहित्य का आदि महाकाव्य है जिसमे भारतीय आचार–विचार सस्कार सम्बन्धो का और भक्ति भावना का उज्ज्वल निदर्शन है।

रामायण की प्रधान विशेषता यही है कि उसमे दैनिक व्यवहार मे आने वाले सभी शिष्टाचारो का विधिवत् पालन हुआ है। पिता–पुत्र में, भाई–भाई मे, स्वामी–स्त्री मे जो प्रीति और भक्ति का सम्बन्ध है उसको रामायण ने इतना महान् बना दिया कि वह सहज ही महाकाव्यों की कोटि में गिना जाने लगा। हिमालय जितने ऊँचे एव व्यापक आदर्शों और सागर जैसे गम्भीर विचारों का यदि एक साथ किसी ग्रन्थ मे समावेश हो पाया है तो वह है – 'रामायण'

इसलिए 'महाकवि कालिदास'[1] और प्रतिभावान् काव्यशास्त्री 'आनन्दवर्धन' ने बाल्मीकि को न केवल 'आदि कवि' कहा है अपितु एक महान् कवि होने के साथ–साथ उन्हे साधारण क्रौञ्चशोक को श्लोकमयी वाणी में अवतरित करने वाला 'आदि कवि' भी कहा है।[2]

इन्होंने ही पहले पहल लौकिक सस्कृत मे काव्यरचना की। रामायण तो अव्याहतज्योति–आर्षचक्षु बाल्मीकि की प्रतिभा का परिणाम है। उनके अन्त.करण का प्रवाह है। उनके द्रवीभूत आत्मा का निष्यन्द है एव उनके हार्दिक क्लेश एव शोक का श्लोकत्व रूप है। यही उनके काव्य माला का प्रथम गुच्छ है। उनका लक्ष्य था मेरा

---

1 तामभ्यगच्छद्रुदितानुसारी कवि. कुशेध्माहरणाय यात ।
निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थ. श्लोकत्वमाद्यत यस्य शोक ।। रघुवश – 14/70

2 काव्यस्यात्मा स एवार्थस्तथा चादिकवे पुरा।
क्रौञ्चद्वन्दवियोगोत्थ शोक श्लोकत्वमागत ।। ध्वन्यालोक – 1/5

काव्य अमर हो जन जीवन से साक्षात् सम्बद्ध हो चतुर्वर्ग की प्राप्ति का साधन हो, लोक मनोरजन के साथ–साथ लोक–परलोक दोनो का साधक हो। इन सभी लक्ष्यो की पूर्ति के लिए उन्हे मर्यादा पुरूषोत्तम राम के अतिरिक्त कोई अन्य नायक नहीं जॅचा तथा अपनी काव्य रूपी माला को सुरक्षित रखने के लिए 24 सहस्त्र श्लोको का ग्रन्थ रामायण रचा।

'रामायण' मे बाल्मीकि की सौन्दर्य सृष्टि तथामहनीय काव्यकला का समन्वय है। बाल्मीकि के काव्य की सबसे बडी विशेषता 'उदात्तता' है। पात्रो के चरित्र चित्रण मे, प्रसङ्गो के वर्णन मे, प्रकृति के चित्रण मे सर्वत्र उदात्तता स्वाभाविक रूप से विद्यमान है।

राम शोभन गुणो के चतुरचितेरे है तथा जानकी दया की प्रतिमूर्ति है। दोनो ही पात्र आदिकवि के काव्य मन्दिर की पीठस्थ दैवी विग्रह है। बाल्मीकि ने रामायण के द्वारा ही रामराज्य की भावना का विकास कर समाज के सम्मुख एक आदरणीय आदर्श प्रस्तुत किया। राम कृतज्ञता की मूर्ति है। वे किसी प्रकार किये गये एक भी उपकार से सन्तुष्ट हो जाते है, परन्तु सैकड़ो अपकारो का भी वे स्मरण नही रखते[1]–

इसी प्रकार रामायण मे राम के भ्रातृप्रेम का हमे आकलन तब होता है जब वे लक्ष्मण को भावविह्वल होकर गले लगाते है तथा शक्ति लगने पर अपने अनूठे हृदयगत भाव को व्यक्त करते है[2]–

राम की उदात्तता उसी समय दृष्टिगत होती है जब वह शत्रु के भ्राता विभीषण को बिना विचार किये ही आश्रय प्रदान करते है तथा रावणवध के बाद कहते है कि– हे विभीषण "बैर का अनत शत्रु के मरण से होता है। रावण की मृत्यु के साथ ही हमारी शत्रुता भी समाप्त हो गयी उसका दाह सस्कार आदि क्रिया करो मेरा भी वह वैसा ही है जैसा तुम्हारा।'[3]

---

1 कथञ्चिदुपकारेण, कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणा शतमव्यात्मवत्तया।। — रामायण – 2/1/11–

2 देशे देशे कलत्राणि देशे–देश च वान्धवा ।
त तु देश न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदर ।। — सस्कृत साहित्य का इतिहास–पुष्पा गुप्ता

3 मरणान्तानि वैराणि निवृत्त न प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य सस्कारो ममाप्येष यथा तव।। — स0सा0 का इति – बलदेव उपाध्याय

इसी प्रकार पतिव्रता जनकनन्दिनी सीता का व्यक्तित्व जो कि शीलता, सम्पन्नता, दयालुता का भण्डार है किसके ह्रदय को शीतलता एवं शान्ति नही प्रदान करता— रावण के प्रति सीता की यह भर्त्सना कितनी उदात्त है—

कि "इस निदनीय निशाचर रावण से प्रेम करने की बात दूर रही मै ते इसे अपने पैर से— नही—नही, बाये पैर से भी नही छू सकती"।[1]

इस प्रकार रामायण भावपक्ष की दृष्टि से समृद्ध है। इसमे वीरकाव्य, महाकाव्य, ऐतिहासिक महाकाव्य सभी के गुण समन्वित है। एक ओर नायक की उदात्तता है तो दूसरी ओर नैतिकता का चरमोत्कर्ष है। एक ओर अन्त. प्रकृति का चित्रण है तो दूसरी ओर बाह्य प्रकृति का चित्रण विद्यमान है। इस प्रकार रामायण का भावपक्ष बाल्मीकि की सशक्त लेखनी का ही सम्बल है जिस कारण यह काव्य न केवल महाकाव्य ही बना रहा अपितु ऐतिहासिक महाकाव्य, वीरकाव्य और हिन्दू धर्म का आदर्श धर्म ग्रन्थ सिद्ध हो गया।

रामायण मे ह्रदयपक्ष (भावपक्ष) की प्रधानता होने पर भी कला पक्ष की अह्वेलना नही है। भाव भाषा का मञ्जुल समन्वय, सरलता सुबोधता आदि सभी गुण इसमे सन्निहित है।

एक विचारक के कथनानुसार— बाल्मीकि रामायण मे ,विषय की उत्कृष्टता, घटनाओ का वैचित्र्यपूर्ण विन्यास, प्रकृति का अत्यन्त सजीव रूप मे स्थापन, मानवीय मनोभावो का उदात्तीकरण, रस, अलङ्कार, ध्वनि, छन्द आदि सभी तत्त्वो का सम्यक् रूप से निरूपण होना एक श्रेष्ठ कलाकार की रचना का प्रमाण सिद्ध होता है।

रामायण की भाषा सरस, प्राञ्जल एव प्रसादगुण युक्त है। भाषा भावो को अभिव्यक्त करने मे पूर्णतया सक्षम है। वस्तुत. एक श्रेष्ठ कवि के द्वारा जो गुण एक अच्छी वाणी मे बताये गये है वे सभी उनकी भाषा शैली मे दिखाई देते है— यथा—

सस्मराम्यस्य वाक्यानि मधुराणि प्रियाणि च।
हृद्यान्यमृत कल्पानि मन. प्रह्लादनानि च।। आरण्यक— 16.39

---

1 चरणेनापि सत्येन न स्पृशेय निशाचरम्।
रावण कि पुनरहं कामयेय विगर्हितम्।। रामायण – 5/37/62

बाल्मीकि की भाषा मे किसी भी प्रकार की अस्वाभाविकता नही मिलती है। प्राचीन होने पर कालिदास आदि की भाषा के तुल्य प्रौढता एव परिष्कार परिलक्षित होता है–[1]

महर्षि बाल्मीकि ने भावो की अभिव्यञ्जना इतने चारू शब्दो मे की है कि उसकी निराली छटा देखते ही बनती है। वर्ण्य विषय के अनुरूप भाषा शैली सर्वत्र परिलक्षित होती है–

क्व ते रामेण ससर्गः कथ जानासि लक्ष्मणम्।
वानराणा नराना च कथमासीत् समागम.।। वा रामायण

रामायण का मुख्य रस 'करूण' है। काव्य का प्रारम्भ एव समापन, दोनों ही करूण रस से हुआ है। इस बात को 'ध्वन्यालोककार' ने कहा है– "रामायणे हि करूणो रस"। ध्वन्यालोक

इस आदि काव्य की उत्पत्ति ही करूण रस से होती है करूण रस के अतिरिक्त अन्य श्रृङ्गार, वीर इत्यादि रसो का भी प्रयोग महर्षि बाल्मीकि ने बडे ही उदारता से किया है–

अनेक प्रसगो मे मुख्यतः युद्धकाण्ड मे वीररस, सीता वियोग मे विप्रलम्भ श्रृङ्गार का सुन्दर प्रयोग किया है। श्रृङ्गार रस का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

"शरत्कालीन नदियॉ अपने–अपने तटो को शनै–शनै दिखला रही है। जिस प्रकार नये समागम के कारण लज्जाशील सुन्दरियॉ अपनी जघाओ को धीरे–धीरे खोलती है।"[2]

'महाकवि बाल्मीकि' ने अपनी कविता कामिनी को अलङ्कृत करने के लिए अनेक अलङ्कारो का प्रयोग किया है। रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति इत्यादि उनके प्रिय अलङ्कार है। उत्प्रेक्षा का चमत्कार देखिए।[3]

---

1 रात्रि शशाकोदित सौम्यवक्त्रा वारागणोन्मीलित चारूनेत्रा।
ज्योत्स्नाशुक प्रावरणा विभाति, नारीव शुक्लाशुक सवृताङ्गी।। किष्किन्धा– सर्ग 30

2 दर्शयन्ति शरन्नद्य पुलिनानि शनै शनै।
नवसङ्गम सव्रीडा जघनानीव योषित।।

3 पतितै पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारूत।
कुसुमै पश्य सौमित्रे क्रीडन्निव समस्तत।। रामायण– 4/1/13

ऋतुवर्णनो मे अलङ्कारो की छटा विशेष रूप से दर्शनीय है– यथा–बादलो मे चमकती हुई बिजली की रावण से अपहृत छटपटाती हुई सीता से उपमा–

"नीलमेघाश्रिता विद्युत् स्फुरन्ती प्रतिभाति मे।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के वैदेहीव तपस्विनी।।" रामायण–4–28–12

पहले कहे गये वसन्त वर्णन मे वायु के फूलो से खेलने की बहुत सुन्दर उत्प्रेक्षा एक गेद के खिलाडी से की गयी है, जिसकी गेद कभी ऊपर और कभी बीच मे होती है। महर्षि बाल्मीकि प्रकृति चित्रण के कुशल चितेरे है। अपने महाकाव्य मे आदिकवि ने प्रकृति का बहुत ही स्वाभाविक एव सरल चित्र उपस्थित किया है। कवि ने नगर, ग्राम, पर्वत, नदी, अरण्य, चन्द्रोदय सूर्योदय आदि के वर्णन अत्यन्त सरस भावपूर्ण सजीव एव रोचक है, जैसे– अयोध्याकाण्ड मे चित्रकूट वर्णन, अरण्यकाण्ड मे वन आश्रम आदि का वर्णन, सुन्दरकाण्ड मे चन्द्रोदयवर्णन विशेष उल्लेखनीय है। यथ– चन्द्रोदय का उपमा अलङ्कार युक्त वर्णन इस प्रकार है–

हसो यथा राजतपञ्जरस्थ सिहो यथा मन्दरकन्दरस्थ ।
वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्थश्चन्द्रोऽपिवभ्राज तथाऽम्बरस्थ ।। रामायण– 5/5/4

इसी प्रकार कवि ने पावस कालीन मेघो का अत्यन्त श्लिष्ट चित्रण प्रस्तुत करते हुए कहा– मेघरूपी श्यामल मृगचर्म पहले ऊपर से बहती आती श्वेतजल धाराओ को यज्ञोपवीत धारण किये हुए वायुपूरित गुफाओ में होते नि:स्वन के बहाने से मानो वेदमत्रो का उच्चारण करते ये पर्वत वेदपाठी ब्रह्मचारियो से प्रतीत होते हैं–

मेघकृष्णाजिनधराः धारायज्ञोपवीतिन।
मारूतपूरितगुहा: प्राधीता इव पर्वताः।। रामायण

रामायण का प्रमुख छन्द 'अनुष्टुप्' है। रामायण मे छन्दो का प्रयोग उचित वैशिष्ट्य को दृष्टि मे रखकर किया गया है। कई स्थानो पर मुख्यत: सर्ग के अन्त मे इन्द्रवज्रा, उपजाति, आदि छन्दो का प्रयोग भी हुआ है। बाल्मीकि के मुख से निकला हुआ सर्वप्रथम पादबद्ध श्लोक अनुष्टुप छन्द मे ही था। इसलिए विद्वान उन्हे अनुष्टुप छन्द का रचयिता भी कहते है। जैसे– आकाश की उपमा आकाश से दी जाती है और

समुद्र की उपमा समुद्र से दी जाती है– उसी प्रकार राम–रावण युद्ध की तुलना राम–रावण युद्ध से ही की जा सकती है।

सागरं चाम्वरं प्रख्यमम्बरं सागरोपमम्।
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव।।

रामायण का पदविन्यास, वैदर्भी शैली से मण्डित है। इसमे भाषा की सुगमता और भावो की सरलता व्याप्त है। यद्यपि यह सस्कृत का आदिकाव्य है किन्तु इसमे भरत, अश्वघोष, कालिदास जैसे जैसे कृतियो की प्रौढि और दर्शन की न्यूनता नही है।

बाल्मीकि ने सुभाषितो और अर्थात्तरन्यास अलङ्कार के विविध विधानो द्वारा अपने महाकाव्य को परवर्ती महाकवि 'भारवि' के समान अर्थ गौरव से सुसमृद्ध किया। इस प्रकार महाकवि केवल विविध विषयो में पारङ्गत ही नहीं थे, बल्कि उनके मार्गद्रष्टा भी थे।

राम जैसे उदात्त चरित को काव्य का आश्रय बनाकर बाल्मीकि ने भारतीय सस्कृति मे एक नया मोड ही नही दिया, किन्तु एक ऐसे साहित्य को प्रवृत्त किया जो आज भी निर्बाध गति से प्रवाहित हो रहा है।

'रामायण' भारतीय साहित्य का पहला महाकाव्य होते हुए भी विश्व साहित्य के प्राचीनतम महाकाव्यो की तुलना में भाषा, भाव व छन्द, रचनाविधान एव रस व्यञ्जना सभी दृष्टियो से एक उत्कृष्ट कृति प्रमाणित हो चुका है।

बाल्मीकि के जीवन का एक मात्र उद्देश्य ज्ञानार्जन करना ही था। रामायण की लोकप्रियता तथा परवर्ती साहित्य पर रामायण के प्रभाव को देखकर उसकी लोकप्रियता सहज ही मालूम हो जाती है, क्योकि बाल्मीकि के महाकाव्य का आश्रय लेकर ही सस्कृत प्राकृत, अपभ्रंश इत्यादि काव्यो की सृष्टि हुई है। तात्पर्य यह है कि महाकाव्य रामायण से प्रभावित होकर ही कितने परवर्ती कवियों ने संस्कृत साहित्य में ही नहीं अपितु भारत की अनेक भाषाओ मे विपुल साहित्य की सृष्टि कर भारतीयो के समक्ष एक ऐसे आदर्श की स्थापना की जिससे भारतीय सस्कृति का सारे अर्थो मे परमोत्कर्ष सम्भव हो सका। रामायण की प्रशसा मे नलचम्पूकार ने कहा है–

सदूषणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला।
नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा।। नलचम्पू–

इस प्रकार हम कह सकते है कि आदिबाल्मीकि द्वारा प्रणीत यह आदि काव्य पुण्य जल से युक्त नदी के सदृश है जिसमे अवगाहन कर पाठक तथा कविगण स्वय को पवित्र करते है तथा रसमयी काव्य शैली का आस्वादन भी करते है।

रामायण के लिए दी गयी ब्रह्मा की भविष्यवाणी अक्षरस. सत्य है– यथा –
यावत्स्थास्यन्ति गिरय· सरितश्च महीतले।
तावद् रामायण कथा लोकेषु प्रचरिष्यति।। बालकाण्ड – 2 36.37

आदि काव्य रामायण के समान महाभारत भी भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनो के वैशिष्ट्य से समन्वित है। महाभारत एक विशालकाय ग्रन्थ है। इस महाकाव्य मे भारतीय सभ्यता का भव्य रूप प्रस्फुटित हुआ है। महाभारत मुख्य रूप से इतिहास ग्रन्थ है। इसमे हिन्दू धर्म एव भारतीय सभ्यता का जैसा सुन्दर चित्रण मिलता है वैसा अन्यत्र कही नही है। महाभारत के शब्दो मे – "यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्"

अध्यात्म धर्मनीति का जितना विशद् विवेचन महाभारत मे किया गया वैसा और कही नही उपलब्ध होता है।

महाभारत की मुख्य घटना कुरूक्षेत्र मे हुआ कौरव पाण्डव युद्ध है। परन्तु इसकी विशेषता यह भी है, कि इसमे प्रत्येक पात्र से सम्बद्ध अपनी एक पृथक् पूर्वकथा भी है और उन सब कथाओ का समावेश इसमे किया गया है। यह महर्षि व्यास की चहुमुखी प्रतिभा का ही कमाल है।

महाभारत भारतीय साहित्य का आकर ग्रन्थ है जिसमे तत्कालीन सास्कृतिक, साहित्यिक आदि विषयो का समन्वय है। महाभारत के सार्वभौमिक विकास को देखकर उसको न तो हम वैदिक ग्रन्थ कह सकते है न पुराण ही, न इतिहास ही, न महाकाव्य ही, न एक धर्मग्रन्थ ही और न केवल सामाजिक सास्कृतिक चेतना का प्रतिनिधि ग्रन्थ ही। वस्तुत यह एक वृहद्राष्ट्र का ज्ञान सर्वस्व होने के कारण आर्ष ग्रन्थ भी है। इसमे भावपक्ष इतना प्रबल है, कि कलापक्ष की चमत्कारिता का थोडा ह्रास हो गया है। महाभारत का कथानक पहले–पहल अपने वीरगीतो के रूप मे प्रचलित था। महाभारत

का ही एक अग भगवद्गीता है जिसमें भक्ति, ज्ञान एव कर्म का दृष्टान्त दिया गया है। इन्ही सब कारणो से महाभारत को 'पञ्चमवेद' की सज्ञा दी गयी। इस प्रकार महाभारत का भाव पक्ष हर दृष्टि से परिपूर्ण है उसमे भारत की गरिमा अनेक रूपो मे समाहित है।

महाभारत की भाषा रामायण की ही भाति सरस एव लालित्यपूर्ण है। अलङ्कार रहित होने पर भी प्राञ्जल एव प्रवाहमयी है। कवि ने वैदर्भी रीति को अपनाया है। लेकिन मुख्य रूप से पाञ्चाली शैली "शब्दार्थयो. समोगुम्फ· पाञ्चाली रीतिरिष्यते"। का प्रयोग किया है—

इस प्रकार भाषा में स्निग्धता एव सरलता है। रस के अनुरूप भाषा का वैविध्य भी परिलक्षित होता है—

"कालो वा कारणं राज्ञो राजा वा कालकारणम्।
इति ते सशयो मा भूद् राजा कालस्य कारणम्।।" उद्योग0 132—16

महाभारत का मुख्य छन्द अनुष्टुप है, किन्तु अन्य स्थानो पर भिन्न—भिन्न इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा इत्यादि अलङ्कारो का भी प्रयोग दृष्टिगत होता है।

महाभारत का मुख्य रस 'शान्तरस' है। यह पूरे ग्रन्थ मे आदि से लेकर अन्त तक विद्यमान है पर मुख्य रूप से सौप्तिक पर्व से प्रारम्भ होता है तथा स्वर्गारोहण पर्व मे जाकर समाप्त होता है। यद्यपि महाभारत मे अनेक अगकृत रसों का प्रयोग दृष्टिगत होता है किन्तु वीर और अद्भुत उल्लेख्य है। श्रृङ्गार रस का प्रयोग बहुत ही अल्प मात्रा मे हुआ है, उद्योग, भीष्म, द्रोण, इत्यादि पर्वों में वीर रस की धारा अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित है। अन्य रस गौण है। वीर व श्रृङ्गार रस का उदाहरण निम्न है—

अय स रसनोत्कर्षी पीनस्तन विमर्दनः।
नाभ्यूरूजघनस्पर्शी नीवी विस्त्रसन कर ।। का0प्र0 पञ्चम उल्लास — पृ0 199

महाभारत में अलङ्कारों का प्रयोग स्वाभाविक है। भाषा के प्रवाह में यथावसर भावात्मक चित्रों को प्रदर्शित करने के लिए उपमा, रूपक, उत्पेक्षा का प्रयोग सहज एव स्वाभाविक है। अर्थान्तरन्यास अलङ्.कार सर्वाधिक रूप से दृष्टिगत होता है। इसके उदाहरण सहस्त्राधिक है। यमक और अनुप्रास का प्रयोग भी अत्यन्त स्वाभाविक है। अलङ्कार का एक सुन्दर प्रयोग दृष्टव्य है।

पुष्प पुष्प विचिन्वीत मूलच्छेदन कारयेत्।
मालाकार इवारामे, न यथाऽङ्गारकारक ।।  उद्योग पर्व – 34–18

इस प्रकार के ज्वलन्त उदाहरण महाभारत मे उपलब्ध है। साथ ही नीतिशिक्षा एव कूटनीति विषयक सूक्तियॉ भी प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। यथा–

सुलभा पुरूषाराजन् सतत प्रियवादिन ।

अप्रियस्य च पथ्यस्य, वक्ता श्रोता च दुर्लभ ।।  उद्योग पर्व – 37–15

रामायण एव महाभारत की शैलियो एव उनके द्वारा अनुप्राणित काव्य परम्परा को लक्ष्य मे रखकर सहज ही कहा जा सकता है कि महाभारत की अपेक्षा रामायण मे काव्योत्कर्ष गुण एव अन्विति की अधिकता है। इसलिए महाभारत प्रधानतया इतिहास तथा गौणतया महाकाव्य है। किन्तु इसके विपरीत रामायण प्रधानतया महाकाव्य और गौणतया इतिहास है।

व्यास का लक्ष्य कौरव पाण्डव युद्ध मात्र न होकर इस जगत् की क्षणभगुरता का अवलोकन कराकर जीवो को परम ज्ञान के द्वारा मोक्ष के प्रति उन्मुख कराना है। और इसीलिए उन्होने उसकी परिणति अङ्गी रस शान्त मे की। वैसे तो सम्पूर्ण महाभारत ज्ञान का भण्डार है, तो भी उद्योग पर्व, भीष्म, अनुशासन पर्व अधिक महत्त्व के हैं। गीता समस्त उपनिषदो की सार है। महाभारत हमे एक ऐसे कर्तव्य पर चलने की प्रेरणा देता है जो उचित है। सत्य और धर्म ही उस महाकाव्य का उद्देश्य है।

महाभारत हमे जो कुछ युधिष्ठिर ने किया वह सब करने के लिए और जो कुछ दुर्योधन ने किया उससे बचने के लिए प्रेरित करता है।

महाभारत का वास्तविक उद्देश्य है– मनुष्य जाति को भौतिक जीवन की नि सारता दिखलाकर उसे मोक्ष मार्ग पर निर्दिष्ट करना।

इसीलिए काव्य शास्त्रज्ञो ने महाभारत को शान्तरस प्रधान ग्रन्थ माना।[1]

---

महाभारत मे लोक कल्याण की राजकीय योजनाए – डॉ0 कामेश्वरनाथ मिश्र

1 महाभारतेऽपि शास्त्रकाव्य रूपच्छायान्वयिनि वृष्णिपाण्डव विरसावसान वैमनस्यदायिनि समाप्तिमुप निबध्नता महामुनिना वैराग्य जनन तात्पर्य प्राधन्येन स्वप्रबन्धस्य दर्शयता मोक्षलक्षण पुरूषार्थ शान्तो रसश्च मुख्यतया सूचित ।  ध्वन्यालोक चतुर्थ उद्योग

'आनन्दवर्धन' ने कहा है, कि महाभारत का मुख्य उद्देश्य सांसारिक वस्तुओ की निरर्थकता सिद्ध कर धर्म, वैराग्य शान्ति व मोक्ष की प्राप्ति ही है। महाभारत की कथा धर्म और अधर्म के मध्य होने वाले सघर्ष की कथा है।

व्यास ने कहा है–

ऊर्ध्वबाहु विरौम्येष न च कश्चिच्छ्रुणोति माम्।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते।। महाभारत

महाभारत का माहात्म्य इसी दृष्टि से स्पष्ट है– इसके विषय मे व्यास ने स्वय कहा है– "यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति"।

महाभारत की प्रशसा में नलचम्पूकार ने लिखा है–

कर्णान्तविभ्रमभ्रान्त कृष्णार्जुन विलोचना।
करोति कस्य नाह्लाद कथा कान्तेव भारती।। नलचम्पू – 1/11

महाकवि वाण ने हर्षचरित मे वेदव्यास की वदना इन शब्दो मे की है–

"नमस्तुङ्गशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचाखे, त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शभवे
हरकण्ठग्रहानन्दमीलिताक्षी नमाम्युमाम् कालकूट विषस्पर्श जातमूर्च्छागमामिव
नम सर्वविदे तस्मै व्यासाय कवि वेधसे चक्रे पुण्य सरस्वतया योवर्षमिव भारतम्
कथेव भारती यस्य न व्याप्नोति जगत्त्रयम्
उच्छ्वासान्तेऽप्य खिन्नास्ते येषा वक्त्रे सरस्वती।। हर्षचरित – 1/3–9

बाल्मीकि एव व्यास दोनो ही अनेक भारतीय काव्य कृतियो के प्रेरक है। इनके रामायण एवं महाभारत आदि उपजीव्य काव्य है जिनसे अनेक काव्य मन्दाकिनियो का प्रवर्तन हुआ है। इन दोनो कृतियो के परिशीलन से यह प्रत्यक्ष हो जाता है, कि इनमे काव्य मनीषियो ने किस हृदयावर्जक ढग से उक्त सभी तत्त्वो की रूचिर अभिव्यक्ति की है। दोनो ही काव्य अन्याय पर न्याय तथा अधर्म पर धर्म की विजय के रमणीय गीत गाते है।

रामायण और महाभारत दोनो का लक्ष्य जीवन की रसमयी समालोचना प्रस्तुत करना रहा है। बाल्मीकि तथा व्यास दोनों ने ही अपनी उक्त काव्य कृतियों का अन्तिम लक्ष्य कर्म एव धर्म की चरम परिणति मोक्ष मे ही किया है।

---

महाभारत मे धर्म – डा0 शकुन्तला रानी तिवारी

सस्कृत साहित्य भारतीय जनमानस की सस्कृति का प्रतीक है, क्योकि साहित्य ही भारत का गौरव एव आधारपीठ स्तम्भ रहा है। प्रत्येक देश के साहित्य मे उस देश के निजी गुण–दोष प्रतिबिम्बित होते रहते है।[1]

भारतीय सस्कृति के दो आधारपीठ स्तम्भ है– 1. 'भोग और 2. त्याग'। वह चार्वाकी सस्कृति के समान न केवल भोग प्रधान है और न श्रमण सस्कृति के समान केवल त्याग प्रधान है, बल्कि भोग एव त्याग की समष्टि ही हमारी सस्कृति का मेरूदण्ड है। ईशोपनिषद् मे उल्लिखित इस सूक्ति का भाव यही है–

"तेन त्यक्तेन भुञ्जीयाः मा गृध कस्यस्विद् धनम्"[2]

लौकिक सस्कृतसाहित्य की 'क्लैसिकल' काव्य–परम्परा को न केवल आदिकवि तथा व्यास के अमरकाव्यो से सम्बद्ध मानना होगा, अपितु उसे आर्य सस्कृति के उषकाल मे उदित मन्त्रदृष्टा ऋषिमहर्षियो की सुनृता वाणी से उद्भूत मानना होगा जो प्रारम्भ काल से ही जनमानस को प्रभावित करती चली आ रही है।

इस तरह काव्य का उद्भव वेदो से ही माना जाता है, जो आज भी अपने अविरल धाराओ को प्रवाहित करता हुआ आगे विकास के पथ पर अग्रसर होता आ रहा है। लौकिक–सस्कृत की राष्ट्रीय भारती वह सबसे बडी कडी है जो प्रागैतिहासिक काल के वैदिक साहित्य से आज के साहित्य की कडियो को जोडती है। ऋग्वेद के प्रख्यात पुरूष सूक्त (10/90) में पुरूष के मुख, बाहु उरू तथा पाद से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण के उत्पन्न होने की बात कही गयी है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि फलत वैदिक युग मे वर्ण तथा आश्रम का उद्भव किसी न किसी प्रकार हो गया था। सूत्रकाल मे (1000ई–400ई0) इसके आचार–विचार एव नियमों के विषय मे विस्तृत विवेचन हमे धर्मसूत्रो से प्राप्त होते है। उस समय ये नियम आचार–विचार उतने कडे

---

1 सस्कृत साहित्य का इतिहास – कलानाथ शास्त्री
2 संस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय

नही थे, किन्तु ज्यो–ज्यो समय बीतता गया इनमे जटिलता आती गयी। धर्मशास्त्रीय नियमो के प्रतिष्ठाता रूप मे मनु की ख्याति वैदिक काल के उत्तरोत्तर काल मे अवश्य थी। इससे यह प्रतीत होता है कि साहित्य के उदय के पूर्व ही विद्वद्गण अपनी कृतियो मे धर्म के मूल स्वरूप एव आचार–विचार के नियमो मे श्रद्धा रखने लगे थे। उन्होने जिस सामाजिक परिवेश का वर्णन किया वह धर्मशास्त्रो द्वारा ही अनुमोदित प्रतीत होता है। ऐसे परिवेश मे रहने वाले मनीषियो का यह कर्तव्य होता था कि वे धर्मानुमोदित प्रणय का ही चित्रण जगत् के कल्याण एव हित के लिए करे। उच्छृङ्खल प्रणय के प्रसङ्ग का वहाँ कोई अवसर ही नही आता था। सस्कृत सुधीजनो के पास एक श्रेष्ठ आदर्श दीर्घकाल से प्रतिष्ठित था, जिसका उन लोगो ने बडे सात्त्विक ढग से पालन करना चाहा था। जिससे यह नही समझना चाहिए कि उनके पास उच्छृङ्खल प्रणय का चित्रण ही नही है– ऐसे चित्रो की भरमार विशेष रूप से हमे रूपको मे मिलते है, जिन्हे 'सामाजिक नाटक' (वर्तमान समय मे) कहा जाता है।

कालिदास के रघुवशी नरेश वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा के रक्षक थे। वे बाल्यावस्था से विविध विद्याओ मे पारगत होते थे, यौवनकाल मे सन्तानोत्पत्ति की इच्छा रखते थे तथा प्रौढावस्था मे सन्यासी का रूप धारण कर वनो एव आश्रमो मे निवास करते थे।[1] इसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि फलत वर्णाश्रम का अनुसरण सस्कृत काव्य का प्रथम वैशिष्ट्य माना जाता है।

ससार के मौलिक तत्त्वों का चिन्तन–मनन साथ ही दार्शनिक समस्याओ का समाधान करना भी भारत देश की मुख्य विशेषता रही है। वैदिक ग्रन्थो मे भी हमे इन तात्त्विक चिन्तनों की झलक दिखाई देती है। आगे चलकर संहिता काल की भावना ने उपनिषद्काल के चिन्तन को जन्म दिया। औपनिषदिक तत्त्वज्ञान का पर्यवसान 'तत्त्वमसि' महाकाव्य तथा 'अह ब्रह्मास्मि' मे था। प्रातिभज्ञान से इस अद्वैत ज्ञान का स्फुरण पहले हुआ। तर्क से इसकी प्रतिष्ठा पीछे सिद्ध की गयी। विश्व की उत्पत्ति,

---

1 शैशवेऽभ्यस्त विद्याना यौवने विषयैषिणाम्।
वार्द्धके मुनिवृत्तीना योगेनान्ते तनुत्यजाम्।। रघुवश 1/8

स्थिति आदि समस्याओ के समाधान के लिए हमारे षड्दर्शनो का उदय हुआ। साख्य तथा मीमासा दोनो दर्शन आदृत हुए। साख्य का आरम्भिक चितन वैदिक होते हुए भी अनीश्वरवादी था। साख्य की ही कार्यकारणवादी सरणि को लेकर ही योगदर्शन का उदय हुआ, जिसने साधना के व्यावहारिक पक्ष पर साथ ही परम पुरूष जैसी अलग सत्ता पर जोर दिया। इसी बीच बौद्धो का अनीश्वरवादी अवैदिक दर्शन भी पल्लवित हुआ था, जो आगे चलकर वैदिक दर्शन के चरम परिपाक अद्वैतवाद को आविर्भूत करने मे भी हॉथ बटाया।

कुछ ही समय बाद दो प्रकाण्ड दार्शनिक विद्वान् पैदा हुए, जिनमे कुमारिलभट्ट तथा शकराचार्य है। इन लोगो ने अपने—अपने दार्शनिक ग्रन्थों द्वारा क्रमश पूर्व प्रचलित मीमासा दर्शन तथा वेदान्तदर्शन की प्रतिष्ठाकर रसपेशल उक्तियो द्वारा अपने सिद्धान्त को लोकप्रिय बनाया। यद्यपि इन दर्शनो का उदय तो बहुत पहले ही हो चुका था, परन्तु इनका विकास संस्कृत काव्य के विकास के समानान्तर ही हुआ। इसलिए इनका प्रभाव संस्कृत कवियो पर भी पडा। कालिदास की दार्शनिक पृष्ठभूमि साख्य तथा योगदर्शन के द्वारा प्रभावित हुई, माघ की मीमासा तथा साख्य योग से, श्रीहर्ष अद्वैतवाद के कट्टर अनुयायी थे। इसके अलावा कही—कही इन कवियों ने अपनी अभिरूचि बौद्ध तथा जैन दर्शनो मे भी पर्यवसित की है। ऐसे वातावरण मे सस्कृत के कवियों का भारतीय दर्शन से प्रभावित होना स्वाभाविक था।[1]

प्राय यह देखने को मिलता है कि संस्कृत का कवि अपनी कविता को कलात्मक रूप से संजाने सॅवारने का प्रयास करता रहता है। इस कविता की सजावट को हम 'नक्काशी' के नाम से सम्बोधित कर सकते है। प्राचीन कवि अपनी कविता रूपी वनिता को बाह्य साधनो से नही अलङ्कृत करते, प्रत्युत उनकी कविता बिना किसी अलङ्करण के ही सहृदयो को रिझाती है, क्योकि उसमे नैसर्गिकता एव स्वाभाविकता कूट—कूट कर भरी होती है। क्रौञ्चवध से उद्वेलित महर्षि वाल्मीकि के मुख से

---

1 बलदेव उपाध्याय — सस्कृत साहित्य का इतिहास

"मा निषाद प्रतिष्ठा" की वैखरी जब सद्य प्रस्फुटित हो चली, काव्य के यथार्थ स्वरूप की वास्तविकता का ज्ञान सुधीजनों को तभी हुआ, कि काव्य सिन्धु रस के कूल को ही आश्रित कर अपना अमिट दिव्य प्रवाह बहाती चलेगी।

महर्षि वाल्मीकि लौकिक सस्कृत के प्रथम कवि होने के अतिरिक्त आलोचक भी थे, जिन्होने करूणमय, शोक तथा श्लोक का समन्वय सर्वप्रथम प्रचलित किया।[1] ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन ने असलक्ष्यक्रम रसध्वनि को ही काव्य की आत्मा माना।[2] वह इसी ऐतिहासिक आधारस्तम्भ पर प्रतिष्ठित तथ्य है। इस प्रकार संस्कृत महाकाव्य की कल्पना का मूल आधार वाल्मीकि रामायण है, उसी का विश्लेषण कर मनीषियो ने महाकाव्य की रूपरेखा निर्धारित की। काव्यालङ्कारकार दण्डी तथा काव्यालंकार सार रूद्रट के अलङ्कार ग्रन्थो मे विद्यमान महाकाव्य की भावना का उत्थान आर्षकाव्य रामायण के अन्तरङ्ग विश्लेषण से जन्य है। प्रसिद्ध आलङ्कारिक आचार्य भामह ने भी अलङ्कारार्थ वक्रोक्ति की सत्ता नितान्त रूप से स्वीकार की है।[3] वक्रोक्ति के अत्यधिक अनुराग से एक नवीन काव्य-मार्ग का जन्म हुआ, जिसे आचार्य कुन्तक ने 'विचित्र-मार्ग' नाम दिया। अलङ्कारो का प्रयत्न पूर्वक सन्निवेश, सजावट की उत्कृष्ट कल्पना, अतिशय उक्ति का चमत्कारी विन्यास, झङ्कृत पदावली इत्यादि विशेषताए इस विचित्र मार्ग की निजी पहचान थी। यह भी उतनी ही स्पृहणीय एव श्लाघनीय है जितनी दूसरी वाक्शैली। सस्कृतज्ञ कवियो ने इन्ही मे से एक को अपनी काव्य रचना का पथनिर्देशक बनाया। कालिदास वाल्मीकि की शैली के सुकुमार मार्ग के अग्रणी कवि रहे तथा परवर्ती भारवि, माघ इत्यादि कवि विचित्र मार्ग के पथप्रदशक बने। इसी कलात्मक विशेषता ने सस्कृत काव्यधारा की परम्परा को आगे बढाने मे सहायता प्रदान किया।

---

1 समाक्षरैश्चतुर्मिर्य पादैर्गीतो महर्षिणा।
सोऽनुव्याहरणाद् भूय शोक श्लोकत्वमागत ।। — रामायण– 1/2/40

2 क्रौञ्चद्वन्द् वियोगोत्थ शोक श्लोकत्वमागत । — ध्वन्यालोक – 1/5

3 सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयाऽर्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्या कविना कार्य. कोऽलङ्कारोऽनया विना।। — भामह– काव्यालङ्कार

सस्कृत साहित्य नागरिक जीवन का साहित्य है। सस्कृत साहित्य का प्रत्येक नागरिक अत्यधिक समृद्ध एव विलासी जीवन व्यतीत करता है। नागरिक के निवास स्थान की यह झलक मेघदूत के यक्ष के निवास–स्थान मे, माघ के द्वारिका वर्णन मे, मृच्छकटिक के चारूदत्त तथा वसन्तसेना के घरो में देखी जा सकती है। संस्कृत के कवियो का सम्बन्ध सर्वदा वैभवशाली महीपालो से स्थापित था। इन्ही राजाओ के आश्रय मे ही रहकर कविजन अपनी प्रतिभा का विस्तार करते थे। नागरिक का जीवन सगीत, साहित्य, चित्रकला, नृत्यकला और प्रकृति–निरीक्षण की कलात्मकता से समवेत रहता था। सुखमय एव ऐश्वर्यपूर्ण जीवन बिताना ही उनका परम लक्ष्य होता था। उसके प्रत्येक कार्य में हमें सौन्दर्य एव माधुर्य के दर्शन होते थे। नागरिक के ये सभी सहज परिकर उसके कला–प्रेम के भव्य निदर्शन थे। ऐसी स्थिति मे काव्यो में भावो की नागरिकता, भाषा का सौष्ठव एवं ग्राम्यता का अभाव आदि गुणों का दृष्टिगोचर होना स्वाभाविक ही है।

इन सभी विशेषताओं के अतिरिक्त सस्कृत कवियो का तपोवन इत्यादि के प्रति भी स्वाभाविक आकर्षण दिखाई देता है। कालिदास की दृष्टि मे लक्ष्मी के ललित निकेतन राजभवनों का उतना मूल्य नही है जितना कौपीनधारी तपस्वियों के निसर्ग सुन्दर आश्रमों का। वे आश्रम की मधुरिमा पर मुग्ध होते है। आश्रम, वृक्ष, वन इत्यादि के वर्णन कवि के हृदय में एक रागात्मिका वृत्ति के उदय मे सहायक बनते है। रघुवश के प्रथम सर्ग मे जिसका वर्णन साक्षात् रूप से देखा जा सकता है।[1] आश्रम के इन विचित्र दृश्यो में रमण करने वाले कवि को हम जनजीवन से पराड्मुख कैसे मान सकते है। ऐसे शोभन चित्र किस सरस कवि के चित्त को अपनी ओर नही खीच लेगा।[2]

भारवि को भी गोप एवं गोपियों के सरल जीवन से गहरी सहानुभूति है। गायों के पीछे चलने वाले पशुओं के साथ भाई–चारा रखने वाले, जंगल को ही अपना घर

---

1 सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम्।
विश्वासाय विहङ्गानामलवालाम्बुपायिनाम्।। रघुवश – 1–51

2 आत्पात्यय सक्षिप्तनीवारासु निषादिभि ।
मृगैर्वर्तितरोमन्थमुटजाङ्गनभूमिषु।। रघुवश – 1–52

समझने वाले तथा पशुओ के द्वारा सरलता के विषय मे अनुकरण किये जाने वाले गोपगण हमारे कवि हृदय पर गहरी छाप डालते है।[1] इस प्रकार भारवि का हृदय मानवता तथा मैत्री के सच्चे स्नेह से परिपूर्ण था। पल्लवो के राजाश्रय मे अपना जीवन बिताने वाले भारवि का हृदय जनसाधारण की भावनाओ से सहानुभूति रखता है। इससे यह प्रतीत होता है कि कवियो की सहानुभूति केवल मानव तक ही सीमित नही रहती, प्रत्युत वह पशु–पक्षियो के आचरण तथा व्यवहार के निरीक्षण मे पटु तथा समर्थ थी।

कवि लोग 'तपोवन' को भी भारतीय सस्कृति का एक अविभाज्य अङ्ग मानते थे। वाल्मीकि, कालिदास आदि सभी ने एक से एक रमणीय दृश्यो का अपने–अपने काव्यो मे गुणगान किया। शाकुन्तल के आरम्भ मे ही आश्रम की यह छवि कितनी स्निग्ध कितनी सुन्दर तथा कितनी मधुर है।[2]

"तपोवन के वृक्षो के कोटरो मे तोतो के बच्चे आराम कर रहे है, सुग्गो ने नीवार के दानो को अपने बच्चो के मुँह मे डाल रखा है, सहज विश्वास के उत्पन्न होने से मृग शब्दो को सुनकर भी ज्यो–के–त्यो खडे रहते है, सरोवर को जाने वाले मार्ग वल्कल वस्त्र से चुये हुए जल की बूंदो से चिह्नित है।"

रघुवश के प्रथम सर्ग मे आश्रम के पशु–पक्षियो का आपस में प्रेम कितना सहज एव सुकुमार है। ऐसे स्वाभाविक स्नेह से परिपूर्ण तपोवन के दृश्य हमारे रोम–रोम को प्रफुल्लित कर देते है। इतनी सद्भावना पूर्ण नैसर्गिक प्रेम को हम क्या सस्कृत कवि भूल सकता है। इसीलिए कविजनो ने काव्यो मे तपोवन के लिए निर्मल–स्वैच्छिक वर्णन को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया।

ये तपोवन भारतीय संस्कृति के धरोहर हैं, जो आध्यात्मिकता तथा कमनीयता के सर्वोत्कृष्ट कार्यस्थल है। इसी सभ्यता एव सस्कृति का जो अध्ययन ऋषियों ने कराया

---

1 गतान् पशूनां सहजन्मवन्धुता गृहाश्रय प्रेम वनेषु विभ्रत ।
दर्दश गोपानुपधेनु पाण्डव कृतानुकारानिव गोभिरार्जवे।। किरात0– 4 / 13

2 "नीवारा शुकगर्भकोटरमुख भ्रष्टास्ततरूणामध ।
प्रस्निग्धा क्वचिदिङ्गुदीफलभिद सूच्यन्त एवोपला ।। अभिज्ञानशाकुन्तल– 1 / 14

वह इसी तपोवन मे ही परिवर्धित एव विकसित हुआ। इसका ऐतिहासिक दृष्टान्त हमारे सामने है कि रघु का जन्म महाराज दिलीप के आश्रम निवास तथा गोसेवा का परिणत फल है। अयोध्या नगरी की जनता ऐसे आदर्श भूत महीपति के गुणो का वर्णन जितना भी करे उतना कम है। इस प्रकार जीवन को आध्यात्मिक भावना से पूर्ण करने तथा क्षुद्र स्वार्थों के बलिदान का, परस्पर मैत्री तथा सहानुभूति का सुन्दर सन्देश आज भी हमारे तपोवन दे रहे है। इस प्रकार प्रकृति की यह भाव प्रेरक शक्ति कल्पित नही, किन्तु यथार्थ है यही कालिदास का मत है।

"मधुद्विरेफः कुसुमैक पात्रौ पपौप्रियास्वामनुवर्तमान ।" कुमार0 3/36

इस प्रकार कालिदास इत्यादि कवि आर्य संस्कृति के प्रतिनिधि ठहरे। उन्होंने कुमार सम्भव मे इसके महत्त्व को बडे ही सुष्ठ शब्दों मे व्यक्त किया है–

"इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपता समाधिमास्थाय तपोभिरात्मन ।
अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वय तथाविध प्रेम पतिश्च तादृश ।।

कुमार0– 5/2

इसके अलावा सस्कृत काव्यो मे प्रेम के रसमय वर्णन का भी अपना वैशिष्ट्य है और यह प्रेम रूढिग्रस्त तथा सहज प्रतिभा जन्य भेद से दो प्रकार का होता था। रूढिग्रस्त प्रेम का वर्णन ज्यादातर भारवि, माघ इत्यादि के काव्यो में प्राप्त होता है तथा सहज प्रतिभाजन्य प्रेम का वर्णन हमे वाल्मीकि तथा कालिदास के काव्यो मे प्राप्त होता है जिसमे साधना के सहारे दोषपूर्ण काम भी पूर्ण शुद्ध और परिष्कृत प्रेम के रूप मे परिणत हो गया है। सस्कृत काव्यो की सृष्टि मूलत राजदरबारो मे हुई जहॉ शिष्टता एव सभ्यता का प्राधान्य था। इसलिए भारतीय समाज की सदाचार–सम्पन्नता ने कभी भी काव्यो मे प्रेम वर्णन एव अश्लीलता को प्रश्रय नहीं दिया। देशप्रेम तथा देशोन्नति की भावना सस्कृत साहित्य में पूर्ण रूप से निबद्ध है। इससे प्रतीत होता है कि सस्कृत साहित्य के उद्‌गम का युग पूर्ण स्वतत्रता का काल है जो सभ्य मानवो तथा जातियो को भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास की ओर अग्रसर कर रहा था।

वैदिक युग से ही यह कल्पना बद्धमूल है कि भारतीय आर्य 'सप्तसिन्धु' प्रदेश के ही निवासी है कहीं बाहर से आकर यहॉ बसने वाले जीव नही है। फलत इस मातृभूमि के प्रति प्रेम होना स्वाभाविक ही है। वेदों मे यही मातृरूपा पृथिवी देवता के रूप मे वर्णित है यथा – "द्योर्मे पिता पृथ्वी मे माता" –– (काठकसहिता)

अथर्ववेद का पृथ्वीसूक्त तो वैदिक आर्यों के साक्षात् राष्ट्रीय प्रेम का समुज्ज्वल प्रतीक है। इसमे 63 मत्रो के द्वारा पृथ्वी के यथार्थ स्वरूप का जो साहित्यिक वर्णन प्रस्तुत कियागया वह अत्यन्त ही महनीय एव श्रेयस्कर है। पृथिवी की महिमा का यह असाधारण वर्णन वर्णन नही है अपितु आथर्वण ऋषि के हृदय से निकले उनके उद्गार है जिनमे भारतीयता की अमिट छाप प्रतिविम्बित होती है।

सत्य बृहद्ऋतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञ. पृथिवी धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरू लोक पृथिवी नः कृणोतु।।
यस्याश्चतस्त्र प्रदिश· पृथिव्या यस्यामन्न कृष्टयः संवभूव·।
या विभर्ति बहुधा प्राणादेजत् सा नो भूमिर्गोष्वव्यन्ने दधातु।।"

( अथर्ववेद – 12वा काण्ड)

ऐसी महनीय एव मातृरूपिणी पृथिवी को जननी के सदृश आदर एव सत्कार की दृष्टि से देखना हम भारतीयो का कर्तव्य था। इसी प्रकार वैदिक आर्य नदियो को भी देवताओ के समान आदर एव सम्मान की दृष्टि से देखते थे। ऋग्वेद मे वर्णित प्रख्यात नदीसूक्त 10/75 अपने महनीय स्वरूप को अभिव्यक्त करता है। ये केवल जलमयी वस्तुए नही थी। प्रत्युत कल्याण एव अभय प्रदान करने वाली चेतन युक्त सजीव देवता थी। इसलिए लोग इनसे अपनी–अपनी मनोकामनाओ को पूर्ण करने के लिएण आग्रह करते थे– इसका प्रमाण हमे विश्वामित्र नदी सवाद सूक्त मे प्रत्यक्ष ही दृष्टिगत होता है–

"रमध्व मे वचसे सोम्याय, ऋृतावरीरूप मुहूर्तमेवै·।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषा, वस्युरह्वे कुशिकस्य सूनु.।।"

विश्वामित्रनदीसूक्त

स्नान के समय जिस क्षण भारत की सप्त सिधुओ से अपने जल मे समावेश के लिए इस मन्त्र मे प्रार्थना करता है उस समय उसके चित्त पर भारतवर्ष के अखण्ड रूप

का दृश्य उपस्थित हो जाता है– इससे प्रतीत होता है कि आर्य देश की एकता तथा अखण्डता की इससे बढकर और क्या शोभन कल्पना की जा सकती है?

आगे चलकर राष्ट्र का यह समष्टि कल्याणकारक भाव, एकता और अखण्डता का भाव पुराणो मे और भी मुखरित हो जाता है। प्रत्येक पुराण अपने विषय वैविध्य मे नदियो, स्रोतो, तडागो, वनो, पर्वतो, पहाडो, आश्रमो, तीर्थो इत्यादि प्राकृतिक दृश्यो के प्रति वर्णन करने मे जागरूक हो जाता है।[1]

भारत की एकता अखण्डता तथा प्रभुता का यह प्रसाद विष्णु पुराण, भागवत् पुराण इत्यादि पुराणो मे परिलक्षित हो रहा है। सुरमुनि भारतवासियो की प्रशसा के गुण गाते है क्योकि यह भारत देश स्वर्गिक सुखो तथा मोक्ष प्रदायी पुण्यो को देने वाला निष्कण्टक मार्ग है, और देवता होने के बाद भी यहॉ जन्म लेकर मनुष्य अपने निस्वार्थमय कल्याण का सम्पादन करता है।

गायन्ति देवा· खलुगीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्गभूते भविन्त भूप पुरूषा· सुरत्वात्।।

विष्णुपुराण – 2/3/25
ब्रह्म पुराण –

भागवत् पुराण के शब्दों में –

कल्पायुषां स्थानजयात् पुनर्भवात् क्षणायुषा भारतभूजयोवरम।
क्षणेन मर्त्येन कृत मनस्विन· सन्यस्य संयान्त्यभयं पद हरे·।।

भागवत्पुराण – 5/19/23

इस प्रकार धर्मशास्त्रो, पुराणों, स्तोत्रो में वर्णित भारत की एकता, अखण्डता, धार्मिक विविधता के दृश्यों के वर्णित होने से यह भलीभॉति मालूम हो जाता है कि धार्मिक ग्रन्थो मे भी राष्ट्रमयी एकता का निदर्शन एव प्रसार था।

इसका प्रमाण तो हमे भारतवर्ष के महनीय कवि कुलगुरू कालिदास के ग्रन्थों मे भी देखने को साक्षात् मिलता है। जिस पर आश्चर्य करने की कोई बात ही नही है।

---

1 गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि नमस्तुभ्यम् नमो नमः।। स्तोत्ररत्नावली

कुलगुरू कालिदास शिप्रा नदी के किनारे स्थित उज्जैनी मे प्रतिदिन महाकालेश्वर के बहुत बडे भक्त थे। भगवान् शिव के अष्टाङ्गमय स्वरूप का वर्णन उनके विभिन्न ग्रन्थो जैसे अभिज्ञानशाकुन्तल[1], विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम नाटक[2] तथा कुमारसम्भव आदि महाकाव्यों मे स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

इससे स्पष्ट है कि कालिदास का शिव की अष्टमूर्तियो के प्रति विशेष लगाव एव स्नेह था। इन अष्टमूर्तियो की स्तुति कालिदास के हृदय मे अखण्ड भूमण्डल की उज्ज्वल परिचायिका है।

इतना ही नही कालिदास को भारतवर्ष के मस्तक पर स्थित देवतात्मा हिमालय का वर्णन करना भी बडा प्रिय लगता था। उन्होने हिमालय का वर्णन सजीव चेतन प्राणी के रूप मे किया है। इनके समस्त काव्यो मे हिमालय का उदारता तथा भव्यता से जो वर्णन हुआ है– उसका कोई कवि सानी नही है। रघुवश, शाकुन्तल इत्यादि मे तो वह प्रसङ्ग वश प्रयोग किया है, किन्तु कुमारसम्भव जैसे सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य मे हिमालय का मानव से तादात्म्य स्थापित करते हुए सजीव देवतात्मा के रूप में चित्रण दर्शाया है।[3] इससे बडी रमणीय महनीयता कवि की क्या हो सकती है?

इस प्रकार सस्कृत–काव्य जगत् मे भारतीयो की राष्ट्र के प्रति प्रेम, बधुत्वभाव एव भाईचारे की झलक साथ ही राष्ट्रीयता का अपूर्व सन्देश, समन्वयवादिता, सहिष्णुता एव एकता की जो झलक दृष्टिगोचर होती है उसे हम स्वर्ग से भी श्रेष्ठ माने तो कोई अत्युक्ति नही होगी। विश्वभावना की अभिव्यक्ति इससे बढकर सुन्दर शब्दो मे नही की जा सकती।

"अयं निज. परोवेति गणना लघु चेतसाम्। सूक्ति–

विश्वबन्धुत्व की इस सौहार्दपूर्ण भावना को देखकर जनमानस का हृदय यह अकस्मात् कह उठता है – "सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया"

---

1 या सृष्टि स्त्रष्टुराद्या, वहति विधिहुत या हविर्या च होत्री,
ये द्वे काल विधत्त, श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्। अभि0 – 1/1
यामाहु सर्ववीज प्रकृतिरिति यया प्राणिन प्राणवन्त,
प्रत्यक्षाभि प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टा भिरीश ।।

2 अष्टाभिर्यस्य कृत्स्न जगदपि तनुभिर्विभ्रतो नाभिमान । मालविकाग्निमित्रम

3 अस्त्युत्तरस्या दिशि देवात्मा, हिमालयो नाम नगाऽधिराज ।
पूर्वाऽपरौ तोयनिधी वगाह्य, स्थित पृथिव्याइव मानदण्ड ।। कुमारसम्भव 1/1

ऐसी उदात्त जनजीवन की भावना तथा समन्वयात्मकता की अभिव्यक्ति ही भारतीय सस्कृति की, साहित्य की, श्रेष्ठ रचना की विशिष्टता है।

भारतीय सस्कृत काव्य के निर्माण की पूर्ण प्रेरणा मनीषी कवियो को रामायण तथा महाभारत जैसे महनीय राष्ट्रीय महाकाव्यों के अध्ययन से प्राप्त हुई। इसमे सशय करने का स्थान नहीं है रामायण तथा महाभारत के पाश्चात्य पद्धति से एपिक के अन्तर्गत होने पर भी उनकी रचना शैली तथा वर्ण्य विषय की विवेचना मे नितान्त पार्थक्य है। जिसका सङ्केत हमने पहले ही कर दिया है। भारतीय महाकाव्यो के विकास मे अह भूमिका वेदो की भी रही। जिनमे स्तुति परक मत्रो के अतिरिक्त दानशील उदार हृदय उदार राजाओ की प्रंशसनीय स्तुतिया भी विद्यमान है, जिन्हे वर्तमान समय मे हम गाथानाराशसी के नाम से सम्बोधित करते है। सहिता के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थो मे भी कतिपय कीर्ति सम्पन्न राजाओं की स्तुतियां मिलती है, जिनमे प्राचीन काल के अनेक ऐतिहासिक राजाओं के जीवन से सम्बद्ध विशिष्ट घटनाओं का साहित्यिक परिदृश्य प्राप्त होता है। ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित शुनशेप आख्यान, ऐन्द्र महाभिषेक, तथा शतपथ ब्राह्मण मे वर्णित पुरूरवा उर्वशी आख्यान ताण्ड्य ब्राह्मण मे वर्णित वत्स मेधातिथि इत्यादि आख्यानो में भी कतिपय गाथाए उद्धृत की गयी है। इस प्रकार के वर्णनो की सत्ता होने पर भी कवि मनीषियो ने इनका विशेषप्रयोग अपने काव्यो मे नहीं किया केवल महाकवि कालिदास ने अपने विक्रमोर्वशीयम् नाटक मे ऋग्वेदस्थ पुरूरवा एव उर्वशी के संवाद को साहित्यिक काया प्रदान कर स्वीकृत किया। परन्तु मुख्य रूप से रामायण तथा महाभारत ही आगे चलकर परवर्ती महाकाव्यों के अक्षय्य स्त्रोत एव आधार स्तम्भ बने।

रामायण एव महाभारत के अनन्तर कालिदास और अश्वघोष तक के बीच जो महाकाव्य लिखे गये वे केवल नाम मात्र शेष रह गये। कुछ विद्वद्गणो की यह भी भावना है कि प्राकृत काव्य सस्कृत काव्य को उत्तेजना देने वाला प्राचीनतम काव्य है जिसका अनुवाद करके ही सस्कृत भाषा मे काव्यो का जन्म हुआ। परन्तु विद्वानो की यह धारणा नितान्त भ्रामक है। इन मनीषियो ने प्राकृत भाषा के लिए प्राकृत ग्रन्थो का प्रचार करना चाहा, क्योकि प्राकृत का इतना प्राचीन उद्भव कभी था ही नही। अतएव यह मत पूरी तरह भ्रामक है।

सस्कृत काव्य का उदय जानने के लिए व्याकरण शास्त्र के आदि आचार्य दाक्षीपुत्र पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि के ग्रन्थो का अध्ययन नितान्त आपेक्षित है। यह तो विदित ही है कि दाक्षी पुत्र पाणिनि पश्चिमोत्तर प्रदेश मे पेशावर के समीपस्थ शालातुर ग्राम के रहने वाले थे जो वर्तमान मे 'लाहुर' के नाम से प्रसिद्ध है। दाक्षीपुत्र पणिनि का आविर्भाव काल 8वीशता0 ई0 पूर्व है। पाणिनि के आलोचक वार्तिककार कात्यायन दाक्षिणात्य थे। तथा चतुर्थ शता0ई0पूर्व विद्यमान थे। ऐसी किम्बदन्ती है कि पाणिनि ने जाम्बवतीपरिणय (पाताल विजय) तथा कात्यायन ने स्वर्गारोहण नामक काव्य लिखे है– जिसका सङ्केत पतञ्जलि (द्वितीय शता0 ई0पूर्व) के महाकाव्य मे 'वाररूच काव्य' कहकर किया गया है। इन प्रमाणो के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि महाकाव्य का उदय आठवी शता0 ई0 पूर्व मे ही पाणिनि के द्वारा ही हो चुका था। पाणिनि के नाम से कुछ उदाहरण पद्य के रूप मे सुभाषित ग्रन्थो मे मिलते है जो यह सिद्ध करते है कि सस्कृत काव्य का उद्गम बहुत पहले ही हो चुका था।[1] इसके अलावा एक और प्रमाण यह है कि पाणिनि के नाम से सुभाषित पद्य केवल सूक्तिग्रन्थो मे ही उपलब्ध नही है, बल्कि कोशग्रन्थो, अलङ्कार शास्त्रीय ग्रन्थो आदि मे उद्धृत मिलते है।[2]

लेकिन उक्त मत को लेकर पुरातत्त्ववेत्ताओ मे बडा विवाद था उनका कहना है कि ये कविताए वैयाकरण पाणिनि की है या अन्य किसी पाणिनि नामधारी कवि की? दोनो मे भेद है या अभेद। पीटर्सन, डा0 भण्डारकर आदि विद्वान पाणिनि के सूत्रो की वेदतुल्य शुष्क भाषा और इन पद्यो की सरस अलङ्कृत भाषा में विषमता स्वीकार करते हुए यही कहते है कि इन श्लोको का रचनाकार पाणिनि वैयाकरण पाणिनि नहीं हो सकते। क्योकि प्रौढालङ्कृत काव्यो का उदय वैयाकरण पाणिनि से बहुत इधर का ही है। उस समय सरल एवं सीधी भाषा मे ही लोगो की रचनाए होती थी। इतनी परिष्कृत और अलङ्कृत भाषा मे नहीं। इनके मत का खण्डन करते हुए डा0 पिशेल, औफ्रेक्ट आदि विद्वान कहते है कि पाणिनि को केवल एक शुष्क काव्य व्याकरण का ही प्रणेता मानना भारी भूल है। वे एक बहुत अच्छे कवि एव वेत्ता थे। उनका हृदय भले ही शुष्क

---

1 सूक्ति ग्रन्थो मे राजशेखर ने पाणिनि की प्रशसा करते हुए लिखा है–
"नम पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह।
आदौ व्याकरण काव्यमनु जाम्ववतीजयम्।।

2 उपोढरागेण विलोल तारक तथा गृहीत शशिना निशामुखम्।
यथा समस्त तिमिराशुक तया पुरोऽपि रागाद् गलित न लक्षितम्।। ध्वन्यालोक– पृ0 39

एव नीरस व्याकरण के नियमो का भण्डार हो, परन्तु वह सरस कमणीय काव्य कला का सुकुमार आकर भी था। रही बात अलङ्कृत एव परिष्कृत भाषा की तो क्या सरल एव सहज मार्ग द्वारा प्रवर्तित काव्य के दर्शन हमे वेद मे नही मिलते। अलङ्कारो के चाकचिक्य की अनुपम दर्शनीय छटा क्या वेद मे भी सहृदय को नही झकझोरती। अत जब वेद मे ही इतने परिष्कृत एव भावमण्डित शब्दो की लडिया विद्यमान मिलती है तो फिर हमे पाणिनि के ग्रन्थो एवं पद्यो मे उपलब्ध अलङ्कारो के वैभवशाली वर्णन से हमे क्या घबडाना? अत हमे पाणिनि और वैयाकरण पाणिनि के विषय मे भेद न करते हुए दोनो को वैयाकरण पाणिनि ही मानना चाहिए और पहले लिखे गये पद्यों को उन्ही के द्वारा रचित मानना चाहिए।

इसके अलावा 'सदुक्तिकर्णामृत' मे विशिष्ट कवि प्रशसा के विषय मे उद्धृत एक पक्ष मे भी रघुकार, भारवि, भवभूति, दाक्षी पुत्र पाणिनि जैसे उत्कृष्ट कवियो का नाम उल्लिखित है।[1] महाभाष्य के अनेक स्थलो पर दाक्षिपुत्र पाणिनि का सङ्केत पग–पग पर उपलक्षित है।[2]

औचित्य सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य क्षेमेन्द्र ने भी अपने 'सुवृत्ततिलक' नामक ग्रन्थ मे पाणिनि के सर्वाधिक प्रिय उपजाति छन्द को चमत्कार का सार बतलाया है। इसके अलावा यह भी एक बहुत महत्वपूर्ण बात है कि पाणिनि यदा–कदा फुटकर पद्य लिखने वाले कोई साधारण कवि नही थे, बल्कि संस्कृत साहित्य के सर्वप्रथम महाकाव्य लिखने का श्रेय उन्ही को प्राप्त है। जिस महाकाव्य का नाम कही तो पातालविजय और कही 'जाम्बवतीजय' प्राप्त होता है। 18 सर्गो मे निबद्ध इस प्रसिद्ध महाकाव्य मे श्रीकृष्ण का पाताल जाकर जाम्बवती को लाने के लिए जो प्रयास करना पडा उसी की कथा से सवलित है। अतः 'पातालविजय' जाम्बवतीविजय का नामान्तर मात्र है। अतः कोई प्रमाण न मिलने के कारण वैयाकरण पाणिनि तथा कवि पाणिनि की एकता मे अविश्वास के लिए कोई स्थान नही है।

---

1 सुबन्धौ भक्तिर्न क इह रघुकारे न रमते
धृतिर्दाक्षी पुत्रे एति हरिश्चन्द्रोऽपि हृदयम्।
विशुद्धोक्ति शूर प्रकृति मधुरा भारविगिर–
स्तथाप्यन्तर्मोद कमपि भवभूतिर्वितनुते।। सस्कृत साहित्यकार इतिहास – बलदेव उपाध्याय

2 सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षीपुत्रस्य पाणिने" महाभाष्य– 1/1/20 पर

पाणिनि की कविता मे सरसता एव माधुर्य का समावेश है। अलङ्कारो का आकर्षक प्रयोग मानस–पटल मे अनोखी विचित्रता उत्पन्न कर देता है। उत्प्रेक्षा के सहज प्रयोग से ह्रदय मे आनन्द की लहरे उठने लगती है। श्रृङ्गार का विचित्र वर्णन बडा ही मनमोहक है। प्राकृतिक उपमानो के दृश्य अत्यन्त सजीव एव मनमोहक है।

निरीक्ष्य विद्युन्नयनै· पयोदो मुखं निशायाममिसारिकाया ।

धारानिपातै सह किन्नु वान्तश्चन्द्रोऽयमित्यार्ततर ररास।।

वर्षाऋतु मे बादलो की प्रचण्ड गर्जना हो रही है। पाणिनि के मत मे यह रसहीन गर्जना नही है, प्रत्युत उनका करूण आर्त्तनाद है। तात्पर्य यह है कि, रात्रि के समय अभिसारिका के मुखमण्डल को बिजली रूपी ऑखो से देखकर मेघो को यह सन्देह हो रहा है कि कही हमारे धारा सम्पात के साथ–साथ चन्द्रमा भूमि पर तो नही गिर पडा? यदि ऐसा नही हैतो गहन अन्धकार में अभिसारिका का इतना चमकीला चेहरा कहॉ से आया? नायिका के कान्तियुक्त मुख को देखकर उन्हे चन्द्रमा का सन्देह हो रहा है। इस सन्देह से आशङ्कित हो वे इतना करूण आर्त्तनाद कर रहे हैं।

पाणिनि ने प्राकृतिक वर्णनो पर विलक्षण कल्पना की सृष्टि की है शरत्काल का समय है चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब इस समय निर्मल हो जाता है, परन्तु आकाश मे बादलो के न होने से सूर्य की गर्मी पहले से भी और अधिक तीव्र हो जाती है–

पाणिनि की सम्मति मे शरद् का व्यवहार नायिका के समान प्रतीत होता है–

ऐन्द्र धनु पाण्डुपयोधरेण शरद् दधानार्द्रनखक्षताभम्।

प्रसादयन्ती सकलङ्कमिन्दु ताप रवेरभ्यधिकं चकार।।

नायिका के समान शुभ्रपयोधरो (मेघ तथा स्तन) पर नखक्षत के समान रग बिरगे इन्द्रधनुष को धारण करती हुई शरद्ऋतु कलङ्की चन्द्रमा (मानो उपनायक) को प्रसन्न (निर्मल) कर रही है और साथ ही साथ सूर्य (नायक) के ताप (मानसिक दु.ख तथा गर्मी) को भी अधिक बढा रही है।

वररूचि के नाम से भी कुछ सूक्ति पद्य मिलते है। सुभाषितावली शार्ङ्गधर पद्धति मे ही इनके पद्य पाये जाते है। इसके अतिरिक्त 'सदुक्तिकर्णामृत' मे भी कुछ वररूचि कृत श्लोक मिलते है। यह वररूचि कौन थे– इस विषय मे कुछ भी कहना

अत्यन्त दुष्कर प्रतीत होता है। पाणिनीय व्याकरण पर वार्तिक लिखने वाले कात्यायन का नाम भी वररूचि था। दूसरी ओर प्राकृतप्रकाश नामक प्राकृत के भी निर्माता कोई वररूचि हो गये थे। कवि वररूचि, जिनके पद्य सूक्ति ग्रन्थो मे मिलते है, इन दोनो से अलग है या एक। इसे एकदम सही रूप मे बतलाना अत्यन्त कठिन है। विद्वद्गणो की मान्यता है कि कवि वररूचि तथा कात्यायन दोनो एक ही व्यक्ति है, क्योकि महाभाष्यकार पतञ्जलि ने अपने ग्रन्थ महाभाष्य मे 'वाररूचकाव्य' कहकर किसी काव्य का ग्रन्थ का उल्लेख किया है, किन्तु सम्प्रति यह ग्रन्थ उपलब्ध नही है जिसका यथार्थ नाम स्वर्गारोहण काव्य मिलता है।

यथार्थता कथ नाम्नि मा भूद् वररूचेरिह।
व्यधत्त कण्ठाभरण य. सदारोहण प्रिय ।।[1]

यदि वार्तिककार कात्यायन ही इन श्लोको के रचयिता मान लिए जॉय तो वररूचि का समय ईसा से पूर्व चौथी शता0 मे होना चाहिए। 'कथासरित्सागर' नामक ग्रन्थ मे तो स्पष्ट रूप से यह वर्णित है कि कात्यायन वररूचि पाटलिपुत्र के प्रसिद्ध राजा नन्द के महामंत्री थे। इन्होने वही के वर्ष उपाध्याय से सभी विद्याएं पढी थी। व्याकरण के तो आप प्रकाण्ड पण्डित थे ही। इनका गोत्रज नाम कात्यायन था। इनकी कविता वडी ही मनोहरिणी है जिसमे प्रसाद एवं माधुर्य गुणो का सन्निवेश है। वर्णन सरल होने पर भी सजीव है। तथा अलङ्कारो से मण्डित है।

महाभाष्यकार प्रणेता 'पतञ्जलि' (150ई0पूर्व) ने अने ग्रन्थ महाभाष्य मे द्रष्टात रूप मे कई श्लोकों को उदधृत किया है, जिनके अनुशीलन से सस्कृत काव्यधारा की प्राचीनता स्वतः सिद्ध होती है। पद्यमय काव्य के साथ मण्मय काव्य की भी प्राचीनता का पता पतंञ्जलि स्पष्ट रूप से देते है। 'लुब् आख्यायिकाभ्यो बहुलम्' वार्तिक के व्याख्या प्रसग मे इन्होने वासवदत्ता, सुमनोत्तरा तथा भैभरथी नामक अनुपलब्ध आख्यायिका ग्रन्थो का नाम निर्देश किया है जिससे मद्यकाव्य की लोकप्रियता का स्पष्ट ज्ञान हमे मिलता है।[2] इसके अतिरिक्त महाभाष्य मे निर्दिष्ट काव्यग्रन्थ काव्यरचना की

---

1 वररूचि के काव्य का यथार्थ नाम 'स्वर्गारोहण' था। इसका परिचय 'कृष्णचरित काव्य' के इस पद्य से मिलता है–
य स्वर्गारोहण कृत्वा स्वर्गमानीत दान् भुवि।
काव्येन रूचिरेणैव ख्यातो वररूचि कवि ।।

2 सस्कृत साहित्य का इतिहास – डा0 पुष्पा गुप्ता

लोकप्रियता तथा व्यापकता की ओर सङ्केत करते है। 'वाररूचंकाव्य' पतञ्जलि के द्वारा निर्दिष्ट अद्यापि अनुपलब्ध एक ऐसा ही काव्य है। उस युग मे नाटको की रचना तथा अभिनय जनसाधारण के मनोरञ्जन का एक सामान्य साधन माना जाता था। पतञ्जलि ने कसवध तथा बालिबन्धन नाटको का ही उल्लेख नही किया है प्रत्युत उनके प्रत्यक्ष अभिनय का भी स्पष्ट निर्देश किया है। अत ई० पूर्व द्वितीय शतक में काव्य के नाना प्रकारो की रचनाये की जाती थी तथा जनता मे उनकी पर्याप्त लोकप्रियता तथा प्रसिद्धि थी।

छन्द शास्त्र के अध्ययन एव परिशीलन से भी काव्य की पुरातनता विशद रूपेण प्रमाणित होती है। आचार्य पिङ्गल ने अपने ग्रन्थ छन्दसूत्र मे विविध प्रकार के लौकिक एव वैदिक छन्दो का वर्णन किया है। वैदिक छन्दो से लौकिक छन्दो का विकास तथा अभ्युदय गवेषणा का एक स्वतत्र विषय है, परन्तु नाना नवीन छन्दो की गवेषणा एव कल्पना अवश्य ही तत्सम्बद्ध प्रचुर काव्य के निर्माण की ओर सङ्केत कर रही है। नवीन लौकिक छन्दो का नामकरण भी भिन्न–भिन्न साधनो के आधार पर आश्रित था। कतिपय नाम तो छन्दो की स्वत प्रवृत्ति, गति तथा लय के कारण प्रतीत होते है, जैसे– मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, वेगपती, त्वरित गति आदि। कतिपय पुष्प तथा पौधो के नाम पर है। जैसे माला और मञ्जरी कतिपय पशुओ के शब्द तथा आचरण के आधार पर है, जैसे शार्दूलविक्रीडित, अश्वललित, हरिणीप्लुता, हसरूता, तथा गजगति। परन्तु अधिकाश छन्दो का नाम सुन्दरियो के नाम है– रूचिरा, प्रमदा, प्रमिताक्षरा, मञ्जुभाषिणी, स्त्रग्धरा। इन नामो की समीक्षा के आधार पर हम इतना ही कह सकते है कि इन छन्दो का नाम श्रृङ्गारात्मक विषयो में प्रथम प्रयोग के आधार पर है। डा० याकोबी का कथन है कि इन छन्दो का निर्माण तथा सस्कृत काव्यो मे प्रयोग विक्रम पूर्व शताब्दियों से सम्बन्ध रखता है और महाराष्ट्री प्राकृत में लिखित श्रृङ्गरात्मक गीतिकाव्य की रचना की स्फूर्ति तथा उत्तेजना सस्कृत गीति काव्यो से प्राप्त हुई।

इस प्रकार सस्कृत भाषा मे काव्य का उदय विक्रमपूर्व शताब्दियो की एक महत्त्वशाली घटना है। पतञ्जलि से आरम्भ कर अश्वघोष तक के काव्यो की अप्राप्ति होने से काव्यो का पर्याप्त परिचय हमे नही मिलता। ऐसा प्रतीत होता है कि सस्कृत काव्य का पूर्ण उदय विक्रम संवत् के प्रतिष्ठापक विक्रमादित्य के समय हुआ। काव्य अपने रूचिर निर्माण तथा रचना के निमित्त शान्त वातावरण, आर्थिक समृद्धि तथा

सामाजिक शान्ति की जितनी अपेक्षा रखता है उतनी वह किसी गुणग्राही आश्रयदाता की प्रेरणा की भी।

महाकाव्य का स्वरूप प्रारम्भ से ही युगानुकूल बदलता रहा है। अतएव काव्यशास्त्रीयो द्वारा की गयी महाकाव्य की परिभाषा भी एकरूप न होकर समय–समय पर बदलती रही है। सस्कृत साहित्य मे महाकाव्य की परम्परा तथा महाकाव्यो की अक्षय्यनिधि विश्व–साहित्य मे अछूता स्थान रखती है। व्यास, वाल्मीकि और कालिदास ने महाकाव्य के प्रणयन का जो क्रम ईसा पूर्व शताब्दियो पहले आरम्भ किया था वह सत्रहवी शताब्दी ई0 तक अविच्छिन्न चलता रहा। महाकाव्यो की रचना कौशल शैलीगत चमत्कार आदि के सतत परिवर्तनशील होने के फलस्वरूप काव्यशास्त्रियो ने लक्ष्य ग्रन्थो का गहन अध्ययन करके उनकी समीक्षा ही नही की, अपितु तदनुसार महाकाव्य के विद्यमान लक्षण मे परिमार्जन– सशोधन भी किया। यही प्रवृत्ति पाश्चात्य देशो मे भी महाकाव्य की परिभाषा अथवा उसका लक्ष्य बताने के प्रसङ्ग मे पायी जाती है। वहॉ भी विद्यमान आदर्शभूत लक्ष्य ग्रन्थ को देखकर ही महाकाव्य का स्वरूप वर्णन किया। अरस्तू ने होमर के इलियड तथा ओडेसी महाकाव्यों को लक्ष्य मानकर महाकाव्य के लक्षण बताये। हमारे देश मे रामायण, महाभारत को आदर्शभूत आकर महाकाव्य मानकर काव्यशास्त्रियो ने महाकाव्य का स्वरूप वर्णन किया है। उसके बाद कालिदास के महाकाव्य समालोचना के मानक व आधार बने। वाल्मीकि, व्यास, च्यवन आदि यदि कालिदास के उपजीव्य थे तो कालिदास अपने परवर्ती सस्कृत के प्राय सभी महाकवियो के लिए उपजीव्य बने।[1] कालिदास के रघुवश भहाकाव्य को देखकर ही साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने महाकाव्य की परिभाषा मे संशोधन किया जिसके अनुसार भामह की परिभाषा में परिवर्तन करते हुए उन्होंने यह माना कि महाकाव्य वह भी होगा जिसमे एक वश के अनेक व्यक्तियो का वृत्त भी वर्णित हो–

सद्वश क्षत्रियोवापि धीरोदात्त गुणान्वित.।
एक वश भवा भूपा· कुलजा बहवोऽपि वा।। सा0 दर्प0 6/316

सामाजिक प्रगति के साथ महाकाव्यों के गतिशील होने की अपरिहार्यता को ध्यान मे रखते हुए ही पाश्चात्य विद्वानो का यह अभिमत है कि काव्यरूपों का

---

1 सस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ0 रामचन्द्र मिश्र

विभाजन ही निरर्थक है। कला के क्षेत्र में लिरिक (गीतिकाव्य) महाकाव्य, नाटक, उपन्यास आदिका वर्गीकरण नही किया जा सकता। यदि ऐसा भेद किया जाय तो वह कृत्रिम होगा, क्योकि एक तो आत्मगत और वस्तुगत भावो की पृथक सत्ता नही है, दूसरे कलाविद् एव कवि सदैव काव्यशास्त्रीय नियमों का उल्लघन करते रहते है। प्रत्येक उच्चकोटि की कलात्मक कृति मे कलाविद् अपने पूर्ववर्ती विधानो की अवहेलना करके समीक्षको को बाध्य कर देता है कि वे शास्त्रीय प्राविधानो मे परिवर्तन करे। अतएव परिभाषाए बार–बार बनती और सुधरती रहती है।

महाकाव्य के स्वरूप को भली–भॉति समझने के पूर्व यह उपयोगी प्रतीत होता है कि इस सम्बन्ध मे आलङ्कारिकों द्वारा समय–समय पर दिये गये लक्षणो पर विहङ्गम दृष्टि डाल ली जाय। काव्यशास्त्र पर सबसे प्राचीन ग्रन्थ भरतमुनि का नाट्य शास्त्र है। भरत के भी पूर्व यास्क के निरूक्त एवं पाणिनि की अष्टाध्यायी मे काव्य विषयक उल्लेख मिलते है किन्तु इनसे महाकाव्य की परिभाषा पर कोई प्रकाश नहीं पडा है। तदनन्तर अग्निपुराण मे सर्वप्रथम काव्य स्वरूप का उल्लेख मिलता है। अग्निपुराण मे महाकाव्य की परिभाषा इस प्रकार की गयी है– महाकाव्य का विभाजन सर्गो मे होता है– इसका आरम्भ सस्कृत से होता है।[1]

स्वरूप को न छोडते हुए अन्य भाषा प्राकृत आदि से आरम्भ करना भी दोष नही है। इसका इतिवृत्त इतिहास की कथा से सम्बद्ध हो अथवा सभ्यों मे प्रचलित हो। मत्रणा, दूत प्रेषण, युद्ध आदि का अति विस्तार न हो। शक्वरी, अति जगती, अतिशक्वरी, त्रिष्टुप्, पुष्पिताग्रा, वक्त्रादि छन्दो से समन्वित हो, सर्गान्त मे छन्द परिवर्तन हो और सर्ग अत्यन्त सक्षिप्त न हो। अतिशक्वरी आदि छन्दों के साथ–साथ कोई सर्ग मात्रा छन्दो से भी रचित होना चाहिए। जिस पद्धति में सज्जनो का अनादर होता है वह निन्दित है अत यहॉ त्याज्य है। नगर वर्णन, समुद्र, पर्वत, ऋतु, चन्द्र, पादप, उद्यान, जलक्रीडा, उत्सवों तथा दूतीवचन, कुलटाओं के आश्चर्यजनक चरित्रो के साथ–साथ प्रगाढ अन्धकार प्रचण्ड पवन आदि लोकातिशायी तत्त्वो की चर्चा से महाकाव्य संयुक्त होना चाहिए। सभी प्रकार की रीतियों से समन्वित, सभी भावों से सकलित हो इस प्रकार के संयुक्त गुणो से युक्त महाकाव्य का रचयिता महाकवि कहलाता है।

---

1 अग्निपुराण – अध्याय – 337 / 52

इसके अनन्तर प्रथम आचार्य भामह ने विधिवत् महाकाव्य की परिभाषा दी भामह ने अपने ग्रन्थ काव्यालङ्कार मे महाकाव्य का लक्षण इस प्रकार किया है।

"सर्गबन्धो महाकाव्य महताञ्च महच्च यत्।
अग्राम्यशब्दमर्थ्यं च सालङ्कार सदाश्रयम्।।
मन्त्रदूत प्रयाणाजिनायकाभ्युदयैश्च यत्।
पञ्चभि सन्धिभिर्युक्त नाति व्याख्येयमृद्धिमत्।।
चतुर्वर्गाभिधानेऽपि भूयसार्थोपदेशकृत्।
युक्त लोकस्वभावेन रसैश्च सकलै पृथक्।।
नायक प्रागुपन्यस्य वशवीर्यश्रुतादिभि ।
न तस्यैव वध ब्रूयादन्योत्कर्षाभिधित्सया।।
यदि काव्यशरीरस्य न स व्यापितयेष्यते।
न चाभ्युदयभाक्तस्य मुधादौ ग्रहणस्तवौ।।[1]

महाकाव्य का यह प्राचीनतम उपलब्ध लक्षण है। इसमे महाकाव्य सम्बन्धी कोई भी मौलिक एव आधारभूत विशेषता छूटी नही है। भामह के अनुसार काव्य उसे कहेगे जो सर्गबद्ध, महान चरित्रो से सम्बद्ध, आकार मे बडा, ग्राम्य शब्दो से रहित, अर्थसौष्ठव से सम्पन्न, अलङ्कार से युक्त सदाश्रित मत्रणा दूत प्रेषण, अभियान युद्ध नायक के अभ्युदय तथा नाटकीय पञ्च सन्धियो से समन्वित अनति व्याख्येय एवम् ऋद्धिपूर्ण हो यो तो उसमे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारो का निरूपण हो, किन्तु प्रधानता अर्थ की रहे, लौकिक व्यवहार का अतिक्रमण न हो तथा सभी रस असङ्कीर्ण रूप से वर्तमान हो।

भामह के बाद आचार्य दण्डी ने काव्यादर्श मे महाकाव्य के सभी लक्षणो को अङ्गीकार करते हुए उसके स्वरूप को उद्घोषित किया। इनका महाकाव्य लक्षण सर्वप्राचीन माना जाता है। इनका कहना है कि– नायक चतुरोदात्त होता है तथा प्रबन्ध रसानुभूति प्रधान होता है। इसके अलावा पूर्ववर्ती सभी विशेषताएं इसमे भी उपलब्ध रहती है। उनका यह भी कहना है कि लोकरञ्जन महाकाव्य का लक्ष्य होता है।[2] इसके अनन्तर 'काव्यालङ्कार के रचयिता रूद्रट' ने महाकाव्य की परिभाषा दी। उन्होने महाकाव्य के कथानक में दो भेद बतलाये है– (1) उत्पाद्य (2) अनुत्पाद्य।[3] इसके

---

1 भामह कृत काव्यालङ्कार – 1/19–23
2 दण्डी– काव्यादर्श (1/14–19)
3. रूद्रट काव्यालङ्कार – 16/2–19

अतिरिक्त उन्होने महाकाव्य मे नायक के साथ प्रतिनायक एव अवान्तर कथानक (उपकथानक) को भी महत्त्वपूर्ण बतलाया है। इनकी महाकाव्य परिभाषा में महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह है कि– इन्होंने सामयिक युग के अनेकविध रूपो, वृक्षो, घटनाओ आदि को महाकाव्य मे अङ्कित करने के निर्देश किये है।

अन्तत आचार्य विश्वनाथ ने अपने पूर्ववर्ती सभी आचार्यों द्वारा की गयी महाकाव्य की परिभाषा को मात्र सकलित करके समवेत रूप में साहित्यदर्पण मे प्रस्तुत किया। उन्होने महाकाव्य की परिभाषा करते हुए कहा है–

"सर्गबन्धो महाकाव्य तत्रैको नायक· सुरः।
सद्वश क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।।
एकवशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।
श्रृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते।।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसा· सर्वे नाटकसन्धयः।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्।।
चत्वारस्तस्य वर्गा· स्युस्तैष्येकं च फलं भवेत्।
आदौ नमस्क्रियाऽऽशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।।
क्वचिन्निन्दा खलादीना सता च गुणकीर्तनम्।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घा· सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्तमय क्वापि सर्ग· कश्चन् दृश्यते।।
सर्गान्तेभाविसर्गस्य कथाया· सूचनं भवेत्।
सन्ध्यासूर्येन्दु रजनीप्रदोषध्वान्तवासर·।।
प्रातरमध्याह्न मृगयाशैलर्तुवन सागरा।
सभोगविप्रलम्भौ च मुनि स्वर्गपुराध्वरा।।
रणप्रयाणोपयममन्त्रपुत्रोदयादय।
वर्णनीयायथायोग साङ्गोपाङ्गा अमीइह।।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य, सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु।।[1]

जिसमे सर्गों का निबन्धन हो वह महाकाव्य कहलाता है। इसमे एक देवता या सद्वश क्षत्रिय जो धीरोदात्तत्वादि गुणों से युक्त हो नायक होता है। कही एक वश के

---

1 विश्वनाथ कृत – साहित्यदर्पण – षष्ठ परि0 पृ0 225

सत्कुलीन अनेक राजा भी नायक होते है। श्रृङ्गार, वीर और शान्त मे से कोई एक रस अङ्गी होता है अन्य रस गौण होते है। सब नाटक सन्धियॉ होती है कथा ऐतिहासिक या लोक प्रसिद्ध सज्जन सम्बन्धी होती है धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस चतुर्वर्ग मे से कोई एक उसका फल होता है। आरम्भ मे आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्य–वस्तु का निर्देश होता है। कही खलो की निन्दा और सज्जनो का गुण–वर्णन होता है। इसमे न बहुत छोटे न बहुत बडे। आठ से अधिक सर्ग होते है। उनमे प्रत्येक मे एक ही छन्द होता है, किन्तु अन्तिम पद्य (सर्ग का) भिन्न छन्द होता है। कही–कही सर्ग मे अनेक छन्द भी मिलते है। सर्ग के अन्त मे अगली कथा की सूचना होनी चाहिए। इसमे सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रात.काल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, सयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, सग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव साङ्गोपाङ्ग वर्णन होना चाहिए। इसका नाम कवि के नाम से (जैसे माघ) या चरित्र के नाम से (जैसे कुमार सम्भव) अथवा चरित्र–नायक के नाम से (जैसे रघुवश) होना चाहिए। कही इनके अतिरिक्त भी नाम होता है– जैसे भट्टि सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम रखा जाता है।

महाकाव्य साहित्य की एक विधा है। साहित्य किसी भी देश और समाज की सास्कृतिक एव आध्यात्मिक चेतना का सरस शब्दार्थ गुम्फित आनन्दमय पाक है।[1]

समाज की वह सास्कृतिक एव आध्यात्मिक चेतना युगानुकूल मान्यताओ को अपनाती हुई मानव समाज के साथ ही परिवर्तित परिवर्धित होती रहती है। अतएव महाकाव्य की विकास यात्रा मे समाज की सास्कृतिक चेतना एवं आध्यात्मिक आरोह की धाराए भी एक साथ बहती रहती है। समाज के ये परिवर्तनशील मूल्य एव मानक सामयिक महाकाव्यो मे प्रतिबिम्बित होते रहते है।[2]

महाकाव्य का यह मौलिक स्वरूप भूत, वर्तमान, भविष्य को एक साथ अपने अचल मे समेटता हुआ चलता है। इसी कारण समालोचको ने रामायण एव महाभारत को विकासशील महाकाव्य (एपिक आफ ग्रोथ) की संज्ञा दी है।

---

1 सस्कृत को रघुवश की देन – डा0 शङ्करदत्त ओझा
2 सस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय

पाश्चात्य आलोचको के मत से महाकाव्य दो प्रकार के होते है– (1) विकसित महाकाव्य (2) कलापूर्ण महाकाव्य। जिन्हे क्रमश एपिक आफ ग्रोथ तथा एपिक ऑफ आर्ट कहा जाता है।

विकसित महाकाव्य वह है– इस प्रकार के महाकाव्य मे किसी कथा को केन्द्र बनाकर समय–समय पर विभिन्न कवियो द्वारा प्रणीत अनेक उपकथाए एकत्र हो जाती है और इस प्रकार काव्य का आकार बढता जाता है यह वर्धनशीलता कुछ समय बाद समाप्त हो जाती है जैसे– ग्रीक महाकवि होमर का इलियड और ओडेसी नामक युगल महाकाव्य।[1] इनका वर्तमान परिष्कृत रूप होमर की प्रतिभा का फल है। परन्तु गाथाचक्रो के रूप मे वे प्राचीन काल से बन्दीजनो के द्वारा गाये जाते थे।

दूसरा कलापूर्ण महाकाव्य वह है– जिसे एक ही कवि अपनी काव्यकला से गढकर तैयार करता है। इसमे प्रथम श्रेणी के काव्यों के समग्र गुण विद्यमान रहते है परन्तु यह रहता है एक ही कवि की प्रौढ प्रतिभा का परिणाम। जैसे– लैटिन भाषा मे वर्जिल कवि द्वारा रचित इनीड महाकाव्य वर्जिल ने अपने लिए होमर को आदर्श माना और उन्ही की काव्यकला का पूर्ण अनुसरण अपने महाकाव्य मे किया। मिल्टन के पैराडाइजलास्ट तथा पैरेडाइस रिमेण्ड होमर, वर्जिल तथा दॉते के महाकाव्यो के समान उत्कृष्ट मान्य कलापूर्ण महाकाव्य है। इस दृष्टि से यदि संस्कृत काव्यो का वर्गीकरण किया जाय तो वाल्मीकि रामायण प्रथम श्रेणी मे रखा जायेगा तथा रघुवश एव शिशुपाल वध आदि महाकाव्य द्वितीय श्रेणी मे रखे जायेगे।

लौकिक संस्कृत मे कविता लिखने का उदय वाल्मीकि से हुआ। आदि कवि की करूण सरिता काव्य सरिता मे विगलित हो गयी तथा वाल्मीकि दूसरे प्रजापति बन बैठे और अश्रुतपूर्व सारस्वत रचना अड्कुरित हो उठी। उनके अन्तस् मे छिपी सहसा लौकिक भाषा और छन्द के परिधान मे अवगुण्ठित कविता फूट निकली। यह थी कवि मृगनाभि से निस्यूत काव्य कस्तूरिका की मलयानिली सुगन्धिः – 'मा निषाद प्रतिष्ठा'।

---

1 सस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय

उसी समय भारतीय काव्य की दिशा का परिचय सहृदयो को मिल गया। यही उनके काव्य का वैशिष्ट्य था। यही भावप्रवणता क्रौञ्चयुगल के वियोग से उत्पन्न वाल्मीकि के हृदयतल मे स्थित शोक को श्लोक बनाने मे कारण बनी। वाल्मीकि की इसी रसमयी पद्धति को हम सुकुमार मार्ग कह सकते है। रस ही उसका जीवन है स्वाभाविकता उसका भूषण है। कालिदास ने इस शैली के अपनाकर इतना यश अर्जन किया। इस पद्धति के दो विशिष्ट एव श्रेष्ठ कवि है– वाल्मीकि और कालिदास। कालिदास मे वाल्मीकीय शैली का उदात्त उत्कर्ष मिलता है कालिदास ने अपने आपको वाल्मीकि की कविता मे सिक्त कर दिया था। उनसे बढकर रामायण का भक्त शायद ही कोई दूसरा कवि मिले। वाल्मीकि को बिना समझे कालिदास का अध्ययन पूरा नही हो सकता। रघुवश महाकाव्य मे कालिदासने पूर्वसूरभि कहकर बाल्मीकि की ओर ही इशारा किया है[1]– इसके अलावा रघुवश मे ही रामायण को कवि प्रथम पद्धति कहा गया है।[2] कालिदास प्रकृति के प्रवीण पुरोहित थे उनकी दृष्टि मे प्रकृति तथा मानव का परस्पर सम्बन्ध विश्व मे विराजने वाली भगवद् विभूति की एक स्पष्ट अभिव्यक्ति है। इस निसर्ग भावना के समान ही कालिदास की कविता की रमणीयता है। अलङ्कारो का झङ्कार का युग वह न था। यद्यपि कालिदास की कविता मे अलङ्कारो का भव्य विन्यास है परन्तु यह विन्यास इतना भडकीला नही है कि पाठको का हृदय वर्ण्य वस्तु को छोडकर अलङ्कारो की छटा की ओर आकर्षित हो जाय उस अलङ्कार से वस्तु का सलोनापन बढता है जो बरबस सहृदय को अपनी ओर खींच लेती है। कालिदास की शैली को परवर्ती कुछ कवियो ने अपनाया। अश्वघोष के ऊपर तो कालिदास की स्पष्ट छाप है– गुप्तकाल के प्रशस्ति लेखक हरिषेण और वत्सभट्टि ने कालिदास के काव्यो का गहरा अनुशीलन कर उसी के आदर्श पर अपनी कविता लिखी इतना ही नही कालिदास की कीर्तिकौमुदी कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक फैल चुकी थी। भारतीय विद्वान् जिन–जिन उपनिवेशो में धर्म और सभ्यता के प्रचार के लिए गये वहाॅ उन्होंने कालिदास के काव्यो का प्रचार किया। इसलिए सुवर्णद्वीप, कम्बोज, जावा आदि देशो मे उपलब्ध सस्कृत शिलालेखो मे कालिदास की कविता का पर्याप्त अनुकरण पाया जाता है।

---

1 रघुवश – 1/4

2 रघुवश – 15/33

भारतीय सस्कृत वाड्मय का आदिस्त्रोत जिस सांस्कृतिक परिवेश मे विकसित एव परिवर्धित हुआ उसे इतिहासविदो ने "आश्रम सस्कृति की सज्ञा से विभूषित किया। आर्थिक दृष्टि से शायद वह कृषि युग था जिसमें ग्रामीण सस्कृति विकसित हुई। राजनीतिक दृष्टि से यह राजाओ का युग था जो कुलश्रेष्ठ सस्कृति का परिचायक है।

वैदिक काल के धर्मों मे, कलाओ मे, जीवन की उदात्तता निहित है। विभिन्न स्थानो मे काव्यमयी भावनाओ से पेशल उक्तिया यत्र–तत्र विद्यमान है, फिर भी परिष्कृत काव्य के विकास के लिए अभी भी उर्वर भूमि प्रस्तुत नही हुई थी। लौकिक सस्कृत साहित्य का जन्म भले ही तमसा के निर्जन आश्रम मे हुआ हो, किन्तु उसका विकास सस्कृति के उस परिवेश मे हुआ जिसे हम आर्थिक दृष्टिकोण से कृषि एव हस्तकला का युग, राजनैतिक दृष्टिकोण से राजाओ एव सम्राटो का युग, सामाजिक दृष्टि से चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के विकास का युग एव आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विविध दार्शनिक धाराओ का युग कह सकते है। सस्कृति की इस आधार शिला मे सस्कृत का जो साहित्य निर्मित किया गया उसके आदि प्रतीक रामायण एव महाभारत है। यह साहित्य एक ओर सम्राटो के राजकीय वैभव में तथा दूसरी ओर ग्राम्यों की सादगी मे विकसित एव परिवर्धित हुआ। वैदिक संस्कृत का यह ग्रामीण भाव सस्कृत साहित्य तक आते–आते नागरिक स्वरूप मे परिवर्तित हो गया।

सस्कृत साहित्य जिस युग मे लिखा गया उसी समय से श्रेष्ठ उपलब्धियो का आरम्भ होने लगता है। इसलिए यह कहने मे अत्युक्ति न होगी कि भारतीय संस्कृति मे जो सर्वश्रेष्ठ है उसकी अभिव्यक्ति सस्कृत साहित्य में हुई है और सस्कृति साहित्य मे जो सर्वश्रेष्ठ है उसकी अभिव्यक्ति कुलगुरू कालिदास मे हुई है।

इतिहास की व्यापकता, भावो की उदात्तता, विशदता, गम्भीरता तथा शिल्प विधि का अलौकिक चमत्कार, इन सभी दृष्टिकोणों से कालिदास काव्यकला के सुमेरू माने जा सकते हैं। कालिदास को काव्य प्रणयन की प्रेरणा किन कवियों से मिली एवं किन काव्यपद्धतियो से मिली। इस सम्बन्ध मे निश्चयपूर्वक अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योकि कालिदास का युग अभी विवादास्पद है, किन्तु यह निश्चित है कि कवि

कालिदास के प्रेरणास्त्रोत राष्ट्रीय महाकाव्य रामायण, महाभारत मे निहित थे। सास्कृतिक वातावरण भाव, भाषा, रचना विधान प्रत्येक क्षेत्र मे कालिदास ने इन ग्रन्थो से प्रेरणा प्राप्त की।

महाकवि कालिदास का आर्विर्भाव किस युग विशेष मे हुआ। इस विषय मे आज भी मतैक्य नही है।

उनके स्थितिकाल के विषय मे जितने आलोचक है उनके उतने ही विचार है। महाकवि कालिदास का स्थितिकाल प्रथम शता० से लेकर ग्याहरवी शता० तक दोलायमान है। उनके स्थितिकाल के विषय मे प्रचलित मुख्य रूप से दो मत ही सामने आते है–

1– प्रथम मत उन्हे प्रथम शता० ई० पूर्व घोषित करता है। इस मत के समर्थक है – सी०वी० वैद्य, के०सी० महोपाध्याय, वरदाचारी आदि।

2– दूसरे मत के समर्थक है– आर०डी० भण्डारकर, कीथ, स्मिथ, भोलाशकर व्यास, मैक्डानल तथा वासुदेवशरण मिराशी है। ये सभी विद्वान उनको भास एव अश्वघोष का परवर्ती मानते है।

## प्रथम मत की समीक्षा :–

कालिदास ने 'मालविकाग्निमित्र' मे अपने पूर्ववर्ती भास, सौमिल्ल और कविपुत्र का नाम लिया है। सौमिल्ल और कविपुत्र के विषय में तो हमे तो कुछ भी ज्ञात नहीं है किन्तु भास की रचनाए हमें उपलब्ध हुई है।[1] जिनमे स्वप्नवासवदत्ता एक महत्त्वपूर्ण नाटक है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कालिदास की स्थिति भास के पश्चात् हुई और क्योकि महाकवि ने महायान सम्प्रदाय के सस्थापक बुद्धचरित और सौन्दरानन्द के रचयिता अश्वघोष (प्र०शता०ई०) का उल्लेख न करके उनसे अपना अपरिचय व्यक्त किया है। इससे स्पष्ट होता है कि अश्वघोष कालिदास के परवर्ती थे न कि पूर्ववर्ती।

---

प्रथितयशसा भाससौमिल्लकविपुत्रादीना प्रबन्धानातिक्रम्य वर्तमान कवे। कालिदास कृतौ कथ वहुमान। मालविकाग्निमित्रम – 1/1 के बाद का गद्याश

क्योकि मालविकाग्निमित्रम् नाटक मे शुग वश का इतिहास यथेष्ट रूप से वर्णित है जो अन्य ग्रन्थो मे नही उपलब्ध होता है। ऐसा मालूम होता है कि कालिदास शुग नरेशो के समकालीन रहे होगे या उनसे बहुत ही समीप किसी समय हुए होंगे।

पूर्वोल्लिखित अनेक चर्चाओ से यह भलीभॉति ज्ञात होता है कि कालिदास अश्वघोष की पूर्ववर्ती है परवर्ती नही वे शुग नरेशो पुष्यमित्र और अग्निमित्र के समकालीन या ठीक बाद हुए होंगे। इसलिए कालिदास प्रथम शता0ई0पूर्व मे रहे होगे।

चूँकि हालकृत गाथासप्तशती (प्रथम शता0ई0पूर्व) में उज्जयिनी के नरेश विक्रमादित्य का सङ्केत किया गया है और गुणाढ्य कृत वृहत्कथा के आधार पर रचे गये कथासरित्सागर मे उज्जयिनी के परमार नरेश महेन्द्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य के पुत्र का उल्लेख किया गया है इसलिए यह सम्भव है कि विक्रमादित्य प्रथम शता0ई0 पूर्व मे उज्जयिनी के नरेश रहे होगे और कालिदास उनके समकालीन रहे होगे। यह स्मरणीय है कि विक्रमादित्य से अभिहित अन्य परवर्ती नरेश केवल विक्रमादित्य शब्द की उपाधि के रूप मे धारण करते थे न कि अभिधान के रूप में जबकि महेन्द्रादित्य का पुत्र विक्रमादित्य इस शब्द को उपाधि के रूप मे नही धारण करता था। इससे सिद्ध होता है कि यही व्यक्ति अपने नाम से सिहासनारोहण के पश्चात् विक्रम सवत् का प्रवर्तक हुआ होगा।

अत कालिदास के स्थितिकाल के विषय मे अधिक विस्तार मे न जाकर हम यही कहेगे कि उपर्युक्तसभी कारणो से कालिदास को ई0पू0 प्रथम शता0 मे मानना सर्वाधिक श्रेयस्कर एव शतप्रतिशत उचित है।

कविवर कालिदास के जीवन के विषय में भी प्रामाणिक रूप से कुछ नही कहा जा सकता। उनके वंश परिचय, माता–पिता, शिक्षा, गार्हस्थ जीवन तथा आजीविका से सम्बन्धित सभी सामग्री का अभाव है। उनके जीवन के विषय में अनेक किवदन्तियां प्रचलित है। कुछ लोग कवि के नाम का अर्थ लगाते है– 'काली का सेवक'। सम्भवत यह भी कहा जा सकता है कि यह नाम भी साधारणतया अपने अर्थ से निरपेक्ष रूप मे कवि को उसके माता–पिता ने दिया हो। एक अन्य जनश्रुति के अनुसार– कवि आरम्भ

मे महामूर्ख थे, किन्तु बाद मे विदुषी पत्नी विद्योत्तमा द्वारा प्रताडित होकर काली देवी की ध्यान चित्त होकर उपासना की जिसके प्रसाद से इनकी काव्य प्रतिभा स्वत उद्भूत हो गयी। एक अन्य किवदन्ती यह है कि कुछ विद्वान् इनका सम्बन्ध लड्का के राजा कुमारदास से करती है, और वही किसी वेश्या के घर मे मृत्यु होना बताती है। परन्तु यथार्थता तो यह है कि इन उक्त सभी अनुश्रुतियो मे कोई प्रामाणिकता प्रतीत नही होती, क्योकि उनके जीवन के सम्बन्ध मे अभी तक कोई यथार्थ प्रमाण नही मिल सका है। अतएव सम्यक रूप से उनके विषय मे कुछ भी नही कहा जा सकता।

कालिदास की स्थितिकाल के समान उनके जन्म स्थान से सम्बन्धित सभी प्रमाण अन्धकारमय है। उनका आविर्भाव किस स्थान मे और किस जगह मे हुआ। इस विषय मे सही उत्तर दे पाना आज भी एक कठिन समस्या का विषय बना हुआ है। क्योकि कोई भी अन्य ऐसे निश्चयात्मक प्रमाण उपलब्ध नही होते जिनके आधार पर इन सभी विकट समस्याओ का उचित समाधान प्रस्तुत किया जा सके। महाकवि की कृतियो के आधार पर उनके जन्म के स्थान के सम्बन्ध में चार मत प्रसिद्ध है–

1– प्रथम मत के अनुसार उनका सम्बन्ध मगध देश से जोडा जाता है, क्योंकि रघुवश महाकाव्य मे सुदक्षिणा को मागधी तथा दिलीप को मागधीपति सम्बोधित किया गया है।[1(क) (ख)]

2– दूसरा मत प्रो0 लक्ष्मीधर कल्ला का है जो कालिदास को काश्मीर देश का रहने वाला मानते है। उनका कहना है कि पूर्वमेघ मे मेघ कुबेर के सेवक यक्ष का सन्देश उत्तर दिशा को जाता है और काश्मीर देश की भी स्थिति उत्तर दिशा में ही है। इसके अलावा महाकवि कालिदास द्वारा वर्णित, कण्वाश्रम, कश्यपाश्रम, मालिनी नदी, शचीतीर्थ आदि अन्य स्थान भी काश्मीर मे ही है। इसके अलावा उनके समस्त काव्यो में काश्मीरी शैव धर्म से सम्बन्धित दृष्टान्तो का भी वर्णन है जो केवल काश्मीर की ही देन है।

---

1(क) सुखश्रवा मङ्गलतूर्यनिस्वना प्रमोदनृत्यै सह वारयोषिताम्
न केवल सद्मनि मागधीपते पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि।। रघुवश, 3/19

1(ख) उमावृषाङ्कौ शरजन्मना यथा यथा जयन्तेन शचीपुरन्दरौ।
तथा नृप सा च सुतेन मागधी ननन्दतुरस्त सदृशेन तत्समौ।। रघुवश–3/23

उक्त मत के प्रत्युत्तर मे हम कह सकते है कि कवि काश्मीर निवासी नही है। कवि द्वारा वर्णित भौगोलिक स्थानो का आधार पुराण न होकर महाभारत है और दूसरी बात यह है कि उक्त रीति–रिवाज एव परम्पराए काश्मीर प्रदेश तक ही सीमित थी। अत इस आधार पर उन्हे काश्मीर निवासी नहीं कहा जा सकता।

3– तृतीय मत के आधार पर कुछ विद्वान कालिदास को बगाल का निवासी मानते है। इसका सबस बडा कारण वह यह मानते है कि उन्होने धान की खेती का वर्णन बडे ही रमणीय ढग से प्रस्तुत किया है। किन्तु यह बात उचित नही प्रतीत होती क्योकि कालिदास ने रघुदिग्विजय के प्रसङ्ग में बगाल प्रदेश की पराजय का वर्णन बडा ही कठोरता पूर्ण ह्रदय से किया है। किसी भी व्यक्ति को साधारणता अपनी जन्मभूमि के प्रति ऐसे शब्द प्रयोग करना अच्छा नही लगता क्योकि सभी मनुष्य को अपनी जन्मभूमि से अटूट पारस्परिक स्नेह होता है। इस दृष्टि से कालिदास को बंगाल प्रदेश का मानना सर्वथा असङ्गत है।

4– चौथा एव अन्तिम मत कालिदास को उज्जयिनी का रहने वाला मानते है। इस मत के समर्थक महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री एवं विसेन्ट स्मिथ है– इनका कहना है कि कालिदास ने ऋतुसंहार मे सभी छह ऋतुओ के प्रसङ्ग मे मानव जीवन को आह्लादित करने वाले प्राकृतिक चित्रों का वर्णन किया जो मालवा प्रदेश की जलवायु से काफी मिलती जुलती है। यत्र–तत्र विन्ध्याचल का वर्णन भी स्पष्ट रूप से मिलता है। इसके अलावा मेघदूत में जिन नगरो, पर्वतों, नदियो का वर्णन प्राप्त होता है उसमे से अधिकतर स्थान मध्यभारत से सम्बन्धित है और उसमे उज्जयिनी का वर्णन कवि ने एक विशेष अभिप्राय से किया है जिसे प्रति कवि का एक अजीब आकर्षण था। इस आधार कालिदास को उज्जयिनी का ही मानना चाहिए।

उक्त मतों का अनुशीलन करने के पश्चात् यह सम्यक् रूप से कहा जा सकता है कि महाकवि कुलकुरू कालिदास के निवास का औचित्य उज्जयिनी के साथ है साथ ही साथ मालवा प्रदेश से भी उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा, क्योकि मेघ के अलकापुरी जाने के समय यक्ष मेध के मार्ग को निर्दिष्ट करता हुआ कहता है कि यद्यपि तुम्हारे मार्ग से उज्जयिनी का मार्ग कुछ टेढ़ा अवश्य पडेगा फिर भी तुम उज्जयिनी

होते हुए जाना ऐसा कहने मे कवि का उज्जयिनी के प्रति एक अजीब स्नेह प्रदर्शित होता हुआ दिखाई देता है जिससे यह भली भॉति विदित होता है कि कवि ने अपने जीवन का अधिकाश समय उज्जयिनी मे ही व्यतीत किया होगा।[1]

सम्भवत यह कहा जा सकता है कि कालिदास का जन्म उज्जयिनी के प्रान्तर भाग मे ही हुआ होगा।

कालिदास के काव्यो का सम्यक् अनुशीलन करने से यह विदित होता है कि उनके जीवन का अधिकाश भाग समाज के उच्च स्तरीय परिवारो राज्याश्रयो मे व्यतीत हुआ था। इसलिए वह समाज मे प्रचलित शिष्ट आचार–विचार, परिष्कृत भाषा तथा रीतिरिवाज से परिचित थे। सस्कृत भाषा तथा प्राकृत भाषा पर उनका असाधारण अधिकार था। रस, छन्द, अलङ्कार के वह प्रकाण्ड पण्डित थे। उपमा की सौन्दर्यता पग–पग पर उनके काव्यों मे परिलक्षित होती थी।

कालिदास जाति से ब्राह्मण एवं शिव के महान् उपासक थे। वे प्रकृति एव मानवीय भावनाओ के सूक्ष्म निरीक्षक थे। भौगोलिक क्षेत्र के ज्ञान से पूर्णतया बद्ध थे। इनके समस्त काव्यो मे वैदिक सहिताओ, ब्राह्मण ग्रन्थो, उपनिषदो, पुराणों स्मृतियो, धर्मशास्त्रो, रामायण, महाभारत साख्य, न्याय, वैशेषिक इत्यादि दार्शनिक ग्रन्थो इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, सगीतशास्त्र, आयुर्वेद ज्योतिष अनेक कलाओं का सम्यक् वर्णन मिलता है।

सस्कृत काव्य साहित्य मे कविकुलगुरू कालिदास के काव्यो का अद्वितीय स्थान है। काव्य शब्द से तात्पर्य है– गीतिकाव्य (खण्डकाव्य) तथा महाकाव्य दोनों से है। इन्होने दो खण्डकाव्यो ऋतुसहार, मेघदूत, दो महाकाव्यो कुमारसम्भव, रघुवश की रचना की। इसके अलावा मालविकाग्निमित्रम, विक्रमोर्वशीयम् और अभिज्ञानशाकुन्तल नामक रचनाए मानी जाती हैं। जिनमें प्रथम चार काव्य है अवशिष्ट तीन नाटक।

---

1 वक्र पन्था यदिपि भवत प्रस्थितस्योत्तराशा, सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरूज्जयिन्या।
विद्युद्दामस्फुरित चकितैस्तत्र पौराङ्गनाना लीलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि।।
पूर्वमेघ – 29

सुरभरती के विलास 'कविकुलगुरू' कालिदास सस्कृत साहित्य के अप्रतिम रत्न है। महाकवि कालिदास की कीर्ति कौमुदी समग्र भारत मे सातवी शती0 ई0 तक प्रसरित हो चुकी थी। काव्य मनीषियो ने उन्हे 'कनिष्ठिकाधिष्ठित' इस विरूत मे मण्डित कर उनकी महिमा का गुणगान करने लगे।

"पुराकवीना गणना प्रसङ्गे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासा" यह उक्ति उनके महत्त्व की दृष्टि से चरितार्थ ही है— भले ही उनके स्थितिकाल के अनिश्चय के कारण कालक्रम की दृष्टि से सत्य न हो। कालिदास का पहला उल्लेख पुलकेशिन द्वितीय के एहोल शिलालेख (634 ई0) मे हुआ है।

"स विजयतां रविकीर्ति· कविताश्रिम कालिदासभारवि कीर्ति·"

और लगभग इसी समय के बाण ने अपने हर्षचरित मे कालिदास की प्रशस्ति की है। "निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु" इससे प्रतीत होता है कि कालिदास इससे पूर्व रहे होगे। जिनके समय से सस्कृत के काव्य सहित्य का अभ्युदय और साथ ही उसकी समृद्धशाली परम्परा का आरम्भ हुआ।

**कुमारसम्भव :—** कुमारसम्भव महाकाव्य कालिदास की प्रौढ परिपक्व प्रतिभा का सफल निदर्शन है। कुमारसम्भव का जो रूप इस समय हमे उपलब्ध है उसमे 17 सर्ग विद्यमान है। अनेक विद्वानो की धारणा है कि 'कुमारसम्भव' के आरम्भिक आठ सर्ग ही कालिदास द्वारा सृजित है क्योकि सस्कृत साहित्य के विख्यात टीकाकार मल्लिनाथ ने आरम्भिक आठ सर्गो पर ही टीका लिखी है। किन्तु कुछ विद्वदगणो का कहना है कि अन्तिम नौ सर्गो के बिना कुमारसम्भव मे महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षण नही घटित हो पाते और इन नौ सर्गो की भाषा शैली मे भी प्रारम्भिक आठ सर्गो की अपेक्षा कोई भिन्नता नजर नही आती है विशेष आपत्ति का कारण तो कुमारसम्भव का आठवॉ सर्ग है जिसमे शिव—पार्वती के उद्दाम वासनात्मक श्रृङ्गार का वर्णन है। इसलिए ऐसा कोई बाह्य एव अन्तः प्रमाण उपलब्ध नही होता है जो इन अंतिम नौ सर्गो को कालिदास की रचना न सिद्ध करता हो। अत· उक्त कथन विवादास्पद ही प्रतीत होता है।

'कुमारसम्भव' प्रथम महाकाव्य होने पर भी कला की सुन्दर सृष्टि से सम्पन्न है। इसमे भावो का उद्रेक चरम सीमा पर हुआ है। अपनी कोमल कल्पना एवं प्राञ्जल

पदविन्यास के कारण वह आधुनिक रूचि के विशेष अनुकूल है। कविताकान्त कालिदास की वर्ण्य शक्ति कुमारसम्भव मे रमणीय रूप मे प्रकट हुई है। इस महाकाव्य मे कालिदास ने शिव–पार्वती के विवाह और उनके पुत्र कार्तिकेय (कुमार, स्कन्द) द्वारा तारकासुर के वध की कथा वर्णित की है।

कुमारसम्भव कालिदास की प्रतिभा का सम्यक् परिपाक है इसमे भाव सौष्ठव एव कलासौष्ठव का सुन्दर सन्वय है। अलङ्कारो की विचित्र छटा, वर्ण्य विषयो मे सजीवता, विशदता और स्वाभाविकता का पुट विद्यमान है–

इस दृष्टि से कुमारसम्भव का अमर सन्देश यही है कि बगैर काम वासनाओ को जलाये सच्चे स्नेह की प्राप्ति असम्भव है क्योकि बिना तपस्या के स्नेह कभी परिनिष्ठित नही हो सकता।

**रघुवंश :–** सम्पूर्ण सस्कृत वाड्मय मे रघुवश एक उत्कृष्ट महाकाव्य है, जिसमे काव्य के सम्पूर्ण लक्षणो का निर्वाह बडी ही उत्तम रीति से किया गया है। इसमे प्रारम्भ मे ही शिव–पार्वती की स्तुति के द्वारा रघुवश का आरम्भ हुआ है। इसके 19 सर्गों मे 31 सूर्यवशी राजाओं का गान किया गया है। आरम्भिक नौ सर्गों मे राम के चार पूर्वजो– दिलीप, रघु, अज, दशरथ का वर्णन है। दस से पन्द्रह सर्ग तक रामचरित का यशोगान हुआ है तथा अन्तिम चार सर्गों मे कुश से लेकर अग्निवर्ण तक राम के उत्तराधिकारियो का वर्णन है।

रघुवश मे कालिदास की परिपक्व प्रतिभा का, दर्शन होता है इसकी लोकप्रियता का कारण विभिन्न काल मे निर्मित अनेक टीकाओं के अस्तित्व से मिलता है। रघुवश की उत्कृष्टता से प्रभावित होकर ही सूक्तिकारो ने कालिदास को 'रघुकार' के नाम से सम्बोधित किया– 'क इह रघुकारे न रमते–। रघुवंश मे कालिदास ने रघु के अदम्य उत्साह का वर्णन बडे ही सजीव रूप मे वर्णित किया है– रघु अपनी अलौकिक दानशीलता से सम्पूर्ण व्यक्तियो का कल्याण करता है।

रघुवंश के 16वें सर्ग मे महनीय काव्य तत्त्वो का सुन्दर आभास मिलता है। 19वे सर्ग का अन्त कवि ने कामुक एव विलासी राजा अग्निवर्ण के मार्मिक चित्रण से किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास इसकाव्य के निर्माण मे वाल्मीकि रामायण के सबसे अधिक ऋणी है। क्योकि नवे सर्ग से 15वे सर्ग तक कवि ने वाल्मीकि रामायण

से ही प्रेरणा ली। इस प्रकार रघुवश मे कवि की प्रतिभा पग–पग पर परिलक्षित होती है। एक ओर भावो का भव्य आकर्षण है तो दूसरी ओर कलात्मकता का भाव सन्निहित है। एक ओर भाषा मे प्रसाद और माधुर्य गुणो का समन्वय है तो दूसरी ओर अवर्णनीय अलङ्कारो की छटा परिलक्षित होती है। एक ओर अज–इन्दुमती के अन्तरङ्ग प्रेम का वर्णन है तो दूसरी ओर सीता परित्याग का मार्मिक दृश्य, एक ओर दिलीप की तपस्या एव उसके तपोमय जीवन का वर्णन है तो दूसरी ओर अग्निवर्ण की घोर विषयाशक्ति। इस प्रकार रघुवश मे अनेक विरोधी गुणो का समन्वय है। इसके अलावा कही दार्शनिकता से परिपूर्ण पाण्डित्य का बोलबाला है तो कहीं काव्यशास्त्रीय वैदुष्य परिलक्षित होता है। कही उपमा का अनोखा वितान फैला है तो कही अर्थान्तरन्यास का, कही वर्णनो मे विविधता है तो कही कल्पनाओ की ऊँची उडान। इस प्रकार उक्त सभी दृष्टियो से कुलगुरू कालिदास अन्य कवियो लिए आदर्श के भाजन सिद्ध हुए।

शैली की दृष्टि से कुलगुरू कालिदास न केवल सस्कृत वाड् मय के अपितु विश्व वाड्मय के देदीप्यमान नक्षत्र है। उनकी सूक्ष्म एव पैनी दृष्टि वाह्य एवं आभ्यान्तर विधाओ का सूक्ष्म अवलोकन करती हुई रमणीय एव प्राञ्ज्ल पदावली मे उनको अनुस्यूत करती है। इसमे शैली की प्रौढता, भाषा पर पूर्ण अधिकार तथा प्रकृति के रमणीय दृश्यो का पर्यवेक्षण अत्यन्त पैनी दृष्टि से किया गया है। इनकी शैली मे कही उपमाओ का सुन्दर पद गुम्फन है तो कही अर्थान्तरन्यास की अनोखी छटा, कही प्रसाद गुण का मञ्जुल सामञ्जस्य है तो कही माधुर्य का भाव परिलक्षित होता है। कालिदास ने अपने सभी ग्रन्थो यथा गीतिकाव्य, महाकाव्य एव नाट्य रचना सभी मे अपनी प्रखर एव उज्ज्वल प्रतिभा का दर्शन कराया है। उनकी शैली सरलता मे सरसता, सहज भावाभिव्यक्ति मे कल्पना प्राचुर्य, दुरूहता मे सुबोधता आदि विरोधी गुणो से परिपूर्ण है। कालिदस की सर्वतोमुखी प्रतिभा उन्हे सस्कृत काव्यजगत् मे अद्वितीय स्थान प्रदान करती है। कालिदास की ख्याति का सर्वप्रमुख कारण है उनकी "प्रसादपूर्ण, लालित्य और परिष्कृत शैली" उन्होने अपने समस्त ग्रन्थ वैदर्भी रीति मे सृजित किये है। "वैदर्भीरीति–सन्दर्भे कालिदासो विशिष्यते"। आचार्य दण्डी ने वैदर्भी रीति की उद्भावना सर्वप्रथम कालिदास द्वारा ही मानी है। साहित्य दर्पणकार ने वैदर्भी रीति का लक्षण निम्न प्रकार से दिया।[1]

---

1 माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भीरीतिरिष्यते।। सा0 दर्पण – 9/2–3

महाकवि कालिदास ने काव्य मे भाव सौष्ठव के साथ–साथ भाषा सौष्ठव, पदलालित्य एव भाषा की प्राञ्जलता पर भी ध्यान दिया। कालिदास की भाषा की सर्वप्रमुख विशेषता यह है कि उनकी भाषा सहज प्रवाहमयी एव रसानुकूल होती है। साथ ही साथ वह भावो के अनुरूप होती है, जो पाठको के चित्त को सद्य अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। इनकी कृतियो की प्रसिद्धि का सबसे बडा कारण यही है।

इनके काव्यो मे वर्ण्य विषय के अनुरूप पदावली का प्रयोग, सर्वत्र परिलक्षित होता है। यत्र–तत्र शब्द ध्वनि भाव ध्वनि को अभिव्यक्त करती हुई चलती है। कही– कही सगीतात्मकता, लयात्मकता का पुट दृष्टिगोचर होता है। जैसे– महर्षि बाल्मीकि के आश्रम मे जब लक्ष्मण सीता को छोड जाते है तो उस समय जानकी के करूण क्रन्दन का अत्यन्त मार्मिक चित्रण महाकवि ने किया है। जानकी के शोक पर समवेदना प्रकट करते हुए मोरो ने नाचना, भ्रमरो ने कुसुमरसास्वाद, मृगियो ने कुशचवर्ण छोड दिया था– इस प्रकार सम्पूर्ण वन मे कारूणिक दशा का दृश्य विद्यमान था– क्रिया दीपक अलङ्कार का क्या ही सुन्दर दृष्टान्त है–

नृत्यं मयूराः कुसुमानि भृङ्गा, दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्य.।

तस्या. प्रपन्ने समदु:खभावमत्यन्तमासीद रूदितं वनेऽपि।।[1]

यहॉ 'विजहु' क्रियापद सभी के साथ जुडकर चमत्कार उत्पन्न कर रहा है। यहॉ 'वनेऽपि' शब्द यह ध्वनित कर रहा है कि वन–प्रान्त का जब यह विरह विदग्ध हाल है, तो फिर अयोध्या तथा वहॉ के राज प्रासाद का क्या हाल होगा जहॉ से सीता का वियोग हुआ है।

इस प्रकार कालिदास की शैली मे सुबोधता, काव्य में नाटकीयता नैसर्गिक सुषमा मे सहज अलङ्करण, भावाभिव्यक्ति मे कल्पना प्राचुर्य परिलक्षित होते है। शैली मे भाषा की स्थिरता, अलङ्कारो का स्वाभाविक विन्यास, बाह्य एव आभ्यन्तर प्रकृति का मनोहारी चित्रण, रसो का सुन्दर परिपाक एव विभिन्न मनोभावो का सुन्दर निदर्शन प्राप्त होता है।

---

1 रघुवश – 14–69

कालिदास ने भाषा पर अपने स्वाभाविक अधिकार का रोचक प्रमाण निम्नलिखित श्लोको मे दिया है।

ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी, वधाय वध्यस्य शर शरण्य ।
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गादुद्धर्तुमैच्छत् प्रसभोद्धृतारि ।।[1]

और भी–

सुवदनावदनासवसभृतस्तदनुवादिगुणः कुसुमोद्गम ।
मधुकरैरकरोन्मधुलालुपैर्वकुलमाकुलमायतपङ्क्तिभि· ।।[2]

कालिदास ने तीव्र अनुभूतियो के प्रदर्शन के लिए और रमणीय मोहक चित्रो की स्थापना के लिए अलङ्कारो का विधान अत्यन्त स्वाभाविक और सहज रूप मे किया। उन्होने पाण्डित्य का प्रदर्शन करने की दृष्टि से अलङ्कारो का प्रयोग नही किया– उनको सबसे ज्यादा उपमा अलङ्कार प्रिय था। इसलिए 'उपमा कालिदासस्य' से उनको मण्डित किया गया। उनकी उपमाए एकाङ्गी न होकर सर्वाङ्गीण एव व्यापक है। कालिदास ने इन्दुमती की उपमा 'सचारिणी दीपशिखा' से दी है। उनकी यह उपमा काव्यप्रेमियो को इतनी अधिक प्रिय हुई कि कालिदास 'दीपशिखा' की उपाधि से समलङ्कृत हुए। चलती हुई दीपशिखा के आगे बढ जाने से मार्ग स्थित भवनों के अधेरे मे डूब जाने का साम्य राजाओ के शरीर को ही अधेरे मे डुबा देने मात्र से नही, है प्रत्युत उस अधेरे की निराशा मे उन राजाओ के उत्साही मन के डूब जाने की व्यञ्जना का सङ्केत दे रहा है–

सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ य य व्यतीयाय पतिवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे, विवर्णभाव स स भूमिपाल ।।[3]

प्रकृति के अक्षय्य भण्डार से भी महाकवि ने रग बिरगी उपमाए ली है– इसके अलावा उपमा का एक सुन्दर उदाहरण है– दिन और रात्रि के मध्य सुशोभित सन्ध्या के तुल्य दिलीप और सुदक्षिणा के मध्य मे रक्तवर्णा नन्दिनी का चित्रण अत्यन्त सजीव है–

---

1. रघुवश – 2/30
2. रघुवश – 9/30
3. रघुवश – 6/67

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या।।[1]

कुमारसम्भव मे जब चिरव्रती शकर ने पार्वती, काम और बसत के प्रभाव से उद्विग्न होकर विश्वसुन्दरी शैलजा की रूपराशि का दर्शन किया तो उनकी मन स्थिति का भावोद्रेक कवि ने उपमा के विलक्षण सौन्दर्य के द्वारा किया है–

हरस्तु किञ्चित् परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशि ।
उमामुखे विम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि।।[2]

कालिदास की उपमाओं मे जो भावाभिव्यक्ति और रसभाव विद्यमान है उसी के समकक्ष अर्थान्तरन्यास की धारा भी बहती है–

"अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते।"
अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिम न सौभाग्यविलोपि जातम्।
एको हि दोषो गुणसन्निपाते, निमज्जतीन्दो· किरणेष्विवाङ्क ।।[3]

भाव यह है कि यद्यपि हिमालय गुणो की खान है परन्तु उसमे एक ही दोष है वह यह कि वह सदा हिम से आच्छादित रहता है। परन्तु उसका यह दोष गुणो मे ही छिप जाता है जिस प्रकार चन्द्रमा की किरणो में उसका कलक छिप जाता है। उसी प्रकार गुण समूह में एक दोष भी छिप जाता है।

कविकुल गुरू ने अपने सभी काव्यग्रन्थो मे वैचित्र्य एवं वैविध्य का बडा ही रमणीय दृश्य उपस्थापित किया है– वे जिस भाव को जिस रूप मे प्रस्तुत करना चाहते है भाषा वहॉ उसी रूप में सामने आ जाती है– वर्णनो के अवसर पर उनकी भाषा की सजीवता का क्या ही सुन्दर वर्णन है– सायकाल मे सूर्यास्त का दृश्य अत्यन्त मनोरम होता है–

संचारपूतानि दिगन्तराणि, कृत्वादिनान्ते निलयाय गन्तुम्।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा, प्रभापतङ्गस्य मुनेश्च धेनु.।।[4]

---

1 रघुवश – 2/20
2 कुमारसम्भव – 3/67
3 कुमारसम्भव – 1/3
4 रघुवश – 2/15

भगवान् राम सरयू नदी को देखकर भाव विह्वल हो जाते है और उसमे साक्षात् जननी का प्रतिरूप देखते है और अन्त मे उसे माता सम्बोधित करते हैं। प्रकृति के मानवीकरण का क्या सुन्दर उद्दाम चित्रण निम्न श्लोक मे कालिदास ने किया है–

सेय मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयूर्वियुक्ता।

दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मां तरङ्गहस्तैरुपगूहतीव।।[1]

इसी कारण महाकवि कालिदास को जयदेव ने "कविकुलगुरू:कालिदासो विलास:" कहा है।[2] कालिदास ने उत्प्रेक्षा के चमत्कार से क्या–क्या वर्णन दर्शाया है। महाकवि कालिदास ने रघुवश मे उत्प्रेक्षा अलङ्कार की अति लुभावनी रचना की है। सीता के चरणो से वियुक्त नूपुर मानो सीता–चरण–विरह–व्यथा से मौन है। नूपुर के प्रति भगवान् राम की निम्न उक्ति कितनी मार्मिक है–

सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वा

भ्रष्ट मया नूपुरमेकमुर्व्याम्।

अदृश्यत त्वच्चरणारविन्द–

विश्लेषदु:खादिव बद्धमौनम्।।[3]

कालिदास की उत्प्रेक्षा उपमा की परछाई सी है। उत्प्रेक्षा की इसी विच्छित्ति देखिए। इसी प्रकार गगा–यमुना सगम वर्णन मे क्या उत्प्रेक्षा का अनोखा चित्रण प्रदर्शित किया है– यमुना की लहरो से सश्लिष्ट पवित्र गगा ऐसी सुशोभित हो रही है मानो साक्षात् शिव की प्रतिमूर्ति हो जो एक तरफ तो कृष्ण सर्पों से घिरी हो और दूसरी ओर भस्मलेप से अलङ्कृत दिखाई पड रही हो।

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य।

पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्न प्रवाहा यमुनातरङ्गै।।[4]

---

1 रघुवश – 13/63
2 प्रसन्नराघव – 1–22
3 रघुवश – 13/23
4 रघुवश – 13/57

कालिदास प्रकृति के कुशल चितेरे है। प्रकृति के प्रति कवि का भाव पग—पग पर अभिव्यक्त होता है। मानव की भाति उनकी प्रकृति भी सुख—दु ख का अनुभव करती है। उनकी प्रकृति जड नही अपितु सवेदनशील है। रघुवश मे कालिदास ने गर्भवती सुदक्षिणा का वर्णन करते हुए लिखा है—

शरीरसादादसमग्रभूषण मुखेन साऽलक्ष्यत लोध्रपाण्डुना।
तनुप्रकाशेन विचेयतारका प्रभातकल्पा शशिनेव शर्व्वरी।।[1]

कालिदास सौन्दर्य के उपासक है, इसलिए उन्हे सौन्दर्य का कवि भी कहा जाता है। रघुवश मे उन्होने इन्दुमती के सौन्दर्य का बहुत ही सुन्दर वर्णन कियाहै। स्वयवर सभा मे श्यामवर्ण पाण्ड्यराज के वर्णन के प्रसङ्ग मे सुनन्दा इन्दुमती से कहती है— कि ये महराज नीलकमल के समान श्यामवर्ण है और तुम गोरोचना सी गोरी हो अगर तुमने इनसे विवाह कर लिया तो तुम दोनो की शोभा मेघ और विद्युत की शोभा सदृश हो जाएगी—

इन्दीवरश्यामतनुर्नृपोऽसौ त्व रोचनागौरशरीरयष्टि ।
अन्योन्यशोभापरिवृद्धये वा योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु।।[2]

रघुवश की भति कुमारसम्भव महाकाव्य मे भी भावपक्ष एव कलापक्ष का सुन्दर निदर्शन हुआ है। यह महाकाव्य भी श्रृङ्गार—प्रधान काव्य है जो तपरूपी प्रेम की चरम सीमा पर ही अभिव्यञ्जित होता है। अलङ्कारो की सुन्दरता, भाषा की अद्वितीयता ही कुमारसम्भव की अपनी निजी विशेषता है।

कुमारसम्भव की भी भाषा रघुवंश की भाति परिनिष्टित एव उदात्त पूर्ण है, जो प्रसाद एव माधुर्य गुणो से मण्डित है।

शैली की दृष्टि से यह साधिकार कहा जा सकता है कि कालिदास वैदर्भी रीति के सर्वश्रेष्ठ कवि है।

महाकवि कालिदास सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति थे। सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उन्होने कुमारसम्भव मे कहा है:—

---

1 रघुवश — 3/2
2 रघुवश — 6/65

दिने दिने सा परिवर्धमाना लब्धोदया चान्द्रमसीव लेखा।
पुपोष लावण्यमयान्विशेषाज्ज्योत्स्नान्तराणीव कलान्तराणि।।[1]

भाव यह है कि चन्द्रमा की कला के सदृश पार्वती भी धीरे–धीरे वृद्धि को प्राप्त होने लगी। जिस प्रकार ज्योत्सना अर्थात् चॉदनी के बढने के साथ–साथ उनकी अन्य कलाए भी बढती गयी है, उसी प्रकार पार्वती के साथ–साथ उसके अंग–प्रत्यग भी वृद्धि को प्राप्त होने लगे।

कालिदास जब किसी भी भाव का अङ्कन करते हैं तो उसमे वह एक अनूठी शैली का प्रयोग करते है, जिसे वे कथन की अपेक्षा व्यञ्जनावृत्ति का आश्रय ले उसकी ओर सूक्ष्म सङ्केत कर देना ही पर्याप्त समझते है। इस माध्यम से कालिदास ने क्या ही बालसुलभ शालीनता का चित्रण किया है–

एवंवादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती।।[2]

उनकी शैली की प्रमुख विशेषता है 'ध्वन्यात्मकता' जो पाठको को स्वत अभिभूत कर लेती है। जब महर्षि अङ्गिरा ऋषि पार्वती के सम्बन्ध मे हिमालय के पास जाते है और हिमालय से शकर के लिए पार्वती की मगनी की प्रार्थना करते है तो उस समय समीप में ही बैठी पार्वती की मानसिक दशा का अङ्कन किया गया है। उक्त श्लोक मे कोई अलङ्कार विद्यमान नही है फिर भी कवि ने कमलपखुडियो की गिनती के वर्णन से पार्वती की सहज लज्जाशीलता, आन्तरिक प्रेम तथा आनन्दातिरेक के गोपन की प्रवृत्ति की बडी रूचिकर एव मार्मिक व्यञ्जना की है।

कालिदास का शब्दलाघव उनकी कलात्मक चमत्कारिता का परिचायक है। वे कल्पना की ऊँची उडान भरने मे परिपक्व एव कुशल है। उनकी रशपेशलता से परिपूर्ण रचनाओ में "क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपैति तदेवरूप रमणीयताया" वाली लोकोक्ति सर्वथा चरितार्थ होती है।

---

1 कालिदासकृत कुमारसम्भव
2 कुमारसम्भव – 6/84

कालिदास ने श्रृङ्गार के दोनो पक्षो यथा सयोग श्रृङ्गार और विप्रलम्भ श्रृङ्गार का सुन्दर परिपाक अपने काव्यों मे किया है।

कालिदास की काव्य भूमि मे प्रेम की अनुभूति के सदृश सौन्दर्य की अनुभूति को भी एक अलौकिक आध्यात्मिक तत्त्व मे परिलक्षित किया गया। प्रेम और सौन्दर्य एक ही रूप है। इनका पारस्परिक सम्बन्ध है। कवि ने शब्दचित्र के वैशिष्ट्य से सौन्दर्य का प्रदर्शन सर्वत्र किया है। महाकवि ने स्त्रीपुरूष के आङ्गिक सौन्दर्य का वर्णन भी सुरूचिपूर्ण ढग से कियाहै— महाकवि पार्वती की मुस्कराहट का वर्णन करने मे क्या अतिशयोक्ति की है—

पुष्प प्रवालोपहित यदि स्यान्मुक्ताफल वा स्फुट विद्रुमस्थम्।
ततोऽनुकुर्याद् विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरूच स्मितस्य।।[1]

इसी प्रकार शब्दो की चमत्कारिता के द्वारा पार्वती के अङ्ग सौष्ठव का वर्णन भी कवि ने बडे अच्छे ढंग से प्रदर्शित किया है—

स्थिता· क्षण पक्ष्मसु ताडिताधरा पयोधरोत्सेधनिपात चूर्णिता·।
वलीसु तस्या स्खलिता प्रपेदिरे चिरेण नाभि प्रथमोदविन्दव.।।[2]

तपस्या करती हुई पार्वती के वर्णन में जहॉ प्रथम मेघ की बूॅदे उसके सघन पक्ष्म वाले नेत्रो पर गिरकर कुछ देर रूककर, ओठो पर गिरते हुए, कठोर पयोधरो पर गिरने से चूर्णित होकर त्रिवली पर लुढकने के बाद गम्भीर नाभि मे जा घुसती है। यहॉ पर कालिदास ने ध्वनि की चमत्कारिता का सुष्ठ रूपेण दिग्दर्शन कराया है। इस वर्णन मे एक ओर पद्मासन की योगाभ्यास वाली स्थिति, दूसरी ओर पार्वती के तत्तदगो की सुन्दरता और सुडौलपन की व्याख्या पायी जाती है। तापस वेष मे मनोरम प्रतीत होती हुई पार्वती का सौन्दर्य अद्भुत प्रतीत हो रहा है—

यथा प्रसिद्धैर्मधुर शिरोरूहैर्जटाभिरप्येवम् भूतदाननम्।
न षट्पदश्रेणिभिरेव पङ्कजं सशैवलासङ्गमपि प्रकाशते।।[3]

---

1 कुमारसम्भव — 1/44
2 कुमारसम्भव — 5/24
3 कुमारसम्भव — 5/9

जैसे साज श्रृङ्गार किये हुए केशो से उसका मुख सुन्दर लगता था वैसे ही जटाओ से भी शोभित हुआ। कमल केवल भौरो से नही अपितु सिवार से लिपटा होने पर भी अच्छा लगता है।

महाकवि ने नववधू के प्रेम का क्या अतिरञ्जित वर्णन किया है –

आत्मानमालोक्य च शोभमानामादर्शबिम्वे स्मितायताक्षी।
हरोपयाने त्वरिता वभूव स्त्रीणा प्रियालोकफलो हि वेष ।।

कुमारसम्भव – 7/22

कुमारसम्भव मे अलङ्कारो का यथोचित सन्निवेश प्रदर्शित होता है। महाकवि ने कविता रूपी वनिता को सर्वत्र ही सुन्दर अलङ्कारो से सुसज्जित कियाहै। उन्होने श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, दृष्टान्त आदि को समुचित स्थान प्रदान किया है। उत्प्रेक्षा का एक अत्यन्त रोचक वर्णन निम्न श्लोक मे किया है–

आवर्जिता किञ्चिदिव स्तनाभ्या वासो वसाना तरूणार्करागम्।
पर्याप्तपुष्पस्तवकावनम्रा सञ्चारिणी पल्लविनी लतेव।।

कालिदासकृत–कुमारसम्भव

अर्थात् स्तन भार से झुके हुए शरीर पर प्रात. कालीन सूर्य की भाति अरूणिम वस्त्र को धारण किये हुए वह ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो फूलो के गुच्छो से झुकी हुई पल्लविनी लता नवीन लाल–लाल कोपलो वाली चलती फिरती कोई लता हो।

महाकवि कालिदास ने ध्वनिकाव्य के भी उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किये, क्योकि व्यञ्जकता का होना उनकी शैली का अपना गुण है। व्यञ्जकता से वैशिष्ट्य का विवेचन काव्यो की अपनी चमत्कारिता है– इसलिए काव्य मे व्यञ्जना एव व्यङ्ग्य अर्थ का अपना अलग महत्त्व होता है। यही काव्य का प्राणभूत है। महाकवित्व की कसौटी व्यङ्ग्य अर्थ ही है। साधारण कवियों के काव्य मे यह व्यङ्ग्य अर्थ नही पाया जाता, किन्तु शब्द एव अर्थ का ज्ञान महाकवियो को होता ही है वे ही उस (व्यङ्ग्यार्थ) अर्थ को समझकर उसका अभिनिवेश अपने काव्य मे करते है। अतएव महाकवि पद की प्राप्ति के लिए व्यङ्ग्यार्थ का ज्ञान आवश्यक है। ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने प्रतीयमान अर्थ को ही

काव्य की आत्मा कहा है। इस दृष्टि से कालिदास महाकवित्व की कसौटी पर खरे उतरते है। जैसा कि स्वय आनन्दवर्धन ने कहा है–

येनस्मिन्नतिविचित्रकविपरम्परावाहिनि ससारे कालिदासप्रभृतयो
द्वित्रा पञ्चषा वा महाकवय· इति गण्यन्ते।[1]

इसी प्रसङ्ग से सम्बन्धित महाकवि ने कुछ उद्धरण प्रस्तुत किये है– पार्वती द्वारा शिव के वरण प्रसङ्ग मे मार्मिक व्यञ्जना प्रस्तुत की गयी है। एक ओर शिव की अकिचनता, दुर्वेष, असौन्दर्य और अप्रभावोत्पादकता है, दूसरी ओर पार्वती का अलौकिक सौन्दर्य, सुकुमारता और दिव्य आकर्षण है। दोनो का विरोध हास्यमिश्रित व्यङ्ग्य मे प्रस्तुत किया गया है। बटुरूपधारी शिव का वक्तव्य है– कि शिव से प्रेम करके चन्द्रकला और तुम दोनो ने अपना दुर्भाग्य बुलाया है। कोमल भाव के साथ ललित पदावली का क्या समन्वय है–

द्वय गत सम्प्रति शोचनीयता, समागमप्रार्थनया कपालिन ।
कला च सा कान्तिमती कलावतस्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी।।[2]

इस कारण सोढ्ढल ने इन्हे रसेश्वर की उपाधि से समलङ्कृत किया और उनकी प्रशसा करते हुए कहा है–

ख्यात कृतो सोऽपि कालिदास शुद्धा सुधा स्वादुमती च यस्य।
वाणीमिवाच्चोष्णा मरीचिगोत्रसिन्ध्वो पर पारमवाप कीर्ति·।।

तात्पर्य यह है कि धन्य है वे कवि कालिदास जिनकी कीर्ति उनकी कविता के समान ही निर्दोष, अमृततुल्य एव मधुर है। जिस प्रकार उनकी वाणी सूर्यवश का पूरा वर्णन कर सकी वैसे ही उनकी कीर्ति भी समुद्र के पार पहुँची है।

कालिदास ने अनेक साहित्यिक रूढियों को जन्म दिया जैसे– द्रुतविलम्बित छन्द मे 'यमकमयवर्ण'। उन्होने नवम सर्ग मे वसन्तऋतु का यमकमय प्रयोग किया है किन्तु उनमे रस की ही प्रधानता है। यथा–

---

1 ध्वन्यालोक – 1/6 वृत्तिभाग
2 कुमारसम्भव – 5/71

कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम्।
इतियथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम्।। रघुवश – 9/26

कालिदास के महाकाव्य सस्कृत काव्यकला का चरमोत्कर्ष प्रस्तुत करते है। कालिदास के युग मे नैसर्गिक सौन्दर्य को ही वरीयता दी जाती थी जिसका प्रमाण उनके 'अभिज्ञान शाकुन्तल' मे दृष्टगत होता है–

"दूरीकृता खलु गुणैरूद्यानलतावनलताभि" अभि० पृ० 39

महर्षि बाल्मीकि की अपेक्षा इनमें सौन्दर्यशास्त्र सम्बन्धी मान्यताए काफी विकसित हो गयी थी। सौन्दर्य मे इन्होने स्वाभाविकता को ही महत्त्व दिया–

"इयमधिक मनोज्ञा वल्कलेनापितन्वी" अभिज्ञानशाकु० – पृ० 46

कालिदास सुकुमार भावो के कवि है। उनकी असाधारण विश्व व्यापिनी प्रतिभा महाकाव्यो मे विचित्र वर्णन करने, अलौकिक रस सन्दोह अभिव्यक्त करने, तथा आदर्शभूत सृष्टि करने मे निपुण थी। वैसे ही नाटको तथा गीतिकाव्यो मे पात्रो के अनुरूप चरित्रचित्रण करने मे तथा सूक्ष्म विकारो के वर्णन में समर्थ थी।

प्रसाद की अगाधता, माधुर्य का मधुर सन्निवेश, पदो की कोमलतकान्त अवली, भाव का सौष्ठव, उपमा की विमलता तथा अपूर्वता, अलङ्कारो की रमणीयता सभी ने कालिदास की कविता को विश्वविख्यात बना डाला। कालिदास के भावो का साम्राज्य लोगो को मंत्रमुग्ध कर देता है, इसके अलावा अनूठी एवं चमत्कारिणी उपमा का कहना ही क्या है? रघुवंश महाकाव्य की तरह आदर्श सृष्टि कही परिलक्षित नही होती है। रघुवंश और कुमारसम्भव जैसी सूक्ष्मनिरीक्षण शक्ति अन्यत्र विद्यमान नही है। कालिदास का प्रकृति प्रेम, अपूर्व सहानुभूति से मिश्रित है। वे ही एकमात्र ऐसे कवि है जिन्होने प्रथम बार प्रकृति के साथ बन्धुत्व स्थापित करने का प्रयास किया। कुमारसम्भव के प्रथम श्लोक मे उन्होने हिमालय को जड नही माना प्रत्युत उसे देवतात्मा कहकर सम्बोधित किया।[1] इसलिए कालिदास के काव्य मे प्रकृति भी अपने अधिष्ठाता देवताओ

---

1 अस्त्युतरस्या दिशि देवतात्मा हिमालयोनाम नगाधिराज ।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थित पृथिव्या इव मानदण्ड ।। कुमार०– 1/1

के व्याज से अपनी सहानुभूति और अपने स्नेह का प्रदर्शन करती है। कालिदास का यही सुकुमार एव भावात्मक दृष्टिकोण कुमारसम्भव मे भी परिलक्षित होता है।[1] रघुवश के द्वितीय सर्ग मे हिमालय का वर्णन प्रकृति के आलम्बन रूप का परिचायक है–

"स पल्वलोत्तीर्णवराहयूथान्यावास वृक्षोन्मुखबर्हिणानि।
ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन्।।" रघुवश 2/17

राजा दिलीप उन हरे वनो को देखते जा रहे थे, जिनमे छोटे–छोटे जलाशयो से वराह निकलकर आ रहे थे, जहॉ मोर अपने निवास–वृक्ष की ओर उड रहे थे और हिरण घास पर बैठे हुए थे। अग्नि के समान राजा दिलीप पर लताए उसी प्रकार दृष्टि कर रही थी, जिस प्रकार राजा के स्वागतार्थ नगर की कन्याए धान की खीले बरसाती है–

"स निर्विश्य यथाकाम तटेष्वालीनचन्दनौ।
स्तनाविव दिशस्तस्या शैलो मलयदर्दुरौ।।" रघुवश – 4/51

इसी प्रकार परमधाम जाते समय श्री राम ने सरयू को अयोध्यावासियो के लिए स्वर्ग की सीढी बना दिया–

"उपस्थितविमानेन तेन भक्तानुकम्पिना।
चक्रे त्रिदिवनिश्रेणि सरयूरनुयायिनाम्।।" रघुवश –15/100

रघुवश के सोलहवे सर्ग का ग्रीष्मवर्णन प्रकृति के दृष्टान्त का सर्वश्रेष्ठ नमूना है–

अगस्त्यचिह्नादयनात्समीपे दिगुत्तरा भास्वति सन्निवृत्ते।
आनन्दशीतामिव वाष्पवृष्टि हिमस्तुतिं हैमवती ससर्ज।। रघुवश – 16/44

प्रकृति के इन वर्ण्य दृश्यो को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदास को प्रकृति का मनोवैज्ञानिक चित्रण भी करना पसद था। अग्निमित्र व्यसनी है उसमे रजोगुण की प्रधानता है फलत उसे अपनी वासनाओं की ही छाया सर्वत्र दीख पडती है। इन्दुमती के निष्प्राण हो जाने पर उसके शरीर को गोद मे लिए हुए अज इस प्रकार प्रतीत होते है जैसे– प्रातः कालीन चन्द्रमा की ओट मे मृग की धुधली छाया हो।

कालिदास को जीवजन्तुओ के व्यवहार का भी ज्ञान था। इनके उपमानो मे चित्रमयता भी पर्याप्त रूप से विद्यमान है।

"रक्तवर्णा नन्दिनी की पीठ पर बैठा हुआ पीले केसरो वाला सिह ऐसा प्रतीत होता है जैसे गेरू के पहाडी ढाल पर पीले फूलो वाला लोध्रवृक्ष फूल रहा हो।

स पाटलाया गवि तस्थिवास धनुर्धर केसरिण ददर्श।
अधित्यकायामिव धातुमय्या लोध्र द्रुम सानुमत प्रफुल्लम्।। रघु0–2/29

धवल वस्त्र धारण किये हुए दिलीप अपनी पत्नी सुदक्षिणा के सग वैसे ही सुशोभित हो रहे थे जैसे – पूर्णिमा के दिन चित्रानक्षत्र के साथ उज्ज्वल चन्द्रमा प्रकाशित हुआ हो।

काऽप्यभिख्या तयोरासीद् व्रजतो शुद्धवेषयो।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव।। रघुवश – 1/46

कालिदास ने स्त्रियो के सौन्दर्य मे भी प्राकृतिक चित्रणो के दर्शन किये है अज विलाप कर रहे है–

"कलमन्यभृतासु भाषित कलहसीषु मदालस गतम्।
प्रषतीसु विलोलमीक्षितं पवनाधूतलवासु विभ्रमा.।। रघुवश– 8/59
"त्रिदिवोत्सुकयाऽप्यवेक्ष्य मा निहिताः सत्यममी गुणास्त्वया।
विरहे तव मे गुरूव्यथ हृदय न त्ववलम्बितु क्षमा।। रघुवश– 8/60

रघु के दिग्विजय के प्रसंग मे दक्षिण भारत की कावेरी नदी का दुश्चरित्रा नायिका के रूप मे सुन्दर वर्णन किया है– महाराज रघु जब कावेरी के तट पर पहुचे तो उनके सैनिको ने जीभरकर स्नान किया और जल को मथ दिया–

ततो वेलातटेनैव फलवत्पूगमालिना।
अगस्त्याचरितामाशामनाशास्यजयो ययौ।। रघुवश – 4/45

प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन मे कालिदास के अन्दर तीन विशेषताएं विद्यमान है शब्दो के दृष्टिकोण से पदावलियों मे मधुरिमा रहती है, अर्थ मे चित्रमयता रहती है एव उपमानो का सुन्दर सामञ्जस्य सन्निविष्ट रहता है। सस्कृत साहित्य मे कालिदास जैसे वसत वर्णन करने वाला कोई कवि नहीं है। अश्वघोष इत्यादि परवर्ती महाकवियो ने तो इनके ही भावो का अनुकरण किया। इसके अलावा कालिदास में मौलिकता है, उपमा,

रूपक, उत्प्रेक्षा द्वारा कवि ने चित्रमयता की सृष्टि की। पदलालित्य और अर्थ सौन्दर्य सभी ग्रन्थो मे विद्यमान है–

नयगुणोपचितामिव भूपते सदुपकारफला श्रियमर्थिन ।
अभिययु सरसो मधुसम्भृता कमलिनीमलिनीर पतत्रिण.।। रघु0 – 9/27

जिस प्रकार नीति पूर्वक पराक्रमादि गुणो से बढी हुई और सज्जनो की उपकारिका राजा दशरथ की लक्ष्मी के आगे से बहुत से मगन हाथ फैलाया करते थे उसी प्रकार पराग से भरी हुई तालाब की कमलिनी के आस–पास भ्रमर और हस मडराने लगे।

कुसुममेव न केवलमार्तव नवमशोकतरो स्मरदीपनम्।
किसलयप्रसवोऽपि विलासिना मदयिता दयिताश्रवणार्पित ।। रघु0 – 9/28

वसन्त मे फूले हुए केवल अशोक के नये–नये फूलो को देखकर ही कामोद्दीपन नही होता था, किन्तु कामिनियो के कानो मे सुशोभित विलासी एव विलासिनियो को उन्मत्त करने वाले पल्लव भी कामोद्दीपक हुए।

उपहित शिशरापगमश्रिया मुकुलजालमशोभत किशुके।
प्रणयिनीव नरवक्षतमण्डन प्रमदया मदयापित लज्जया।। रघु0–9/31

वसत के आने से पलाश के वृक्षो मे कलियॉ निकल आयी है। वे ऐसी जान पडती थी मानो काम के आवेश मे लाज को छोडकर किसी कामिनी ने अपने प्रियतम के शरीर पर नखक्षत कर दिये हो।

श्रुति सुखभ्रमरस्वनगीतय. कुसुमकोमलदन्तरूचो बभु ।
उपवनान्तलता. पवना हतै किसलयै· सलयैरिव पाणिभि.।। रघु0–9/35

कालिदास ने मधुमास की प्रकृति–सुषमा पर नारीत्व का आरोप किया है। वन की लताए भौरे के गुञ्जार के बहाने गीत गा रही थीं। इसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वसन्तवर्णन, चित्रकूट, सगम, सरयू आदि के दृश्यों का वर्णन करते समय कालिदास की प्रतिभा अपने उत्कर्ष के चरमबिन्दु पर पहुॅच गयी है। रघुवश का एक ही उपमान सगम का पूर्णचित्र अङ्कित कर देता है–

"क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनै शबलीकृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभ. प्रदेशा।।" रघुवश– 13/56

मानसरोवर से निकली हुई सरयू नदी अव्यक्त से प्रादुर्भूत बुद्धितत्त्व के समान है –

पयोधरै पुण्यजनाङ्गनाना निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु यस्याः।

ब्राह्म सर कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति।। रघुवश– 13/60

इन सभी दृश्यो का सिहावलोकन करने के अनन्तर यह भली–भॉति विदित होता है कि कालिदास का जितना अधिक नदियो के साथ सौहार्द पूर्ण स्नेह था उतने ही प्रभावशाली शब्द भी उनके पास विद्यमान थे। प्रकृति चित्रण के प्रसङ्ग मे उन्होने कभी भी रूढिवादिता स्वीकार नही की। उन्होने मुग्ध दृष्टि से भारत के विभिन्न स्थलो की नैसर्गिक शोभा देखी थी जिसका अनिवर्चनीय प्रभाव उनके ह्रदय पर पडा।

प्रकृतिवर्णन की दृष्टि से कुमारसम्भव भी सुन्दर महाकाव्य है इसके लिए कालिदास ने कथा प्रकरण ही ऐसा चुना है जिसका वर्णन पूर्णरूप से हिमालय की उपत्यकाओ मे ही केन्द्रित है। देवात्मा हिमालय, मन्दाकिनी, नन्दी, सप्तर्षि, काम रति, ऋतुराज वसन्त सभी इस महाकाव्य के पात्र है। ये सभी पात्र अलौकिक दिव्यता लिये हुए है तथा उनके साथ जुडी कथा भी दिव्य है। इसी कारण सह्रदय कुमारसम्भव का स्वाध्याय करने के अनन्तर काव्यामृत महासिंधु की रसोर्मियो मे निमज्जन करता हुआ वेसुध हो जाता है। कालिदास ने अपनी नवनवोन्मेषशालिनीप्रतिभा के सहारे इन अलौकिक और दिव्य विभूतियों का वर्णन किया। उन्हे जहॉ एक ओर हिमालय के वर्णन मे सहायता मिली वही दूसरी ओर यक्ष, किन्नर, गन्धर्वो तथा ओषधि प्रस्थपुरी के काल्पनिक वर्णन मे भी पूर्ण सफलता मिलती है। उनकी उक्तिया, उत्प्रेक्षा, सौन्दर्य विधान कुछ ऐसा है जिसका वर्णन करने के लिए हमारे पास शब्द ही नही है।

रघुवश की भाति कुमारसम्भव का भी प्रकृति चित्रण आलम्बन विभाव के रूप मे है। भावनाओ को रग से रजित कर खींचने वाले मधुर चित्रो में केवल कालिदास ही पहले कवि है। इनके इन दृश्यो की बराबरी अश्वघोष भी नही कर पाये।

कुमारसम्भव के आठवे सर्ग मे सन्ध्याकाल अत्यन्त विशद रूप से वर्णित है जिसका उत्तरकालीन कवियो ने अनुसरण करके अपने महाकाव्य मे सन्ध्या, सूर्यास्त, चन्द्रोदय आदि के वर्णन किये– कुमारसम्भव का एक दृश्य–

सीकरव्यतिकर मरीचिभिर्दूर यत्यवनते विवस्वति।
इन्द्रचापपरिवेषशून्यता निर्झरास्तव पितुर्व्रजन्त्यमी।। कुमारसम्भव – 8/31

हिमालय पर बैठे हुए शिव पार्वती से कह रहे है– यह देखो तुम्हारे पिता के झरने बहे चले आ रहे है परन्तु इनकी पहले जैसी शोभा नही है, सूर्य के डूब जाने से उसकी किरणो का सम्पर्क झरनो के जलकरणो से जाता रहा अतएव वे इन्द्रधनुष के परिवेष से शून्य है।

कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग मे हिमालय का विम्बग्राही वर्णन कवि ने किया है। पर्वतराज हिमालय के पार्थिव स्वरूप का वर्णन करते समय कवि ने केवल कल्पना का ही आश्रय नही लिया, बल्कि हिमालय की उपत्यकाओ मे घूमते समय देवदारू, चीड, बास के सघन वन, गरजते हुए मदमस्त सिहो, चामर मृगो ने भी उनके मन को अपनी ओर खीचा होगा, इन सभी का वर्णन उनके अनुभव पर ही अधिष्ठित प्रतीत होता है, परन्तु भागीरथी का कल–कल बहना, रत्न एव धातुओ का प्राप्त होना इन सब का वर्णन काल्पनिक नही है। इसके अलावा कालिदास ने स्त्री सुलभ सौन्दर्य के वर्णन मे भी एक मौलिकता दिखाई है– देखिये–

शिरीषपुष्पाधिक सौकुमार्यौ, बाहू तदीयाविति मे वितर्क ।
पराजितेनापि कृतौ हरस्य यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन।। कुमार0– 1/41

मेरी कल्पना यह है कि पार्वती के दोनो हॉथ शिरीष फूल से भी अधिक सुकोमल है, क्योकि यदि यह बात न होती तो कामदेव अपने पुष्पबाणो से शिव को वश करने मे असमर्थ होकर पराजित बन उनके कण्ठ को बांधने के लिए इन भुजाओ की सहायता क्यो लेता?

इस प्रकार कुमारसम्भव का प्रत्येक श्लोक सरस, मधुर एव आकर्षक है। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन एव अभिनवगुप्त ने जिस रसध्वनि को काव्य की आत्मा माना है उसी की अजस्त्र धार यहॉ प्रवाहित है। कालिदास मे अतुलनीय प्रतिभा

विद्यमान थी। काव्यशास्त्र, सगीतशास्त्र एव सौन्दर्यशास्त्र के वह महान् पारखी थे। इसी दृष्टि से उनके कतिपय श्लोक शब्दसौष्ठव, शब्दसंगीत, अभिव्यञ्जना और भावो की कोमलता के दृष्टिकोण से अवर्णनीय है। उनका काव्य सहृदय को अलौकिक जगत् मे खीच ले जाता है, जिसका वर्णन अभिज्ञानशाकुन्तल मे भी उन्होने किया है—

तवास्मिगीत रागेण हारिणा प्रसभहत" — ' अभि0

इसी आत्मविस्मरणकारिणी स्थिति को अभिनव ने व्यतिरेक तुराथीतीत स्थिति माना है। जहॉ कुमारसम्भव का रसोन्मेष सहृदयो को आकृष्ट कर लेता है वही — कान्तिचन्द्रपाण्डेय के शब्दो मे— यह वह स्थिति है जहॉ चैतन्य भी आत्मा मे समाहित हो जाता है। दीपक की निश्चल लौ के समान केवल आत्मा ही प्रकाशित रहती है, आत्मा अपने आनन्द स्वरूप मे स्थिर रहती है। इसी वैशिष्ट्य के कारण आनन्दवर्धन ने कालिदास की गणना बाल्मीकि के साथ करके उन्हे 'महाकवि' इस उपाधि से मण्डित किया। कालिदास ने भारत की प्राकृतिक सम्पत्ति का नये उपमानो का, सौन्दर्य की अनुपमेय भावनाओ का एवं नैसर्गिक व्यापारो का वैज्ञानिक की तरह सूक्ष्म निरीक्षण कर सौपर्य सौन्दर्य के परिधान पहना महिमामण्डित किया।

कवि का उद्देश्य हिमालय मे उन सुखो की उपलब्धि दिखाना है जिनकी कल्पना मनुष्य स्वर्ग मे करता है। यहॉ के भोजपत्र का उपयोग किन्नरिया, विद्याधारिया प्रेमपत्र लिखने मे करती है।

"न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वच. कुञ्जरबिन्दुशोणाः।
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणामनङ्गलेख क्रिययोपयोगम्"।। कुमार0 — 1/7

हिमालय पर्वत पर विद्याधरो की स्त्रियॉ गजबिन्दु के समान लाल भोजपत्र पर धातुओ के रस से अपने सन्देशमय प्रेमपत्र को लिखकर प्रियतमो को भेजती है।

"भागीरथीनिर्झरसीकराणा वोढामुहु कम्पित देवदारूः। कुमार0 — 1/15

रूप योजना एव विम्ब ग्रहण कराने का यह अत्यन्त कौशलपूर्ण उपाय है। कालिदास ने पहली बार हिमालय के मानवीय स्वरूप का वर्णन छठे सर्ग के 51वे श्लोक मे किया—

"धातुताम्राधर प्राशुर्देवदारूबृहद्भुज ।
प्रकृत्यैव शिलोरस्क सुव्यक्तो हिमवानिति।।    कुमारसम्भव – 6/51

हिमालय के मानवीय स्वरूप और उसकी राजधानी ओषधिप्रस्थपुरी के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास आकाश के चित्रकर्म प्रस्तुत करने के पक्षपाती थे। उनकी कल्पनाए पुराणो की मान्यताओ से अनुप्राणित है। कल्पना करने मे भी कालिदास को यथार्थ से अधिक दूर जाना अच्छा नही लगता। पर्वतराज हिमालय के राजभवन मे भी वही सम्बन्ध, वही भाव तथा मानसिक द्वन्द दिखाई पडते है जो मानवीय व्यवहार मे प्राय दीख पडते है– पिता हिमालय के हृदय मे भी पार्वती को देखकर वात्सल्य की दुग्धधार बहने लगती है–

महीभृत पुत्रवतोऽपि दृष्टिस्तस्मिन्नपत्ये न जगामतृप्तिम्।
अनन्तपुष्पस्य मधोर्हिचूते द्विरेफमाला सविशेषसङ्गा।।  कुमारसम्भव–1/26

इस प्रकार कालिदास ने हिमालय के द्विविध स्वरूप का वर्णन किया है। हिमालय भारत के उत्तर मे पूर्व समुद्र और पश्चिम समुद्र का स्पर्श करता हुआ पर्वतराज है तथा अपने मानवीय स्वरूप से वे पार्वती के पिता है।

कुमारसम्भव के द्वितीय सर्ग में तारकासुर के आसुरी वैभव का वर्णन है। सूर्य, चन्द्र, पर्वत, नदी, समुद्र सभी उसके आतक से भयभीत है। छहो ऋतुओ की भी विचित्र दशा है–

पर्यायसेवामुत्सृज्य पुष्पसम्भारतत्परा.।
उद्यानपालसामान्यमृतवस्तुमुपासते।    कुमारसम्भव – 2/36

तृतीय सर्ग मे भगवान् शङ्कर की समाधि को भङ्ग करने के लिए मदन अपने सखा ऋतुराज वसन्त को लेकर हिमालय की रङ्गभूमि मे उतरता है तथा इस अवसर पर कामदेव भी अपनी पत्नी रति के साथ विद्यमान है।

मधुश्च ते मन्मथ! साहचर्यादसावनुक्तोऽपि सहाय एव।
समीरणो नोदयिता भवेति त्यादिश्यते केन हुताऽशनस्य।। कुमार0–3/21

कुमारसम्भव के तृतीय सर्ग में वर्णित वसन्त वर्णन में हिमालय जैसा ही वैशिष्ट्य विद्यमान है। एक ओर ऋतुराज वसत की नैसर्गिक सुषमा, तो दूसरी तरफ स्वय वसन्त

अपने मानवीय स्वरूप मे वहॉ उपस्थित है। कामदेव के पञ्च बाणो मे आम्रमञ्जरी सबसे अधिक प्रसिद्ध है। वसन्त अपने मित्र के लिए बाण तैयार करता है। नयी–नयी कोपले लगाकर उसने आम की मञ्जरी का भी बाण तैयार कर दिया। आम के बौरो पर बैठे हुए भौरे ऐसे प्रतीत होते है मानो वसन्त ने उस बाण पर कामदेव के नाम के अक्षर लिख दिये हो।

लग्नद्विरेफाञ्जनभक्तिचित्रं मुखे मधुश्रीस्तिलक प्रकाश्य।
रागेणबालाऽरूणकोमलेन चूतप्रवालोष्ठमलञ्चकार।। कुमार0 – 3/30

कामदेव अपनी पत्नी रति को लेकर जब इस काव्यभूमि मे उतरा तो चराचर विश्व काम की उद्दाम ऊर्मियो मे प्रवाहित होने लगा। भौरा अपनी प्रिया के पीछे–पीछे घूमता हुए एक ही फूल के कटोरे से रस का मधुपान करने लगा, कृष्णवर्णी हिरण स्पर्श से आनन्दित बद आखो वाली हिरनी को अपनी सींग से खुजलाने लगा, हस्तिनी सूड मे कमल राग से सुगन्धित जल भरकर अपने प्रिय गज को पिलाने लगी। चक्रवाक अपनी आधी कटी हुई कमल की नाल लेकर चक्रवाकी को खिलाने लगा। यह चेतन जगत् की परिणति थी जिसको हम अचेतन एव निर्जीव समझते थे, वहॉ पर भी काम की छाया का स्पन्दन होने लगा। देखिये –

"मधुद्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रिया स्वामनुवर्तमान ।
श्रृङ्गेण च स्पर्शनिमालिताक्षी मृगीमकण्डूयत कृष्णसार ।।" कुमार0–3/36
"पर्याप्तपुष्प स्तबकस्तनाभ्य. स्फुरत्प्रवालोष्ठ मनोहराभ्य·।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुज बन्धनानि।।" कुमार0– 3/39

कुसुमगुच्छक रूपी स्तनों से परिपूर्ण और हिलने वाले पल्लवरूपी ओष्ठो से मनोहारिणी लतारूपी कामिनियो से स्थावर वृक्ष रूपी कामुक पुरूष भी फैली हुई शाखा रूपी भुजा के द्वारा आलिङ्गन को प्राप्त करने लगे। अर्थात् जब ब्रह्मादि स्थावर पदार्थो को भी कामविकार उत्पन्न हो गया तब दूसरे प्राणियो की अवस्था का क्या कहना है? साहित्य विशेषज्ञो के अनुसार यहॉ केवल श्रृङ्गार का आभास हो रहा है इसलिए रसाभास है परन्तु कालिदास का उद्देश्य रसाभास का चित्रण करना नही है अपितु उनका उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि अनुकूल वातावरण प्राप्त करके कामवासना जड–चेतन सभी को अपने अङ्क मे आबद्ध कर लेती है–

भगवान् शकर की समाधि की दूसरी स्थिति है। वे दीपक की निश्चत लौ के समान समाधिस्थ है। नन्दी अपना स्वर्णदण्ड लेकर सभी को शान्त कर रहे है। उनके एक ही आदेश पर वृक्षो ने हिलना–डुलना बन्द कर दिया, पशु पक्षियो ने कलरव करना बन्द कर दिया, जगली जन्तु जहॉ खडे थे वही की वही खडे रह गये। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो सारा वन अभयारण्य चित्रलिखित सा हो गया हो।

निष्कम्पवृक्ष निभृतद्विरेफ मूकाऽण्ऽज शान्त मृग प्रचारम्।
तच्छासनात्काननमेव सर्वं चित्राऽर्पितारम्भ मिवाऽवतस्थे।। कुमार0–3/42

जब कामदेव ने अपने धनुष पर बाण चढाया तब शिवजी का भी धैर्य क्षणभर के लिए छूट गया और वे पार्वती को देखने लगे तब पार्वती भी नवकदम्ब कुसुमो के सदृश अपने पुलकपूर्ण अङ्गो से अपना भाव प्रकट करती हुई तिरछे मुॅह करके खडी हो गयी।

"विवृण्वती शैलसुतापि भावमङ्गै स्फुरद्बालकदम्बकंल्पै ।
साचीकृता चारूतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन।।" कुमार0 – 3/68

इस प्रकार वसन्त ऋतु का चित्रण रूप योजना और विभिन्न व्यापारो की सश्लिष्टता से युक्त है। दार्शनिक सिद्धान्तो को जाने बिना कालिदास का लक्ष्य स्पष्ट नही हो पाता है।

चतुर्थ सर्ग मे– रति विलाप का दृश्य बडा ही मार्मिक है। समाधिस्थ शकर पर वसत के पार्थिव सौन्दर्य का प्रभाव नही पडता। कामदेव की भी शक्ति प्रतिहत हो जाती है परमयोगी शिव के तृतीय नेत्र से प्रादुर्भूत क्रोधाग्नि की लपटो मे काम जल जाताहै। कामदेव, रति और वसन्त के प्रयत्न इस सर्ग मे एक ही लक्ष्य की ओर उन्मुख है– रघुवश के अष्टम सर्ग मे पुष्पमाला के आधार से इन्दुमती के मर जाने पर महाराज अज ने विलाप किया है। इसी प्रकार कुमारसम्भव के चतुर्थ सर्ग मे कामदेव के भस्म हो जाने पर जो रति का विलाप हुआ है वह बहुत ही ह्रदय विदारक है।– अज इन्दुमती के मरने पर विलाप कर रहा है–

"कुसुमान्यपि गात्रसगमात् प्रभवन्त्यायुरपोहित यदि।
न भविष्यति हन्त! साधन किमिवान्यत् प्रहरिष्यतोविधे ।।" रघु0–8/44

यदि कोमल फूल भी शरीर को छूकर जीवन नष्ट करने मे समर्थ है तो मारने वाले निर्दयी विधाता के लिए और कौन चीज साधन नही हो सकती। जल कोमल सुमन से ऐसी दशा हो जाती है तो कठोर वस्तुओ का कहना ही क्या?

"अथवा मृदु वस्तु हिंसितु मृदुनैवारभते प्रजान्तक ।
हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता।।" रघुवश – 8/45

अथवा यमराज कोमल वस्तु को मारने के लिए कोमल वस्तु का ही उपयोग करता है। देखो! सकुमार कमलिनी का नाश कोमल पाले के पडने से हो जाता है।

"अथवा मम भाग्यविप्लवादशनि· कल्पित एष वेधसा।
यदनेन तरूर्न पातित· क्षपिता तद्विटपाश्रिता लता।।" रघुवश – 8/47

अथवा मेरे भाग्य दोष से विधाता ने इस माला को भी वज्र बना डाला है। इसने वृक्ष को तो नही गिराया, परन्तु उसके सहारे खडी लता को नष्ट भ्रष्ट कर डाला। भाग्य के विप्लव से अचिन्तित घटना भी घटित हो सकती है।

"कृतवत्यसि नावधीरणामपराद्धेऽपि यदा चिर मयि।
कथमेकपदे निरागस जनमाभाष्यमिम न मन्यसे।।"[1]

अज का कथन है – कि और जब कभी मैने अपराध किया, तब भी तुमने मेरा तिरस्कार नही किया। क्या कारण है कि आज बिना अपराध के ही मुझसे आकस्मात् रूठ गई हो, सैकडो विनय करने पर भी तुम मुझसे बाते नहीं करती।

"नवपल्लवसस्तरेऽपि ते मृदु दूयते यदङ्गमर्पितम्।
तदिद विषहिष्यते कथं वद वामोरू चिताधिरोहणम्।।"[2]

अज कह रहे है कि हे प्रिये! नवीन कोमल पत्रो की शय्या पर भी लेटने से तुम्हारा मृदु अङ्ग क्लेश पाता था, वही अङ्ग आज कठोर चिता पर कैसे रखा जाएगा। अग्नि की विषम ज्वाला उसे कैसे सह्य होगी।

ऐसे ही हृदय विदारक करूण दृश्य कुमारसम्भव मे कवि ने दर्शाये– रति भस्मीभूत हुए कामदेव के शरीर को देखकर शोकाकुल हो विलाप कर रही है–

---

1 रघुवश – 8/48
2 रघुवश – 8/57

"हरितारूणचारूबन्धन. कलपुस्कोकिलशब्द सूचित ।
वद सम्प्रति कस्य बाणता नक्चूतप्रसवो गमिष्यति।।"[1]

हे प्रिये! तुम्हारे बिना तुम्हारे प्यारे साथियो की कैसी दुरवस्था होगी। यह आम की नई मञ्जरी, जिसका डठल हरा, लाल और सुन्दर है जिसके आविर्भाव की सूचना कोकिल की मधुर काकली दे रही है, अब किसका बाण बनेगी—

"अवगम्य कथीकृत वपु प्रियवन्धोस्तव निष्फलोदय ।
बहुलेऽपि गते निशाकरस्तनुता दु खमनग मोक्ष्यति।।"[2]

हे अनङ्ग! तुम्हारी मृत्यु का हाल सुनकर आकाश मे व्यर्थ उदय लेने वाला चन्द्रमा कृष्णपक्ष के बीत जाने पर भी अपनी कृशता बडे दु ख से छोडेगा। तुम्हारे बिना अब वह कामी जनो को कदापि मुग्ध नही कर सकता। अत उदय होने पर भी वह दु खी है।

इस प्रकार अज विलाप, तथा रतिविलाप मे कई ऐसे करूणमय पद्यो का सन्निवेश है जो हठात् सहृदय भावुक के मन को झकझोर डालते है। अतीत की प्रणय केलि की स्मृति के चित्र रहरहकर इन करूण गीतियो की तन्त्री को विहाग की राग से झङ्कृत कर देते है। पर वाले विरह की तरह कालिदास का पाठक यहॉ केवल दो बॅूद ऑसू नही गिराता बल्कि उसका शोक सेतु को तोडकर बहते हुए जलसघात (क्षतसेतु बन्धनो जलसघात) की तरह अनवरूद्धगति से नि सृत हो जाता है। इस प्रकार मनुष्य तथा प्रकृति का यह दर्शनीय वियोग किस रसिक की हृदय तन्त्री को निनादित नही करता। धन्य है कालिदास और धन्य है उनकी सौन्दर्य दर्शन चातुरी।

ऐसे स्थलो पर कालिदास ने मन की भावनाओ की अभिव्यञ्जना करने के लिए प्राकृतिक उपादानो की सहायता ली। जिसे जो वस्तु प्रिय होती है मरने के बाद भी उसे उस वस्तु की आकाक्षा बनी रहती है। रति शोकाकुल होकर कहती है— वसन्त तुम जब अपने मित्र का श्राद्ध करना तो उन्हे पत्तो वाली आम की मञ्जरी अवश्य देना, क्योकि उन्हे आम की मञ्जरी अत्यधिक प्रिय थी।

---

1 कुमारसम्भव – 4/14
2 कुमारसम्भव – 4/15

"परलोक विधौ च माधव! स्मरमुद्दिश्य विलोलपल्लवा।
निवपे सहकारमञ्जरी प्रियचूत प्रसवो हि ते सरवा।।[1]

कुमारसम्भव के पञ्चम सर्ग मे कवि ने "पार्वती के आश्रम" का बडा ही सजीव वर्णन कियाहै। साथ ही पार्वती की लज्जा और उनके मानसिक असमजस की भी अभिव्यञ्जना कवि ने बडे रोचक ढग से की है– पशु–पक्षियो, वृक्षो–लताओ सभी के साथ पार्वती का अटूट स्नेह परिलक्षित हो रहा है–

"अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकान्घटस्तनप्रस्त्रवणैर्व्यवर्धयत्।
गुहोऽपि येषा प्रथमाऽऽप्त जन्मना न पुत्रवात्सल्यमपाकरिष्यति।।"[2]

पार्वती ने आलस्य छोडकर अपने हॉथो से बीजारोपण कर घडे के पानी से सीचकर उत्तम वृक्ष उत्पन्न किये और उन वृक्षो को अपने पुत्रो के समान बढाया। जिन वृक्षो पर उत्पन हुए अपत्य स्नेह मे अपने गर्भजात पुत्र स्कन्द के पैदा होने पर भी कोई कमी नही हुई।

अरण्यबीजाऽञ्जलिदानलालतास्तथा च तस्या हरिणा विशश्वसु।
यथा तदीयैर्नयनै कुतुहलात् पुर· सखीनामभिमीत लोचने।।[3]

पार्वती जब भी आश्रम मे ओढनी ओढकर पूजा करने बैठती, तब उन्हे देखने के लिए दूर–दूर से ऋषि–मुनि आया करते थे।

कहते है कि अभीष्ट वस्तु की अकस्मात् अकल्पित उपलब्धि मानव मन को आश्चर्य के कितने गम्भीर गर्व मे गिरा डालती है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का सुन्दर प्रसङ्ग आता है– पार्वती के जीवन मे– जब वह शङ्कर की नाना प्रकार से निदाए करने पर ब्रह्मचारी भी साक्षात् शिव के रूप मे आविर्भूत होकर पार्वती को आगे जाने से रोकता है तथा उसके हाथ को पकड लेता है। जाने के लिए उठा ुआ पैर वही का वही थम जाता है। उनकी स्थिति उस नही के समान हो जाती है जो आगे बढने का तेजी से प्रयास करती है, परन्तु मार्ग मे पहाड के सहसा अवरोध उत्पन्न हो जाने के कारण न आगे ही बढ़ पाती है और न पीछे ही लौट पाती है।

---

1 कुमारसम्भव – 4/38
2 कुमारसम्भव – 5/14
3 कुमारसम्भव – 5/15

"त वीक्ष्य वेपुथमती सरसाऽङ्ग यष्टिर्निक्षेपणाय पदमुद्धृतमुद्वहन्ती।
मार्गाचलव्यतिकराऽऽकुलितेव सिन्धु. शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।।"[1]

इस दृष्टि से कुमारसम्भव की कृति पूरी तरह रसवादी जान पडती है– रघुवश महाकाव्य की भाति यहॉ पर कवि किसी नैतिक व्यवस्था का पोषक नही दिखाई देता। यौवन की सरस क्रीडा मे रमण करना ही कवि का प्रतिपाद्य मालूम होता है। जिसे कवि ने पौराणिक इतिवृत्त लेकर व्यक्त किया।

रघुवश के पञ्चम सर्ग मे रघु की वीरता देखने को मिलती है पर वह युद्ध वीरता की नही दानवीरता की झाकी है। इसी सर्ग के अन्त मे एक नया चरित्र उभर कर आता है। अज के चरित्र के परिपार्श्व के रूप मे इन्दुमती स्वयम्बर, अज–इन्दुमती प्रेम आदि। इन्ही अज का वर्णन आठवे सर्ग तक चलता रहता है।

दशरथ उस समय तक बालक थे। राम का चरित्र, पितृ–भक्ति आदि स्वार्थ–त्याग का ज्वलन्त उदाहरण है।

इन सभी बातो से यह विदित होता है कि– कालिदास का अध्ययन गम्भीर था। निश्चय ही वे कालिदास सरसता के कवि थे, और हृदय के कवि थे। कालिदास का कलावादी दृष्टिकोण शुद्ध रसवादी है। रघुवश की आदर्शवादिता ने कभी भी उनकी रसवादी भावनाओं को ठेस नही पहुचाया है। उनका कलावादी दृष्टिकोण न तो भारवि के नारिकेलफल की तरह है और न माघ की भाति अलङ्कारो की बहुलता से युक्त है और न श्रीहर्ष की तरह कल्पनाओ के भॅवर मे फॅसाने वाला है, बल्कि कालिदास कवि हृदय, सुकुमार सरस भावों वाले है। उनकी कला का एक मात्र प्रतिपाद्य– किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीनाम्' है। कालिदास का श्रृङ्गार मर्यादित श्रृङ्गार है– इसी कारण विद्वद्गण कालिदास को प्रधानतया श्रृङ्गार का कवि मानते है। श्रृङ्गारिक वर्णनो तथा प्रकृति वर्णनो मे कालिदास की कोई बराबरी नही कर सकता। इसके अलावा श्रृङ्गार के सयोग पक्ष का ही नही, बल्कि वियोग पक्ष के चित्रण मे भी कालिदास की तूलिका

---

1 कुमारसम्भव – 5/85

अत्यधिक दक्ष है।[1] रघुवश के चतुर्दश सर्ग की राम की करूण अवस्था का चित्रण सूक्ष्म होते हुए भी हृदय के अन्तस्तल को छूने की क्षमता रखता है। राम के वियोग का वर्णन केवल एक श्लोक में कर कालिदास ने उसकी अभिव्यञ्जना को तीव्र बना दिया है,[2] जिसके आगे पत्थर को पिघला देने वाले भवभूति के सैकडो करूण वर्णनो को न्यौछावर किया जा सकता है। इनके श्रृङ्गारिक वर्णन अत्यधिक सरस है। कुछ एक जगह तो नीतिवादी की दृष्टि मे वे कुछ अमर्यादित से दिखाई पडे– कुमारसम्भव के अष्टम सर्ग का शिव पार्वती संभोग वर्णन भारतीय मनीषियो के द्वारा कटु दृष्टि से देखा गया, किन्तु सहृदय आलोचको का यह कहना है कि काव्य की दृष्टि से वह कालिदास की अपूर्व देन है। कालिदास ने मानव प्रकृति ही नही अचेतन प्रकृति को भी चेतन के रूप मे चित्रित कर प्रकृति के श्रृङ्गार के कई दृश्य वर्णित किये। कुमारसम्भव के प्रथम, तृतीय तथा सप्तम सर्ग का पार्वती के रूप का वर्णन कालिदास के नखशिख वर्णन की जान है।

"व्याहृता प्रतिवचो न सदधे गन्तुमैच्छदबलबिताशुका।
सेवते स्म शयने पराङ्मुखी सा तथापि रतये पिनाकिन.।।"[3]

शिव के द्वारा बातचीत किये जाने पर पार्वती उन्हें कोई प्रत्युत्तर नही देती थी, उनके द्वारा रोकने के लिए वस्त्र को पकड लिये जाने पर, वहॉ से चली जाना चाहती थी तथा एक ही शय्या पर सोने पर भी दूसरी ओर मुँह करके सोती थी, इस प्रकार शिव की रति मे विघ्न करने पर भी पार्वती उनके प्रेम को बढाती ही थी।

"अत्रानुगोद मृगयानिवृत्तरङ्गवातेन विनीत खेदः।
रहस्त्वदुत्सग निषण्णमूर्धा स्मरामि वानीरगृहेषु सुप्त ।।"[4]

---

1 त्वामामनन्ति प्रकृति पुरूषार्थ प्रवर्तिनीम्।
तद्दर्शिनमुदासीन त्वामेव पुरूष विदु ।। — कुमारसम्भव – 2/13

2 वभूव राम सहसा सवाष्पस्तुषारवर्षीव सहस्यचन्द्र·।
कौलीनभीतेन गृहान्निरस्ता न तेन वैदेहसुता मनस्त ।। — रघुवश – 14/84

3 कुमारसम्भव – 8/2

4 रघुवश – 13/35

हे सीते! आज मै उस घटना की याद कर रहा हूँ जब मृगया से निवृत्त होकर थका हुआ मै इस गोदावरी के किनारे पर लहरों के ससर्ग से शीतल वायु के कारण थकावट दूर कर तुम्हारी गोद मे सिर रखकर वेतस के कुञ्ज के एकान्त मे सो गया था।

इन सभी दृष्टान्तो के सिहावलोकन से यह प्रतीत होता है कि कालिदास केवल कवि ही नही थे, बल्कि एक सफल नाटककार की पदवी से उन्हे यदि सुशोभित किया जाय तो कम नही होगा।

रघुवश के द्वितीय सर्ग का सिह दिलीप सवाद, तृतीय सर्ग का रघु इन्द्र सवाद, पञ्चम सर्ग का कौत्स रघुसंवाद तथा सोलहवे सर्ग का कुश अयोध्या सवाद कवि की नाटकीय सवाद शैली का सङ्केत कर सकते है –

इसी प्रकार कुमारसम्भव का शिव पार्वती सवाद कालिदास के दोनो प्रबन्धकाव्यो मे इस दृष्टि से अपना विशिष्ट स्थान रखता है। ''एक गाय के लिए बहुमूल्य जीवन को बलिदेवी पर चढाते दिलीप को सिह मूर्ख समझता है तो नगे दरिद्र अकुलीन शिव को वरण करने की इच्छा वाली पार्वती को ब्रह्मचारी अपरिपक्वबुद्धि घोषित करता है। दोनो तर्क द्वारा उन्हे समझाते है पर दिलीप और पार्वती के उत्तर तर्क प्रणाली का आश्रय न लेकर हृदय की आवाज को सामने रखते है।

सिह और वटरूप ब्रह्मचारी की दलीलो का उनके पास कोई जबाव है ही नही। दिलीप के पास केवल यही उत्तर है कि वह यश शरीर को स्थूल शरीर से अधिक समझता है तथा अपनी रमणीय निधि के लिए भौतिक देह को बलि पर रखकर कीर्ति की रक्षा करना चाहता है और भोली भाली पार्वती पहले तो दलीलो का जबाव देने लगती है पर बाद मे दिल की आवाज को सामने रख देती है ''न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते।''

सिह को दिलीप के उत्तर सन्तुष्ट नही करते। उसे यह सनक सवार हो गयी कि गाय जैसी तुच्छ वस्तु के लिए इतनी महान् सम्पत्ति अभिनव यौवन, रमणीय शरीर को छोड रहा है और सिह इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है– कि दिलीप मूर्ख है।

"एकातपत्र जगत प्रभुत्व नव वय कान्तमिद वपुश्च।
अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढ प्रतिभासि मेत्वम्।।" रघु0–2/47

परन्तु कुमारसम्भव का ब्रह्मचारी रघुवश के सिह से भी अधिक वाचाल नजर आता है। उसे पार्वती पर उसके सौन्दर्य को देखकर दया का भाव जाग्रत होता है भला ऐसा सौन्दर्य किसी जौहरी को खोजने के लिए क्या इधर–उधर भटकेगा, क्योकि रत्न किसी को ढूढने नही जाता उसकी खोज स्वय जौहरी करता है।

"न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्"

पार्वती की एकमात्र कामना है कि वह शिव को अपना पति बनाये। जिसके लिए वह इतनी कडी तपस्या करती है। अचानक एक ब्रह्मचारी का उसके आश्रम मे आगमन होता है। वह यथार्थ मे शिव रूप ही है वटुवेष मे वह पार्वती से कहता है– कि शिव मे पार्वती के वर बनाने लायक एक भी गुण नही है। वर को ढूढने मे सुन्दरता, कुलीनता और सम्पत्ति का ध्यान रखा जाता है। शिव के पास इनमे से एक भी गुण नही है। उसका शरीर विकृत है, आखे तीन है, उसके कुल का कुछ अता–पता नही है और न धन आदि ही है।[1] मालूम नही तुमने क्या देखकर शिव को अपना पति चुनने का निश्चय कर लिया है। इन तीनो गुणो मे से शिव मे तो एक भी गुण नही है। भला अकुलीन, कुरूप तथा दरिद्र पति को वरण करने वाली बालिका को चञ्चल बुद्धि वाला न कहा जाय तो क्या कहे?– परन्तु पार्वती ब्रह्मचारी की दलीलो का जबाव न देकर कपाली की अशिवता को 'शिवता' सिद्ध करती है और महादेव की विभूति का सकेत करती है।

कालिदास की प्रसिद्ध उपमा को पहले ही वर्णित किया जा चुका है, जिसके प्रयोग से चमत्कृत होकर विद्वानो ने उन्हे 'दीपशिखा' की उपाधि से अलङ्कृत किया। उपमा के अतिरिक्त कालिदास के प्रिय अलङ्कार वस्तूत्प्रेक्षा, समासोक्ति, रूपक, अर्थान्तरन्यास, तुल्ययोगिता आदि भी है। कालिदास ने कभी भी अलङ्कारो के मोह मे फसकर उनका हनन नही करना चाहा, बल्कि विषय के अनुरूप वैविध्यपूर्ण ढग से अलङ्कारों का प्रयोग करना चाहा। जैसे–

---

1 वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता दिगम्वरत्वेन निवेदित वसु।
वरेषु यद्बालमृगाक्षि! मृग्यते तदस्ति कि व्यस्तमपि त्रिलोचने।। कुमारसम्भव– 5/72

"प्रणम्य चानर्च विलाशमस्या श्रृङ्गान्तर द्वारमिवार्थ सिद्धे" रघु0—2/21

इस प्रकार कालिदास के काव्यो मे सर्वत्र कोमलता का साम्राज्य दीख पडता है। कही भी अलङ्कारो का दुष्प्रयोग लक्षित नही होता। इसलिए इनकी शैली को प्रसाद गुण मण्डित एव अति कोमल शैली की सज्ञा दी गयी है। कालिदास की भाषा व्यञ्जना प्रधान है। सीता के द्वारा राम के प्रति भेजे गये सन्देश मे जहॉ सीता राम के लिए प्रयुक्त राजा शब्द तथा उसके साथ 'स' का प्रयोग 'राम कोरे राजा ही है'[1] राजा के कर्त्तव्य के अतिरिक्त उनका पति के रूप मे भी कुछ कर्तव्य था जिसे वे भूल चुके है इस भाव को व्यञ्जित करता है। इसी तरह सीता को रोती देखकर जब बाल्मीकि उसके पास आते हुए वर्णित किये जाते है तो कविवर कालिदास बाल्मीकि का परिचय "निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोक." इस तरह देते है।

कालिदास के काव्यो मे ऐसी कई काव्य रूढिया पाई जाती है जो भावी काव्यो का मार्ग दर्शन करती है। रघुवश महाकाव्य में वर्णित राजा रघु के दिग्विजय वर्णन को पढकर सुधी मनीषियो को यह आभास हो जाताहै कि कालिदास की दृष्टि उत्तर मे हिमालय से लेकर दक्षिण मे कन्याकुमारी तक और पश्चिम मे कम्बोज से लेकर पूर्व मे कलिङ्ग तक एक महान् मूर्तिमती कल्पना विद्यमान थी। इन्दुमती स्वयम्बर के समय सुनन्दा के द्वारा राजाओ का परिचय देने के माध्यम से उन्होने मगध, अग, अवन्ती, पाण्डव, महिष्मती तथा कोशल नाम से विख्यात भारतीय भूभागो का, रघुवश के पम्पासरोवर, पचवटी, गोदावरी, अगस्त्याश्रम, सरयू आदि का वर्णन, भारत माता के किरीट बने हिमालय के वर्णन, उसे देवात्मा का विर्शपण दे उसकी नयनरंजक प्राकृतिक सम्पदा का वर्णन बकुल आदि के वर्णन मे दोहद सम्बन्धी रूढिया कालिदास मे ही सबसे पहले दृष्टिगोचर होती है। जिसका अनुकरण आगे आने वाले सभी महाकवियो यथा अश्वघोष, भारवि इत्यादि के द्वारा किया गया।

इस प्रकार कालिदास के ग्रन्थो का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन करने के पश्चात् यह आभास होता है कि— क्या रस प्रवणता, क्या अलङ्कारिता अप्रस्तुत विधान क्या प्रकृति

---

1 "वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा" चतुर्दश सर्ग — रघुवश — 14/21

वर्णन का अद्‌भुत दृश्य, भारतीय सस्कृति के प्रति अगाध आदर, विश्वास एव स्वाभिमान, क्या शैली की चमत्कारिता, क्या राष्ट्र के प्रति कल्याण कामना इत्यादि सभी दृष्टिकोण से कालिदास की समानता अन्य सस्कृत कवि नही कर पाता। जहाँ कही भी उन्होने सार्वजनीन भाव प्रकट किये है वही उनकी दृष्टि सार्वभौम हो गयी है।[1]

अनेक भावात्मक और कलात्मक रत्नो का समवाय होने के कारण हमे कालिदास मे भारत और भारतीयता की स्पष्ट झलक प्रतिविम्बित होती है। इस प्रकार कालिदास के महाकाव्य कोमल कला की दृष्टि से ही रोचक नही है, परन्तु आध्यात्मिकता की दृष्टि से भी उपोदय है।[2]

इस सभी चित्रणो के वर्णन करने की प्रकृति कालिदास को उपजीव्य महाकाव्य रामायण एव महाभारत से प्राप्त हुई जिसको उन्होने बडी कुशलता से पहचाना। इसका एकमात्र निदान उनकी विलक्षण पैनी काव्य दृष्टि मे विद्यमान था। अपनी नवनवोन्मेष शालिनी प्रतिभा के बल से महाकवि ने अपने महाकाव्यो के निर्माण मे पूर्ण स्वातन्त्र्य का परिचय दिया। वस्तुत. यह कवि की प्रतिभा शक्ति ही का जादू है कि जीवन–मृत्यु, युद्ध–शक्ति, प्रणय–कलह, प्रात–साय, मृगया–मनोरजन, वन–कानन आदि के पूर्व ऋषियो के उक्त आकर महाकाव्यो मे अनेक बार किये गये वर्णन के बाद भी ये विषय उनके काव्यो मे वर्णित होने पर बासी नही होते। महाकवि की प्रतिभा प्रत्येक वर्णन के प्रसङ्ग मे कल्पना एवं रस का पुट देकर उसे नितान्त नूतन बनाकर स्पृहणीय बना देती है।

आनन्दवर्धन ने कहा है कि– कवि की प्रतिभा शक्ति ही काव्योत्कर्ष उत्पन्न करती है– "अनेन आनन्त्यमायाति कवीना प्रतिभा गुण." ध्वन्यालोक चतुर्थउद्योत। काव्य के रस ध्वनि और गुणीभूत व्यङ्ग्य तत्त्व प्रतिभा शक्ति के अनन्त रूपो को उत्पन्न करने मे किस प्रकार हेतु बनते है इसका भी मौलिक विवेचन आनन्दवर्धन ने किया है। उनका कहना है कि पूर्वऋषियो व्यास, बाल्मीकि आदि के काव्यो के रहते हुए भी परवर्ती

---

1 सस्कृत साहित्य मे राष्ट्रीय भावना – पेज 126–127
सस्कृत को रघुवश की देन – डा0 शङ्करदत्त ओझा पृष्ठ – 47

महाकवि अपने काव्यो मे रस ध्वनि का उपयोग कर काव्य मे एकदम नयापन भर देते है। काव्य मे यह नवीनता चारूता का रूप धारण करके पूर्वाचार्यो द्वारा कही गयी बात को भी नई सी बना देता है। राम, सीता, लक्ष्मण आदि के चरित्र तथा राम–रावण युद्ध आदि के वर्णनो के रहते हुए भी कालिदास ने उसी कथामात्र मे इसका सन्निवेश कर अपनी प्रतिभा बल से इनका बारम्बार वर्णन किया है किन्तु वह पिटापिटाया वर्णन नही लगता उनके हर वर्णन मे रस ध्वनि नयी–नयी झाकियो मे अभिनवा वधू के रूप मे झिलमिलाती रहती है। यही काव्य मे अनन्त रूपता एवं चारूता का रहस्य[1] है।

कालिदास ने अपने पूर्व सूरियो से घटना एव कथा की प्रेरणा लेकर उसे अपनी प्रतिभा के सतरगी रग से रगकर सर्वथा नये काव्य के रूप मे प्रस्तुत किया। एक ओर जहॉ प्रतिभा के समाश्रय से रस ध्वनि का पुट देकर महाकवि ने प्राचीन इतिवृत्तो को नया काव्य कलेवर दिया वही एक और आविष्कार कालिदास ने किया। उन्होने इतिवृत्त को भी काट छॉट कर अपनी आवश्यकतानुसार बदला। इसके अलावा जहॉ–जहॉ उन्होने यह अनुभव किया कि बिना कथावस्तु को मोड दिये कोई रोचकता या चारूता नही आयी वहॉ उन्होने आवश्यकतानुसार परिवर्तन एव परिवर्धन किये। इस ससोधन एव परिवर्धन के पीछे भी एक औचित्यपूर्ण सिद्धान्त रहा है वह सिद्धान्त है रसानुकूलता[2] का। जहॉ–जहॉ महाकाव्य मे प्रकरणो को अङ्गीरस के अनुकूल बनाने की आवश्यकता महसूस हुई वहॉ–वहॉ कथानक को घुमाकर तथा लचीला बनाकर उसे रसानुकूल बनाया गया।

कालिदास ने अपने रघुवंश आदि महाकाव्यो मे ऐसा किया है। रघुवश मे अज आदि राजाओ का विवाह वर्णन और शकुन्तला मे शकुन्तला का प्रत्याख्यान आदि इतिहास मे उस रूप में वर्णित नही है किन्तु कथा को रसानुगुण और राजा को उदात्त चरित बनाने के लिए उनकी कल्पना की गयी है। महाकवि कालिदास आदि की इसी वृत्ति को देखकर आनन्दवर्धन इसे सिद्धान्त का रूप प्रदान कर दिया उन्होंने यह माना कि रसानुकूल परिवर्तन करने के लिए महाकवि पूर्ण स्वतन्त्र होता है।

---

1 वही – डा0 शङ्कर दत्त ओझा , पृष्ठ – 64
2 वही – डा0 शङ्कर दत्त ओझा , पृष्ठ – 74

इस प्रकार कालिदास ने रसभाव तत्त्व को मूर्धन्य स्थान देकर अपने महाकाव्यो से अर्थतत्त्व अथवा इतिवृत्तात्मकता को उपसर्जनीभूत कर दिया। कालिदास ने कवि स्वातन्त्र्य के इन मार्गों को परवर्ती महाकवियो के लिए प्रशस्त किया। यह कालिदास की अपनी देन है।

उनका यह स्वतत्र प्रयोग परवर्ती साहित्यकारो के लिए सिद्धान्त बनाने हेतु प्रेरणा स्त्रोत बना। इस प्रकार कालिदास की सरस्वती शब्दो के निसर्ग सौन्दर्य को अधिक महत्त्व देती है। प्रसाधन को कम, वस्तु की भाव व्यञ्जक रूप मे योजना प्रधान मानती है चमत्कार उत्पन्न करने के लिए कम। ललितोचित शब्दार्थ सन्निवेश उनके अलङ्कारो के मूल[1] मे है इन्ही मूल कारणो के बल पर आनन्दवर्धन ने कालिदास को महाकवि कहकर उनकी गणना सस्कृत के दो चार महाकवियो मे की है। और उन दो चार मे भी पहला नाम वह कालिदास का ही लेते है।

तत् वस्तुतत्त्व नि ष्यन्दमाना महता कवीनां भारती
अलोकसामान्यं प्रतिभाविशेष परिस्पुरन्त। अभिव्यनक्ति।
येनास्मिन्नति विचिकवि परम्परावाहिनि ससारे कालिदास
प्रभृतयो द्वित्रा. पञ्चषा एव वा महाकवय इति गण्यन्ते। ध्वन्यालोक – 1–6

आनन्दवर्धन की दृष्टि मे वही व्यक्ति महाकवि हो सकता है जो प्रतीयमान अर्थ को अभिव्यक्त करने की क्षमता रखता हो। महाकवि बनने के इच्छुक व्यक्ति को शब्द और अर्थ को भली–भॉति पहचानना चाहिए। व्यङ्ग्य और व्यञ्जक के सुन्दर प्रयोग से ही कवियो को महाकवि पद की प्राप्ति होती है।[2]

"सोऽर्थस्तद्व्यक्तिसामर्थ्ययोगी शब्दश्च कश्चन"। ध्वन्या0– 1/8

---

1 तेषु हि कथाश्रयेसु तावत् स्वेच्छैव न योज्या। यदुक्तम् कथामार्गे न चाल्पोऽप्यतिक्रम, स्वेच्छापि यदि योज्या तद्रसविरोधिनी न योज्या। इदमपर प्रबन्धस्य रसाभिव्यञ्जकत्वे निबन्धनम्। इतिवृत्तवशायाता कथञ्चिद्रसाननुगुणा स्थितिं त्यक्त्वा पुनरूत्प्रेक्ष्याप्यन्तराभीष्ट रसोचित कथोन्नयो विधेय। यथा कालिदास प्रबन्धेषु। ––––– कविता काव्यमुपनिबध्नता सर्वात्मना रसपरतत्रेण भवितव्यम्।
ध्वन्यालोक, आचार्य विश्वेश्वर कृत टीका सहित तृतीय उद्योत–

2 वही– डॉ0 शङ्कर दत्त ओझा, पृष्ठ – 120

अत भाव यह है कि प्रसन्नता और गाम्भीर्य इन दोनो गुणो के सुमधुर सन्निवेश के कारण ही काव्य श्रेष्ठ कहलाता है और इस कोटि के काव्य के प्रणेता को महाकवि कहा गया है।

प्रसाद एव गाम्भीर्य गुणो से जितनी कालिदास की वाणी समृद्ध है उतनी सस्कृत के किसी कवि की वाणी नही है वस्तुत इन्ही गुणो से युक्त उनकी कविता को देखकर ही भारवि[1] ने तथा आनन्दवर्धन[2] ने एक रहस्य को उद्घाटित किया है। भारवि के अर्थगौरव का यही मूल है– भारवि ने कालिदास की इसी गुरूता के मूल तत्त्व को अपनाया और अपने अर्थ गौरव मे प्रसिद्धि पायी।

भाषा की सिद्धि मे कालिदास को अभूतपूर्व सफलता मिली है। आनन्दवर्धन के अनुसार उनकी यह सफलता उनकी असाधारण प्रतिभा का फल है। महाराज दिलीप की नि सन्तान पत्नी सुदक्षिणा को महाकवि 'जाया' कहता है अर्थात् पुत्रोत्पत्ति योग्यता से युक्त (मातृत्व से सम्पन्न) पत्नी ''जायायास्तद्धि जायात्व यदस्या जायते पुन''–

अथ प्रजानामधिप प्रभाते जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम्।
बनाय पीतप्रतिबद्धवत्सा यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच।। रघुवश – 2/1

यहॉ जाया के स्थान पर प्रिया, भार्या, कान्ता, पत्नी आदि शब्द भी बिना छन्दोभङ्ग हुए प्रयुक्त किये जा सकते है, किन्तु नही 'जाया' मे जिस भाव का सङ्केत है वह इन पर्यायो मे कहॉ सम्भव था?

स्वयम्बर के आरम्भ मे कवि ने इन्दुमती को 'कन्या' कहा है– ''मनुष्य वाह्य चतुरस्रायानमध्यास्य कन्या'' 6/10 और अज के ऊपर दृष्टि डालने के ठीक पूर्व तक वह कन्या बनी रहती है– ''तत सुनन्दावचनावसाने लज्जा तनूकृत्य नरेन्द्र कन्या'' रघु0 6/80 किन्तु जैसे ही वह अज को देखती है अज की हो जाती है सुन्दरी की प्रसाद निर्मम वरमाला बनकर अज के गले मे पड सी जाती है उसी क्षण कन्या से वह

---

1 ''प्रवर्तते नाकृतपुण्य कर्मणा प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती''। किरात0 – 14/3
2 ''प्रसन्न गम्भीरपदा काव्यबन्धा सुखावहा''। ध्वन्यालोक 3/35

'वधू' बन जाती है– "आर्ये ब्रजामोऽन्यत इत्यथैना वधूरसूयाकुटिल ददर्श"– 6/82 अभी तक अज के गले मे मधूक माला पहनायी नही गयी किन्तु वह मन से अज का वरण कर चुकी है इसलिए वधू तो बन ही गयी है। "असूया कुटिल ददर्श" में उदात्त हास्य से परिपुष्ट सयोग श्रृङ्गार की अनूठी व्यञ्जना है ऐसे मर्यादित श्रृङ्गार की अभिव्यञ्जना विरले ही कही दिखाई दे।

प्रबन्ध रचना में यो तो शब्द चयन पर विशेष ध्यान देना चाहिए किन्तु जहाँ पर घटना अथवा चरित्र वर्णन मे शैथिल्य आ गया हो वहाँ कवि को भाषा सौन्दर्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए। किन्तु ऐसा विषय महाकवि की वाणी का विषय नही अपितु साधक कवि की रचना मे पाया जाता है। इस प्रकार के काव्य व्यङ्ग्यार्थ की स्फुट प्रतीति से रहित होते है। इसलिए मम्मट ने ऐसे काव्य को अवर काव्य कहा है[1] तथा इसके अलावा उसे चित्र काव्य के नाम से भी सम्बोधित करते है। सहृदय यह जानते है कि कालिदास ने इस प्रकार के रस भाव विहीन शब्दार्थ के नाद वैचित्र्य हेतु काव्य नही लिखा है उनके काव्य इस प्रकार के चित्र काव्य को इङ्गित अवश्य करते है। किन्तु उनके वे चित्रकाव्य उस काव्य रूपी चित्र की तरह नही है जिसमे प्रतिपाद्य वस्तु की छाया का अङ्कन मात्र हो उसकी आत्मा (रसभावादिया) अभिव्यञ्जन न हो। रघुवश के नवम् सर्ग मे यमक मण्डित शब्दावली मात्र शब्दार्थ के निर्जीव चित्रो की वीथी ही नही प्रस्तुत करती अपितु वह अवसरोचित एव प्रतिपाद्य विषय वसन्तादि वर्णन को विभावादि के माध्यम से छन्द की स्वाभाविक गति के साथ ही साथ अभिव्यक्त करती है।[2] किन्तु पश्चवर्ती महाकवियो विशेषतया भारवि, माघ, एव श्रीहर्ष ने तो कालिदास से प्राप्त चित्रकाव्य की इस प्रेरणा का दुरूपयोग ही किया। यद्यपि उनके हाथो इस प्रकार की शैली मे घनघोर पाण्डित्य की छाप दिखाई देती है। किन्तु काव्य का प्रसाद अर्थ गम्भीर्य गुण एव रस भावादि की साकेतिकता को तिलॉजलि दी गयी प्रतीत होती है कविता प्रसाद मधुरा सरस वाणी न होकर कही–कही तो अखाडेबाजी[3] सदृश मात्र रह गयी है। काव्यगत ओजादि गुण रस के नियत एव स्थिर धर्म है। ये गुण प्रतिपाद्य रस के उत्कर्षक हेतु होते है।

---

1 शब्दचित्र वाच्य चित्र मव्यङ्ग्यम् त्ववर स्मृतम्। काव्यप्रकाश
2 सस्कृत को रघुवश की देन – डा0 शङ्कर दत्त ओझा, पृष्ठ – 247
3 वही – डॉ0 शङ्कर दत्त ओझा, पृष्ठ – 70

"येरसस्याङ्गिनोधर्मा शौर्यादिवइवात्मन" काव्यप्रकाश – अष्टम उल्लास

मम्मट की उक्त परिभाषा से यह विदित होता है कि गुणो की पदवी अलङ्कारो से ऊपर स्थापित की गयी है क्योकि अलङ्कार काव्य के अस्थिर अनियत धर्म है किन्तु गुण तो नित्य अथवा स्थिर धर्म है, जो काव्य के उत्कर्ष मे हेतु बनते है। मम्मट ने त्रिविध गुणो की सत्ता को स्वीकारा, 'माधुर्य' ओज, प्रसाद। माधुर्य कालिदास की कविता का सहज श्रृङ्गारिक आभरण है–

"कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्चतैस्तैर्विनयप्रधानै ।
त्वमात्मनस्तुल्यममु वृणीष्व रत्न समागच्छतु काञ्चनेन्।। रघुवश – 6/79

ओज वह गुण है जिसे सामाजिक के हृदय का विस्तार अथवा चित्त का प्रज्वलन धधक उठना कहा जा सकता है, जो कि वीररस मे स्वभावत हुआ करता है। यद्यपि वीर रस तो ओजस्वी है ही, किन्तु उससे अधिक ओजस्वी है वीभत्सरस और इससे भी ओजस्वी है रौद्ररस।[1] क्रमश· इन तीनों रसो मे सहृदय का चित्त अधिक उद्दीप्त हो उठा करता है।

तीसरा एव अन्तिम प्रसाद गुण वह गुण है जो चित्त मे सहसा व्याप्त हो जाय तथा सुनते ही जिन शब्दो का अर्थबोध हो जाय ऐसे सरल एव ललित शब्द प्रसाद के व्यञ्जक होते है।[2] कालिदास की सभी रचनाए वैदर्भी रीति से सम्पन्न है। माधुर्य व्यञ्जक और सुकोमल वर्णो–पदो के प्रयोग तथा छोटे–छोटे हृद्य समास गुच्छो से उनका समस्त साहित्य वासन्ती वाटिका की भॉति रमणीय है। वैदर्भी शैली मे अलङ्कृति और ध्वनि का समायोजन है। श्रृङ्गार एव करूण के प्राधान्य के कारण उनकी रचनाओ मे अन्तस्तल को आर्द्र कर देने वाली आह्लादमयी पदसघटना अपने मे ही एक अनूठी सृष्टि है। प्रत्येक शब्द अपना भाव सौष्ठव लिए हुए रस की भीनी–भीनी फुहार सर्वत्र छिडकता जाता है।

---

1 दीप्त्यात्म विस्तृतेर्हेतुरोजोवीररसस्थिति । का0प्र0 अष्टमउल्लास पृ0 389
2 शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैवय – का0प्र0

उनके अलङ्कार शब्द एव अर्थ मे इस प्रकार घुलमिलकर प्रकाशित होते है कि लगता है कि जैसे वे वाह्य शोभा कारक नही हो। रसो की निर्झरिणी मे सूर्य के प्रकाश मे प्रतिविम्बित अलङ्कार रग बिरगी आभा से चमकते रहते है। शब्दार्थ सगीत उनकी कविता का श्रृङ्गार है। वैदर्भी चषक मे ढाली गयी उनके इस काव्यासव की मादकता से छककर ही कविवर 'दण्डी' ने कहा है कि–

"लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विषया गिर।
तेनेदवर्त्म वैदर्भ कालिदासेन शोधितम्।।"

सचमुच कालिदास की वाणी विषयो का वर्णन करके भी विषयो के परिपक्व मे पगी उनकी वैदर्भी शैली ने काव्य साधना का मार्ग शोधा है। उनकी एकमात्र वैदर्भी रीति ही स्थायी रीति है जिसमे पाञ्चाली, गौडी सभी किसी न किसी रूप मे समा जाती है।[1] प्रसाद एव माधुर्य की प्रवाहता के कारण कालिदास मुख्यत ललितपक्ष के कवि है उनकी काव्यसाधना का बखान करते हुए 'अरविन्द' कहते है–

"कालिदास शीर्षस्थ कलावित् हैं। भाव गम्भीर रचना माधुर्य नाद एव भाषा के प्रभु जिने सुरभारती की अनन्त सभावनाओ में से इस प्रकार की काव्य शैली तथा पद सघटना का निर्माण किया है। जो निश्चित रूप से अत्यधिक महान् अत्यन्त शक्तिशाली एव अत्यधिक नादोन्नत है। कालिदास ने सस्कृत को उत्कृष्ट नाद के भव्य भवन मे स्थापित किया है तथा उनकी रचनाओ से उद्भूत ध्वनि वही ध्वनि है जो प्राचीन साहित्य की सर्वश्रेष्ठ रचनाओ में दिखाई देती है।"[2]

इस साहित्य की शैलीगत विशेषताए सुगठित परन्तु सहज सक्षेप मृदु गाभीर और स्निग्ध उदारता पद्यगत उच्चस्तरीय स्वर सामञ्जस्य परिष्कृत गद्यय का शक्तिमत् और प्राञ्जल सौन्दर्य और सबसे बढकर सक्षित तथा प्रभावोत्पादक पदावली की निश्चित अर्थक्ता जो रग एव माधुर्य से परिपूर्ण है और फिर उनकी भाषा इतनी लचीली है कि महाकाव्य से लेकर गीति तक की समस्त काव्य विधाओ मे इसकी सुन्दर योजना सम्भव

---

1 विशेष अध्ययन हेतु देखिए सस्कृत का रघुवश की देन – डॉ0 शटरदत्त ओझा। पृ0 40–45
2 श्री अरविन्द 'कालिदास(सेकेण्ड सीरीज)' पृष्ठ – 16–17

है। विशेषकर महाकाव्य तथा नाटक मे। कालिदास ने अपनी महाकाव्य सम्बन्धी शैली मे सस्कृत भाषा की इन विशेषताओ मे नाद एव अभिव्यञ्जना की वह पूर्णता तथा महनीयता जोड दी है जो अग्रेजी भाषा के कवि मिल्टन के एतद्सम्बद्ध वैशिष्ट्यो से (आगे) बढ जाती है।

काव्य मे रस तथा प्रतिपाद्य विषय के अनुसार छन्दो का भी विवेकपूर्ण विनियोजन करना चाहिए। औचित्य सम्प्रदाय के प्रवर्तक "आचार्य क्षेमेन्द्र" ने कहा है कि–

"काव्ये रसानुसारेण वर्णनानुगुणेन च।
कुर्वीत सर्ववृत्ताना विनियोग विभागवित्।।

विभिन्न रसो के सयोजन के लिए भिन्न–भिन्न छन्दो का भी प्रयोग आवश्यक होता है। कालिदास छन्दो के प्रयोग में विवेकशील है। रघुवश कुमारसम्भव दोनो महाकाव्यो में विषयवस्तु की विविधता को देखते हुए ही रसोपयोगी छन्दो की योजना की है। अनुष्टुप, उपजाति, मालिनी, वशस्थ, हरिणी, प्रहर्षिणी वसन्ततिलका, पुष्पिताग्रा, त्रोटक, मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, मालिनी, रथोद्धता, मत्तमयूर, स्वगता का वर्णन किया है। छन्दो की गति एव लय रस तथा भावादि की प्रेषणीयता के साथ पूरा तालमेल रखती है। वे विशेष प्रकार के रस की अभिव्यक्ति के लिए छन्द विशेष का आह्वान करते है। उदाहरणार्थ– उन्होने तपश्चर्या, सौन्दर्यादि वर्णन के लिए उपजाति युद्ध एव शौर्य के चित्रण मे वशस्थ, वेदना के लिए वियोगिनी, आखेट, उत्सव, प्रणय क्रीडादि के लिए रथोद्वता ऋतु एवं सुख सम्पदा के वर्णन के प्रसङ्ग में द्रुतविलम्बित, ऋतुओ आदि के वर्णन मे वसन्ततिलका, न्यास के अभ्युदय–उत्कर्ष आदि के वर्णन मे हरिणी का प्रयोग किया है– उनकी छन्दोयोजना रसानुरूप संगीत योजना है "स्थित स्थितामुच्चलित. प्रयाता निषेदुषी मासनबन्धधीरः[1] तथा ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी[2]

---

1 रघुवश – 2/6
2 रघुवश – 2/30

का प्रयोग गतिमत्ता एव नादात्मकता के वाहक होने के साथ ही रसानुगुण भी है। "गृहिणी सचिव सखी मिथ प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ"[1] की रूक रूक कर आगे बढने वाली गति अज के बोझिल ह्रदय मे स्थित शोक को धीरे–धीरे अभिव्यक्त करने मे सर्वथा समर्थ है। "सचारिणी दीपशिखेव रात्रौ य य व्यतीयाय पतिवरा सा"[2] मे जयमाल के लिए इन्दुमती के एक के बाद दूसरे नृप को छोडकर आगे बढते जाने का भाव छन्द की लय से इङ्गित हो रहा है। प्रबन्ध मे रस की साङ्केतिकता छन्दो की विशेष सयोजना की अपेक्षा रखती है। इसे कालिदास ने एक सिद्धान्त के रूप मे अपने उत्तराधिकारियो के मार्गदर्शन के लिए प्रतिपादित किया।

प्रबन्ध काव्य मे प्रकृति चित्रण को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। बाल्मीकि रामायण मे प्रकृति के अत्यन्त सजीव एव आकर्षक वर्णन मिलते है, किन्तु कालिदास ने प्रकृति के वर्णन मे अपनी मौलिक प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। वह प्रकृति को मानव जीवन का अभिन्न सहचर मानते है। उनका काव्य मानव जीवन की विशद विवेचना के लिए अर्पित था। अतएव सृष्टि की इतर वस्तुए मानव जीवन की सेवा मे ही रत दिखाई गयी है। प्रबन्ध मे जैसे प्रधान कथानक के साथ नायक जीवन के अन्य अवान्तर प्रसङ्गे का चित्रण आवश्यक होता है ठीक उसी प्रकार प्रकृति के विभिन्न उपादानो जैसे प्रात., सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, वन–पर्वत आदि का भी प्रसङ्गोचित सरसचित्रण आवश्यक है। विश्वनाथ ने महाकाव्य का स्वरूप बताते हुए स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है[3] –

रघुवश और कुमारसम्भव महाकाव्य मे कालिदास ने जगह–जगह प्रकृति के उपादानो के अनुपम चित्र चित्रित किया है। कथा प्रवाह कही भी विराम अथवा उसमे अवरोध उत्पवन्न नही होने देता है। परवर्ती महाकवियो ने प्रकृति वर्णन के लिए अवसर का आविष्कार किया है। जबकि कालिदास ने अवसर आने पर ही उसका सर्वथा उचित प्रयोग करते हुए उद्दीपन आदि विभावों के सहारे प्रकृति के अनेक रूपो का चित्रण

---

1 रघुवश – 8/67
2 रघुवश – 6/67
3 सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्त वासरा ।
प्रातर्मध्याह्नमृगया शैलर्तुवन सागरा ।। साहित्यदर्पण – 6/322

किया है। वह वर्णन की सीमा भी जानते है। इसलिए उनके प्रकृति चित्रण मे न कही अनावश्यक विस्तार है और न कही अपेक्षित चित्रण का ह्रास। उनका प्रकृति चित्रण मात्र प्रकृति चित्रण के लिए नही है।

परिणामत जो प्रकृति पदार्थ कथा मे निसर्गत आ गया है उनकी लेखनी का अव्याज विषय बनकर धन्य हो गया है। उसमे फिर सुधार की गुजाइश नही छोडी गयी। उनकी इस विशेषता के कारण कथावस्तु और भी अधिक रोचक बन गयी है। पुत्र प्राप्ति हेतु दिलीप और सुदक्षिणा वशिष्ठ के आश्रम जाते है। अयोध्या से बाहर निकलते ही वे प्रकृति के अनन्त साम्राज्य मे पहुच जाते है। इसी प्रकार कुमारसम्भव के ''सीकर व्यतिकर मरीचि भिर्दूर'' की शोभा का क्या ही वर्णन किया है? जहॉ सूर्य के अस्त हो जाने पर उसकी किरणो का सम्पर्क बहते हुए झरने के जलकणो से अलग हो जाता है– ऐसे सुन्दर–सुन्दर दृश्यो को आवेष्टित कर महाकवि कालिदास ने प्रकृति के सुन्दरतम दृश्यो को वर्णित किया है।

रथ की गडगडाहट सुनकर मोरो ने मुॅह ऊपर उठाकर देखा कि कही बादल तो नही गरज रहे है –––––

मनोऽभिरामा श्रृण्वन्तौ रथनेभिस्वनोन्मुखै ।<br>
षड्जसवादिनी केका द्विधा भिन्नाशिखण्डिभि ।।        रघु0 1/39

राजारानी ने ऑखे उठाकर जब आकाश की ओर देखा तो कलरव करती हुई धवल बगुलो की पक्ति बिना खम्भे की बन्दनवार जैसी दिखाई पडी।

''श्रेणी बन्धाद्वितन्वद्भिरस्तम्भा तोरणस्त्रजम्।<br>
सारसै कलनिर्ह्लादै· क्वचिदुन्नमिताननौ।।        रघु0 1/41

गोचारण एव वसिष्ठाश्रम के वर्णन प्रसङ्ग मे प्रकृति का बहुत अधिक वर्णन किया जा सकता है। इसी प्रकार कुमारसम्भव में वर्णित तृतीय सर्ग मे वसत श्री का वर्णन आठवे सर्ग मे वर्णित सायकालीन चित्र अत्यधिक प्रकृति के चित्रण मे समर्थ हो सकते है। किन्तु कालिदास कथावस्तु एव प्रसग को सदैव ध्यान मे रखते है। गोचरण एव आश्रम के धर्मक्रिया सकुल वातावरण मे अत्यधिक प्रकृति वर्णन उचित नही होता। इस स्थल के चित्रण का प्रमुख उद्देश्य था पुत्र प्राप्ति की याचना जो प्रकृति चित्रण के

कारण पृष्ठभूमि मे पड जाती है। इसलिए महाकवि चार छ श्लोको मे ही प्रकृति का मार्मिक चित्र खीच लेता है जो चित्त को अपने अधीन कर लेती है।

दिलीप वसिष्ठाश्रम को वापस आ रहे है– मार्ग मे वह यह देखते हुए चल रहे है कि कही छोटे–छोटे तालाबो से शूकरों के झुण्ड निकल रहे है कही मोर अपने बसेरो की ओर उडे जा रहे है। कही हरिण थककर हरी घासो पर बैठे हुए है और सन्ध्या होने के कारण धीरे–धीरे समस्त वनराजि श्यामल होती जा रही है।

"स पल्लवोस्तीर्ण वराहयूथान्यावासवृक्षोन्मुख वर्हिणानि"। रघु0– 2/16

प्रकृति की विराट्ता की यह झलक भावक को मुग्ध कर देती है। प्रकृति के विराट रूप का व्यङ्ग्यात्मक चित्रण नपे–तुले पदो में करना कालिदास की अपनी विशेषता है। रस ध्वनि प्रधान यह शैली काव्य को उदात्त बना देती है–

नवम् सर्ग मे द्रुतविलम्बित पर आरूढ बसन्त वर्णन महाकाव्य के इतिहास मे एक अभिनव परिपाटी का श्रीगणेश करता है इन चमत्कृत एव यमकमण्डित पद्यो ने संस्कृत की परवर्ती महाकाव्य परम्परा की सैकडो शताब्दियो को मन्त्रमुग्ध कर रखा था। इस प्रकार की शैली के विधान का सारा श्रेय कालिदास को ही है। इसी प्रकार 16वे सर्ग की जलक्रीडा का वर्णन भी अवसरोचित एव मनोहर है। इन वर्णनो का अपना पूर्ण औचित्य है क्योकि आगे की वश परम्परा की कथा का जन्म इन्ही प्रसगो के गर्भ मे निहित है। रघुवश के नवम् सर्ग मे आखेट मे श्रवणकुमार के दु खद निधन का तथा कुमारसम्भव मे वर्णित कामदेव के दहन का वर्णन इत्यादि जीवन मे पडने वाले भावी प्रभाव की सूचना देते है। इसी प्रकार त्रयोदश सर्ग का त्रिवेणी वर्णन अतुलनीय है। प्रकृति के उपादानो के उपमान असीम शक्तिवाले भगवान शङ्कर बन जाते है। एक से एक अनूठी उपमा देने के बाद भी जब कवि अघाता नही है तो वह भस्म लपेटे हुए भगवान शङ्कर से सगम की उपमा दे डालता है। 'भस्माङ्गरागातनुरीश्वरस्य"। यह छटा मेघदूत मे भी मिलती है। प्रबन्ध मे भावो की उदात्तता के चित्राङ्कन मे कालिदास को कोई चितेरा छू नही सका है।

---

1 सस्कृत को रघुवश की देन – डा0 शङ्करदत्त ओझा – देखिए – पृ0 127

प्रकृति वर्णन मे कालिदास ने सदैव रसगत्, प्रसङ्गगत, एव पात्रगत औचित्य का पूरा निर्वाह किया है। उनकी कविता प्रकृति मे रमती हुई भी मानव के जीवन की जय–पराजय, असफलता–सफलता को ही मुख्य रूप से प्रतिविम्बित करती है।

उनके काव्यो मे प्रकृति का यही प्रयोजन है। कालिदास सस्कृत काव्याकाश के अद्वितीय प्रकाण्ड मूर्धन्य पण्डित थे। उन्होने वैदिक वाङ्मय, षड्दर्शन, पुराण, उपनिषद सभी शास्त्रो का गहन अध्ययन किया था। जिस प्रकार उनकी काव्य प्रतिभा नवनवोन्मेष शालिनी थी। ठीक उसी प्रकार उनका शास्त्रानुशीलन विलक्षण था। उनकी यह स्वभावगत विशेषता है कि अगाध पाण्डित्य होते हुए भी उन्होने अपने काव्यो मे कही भी उसका ओछा प्रदर्शन नही किया। जबकि उनके उत्तराधिकारी कविगण इस प्रलोभन को छिपाये न रख सके। इन परवर्ती महाकवियो ने जमकर अपना शास्त्रज्ञान काव्यक्षेत्र मे उतारा।[1] कालिदास इस प्रवृत्ति के ठीक विपरीत थे। वह वैदुष्य से परिपूर्ण थे। फलो के बोझ से लदे वृक्ष के समान वह नम्र थे। उनके ज्ञान बिन्दु काव्य सागर मे मोती की भाति जहॉ तहॉ भले ही झलक उठते है किन्तु यह सहज है, कृत्रिम नही।

कालिदास भारतीय दर्शन के क्षेत्र मे भी निष्णात थे। किन्तु उन्होने माघ और श्रीहर्ष की तरह अपने काव्य को दर्शन शास्त्र के दुरूह सिद्धान्तो से दीक्षागम्य नही होने दिया। दर्शनशास्त्र तथा अन्य शास्त्रो के सिद्धान्त उनके काव्य मे प्रसङ्गानुसार सरस शैली मे अपने आप अवतीर्ण दिखाई देते है। इन अवसरो पर उपदेशात्मक वैदिक शैली उनकी कविता के सम्पर्क मे आकर ललित 'कान्तासम्मित परामर्श' रूप पा जाती है। उनका काव्य अर्थ गाम्भीर्य से परिपूर्ण है उसके बोझ से दबा हुआ नही। अपनी प्रतिभा का भरपूर प्रयोग करके भी कालिदास सरस एव सरल है और उनके काव्य का सहज प्रवाह कही रूकने नही पाया उनके परवर्ती महाकवियो ने जहॉ–जहॉ उनकी इस शैली का अनुसरण किया, वहॉ वे भी उत्कृष्ट काव्य का सृजन करने मे पूर्ण सफल सिद्ध हुए।

---

1 सस्कृत को रघुवश की देन – डा0 शङ्करदत्त ओझा

निष्कर्षतः रघुवश और कुमारसम्भव के पर्यवेक्षण से यह भली–भॉति विदित होता है कि– कवि कुलगुरू कालिदास विविध शास्त्रो एव विद्याओ के प्रकाण्ड पण्डित थे। वे काव्य की इस कसौटी पर खरे उतरते है कि उनके काव्यो मे मधुरसन्निवेश, प्रसादगुण की स्निग्धता पदो की सरसशय्या, अर्थ का सौष्ठव इत्यादि काव्य के समस्त गुण महाकवि की कविता मे अपना भव्य रूप धारण किये हुए है। उनके काव्यो का प्रधान गुण वर्ण्यविषय तथा वर्णन शैली का 'मधुर सामञ्जस्य उपस्थित करना है। इस प्रकार हम कह सकते है कि– कालिदास के या किसी भी कवि के लिए रस, भाव, अलङ्कार, कथानक आदि का समुचित ज्ञान होना आवश्यक है। किन्तु महाकवि कालिदास ने उक्त सभी दृष्टियो से पूर्ववर्ती एव परवर्ती कवियो के समक्ष काव्य का महनीयतम एव आदर्श रूप ही उपस्थापित नही किया, बल्कि भाषा, भाव शैली के द्वारा सफल काव्य रूपी रचना के लिए पथप्रदर्शन भी किया। अश्वघोष, भारवि, माघ श्रीहर्ष उनके इस काव्य रचना विधान के ऋणी है। यह कहना अतिशयोक्ति नही होगा कि सस्कृत वाङ्मय के विशाल नभमण्डल में यदि कालिदास जैसे देदीप्यमान तारे का उदय न हुआ होता तो वह अज्ञानान्धकार से आवेष्टित तो न होता किन्तु इतना प्रभावशाली भी न होता।

सस्कृत की प्रत्येक विधा की कविता कविकुलगुरू कालिदास से किसी न किसी रूप मे प्रभावित मिलती है। रामायण एव महाभारत के बाद महाकवि कालिदास के महाकाव्यो ने परवर्ती महाकाव्य–सरणि को अनेक रूपो मे प्रेरणा प्रदान की है। महाकवि कालिदास ने महाकाव्य के स्वरूप, कथानक, पात्र रस, अलङ्कार, रीति आदि समूची काव्य–शैली पर अपनी अमिट छाप छोडी है। वस्तुत पश्चाद्वर्ती महाकवियो के वे पथप्रदर्शक बने और उनके महाकाव्य काव्य के मानक सिद्ध हुए। उन्होने वैदर्भी रीति से मण्डित जिस रसपेशल शैली का मार्ग प्रशस्त किया उसे सभी ने अङ्गीकार किया। जिस महाकवि ने इस शैली को अपनाया, उसका काव्य उसी परिपार्टी मे प्रासिद्ध हुआ और जिसने काव्य मे मात्र चमत्कार एव पाण्डित्य प्रदर्शन मे ही अपनी प्रतिभा खपा दी उसकी कविता श्रमसाध्य सी ही अधिक प्रतीत[1] हुई। उस काव्य मे वह सहज सारस्वत प्रवाह न आ सका जिसे आदिकवि वाल्मीकि और कृष्णद्वैपायन वेदव्यास ने नि श्रत किया था तथा कालिदास ने उसमे गतिशीलता एव गतिमत्ता का गुण भरा था, वस्तुत अनालोकित कवि मार्ग को शोधकर प्रसाद गुण मधुरा वैदर्भी का सुगम एव सीधा मार्ग कालिदास ने ही तैयार किया। उन्होने महाकाव्य को ऐसा स्पृहणीय कलेवर एव स्वरूप दिया जिसका अनुकरण एव अनुशीलन किये बिना कोई महाकवि बन नही सका। इसलिए क्षेमेन्द्र ने कवित्व लाभ के लिए कालिदास के काव्यो का अभ्यास बतलाया। आनन्दवर्धन ने कालिदास को आदर्शमानकर तथा उन्ही के काव्यगत गुणो को देखकर महाकवि की परिभाषा की। उन्होने काव्यशास्त्र के समस्त प्रतिपाद्य विषयो पर कालिदास को ही अनुकरणीय समझा। अन्य महाकवियो के काव्यो को उदाहरण के रूप मे उन्होने सम्भवत इसलिए प्रस्तुत किया कि विद्वत्समाज कही यह धारणा न बना बैठे कि उनकी समीक्षा एकाङ्गी रही है। अथवा वह सस्कृत महाकवि परम्परा के कालिदासोत्तर महाकवियो की रचनाओ से भली–भॉति परिचित नही थे।

---

पठेत्समस्तान् किल कालिदासकृत प्रबन्धानिति हासदर्शी।
काव्याधिवास प्रथमोद्गमस्य रक्षेत्पुरस्तार्तिक गन्धमुग्रम।।

1 सस्कृत को रघुवश की देन – डा0 शङ्करदत्त ओझा। – पृ0 23

कालिदास ने आर्ष महाकाव्यो से प्राप्त शैली मे अपनी विलक्षण प्रतिभा के सन्निवेश के फलस्वरूप काव्य मे चारूता, उदात्तता एव स्पृहणीयता आदि गुणो का समावेश किया। महाकाव्य की परिपाटी ही नही दृश्य श्रव्य काव्यो की प्रत्येक विधा मे रस भाव, अलङ्कार, छन्द तथा शैलीगत नानाविध वैशिष्ट्य मे स्थिरता लाने का श्रेय कालिदास को ही प्राप्त है। अत कालिदास अपने उत्तराधिकारियो के लिए मार्गदर्शक भी थे। उनका परवर्ती सस्कृत कवि परिवार आज तक उनकी काव्य साधना का ऋणी है। इसी अर्थ मे उनका कविकुलगुरू नाम[1] प्रसिद्व है। कुमारसम्भव एव रघुवश उनके सर्वोत्कृष्ट सफल महाकाव्य है जो परवर्ती कवियो के लिए सभी दृष्टियो से उपजीव्य रहे है।

कवि सर्वोत्कृष्ट सफल महाकाव्य है। जो परवर्ती कवियो के लिए सभी दृष्टियो से उपजीव्य रहे है।

कवि प्रतिबिम्बोपजीवी होता है। पूर्व कृतियो की उपजीविता अनेक प्रकार की होती है। काव्यमीमासाकार ने इसे 'हरण' की सज्ञा दी है। परवर्ती कवि अपने काव्य मे पूर्ववर्ती महाकवि से उसके शब्द एव अर्थ का जब उपनिवेश करता है उसे 'हरण' कहा जाता है यह दो प्रकार का होता है। (1) अगाह्य (2) अनुग्राह्य।

अश्वघोष कालिदस के पश्चवर्ती थे। यहाँ हम इस बिन्दु पर मात्र इतना ही कहना चाहेगे कि कतिपय मान्य समीक्षको ने यह दृष्टिकोण अपनाया है। प0 क्षेत्रेश चन्द्र चट्टोपाध्याय आदि इस मत के अग्रणी विद्वान है।[2] यह मत सर्वथा ग्राह्य प्रतीत होता है। अतएव उसी मत का अनुसरण करते हुए इस प्रबन्ध मे अश्वघोष को कालिदास का परवर्ती माना गया है।

अश्वघोष स्वाभाव से दार्शनिक थे। मोक्षमार्ग का उपदेश उनका लक्ष्य था। काव्य मार्ग के इस लक्ष्य की सिद्धि सरलता पूर्वक हो जायेगी इसी विश्वास से प्रेरित होकर

---

छायोपजीवी पदकोपजीवी पादोपजीवी सकलोपजीवी।
भवेदथ प्राप्तकवित्वजीवी स्वान्मेषतो वा भुवनोपजीव्य ।। क्षेमेन्द्र कविकण्ठाभरण, द्वितीय पक्ति।

1 सस्कृत को रघुवश की देन – डा0 शङ्करदत्त ओझा। पृ0 – 40

2 विशेष अध्ययन के लिये देखे डॉ0 ओझा का ग्रथ 'सस्कृत को रघुवश की देन' पृष्ठ –71

उन्होने काव्य का प्रणयन किया। जीवन के अनेक विध सुखो की प्राप्ति उनका अभीष्ट नही था। कालिदास के काव्यो की एकाक्षरी सीमा 'रतये शब्द' (आनन्द के लिए) है। अश्वघोष ने कुमारसम्भव एव रघुवश मे इस रति का बाहुल्य देखकर ही अपना मन्तव्य स्पष्ट किया कि उन्होने रति के लिए नही अपितु शान्ति के लिए काव्य का प्रणयन किया। अश्वघोष को कालिदास की रति विरोधनी कविता करनी थी इसलिए उन्हे यह स्पष्टीकरण देना पडा।

## अश्वघोष –

काव्य मानव हृदय की स्वाभाविक अनुरक्ति की प्रेरणा है। काव्य अपनी सरसता तथा स्निग्धता के कारण विशेषोन्मुख न होकर सामान्योन्मुख होता है, इसलिए यह धर्म, सभ्यता सस्कृति तथा सिद्धान्तो के प्रचार एव प्रसार के निमित्त वाहन रूप मे व्यवहृत होता रहा है।

प्राय प्रत्येक मनुष्य की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है कि वह अल्प परिश्रम से अधिक लाभ की कामना करता है। मनुष्य सदा से ही अपने कार्यों की सिद्धि के लिए सबल साधनो का प्रयोग करता रहा है, और बौद्धो ने भी यही किया है, क्योकि धर्म एव सस्कृति का प्रचार ही इन बौद्ध कवियो का लक्ष्य था और उसके लिए इन लोगो ने आश्रयण किया है 'कोमलकान्त पदावली काव्य का'। क्योकि उनको यह विदित था कि काव्य की शक्ति खड्ग से भी अधिक और तोप से भी अधिक सबल होती है, अत ऐसे अमोध अस्त्र को छोडकर उनके लिए धर्म प्रचार का अनुपम साधन और क्या हो सकता था?

समाज के विश्रृखलित वातावरण मे जबकि हिसा का प्राबल्य तथा धर्म के नाम पर जीवबलि का आधिक्य हो रहा था। जनता का यज्ञादि क्रियाओ एव वैदिक कर्मकाण्ड से विश्वास उठने लगा, समाज मे पाशविक प्रवृत्तियो का बोलबाला हो गया, और लोगो का जीवन कर्त्तव्य से विमुख हो गया उस समय वैमत्य मे एकत्व लाने, समाज को एकता के सूत्र मे पिरोने तथा वास्तविक कर्त्तव्य को निर्दिष्ट करने के लिए बौद्ध कवि अग्रसर होते है जिनमे अश्वघोष का नाम सर्वविदित है।[1]

---

1 बौद्ध सस्कृत काव्य समीक्षा– रामायण प्रसाद द्विवेदी – पृष्ठ 53

महाकवि कालिदास के अनन्तर महाकाव्यो की विकास परम्परा को आगे बढाने वाले बौद्ध कवि अश्वघोष का नाम आता है। महाकवि अश्वघोष कुषाणवशी कनिष्क (78 ई0) की राज्यसभा के प्रतिभाशाली रत्न थे। कनिष्क का राज्यारोहण 78 ई0 माना जाता है चतुर्थ और अन्तिम बौद्ध सगीति कुण्डनवन काश्मीर मे कनिष्क के प्रयत्न से ही हुई थी। महायान शाखा का उद्‌भव इसकी सबसे बडी देन थी।[1] महायान शाखा ने पालि को त्यागकर सस्कृत भाषा को अपना धार्मिक माध्यम बनाया था। इस क्रान्तकारी परिवर्तन से प्रेरित होकर अश्वघोष ने भी 'बुद्धचरित' और 'सौन्दरानन्द' इन दो महाकाव्यो की रचना सरल और मधुर सस्कृत भाषा मे की।

अश्वघोष एक बहुत बडे आचार्य, कवि और उपदेशक थे। 'सौन्दरानन्द की पुष्पिका' से उनके जीवन परिचय की एक धुधली सी झलक हमारे मानस पटल पर आ जाती है।[2]

उनका जन्म साकेत (अयोध्या) मे हुआ था, इसलिए उन्हे साकेतक भी कहा जाता था। इनकी माता का नाम सुवर्णाक्षी था। दोनो काव्यो की अपेक्षा बुद्धचरित मे काव्यत्व अधिक है, बीच–बीच मे बौद्ध सिद्धान्तो एवं गूढ दार्शनिक तत्त्वो का काव्यशैली मे रोचक निरूपण किया गया है। सौन्दरानन्द 18 सर्गों का महाकाव्य है इसमे बुद्ध के सौतेले भाई नन्द बुद्ध के उपदेश से समस्त सांसारिक भोगविलास एव अपनी पतिव्रता प्रियतमा सुन्दरी का परित्याग करके प्रव्रज्या करते है। इस काव्य मे कवि का उद्‌देश्य कविता के माध्यम से बौद्धधर्म का प्रचार करना है। इस प्रकार अश्वघोष आर्यभदन्त, महाकवि, महावादी, महापण्डित महाराजादि विरूदो से विभूषित थे।

बुद्धचरित– 28 सर्गों मे निबद्ध यह महाकाव्य बुद्ध के जीवन, उपदेश तथा सिद्धान्तो के काव्यात्मक वर्णन से परिपूर्ण है। महाकाव्य का प्रारम्भ बुद्ध के जन्म से होता है और पर्यवसान अस्थिविभाजन से उत्पन्न कलह, प्रथम सगीति, तथा अशोकवर्धन के राज्य के उल्लेख के साथ होता है।

---

1 चट्टोपाध्याय – डेट ऑफ कालिदास – पृष्ठ 82–106 (1926)
2 आर्यसुवर्णाक्षीपुत्रस्य साकेतकस्य भिक्षोराचार्य भदन्ताश्वघोषस्य
महाकवेर्वादिन कृतिरियम् – सौन्दरानन्द की पुष्पिका।

'धर्म क्षेत्र' नामक विद्वान द्वारा किये गये इस महाकाव्य के चीनी अनुवाद मे 28 सर्ग है इसके अलावा तिब्वती भाषा में भी 28 सर्ग प्राप्त होते है, चीनी यात्री इत्सिग ने भी काव्य को वृहदाकार बताया है परन्तु सस्कृत मे प्राप्त बुद्धचरित मे मूलत 14 सर्ग ही है। 'महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री' द्वारा प्राप्त ग्रन्थ 14वे सर्ग के मध्य तक रह जाता है। इस प्रकार प्रथम सर्ग से चतुर्दश सर्ग के 31वे श्लोक तक ही बुद्धचरित का अनुशीलन समुचित प्रतीत होता है। इन्ही सर्गो मे क्रमश बुद्ध के जन्म, सवेग उत्पत्ति, स्त्रीनिवारण, अभिनिष्क्रमण, छन्दक विसर्जन, काम निदा, अराऽदर्शन बुद्धत्व प्राप्ति का वर्णन है। काल की दृष्टि से बुद्ध चरित मे प्रथम पाच सर्ग, अष्टम सर्ग तथा दशम सर्ग अत्यधिक सुन्दर एव महत्त्वपूर्ण है– बाकी सारा ग्रन्थ धार्मिक तथा दार्शनिक ग्रन्थ सा हो गया है।

बुद्धचरित महाकाव्य से अश्वघोष की सहृदयता का आकलन किया जा सकता है। प्राकृतिक दृश्यो मे उनकी अगाध अनुभूति थी, उनका काव्य चित्रमय उपमानो और कौशलपूर्व शब्द प्रयोग पर आधारित था, अनुप्रास यमक उपमा उनके प्रिय अलङ्कार है। कही–कही उक्तिवैचित्र्य भी दिखाई देता है। मधुर और सुकुमार कल्पनाओ के कारण उनके काव्य मे विम्बग्रहण करने की शक्ति रहती है।

बुद्ध के दूसरे महाकाव्य सौन्दरानन्द की बहुत ही कम हस्तलिखित प्रतिया प्राप्त है। दोनो ही जीर्णदशा मे नेपाल नरेश के पुस्तकालय मे सुरक्षित है। 'महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री' ने इन प्रतियो के आधार पर इस काव्य को 1910 मे प्रकाशित करवाया था। अन्तिम समय मे 'श्री सूर्य नारायण चौधरी' ने हिन्दी अनुवाद सहित इस महाकाव्य का सम्पादन किया है।

बुद्धचरित और सौन्दरानन्द दोनो ही ग्रन्थ अश्वघोष के कीर्तिस्तम्भ है। बुद्धचरित के पञ्चविशति मे बुद्ध का निर्वाण मार्ग की ओर उन्मुखीकरण, षड्विशतिसर्ग मे महापरिनिर्वाण सप्तविंशति सर्ग में निर्वाण की सस्तुति तथा अन्तिम सर्ग अष्टविशति मे धातु विभाजन के साथ बुद्धचरित की समाप्ति हो जाती है। इनके काव्यगुणो को देखकर सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि इनके काव्य गुणो से अधिक मार्गदर्शक एव जीवनोपयोगी शिक्षा देने वाले है।[1]

---

अश्वघोष का बुद्धचरित – भूमिका

अश्वघोष के ग्रन्थो का अध्ययन करने से यह विदित होता है कि अश्वघोष की कला न्यूनाधिक कालिदास की कला पर आश्रित थी। अश्वघोष की प्रेरणा के स्त्रोत रहे महाकवि कालिदास जो सभी परवर्ती कवियो के आधार स्तम्भ रहे। इसके अलावा कथा प्रबन्ध कल्पना मे तथा उपमान सकलन करने मे भी इन्होने रामायण एव महाभारत से भी सहायता ली।

अश्वघोष की कविता कलात्मक है, परन्तु अनावश्यक वैदग्ध्य प्रदर्शन के द्वारा कला का रूप विकृत नहीं किया गया है। इनकी भाषा कृत्रिमता से दूर है, इनकी वाणी मे स्निग्धता और पदावलियो मे अनोखी मधुरिमा दीख पडती है। इस शैली को ही प्राय 'सुकुमारमार्गी' की सज्ञा दी जाती है। अश्वघोष ने निश्चय ही वाल्मीकि व्यास कालिदास द्वारा प्रथित सरणि का अनुसरण किया है।

अश्वघोष के काव्य मे दार्शनिकता और उपदेशात्मकता अधिक है। अश्वघोष की शैली वर्णन प्रधान है। इन्होने नारी सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना करने के लिए कमल शोभा का आश्रय लिया है, उस काल मे बने साची आदि के स्तूपो मे भी कमल के फूल से युक्त लक्ष्मी आदि की मूर्तियां बनाने का प्रचलन था। अत. उनके प्रकृति चित्रण तथा उपमान महाकवि कालिदास की चित्रकला और मूर्तिकला सम्बन्धी सौन्दर्यशास्त्र की मान्यताओ का प्रमाण था

अश्वघोष की भाषा सरल, मधुर एव प्रसाद गुण सम्पन्न है। शब्दो का चमत्कार पूर्ण प्रयोग उन्हे विशेष प्रिय है। वसन्तऋतु मे कमल सरोवरो मे खिले हुए है ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कमलो की शोभा ही नारी का स्वरूप धारण कर आ गयी हो।[1]

'चतुर्थ सर्ग' मे ही बुद्ध के मन को वैराग्य से मोडकर भोग की ओर आकृष्ट करने के लिए अश्वघोष ने स्त्रियों की काम जन्य चेष्टाओ का वर्णन किया है। अश्वघोष के उपमानो की चित्रमयता यहाँ देखी जा सकती है।[2]

---

1 देखे – बुद्धचरित – 4/36
2 देखे – बुद्धचरित – 4/44

शैली की दृष्टि से भी अश्वघोष की शैली महाकविकालिदास की शैली की तरह सरल व सरस है। 'किमिव हि मधुराणा मण्डननाकृतीनाम्' यही कारण है कि अश्वघोष की कला उपदेशवादी होने पर भी कोरा नीतिग्रन्थ नही बन जाती, जो दयनीय परिणति अतिउपदेशवादी कवियो मे देखी जाती है। इससे यह विदित होता है कि– अश्वघोष कविहृदय अवश्य थे। अश्वघोष का धार्मिक उत्साह इस भक्ति के ताने बाने मे बुनकर इतना भावात्मक हो गयाहै कि उनकी रचना मे स्वत काव्यत्व सक्रान्त हो गया है। अश्वघोष के श्रृङ्गार परकवर्णन रसिक पाठको के हृदय को आप्लावित करते रहते है। श्रृङ्गारिक चित्रण रसपेशल एव प्रभावपूर्ण है।

मुहुर्महुर्मदव्याजस्त्रस्तनीलाशुकापरा।
आलक्ष्यरशना रेजे स्फुरद्विद्युदिव क्षपा।।[1]

"नशे के बहाने बार–बार अपने नील अड्कुश को गिराती हुई, कोई स्त्री जिसकी करधनी दिखाई देती थी, चमकती बिजली वाली रात के समान सुशोभित हो रही थी।"

पणव युवतिर्भुजासदेशादवविस्त्रसित चारूपाशमन्या।
सविलासरतान्ततान्त मूर्वोर्विवेरे कान्तमिवाभिनीय शिश्ये।।[2]

"दूसरी सुन्दरी जिसके गले की सुन्दर डोरी (हार) कन्धे से गिर गई है, सविलास सुरत के अन्त मे थके प्रिय के समान पणव (वाद्ययन्त्र विशेष) को दोनो जाघो के बीच मे दबाकर सो गयी।

सा त स्तनोद्वर्तितहारयष्टिरूत्थापयामास निपीऽय दोर्भ्याम्।
कथ कृतोऽसीति जहास चोच्चैर्मुखेन साचीकृतकुण्डलेन।।[3]

श्रृङ्गार के उद्दीपन के लिए नारी सौन्दर्य को अश्वघोष ने महत्त्वपूर्ण अग माना। विभाव पक्ष मे नारी सौन्दर्य का वर्णन अश्वघोष के महाकाव्यो में कई स्थानो पर मिलता है। सौन्दरानन्द के दशम सर्ग मे अप्सराओ तथा हिमालय की तलहटी के विचरती किन्नरियो का सौन्दर्य वर्णन सरस है।

---

1 बुद्धचरित – 4/33
2 बुद्धचरित – 5/56
3 सौन्दरानन्द – 4/19

कासाञ्चिदासा वदनानि रेजुर्वनान्तरेभ्यश्चलकुण्डलानि।

व्याविद्धपर्णेभ्य इवाकरेभ्य पद्मानि कारण्डवघट्टितानि।।[1]

श्रृङ्गार के बाद कोमल रस करूण है जिसका वर्णन अश्वघोष ने 'बुद्धचरित' मे उस समय किया है जिस समय छन्दक सूने घोडे को लेकर लौटता है तो उस समय नागरिक तथा सिद्धार्थ के माता–पिता तथा यशोधरा का विलाप होता है। अश्वघोष ने इस करूण दशा का चित्रण कर वातावरण को और अधिक मार्मिक बना दिया है।

इमाश्च विक्षिप्त विटङ्कवाहव प्रसक्तपारावत दीर्घ निस्वना।

विनाकृतास्तेन सहावरोध नैर्भृथ रूदत्तीव विमान पड् क्तय।।[2]

सिद्धार्थ से वियुक्त अत पुर की सुन्दरियो के साथ कपोतपालिका रूपी भुजाओ को फटकारती हुई प्रसक्त पारावतो के क्रन्दन के दीर्घ नि श्वास वाली ये प्रसाद पक्तिया मानो अत्यधिक विलाप कर रही है।

ठीक यही चित्र सौन्दरानन्द मे भी परिलक्षित होता है, जहॉ श्येन के द्वारा घायल बनाये हुए चक्रवाक के कारण दु खी चक्रवाकी के समान सुन्दरी अत्यधिक विलाप करती है और प्रसाद मे स्थित चञ्चल कण्ठ वाले कबूतर मानो उसकी स्पर्धा करते हुए कूजन कर रहे है–

सा चक्रवाकीव भ्रश चुकूज श्येनाग्रपक्षक्षत चक्रवाका।

विस्पर्धमानेव विमानसस्थै· पारावतै कूजनलोलकण्ठै.।।[3]

दोनो चित्रणो मे इतनी अधिक समानता है कि जिससे सहृदय भावुको को स्पष्ट हो गया कि अश्वघोष का भी करूण रस अत्यन्त मार्मिक है। भवभूति का करूण जिसकी साहित्य मे अत्यधिक प्रसिद्धि है जो कालिदास और अश्वघोष की अपेक्षा भावुक दिखाई देता है परन्तु उसका सबसे बडा दोष है कि, उसका करूण रोता चिल्लाता वहुत है, चाहे उससे पत्थर का कठोर हृदय भी पिघल जाय किन्तु वाच्य की अतिशयता से उसका करूण कुछ कुण्ठित हो जाता है जो कालिदास और अश्वघोष की व्यञ्जनात्मक शैली मे नही दिखाई पडता।

---

1 सौन्दरानन्द – 10/38

2 बुद्धचरित – 8/37

3 सौन्दरानन्द षष्ठमसर्ग – 6/30

अश्वघोष के दोनो काव्यो मे भावो के अनुसार भाषा मे उतार–चढाव आया है। 'भाषा सौष्ठव' के कारण कही–कही लयात्मकता भी दृष्टिगोचर होती है। बुद्ध के उपदेश से प्रतिबुद्ध नन्द की अवस्था एक विरक्त भिक्षु की सी प्रतीत होती है।

"न मे प्रिय किचन नाप्रिय मे, न मेऽनुरोधोऽस्ति कुतोविरोध ।
तयोरभावात् सुखितोऽस्मिसद्यो हिमातपाभ्यामिव विप्रमुक्त ।।[1]

भाषा के आरोह अवरोह का सुन्दर दृश्य बुद्धचरित मे सर्वत्र परिलक्षित होता है–

तत्याज शस्त्र विममर्श शास्त्र, शम सिषेवे नियम विषहै।
वशीव कञ्चिद् विषय न भेजे पितेव सर्वान् विषयान ददर्श।।"[2]

अश्वघोष ने कही–कही मार्मिक भावो की अभिव्यक्ति की है उन्होने शुद्वोद्वन की आत्मशुद्धि का सुन्दर वर्णन किया है कि उसने तीर्थजल से शरीर को और गुणरूपी जल से मन को पवित्र किया है–

सस्नौ शरीर पवितु मनश्च, तीर्थाम्बुभिश्चैव गुणाम्बुभिश्च।
वेदोपदिष्ट सममात्मजच सोम पपौ शान्ति सुख च हार्दम्।।[3]

अश्वघोष के बुद्धचरित और सौन्दरानन्द दोनो ही महाकाव्यो का 'मारविजय' वीररस के दृष्टान्त के रूप मे लिया जा सकता है जिसमे वीररस का समावेश रूपक मुखेन हुआ है। नन्द एव सिद्धार्थ ने किस प्रकार से मारसैन्य को पराजित किया है इसकी विवेचना रूपक अलङ्कार के रूप मे हुई है–

तत स वोध्यङ्गशितात्तशस्त्र सम्यक्प्रधानोत्तम वाहनस्थ ।
मार्गाङ्गमातङ्गवता बलेन शनै शनै क्लेशचमू जगाहे।। सौ0 /17/24

बुद्धचरित में वीररस मे छकी हुई मार की सेना का कवि ने किस प्रकार से वर्णन कियाहै निम्न दृष्टान्तो से स्पष्ट हो जाएगा–

प्रकीर्णकेशा शिखिनोऽर्धमुण्डा रक्ताम्बरा व्याकुलवेष्टनाश्च।
प्रहृष्टवक्त्रा भृकुटीमुखाश्च तेजोहराश्चैव मनोहराश्च।। बुद्धचरित 13/24

---

1 सौन्दरानन्द – 17/67
2 बुद्धचरित – 2/52
3 बुद्धचरित – 2/37

उनके केश बिखरे हुए थे, वे शिखाधारी थे अर्धमुण्ड थे रक्त वर्ण के वस्त्र धारण किये थे, उनका शिरोवेष्टन अस्तव्यस्त था उनके प्रहृष्ट मुख से उत्साह टपक रहा था, भृकुटी तनी थी, वे तेज का एव मन साथ ही मन का अपहरण करने वाले थे।

अश्वघोष का काव्यवैशिष्ट्य बुद्धचरित के अपेक्षा सौन्दरानन्द मे अधिक दिखाई पडता है, किन्तु बुद्धचरित धार्मिक नीतिवादी प्रवृत्ति से नितान्त अछूता हो ऐसी बात नही है। अतएव निश्चय है कि बुद्धचरित भी काव्यकार के कवित्व कौशल का परिचायक अवश्य है। बुद्ध इतिहास प्रसिद्ध उदात्त नायक है उन्हीं की जीवन लीला ही कथावस्तु है यशोधरा एक आदर्श नायिका है तथा अगी रस शान्त है। प्रणयचित्र इस महाकाव्य का अपेक्षित अंग है। जो कवि के कामशास्त्रीय चित्रो से होता है।

'सौन्दरानन्द महाकाव्य' का विषय है– कामवासना रूपी पङ्क मे फसे हुए नन्द का उद्धार करने के लिए बुद्ध एव आनन्द आदि उनके शिष्यो को जो प्रयत्न करना पडा था उसी का वर्णन इस महाकाव्य का मुख्य विषय है।

प्रथम सर्ग मे हिमालय के अचल मे स्थित कपिल गौतम की तपोवन–भूमि का वर्णन हुआ है जिसमे कालिदास के कुमारसम्भव मे वर्णित हिमालय वर्णन जैसी परिपूर्णता लक्षित होती है। सौन्दरानन्द मे कवि का काव्य कौशल निखर उठा है। इसी ग्रन्थ मे अश्वघोष को कोमल भावो एव सरस प्रवाहपूर्ण विषय के वैशिष्ट्य को विवेचित करने का अवसर मिला है। कोमल काव्य भावना के चित्रण मे एव विषय गाम्भीर्य के विवेचन मे बुद्धचरित की अपेक्षा सौन्दरानन्द को अधिक सफल कहा जा सकता है।

अश्वघोष के दोनो महाकाव्यो मे शब्दो और विचारो मे पूर्ण समता दिखाई पडती है। अश्वघोष बौद्ध धर्म के परमपोषक थे। बौद्ध धर्म के प्रचार एव प्रसार के लिए उनमे महान उत्साह विद्यमान था– जो उनकी कृतियो मे प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है। भोगासक्तो का मोक्ष मार्ग के प्रति उन्मुखीकरण ही इसका लक्ष्य था।

अश्वघोष के महाकाव्यों के परिशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी बौद्ध धर्म के प्रति अत्यधिक आस्था थी, विश्व कल्याण की लोकोत्तर क्षमता उनमे विद्यमान थी इसलिए इस महाकवि ने बुद्ध के लिए सर्वज्ञ, जगत्पति, स्वयम्भू, आदि परमकारूणिक

विशेषणो को अपनी रचनाओ मे प्रयुक्त किया। अश्वघोष ने प्रभु द्वारा किये गये उपकारो की कृतज्ञता का वर्णन निम्न श्लोक मे किया है–

> यो दृष्टिशल्यो हृदयावगाढ प्रभो भृश मामतुदत्सुतीक्ष्ण ।
> त्वद्वाक्यसदशमुखेन मे स समुद्धृत शल्यहृतेव शल्य ।।[1]

हे प्रभो, कुदृष्टि रूपी तीक्ष्ण शल्य जो मेरे अन्तस् मे गडा हुआ था और जो अत्यन्त पीडित कर रहा था, वह आपके वाक्यरूपी सदश द्वारा बाहर खीच लिया गया जैसे शल्योद्धारक के द्वारा शल्यापनयन किया जाता है।

अश्वघोष ने बुद्धचरित और सौन्दरानन्द मे स्थान–स्थान पर पौराणिक आश्रमो एव वृत्तान्तो का भी उल्लेख किया।

बुद्धचरित मे शिव विजय के वृत्तान्त की ओर सकेत करते हुए मार चिता को इन शब्दो मे व्यक्त किया है–

> "शैलेन्द्रपुत्री प्रति येन विद्धो देवोऽपि शम्भुश्चलितो वभूव।
> न चिन्तयत्येष तमेव वाण कि स्यादचित्तो न शर स एष ।।[2]

जिस बाण से विद्ध होकर भगवान शम्भु भी शैलेन्द्र सुता (पार्वती) प्रति चचल हो उठे उसी बाण की (शाक्यकुमार) यह चिता तक नही कर रहा है। क्या यह चित्त रहित है या यह वाण ही (वह न होकर) कोई अन्य है।

अश्वघोष के बुद्धचरित मे कवि का दार्शनिक स्वरूप अत्यन्त ही उन्नत दृष्टिगत होता है–

तथागत द्वारा महामुनि अराड से शान्ति एव परमार्थ विषयक प्रश्न किये जाने पर अराड ने जो उत्तर दिया। वह सारगदर्शन से सम्बन्धित ही सिद्धान्त है।

> "तत्र तु प्रकृति नाम विद्धि प्रकृतिकोविद।
> पञ्चभूतान्यहकार बुद्धिमव्यक्तमेव च।।"  बुद्धचरित

इसी प्रकार कवि ने सौन्दरानन्द मे इस जागतिक जजाल से मुक्त नन्द के प्रति जो पुन जगत्जञ्जाल मे आबद्ध होना चाहता है उसकी दयनीय अवस्था की अभिव्यक्ति निम्न शब्दो मे की गयी–

---

1 सौन्दरानन्द 18/7
2 बुद्धचरित 13/16

"कृपण बत यूथलालसो महतो व्याध भयाद्विनि सृत ।
प्रविविक्षति वागुरा मृगश्चपलो गीतरवेण वञ्चित ।।" सौन्दरानन्द

"परम खेद की बात है कि महान् व्याध के भय से मुक्त चपल मृग यूथ (मे मिलने) की अभिलाषा से युक्त तथा गीत ध्वनि से प्रवञ्चित होकर पुन पाश में आबद्ध होना चाहता है।" सौन्दरानन्द – 8/15

यद्यपि अश्वघोष ने धर्म एव दर्शन सम्बन्धी विषय की विवेचना दोनो ही ग्रन्थो मे की है किन्तु सौन्दरानन्द मे दार्शनिक सिद्धान्तो की गम्भीरता तथा गूढता को लोक जीवन के सिद्धान्तो द्वारा सहज रीति से अभिव्यक्त किया गया है वहॉ बुद्धचरित मे शास्त्रीय प्रमाणो के उपस्थापन द्वारा किया गया है। अश्वघोष के जीवन का लक्ष्य था विषयरत मानव को अपने सदुपदेशो द्वारा सद्मार्ग का पथिक एवं लोक को मगलमय बनाना।

अश्वघोष की कलात्मक मान्यता से यह स्पष्ट होता है कि इनकी दृष्टि वर्ण्यविषय पर अधिक और वर्णन विधि पर अपेक्षाकृत कम थी। अश्वघोष एक कवि है तथा उनकी कृतियॉ सहृदय साहित्यिक समाज के लिए कलात्मकता की झलक प्रदर्शित करती है। इसलिए अश्वघोष का वर्ण्यविषय कभी भी रसहीन नही कहा जा सकता। इनकी अभिव्यञ्जना पद्धति सरस एव सहज है। अश्वघोष उसी श्रेणी के काव्य है जिसमे कालिदास को परिगणित किया जाता है।

अलङ्कारो मे विशेष रूप से इन्हे उपमा, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, रूपक, अप्रस्तुतप्रशसा, अर्थान्तरन्यास आदि का प्रयोग अधिक किया। सहज उपमा की सुन्दर अभिव्यक्ति अवलोकनीय है।

"त गौरव बुद्धगत चकर्ष भार्यानुराग· पुनराचकर्ष।
सोऽनिश्चयान्नापि ययौ न तस्थौ तरस्ततरङ्गेष्विव राजहस ।।" सौ0 4/42

बुद्ध के प्रति भक्ति और प्रिया के प्रति अनुरक्ति नन्द को व्याकुल किये हुए है वह कोई निर्णय लेने मे असमर्थ है, जैसे तरगो में तैरता हुआ हस कभी उठता है और कभी नीचे गिरता है।

"श्रुत्वा महर्षे स गृह प्रवेश सत्कार हीन च पुन प्रयाणम्।
चचाल चिताभरणाम्बर स्त्रक्कल्पद्रमो धूत इवाविलेन।।" सौ0 4/31

महर्षि बुद्ध ने गृह मे प्रवेश किया था किन्तु सत्कार के बिना ही वापस लौट गये यह श्रवण कर विचित्र आभूषण वस्त्र एव मालादि धारण करने वाला नन्द वायु से प्रकम्पित कल्पतरू के समान प्रकम्पायमान हो उठा।

अश्वघोष की उपमाए कालिदास की उपमाओ से पूर्णत साम्य रखती है। उपमाओ का दर्शन करने के पश्चात् वे सचमुच इनकी उपमाए कालिदास के समकक्ष ही है– जिसको दृष्टान्तो द्वारा प्रस्तुत किया गया है। महाकवि द्वारा प्रयुक्त रूपक के अग्रिम सुन्दर दृष्टान्तो का अवलोकन करिये–

"सा हासहसा द्विरेफा पीनस्तनात्युन्नत पद्मकोशा।
भूयो वभासे स्वकुलोदितेन स्त्रीपद्मिनी नन्ददिवाकरेण।।" सौ0 4/4

नन्द रूपी सूर्य के उदय होते ही सुन्दरी रूपी पद्मिनी (सरोवर) विकसित हो गयी। उस पद्मिनी मे हास्य रूपी हस, नेत्र रूपी भ्रमर और उन्नत उरोजरूपी पद्मकोश थे। नन्द दिवाकर और सुन्दरी पद्मिनी का क्या ही मधुर रूपक बाधा गया है।

इस प्रकार साधर्म्य मूलक अलङ्कारो के अतिरिक्त इनके महाकाव्यो मे अनुप्रास तथा यमक सदृश शब्दालङ्कार भरे पडे है। वैदर्भी एवं प्रसाद गुण समवेत अपनी शैली द्वारा गूणतम बौद्ध सिद्धान्तो को समझाने मे पूर्णत. सफल हुआ है।

इनकी कृतियो मे छन्द योजना का भी उचित समावेश पाया गया है। इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वशस्थ, शिखरणी, शार्दूल विक्रीडित, अनुष्टुप, सुवदना, मालिनी आदि छन्दो का प्रयोग हुआ है। अनुष्टुप छन्द के प्रति महाकवि का विशेष प्रेम रहा है फिर भी सगीत की दृष्टि से प्रहर्षिणी व रूचिरा छन्द अधिक प्रयोग किये है।

"अत पर परममिति व्यवस्थित परा धृति परममुनौ चकार स।
ततो मुनि पवन इवाम्बरात्पतनप्रगृह्य त पुनरगमन्महीतलम्।।" सौ0 10/64

सर्गान्त को प्रभारोत्पादक बनाने मे अश्वघोष इसी उक्त छन्द को ही अधिक प्रयोग मे लाते थे।

उक्त काव्यगत भावों को देखकर अन्त मे हम इतना ही कहेंगे कि अश्वघोष भी दोनो आर्ष महाकाव्यो (रामायण एव महाभारत) एव कालिदासीय काव्यमार्ग के समर्थक पथिक रहे है।

❐

# तृतीय अध्याय

किसी भी साहित्यिक शैली के विकास मे उस युग की सामाजिक चेतना का विशेष प्रभाव पडता है। काल की साहित्यिक मान्यता, युग का वातावरण उस युग के साहित्य को एक विशिष्ट शैली का आश्रय लेने को बाध्य करती है। विक्रम के सप्तम–अष्टम शतक को साहित्य के इतिहास मे परिवर्तन का युग माना जा सकता है। अब तक सस्कृत काव्य का लक्ष्य जनसाधारण का अनुरञ्जन था। कविता का प्रमुख वैशिष्ट्य–वर्ण्य विषय तथा वर्णन प्रकार का सुन्दर सामञ्जस्य था, और इसलिए इस युग के सस्कृतकवि साधारण–जन के हृदय को स्पर्श करने वाली कविता के निर्माण मे दक्ष दिखलायी पडते थे। कालिदास तथा अश्वघोष के समय तक सुकुमार मार्ग की रचनाए काव्य रसज्ञों द्वारा समादृत होती थी। इनका काल सस्कृत काव्य के इतिहास मे सरलता तथा सरसता से सम्पन्न काव्य की रचना मे प्रख्यात माना जाता था। गुप्त युग मे भारत का साहित्यिक वातावरण बदल गया। प्राकृत भाषाओ ने सस्कृत के क्षेत्र को सीमित कर दिया। अब साधारण जल का मनोरञ्जन प्राकृत भाषा की रचनाओ से होने लगा। फलत संस्कृत कवि अब सामान्य जल के लिए नही, अपितु पण्डित जन के लिए काव्य रचना करने लगे। सुकुमार मार्ग का स्थान विचित्र मार्ग ने ले लिया और विचित्रमार्ग का आश्रयण कर काव्यरचना करने वाले कवि–गण राजदरबारो मे उपस्थित काव्य रसज्ञ पण्डित–समाज को सतुष्ट कर सम्मान के पात्र बनने लगे। इसी युग मे बौद्ध न्याय का उदय तथा विकास सम्पन्न होता है जिसके मतो को ध्वस्त करने के लिए ब्राह्मण, नैयायिक अपने युक्ति–कौशल का प्रदर्शन करते है। दिङ्नाग, धर्मकीर्ति जैसे बौद्ध पण्डितो तथा वात्स्यायन और उद्योतकर जैसे नैयायिको के उदय का यही युग है। इन्ही को लक्ष्य कर सस्कृत का कवि अपने प्रबन्ध काव्यो की रचना करता था। इस युग के साहित्यिक आग्रह तथा पाण्डित्यमय वातावरण सस्कृत कवियो को नई प्रेरणा देने लगे। युग की विशिष्टता और साहित्यिक चेतना के कारण कविजनो के लिए रसमयी पद्धति को छोडकर एक नवीन शैली का ग्रहण आवश्यक हो गया । जिसमे विषय की अपेक्षा वर्णन प्रसार पर तथा सारल्य के स्थान पर पाण्डित्य पर ही विशेष आग्रह था। इसके अतिरिक्त वाल्मीकि, कालिदास, अश्वघोष आदि की कला मे भावपक्ष एव कलापक्ष का जो समन्वय, महाकाव्य के इतिवृत्त की जो अनवहेलना पाई जाती है,

वह कालिदास के पश्चाद्भावी कवियो मे धीरे–धीरे मिटती गयी और कोरा कलापक्ष इतना बढता गया कि महाकाव्य नाममात्र की दृष्टि से महाकाव्य रह गये। मानव जीन का जो विस्तृत सर्वाङ्गीण चित्र महाकाव्य के लिए आवश्यक है वहा यहॉ लुप्त हो गया। महाकाव्य केवल पाण्डित्य तथा कला प्रदर्शन के क्षेत्र रह गये। इस प्रकार उत्तरवर्ती कवियो ने काव्य का उद्देश्य, वाह्यशोभा, अलङ्कार, श्लेषयोजना एव शब्दविन्यास चातुरी तक ही सीमित कर दिया। अलङ्कार कौशल का प्रदर्शन करना तथा व्याकरण आदि शास्त्रो के नियमो के पालन मे अपनी निपुणता सिद्ध करना ही उनका प्रधान लक्ष्य हो गया। काव्य का विषय गौण हो गया तथा भाषा और शैली को अलङ्कृत करने की कला प्रधान हो गयी।

इस अलङ्कृत शैली को अपनाने वाले सर्वप्रथम महाकवि भारवि है। भारवि के पश्चात् अनेक कवि इस मार्ग के पथिक बन गये जिनमे भट्टि, माघ, श्री हर्ष, मङ्खक, रत्नाकर आदि प्रमुख है। कालिदास के बाद के कवियो मे पाण्डित्य प्रदर्शन की भावना विशेष रूप से पायी जाती है। बाद के कवि दर्शन, सङ्गीत शास्त्र, आयुर्वेद, धर्म शास्त्र, कामशास्त्र, ज्योतिष शास्त्र, आदि विविध विषयो के अपने ज्ञान को जानबूझ कर अपने काव्य मे प्रकट करते रहे और इसी मे अपना गौरव समझते रहे।

इस प्रकार कालिदास के बाद सस्कृत काव्यो की प्रवृत्ति मे एक नया युग आरम्भ हुआ। भारवि इस युग के अग्रणी एव नयी प्रवृत्ति के प्रतिष्ठापक थे। कालिदास के समय तक काव्य मे भावपक्ष (रसध्वनि) प्रधान रहा। भारवि ने इस शैली मे परिवर्तन कर काव्य मे कलात्मकता का अधिकाधिक सन्निवेश किया। उत्तरोत्तर यह अलङ्कृत शैली पश्चवर्ती महाकाव्यो की एक प्रमुख विशेषता सी बन गयी। परिणाम स्वरूप कलात्मकता एव चमत्कृति ने काव्य मे भाव प्रवहणता को बिल्कुल तिरोहित सा कर दिया। भारवि की काव्य प्रतिभा मे कोई सन्देह का स्थान नही था। उनकी भाषा परिष्कृत है, सॉचे मे बिल्कुल ढल कर आती है, उनके काव्य में अलङ्कार कट–छट कर सीधे ढग से प्रयुक्त हुए है। वह अपनी शब्दार्थ रचना के प्रति अत्यन्त सजग रहते है। उनकी काव्य भारती स्फुट अक्षरो वाली प्रसन्नता एव अर्थ गाम्भीर्य से चुक्त है। यह उन्हीं की मान्यता है।

प्रतिभा के धनी एव विदगध होते हुए भी भारवि काव्य शैली एव कल्पना मे कालिदास के ऋणी है। भावो की अभिव्यक्ति मे यद्यपि उन्होने भरसक यह प्रयास किया है कि उन पर पडा कालिदास का प्रभाव कही भी मुखर न होने पाये, किन्तु फिर भी कही–कही वह कालिदास के भाव लेते पाये जाते है। यद्यपि कालिदास और अश्वघोष के बाद कई शताब्दियो तक महाकाव्य–निर्माण स्थगित सा रहा, क्योकि इस काल का कोई भी काव्य नही है। केवल कुछ अभिलेख हस्तगत हुए है। जिनमे तत्कालीन काव्य की अलङ्कृत शैली की झलक दृष्टिगत होती है। इसके पश्चात् अकस्मात् भारवि की कृति किरातार्जुनीयम जो प्रौढ अलङ्कृत शैली का निदर्शन थी अन्धकार मे दीपक की भॉति देदीप्यमान होती है। इसने सहृदय विद्वज्जनो को अपने स्फुट निदर्शन से चमत्कृत कर दिया।[1]

सस्कृत की विकसित महाकाव्य परम्परा का सफल प्रतिनिधित्व हमे कालिदास और अश्वघोष के बाद भारवि की कृति मे मिलता है क्योकि भारवि के निकट के पूर्ववर्ती किसी काव्य रचयिता की कृति की अनुपलब्धि मे भारवि को ही चमत्कार युक्त अलङ्कृत शैली का जनक माना गया है। उन्ही भारवि की कवित्व कीर्ति को अक्षुण्ण बनाये रखने वाला उनका एक मात्र ग्रन्थ किरातार्जुनीयम है जिसकी गणना सस्कृत की वृहत्त्रयी (किरात, माघ, नैषध) मे की गयी है।[2]

कालिदास के परवर्ती प्रमुख महाकाव्यो मे आरम्भ किरातार्जुनीयम से ही होता है। उन महाकाव्यो मे भारवि का महाकाव्य कुछ अपना अलग ही स्थान रखता है उनके महाग्रन्थ काव्यशास्त्रोक्त नियमो से पूर्णतयापरिपूर्ण है। व्याकरण के नियमो का पूर्ण प्रयोग काव्य मे सर्वत्र परिलक्षित होता है। कालिदास और अश्वघोष की अपेक्षा भारवि का व्यक्तित्व दर्शन सर्वथा स्वतत्र प्रतीत होता है।

---

1 विवक्तवर्णाभारणा सुखश्रुति प्रसादयन्ती हृदयान्यपि द्विषाम्।
प्रवर्तते नाकृतपुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती।। किरातार्जुनीयम–14/3

2 येनायोजि नवेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयता रविकीर्ति कविताश्रितकालिदासभारविकीर्ति ।। ऐहोल शिलालेख

भारवि के पहले वाल्मीकि तथा कालिदास ने अपने महाकाव्य का जो विषय चुना था वह अत्यन्त विस्तृत तथा परिमाण मे विपुल है। जबकि भारवि, भट्टि, माघ इत्यादि के काव्य वर्णन प्रकार एव पाण्डित्य के विशेष आग्रह से परिपूर्ण है। यह एक नवीन शैली को लोकप्रिय करने का ढंग था– जिसे आचार्य कुन्तक अलङ्कार बहुला या विचित्र मार्ग की सज्ञा देते है। इस अलङ्कृत शैली की दो प्रमुख विशिष्टताए थी। (1) विषय सम्बन्धी, (2) भाषा सम्बन्धी। जैसे कि कालिदास ने अपने रघुवश मे केवल 19 सर्गों के भीतर दिलीप से प्रारम्भ कर अग्निवर्ण तक रघुवंश की अनेक पीढियो का वर्णन बडी सफलता के साथ किया परन्तु भारवि ने अर्जुन का किरात के पास जाना और उनसे युद्ध कर अस्त्र प्राप्त करने की स्वल्पकथा को 20 सर्गों मे कह डाला।[1] इन्होने अपने काव्य मे पर्वत, नदी, सन्ध्या, प्रात, ऋतु अनेक दृश्यो का वर्णन करने मे अनेक सर्ग व्यय कर दिये और इस प्रकार इस छोटे से कथानक को इतना अधिक विस्तार प्रदान किया। कहने का तात्पर्य यह है कि भारवि के पहले काव्य का विषय विस्तृत होता था प्राकृतिक वर्णन कम परन्तु भारवि के बाद काव्य मे कथावस्तु अत्यन्त कम होने लगी और प्रकृति प्रर्णन अधिक, यही बात शिशुपाल तथा नैषध मे भी परिलक्षित होती है।[2]

दूसरी बात भाषा तथा शैली सम्बन्धी है वाल्मीकि तथा कालिदास ने महाकाव्यो में सीधी सादी चलती और प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग किया उनकी कविता प्रसाद गुण से युक्त है। न तो उनमें कही क्लिष्ट कल्पना है न अलङ्कार की बेसुरी झङ्कार इनकी कविता मे अलङ्कारों के लाने का बरबस प्रयोग नही किया गया है। बल्कि जहाँ भी अलङ्कार आये बहुत ही सहज रूप में प्रयुक्त दिखलाये गये हैं। परन्तु भारवि ने एक ऐसी शैली को जन्म दियाएक ऐसी रीति का काव्य मे प्रयोग किया जो अलङ्कार के भार से लदी है श्लेष के प्रयोग से अत्यन्त दुरूह बन गई है। तथा चित्र काव्य से प्रदर्शन करने की बलवती इच्छा से पहेली के समान कठिन हो गयी है– अलङ्कारो की प्रधानता होने के कारण ही इसे 'अलङ्कृत शैली' नाम प्रदान किया गया। इस अलङ्कृत शैली

---

1 सस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय
2. नैषधीयचरित 22/5

का उत्कर्ष माघ के काव्य मे देखने को मिलता है। अत· इस शैली की उद्‌भावना और विकास मे भारवि और माघ का नाम सश्लिष्ट रहेगा। अब महाकवियो के सामने दो प्रकार की काव्य शैलिया विद्यमान थी। (1) वाल्मीकि की सहज सारस्वत प्रवाह युक्त रसमयी शैली (2) दूसरी भारवि माघ की अलड्‌कृत शैली। अब यह समस्या थी कि किस शैली को अपनाया जाय तो उनमें कुछ श्री हर्ष, पद्मगुप्तपरिमल इत्यादि कवियो ने प्रथम शैली अर्थात् रसमयी शैली का को अपनाया जबकि इनमे इतनी क्षमता यह भी विद्यमान थी कि काव्य को वह सम्यक रूप से अलड्‌कृत भी कर सकते थे। अलड्‌कृत शैली का भव्य निदर्शन रत्नाकर का 'हरविजय' है। इन सभी परवर्ती युग के कवियो की दृष्टि मे नैसर्गिकता के स्थान पर अलङ्कारिकता का विशेष मूल्य है। वाह्य प्रकृति के वर्णन मे भी भिन्नता आ गयी है। ये कवि लोग प्रकृति के विलक्षण एव मार्मिक स्वरूप के विश्लेषण मे नितान्त असमर्थ है, क्योकि इनमे निरीक्षण का वस्तुत अभाव है। श्री हर्ष जैसे विदग्ध पण्डित की दृष्टि मे सायकाल मे पश्चिम दिशा शवरालय मे प्रहर के अन्त की सूचना देने वाले मुर्गो की कॅलगी के कारण लाल रग की दिखलायी पडती है। कालिदास के यमकमय वर्णन को परवर्ती कवियों ने अपनाया उन्होंने यमक का इतना अधिक वर्णन किया कि उसमे रसवत्ता का नामोनिशान न रह गया केवल वाहवाही के केन्द्र बिन्दु रह गये। कालिदास के यमक की स्वाभाविकता तथा मनोरमता के सामने भारवि तथा माघ का ऋतुवर्णन (छठे सर्ग का) सम्बन्धी कोई भी श्लोक खडा नही हो सकता। अलड्‌कृत शैली का विकट रूप तब प्रगट होता है जब कवि एक ही प्रबन्ध मे राम की तथा अर्जुन की कथा सुनाने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। कभी–कभी तो तीन–तीन अर्थ एक ही श्लोक मे आदि से लेकर अन्त तक निकलते है। ऐसे द्वयर्थी महाकाव्यो मे धनञ्जय का द्विसन्धान, विधामाधव का पार्वतीरूक्मिणीय, हरिदत्त सूरि का राघवनैषधीय, कविराज सूरि का राघव पाण्डवीय मुख्य है। त्रयर्थी काव्यो मे राजचूडामणि दीक्षित का 'राघवयादवपाण्डवीयम् तथा चिदम्बरसुमति का राघवपाण्डवयादवीय मुख्य है[1] कहना व्यर्थ है कि इन काव्यो में पाण्डित्य का प्रदर्शन ही मुख्य है हृदय को विकसित करने वाली कला की अभिव्यक्ति नितरा न्यून है। इस

---

1 सस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय

प्रकार महाकाव्य के विकास पर दृष्टिपात करने से स्पष्टत. प्रतीत होता है कि आरम्भिक युग मे नैसर्गिकता का ही काव्य मे मूल्य था। वही गुण आदर की दृष्टि से देखा जाता था परन्तु आगे चलकर पाण्डित्य का जोर बढा। न्याय तथा वेदान्त के गम्भीर अध्ययन के कारण पाण्डित्य एक नवीन युग ही आ खडा हुआ। फलत कवियो ने अपने काव्यो मे अक्षराडम्बर तथा अलङ्कार विन्यास की ओर अपना दृष्टिपात किया उन्हे ही काव्य का जीवन मानने लगे, और इसलिए पिछले युग मे सुकुमार मार्ग के स्थान पर विचित्र मार्ग का प्रसार हुआ। कालिदासोत्तर महाकाव्य परम्परा मे इस नयी विचित्र मार्गी प्रवृत्ति के आ जाने से एक नया मोड आया। इन काव्यों मे श्रृङ्गार रस के वर्णन की प्रवृत्ति बढती गयी। भाषा में सरलता सहजता तथा अल्प समासो के स्थान पर क्लिष्ट शब्दो और दीर्घ समासो का प्रचलन बढने लगा। शास्त्रीय तथा व्याकरण सम्मत नियमो का पालन ही कवि नैपुण्य हो गया। वैदग्ध्य प्रदर्शन एव पाण्डित्य प्रकटीकरण के चक्रव्यूह मे फॅसकर महाकाव्य रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से अवरकोटिक होते गये। बैदग्ध्य प्रदर्शन की भावना इतनी प्रबल हो गयी थी कि वे किसी वस्तु का सीधा–सादा वर्णन करने मे सकोच करते थे। किसी भी वस्तु का वर्णन करते समय उन्हे अपने पाण्डित्य के प्रदर्शन का अच्छा अवसर मिल जाता था और वे इसका पूरा लाभ भी उठाते थे। वे उन वर्णनो मे अपने अधीत विषयो तथा विविध शास्त्रो के अपने ज्ञान को प्रदर्शित करने का भरसक प्रयत्न करते थे। कालिदास ने काव्य के कलापक्ष को भी सवारा अवश्य था किन्तु उनका भावपक्ष ही अधिक प्रबल और प्रौढ था उनमे जो सारस्वत प्रवाह और गम्भीरता का भाव था वह परवर्ती कवियो मे नही रह पाया। उनकी कविता मे अखाडेबाजी ने विशेष रूप से अपना स्थान ले लिया था। इस प्रकार परवर्ती युग मे कलापक्ष को इतना अधिक महत्त्व दिया जाने लगा कि महाकाव्य अलङ्कारो का घटाटोप बन कर रह गया। भावपक्ष प्रायेण उपेक्षित और नगण्य ही रह गया।

इस नवीन प्रवृत्ति का सूत्रापात भारवि के महाकाव्य किरातार्जुनीयम् से हुआ। भारवि ने यद्यपि रसोन्मेष मे भी कोई न्यूनता नही आने दी है, तथापि जिस चित्रमार्ग किवा अलङ्कृत शैली का प्रवर्तन भारवि ने किया था वही शैली परवर्ती कवियो को सर्वाधिक ग्राह्य हुई। महाकवि भारवि ने अपने काव्य का आरम्भ बिल्कुल मौलिक रूप से

किया है। वनेचर आगमन से वह किरातार्जुनीय का आरम्भ करते है, जिस वनेचर को युधिष्ठिर ने दुर्योधन की शासन व्यवस्था जानने के लिए गुप्तचर रूप मे भेजा था। यह कवि की नितान्त मौलिक कल्पना है। इस काव्य का मुख्य उद्देश्य अर्जुन को पाशुपतास्त्र की प्राप्ति है जिसके लिए वह कटिबद्ध है। उनके वर्णन क्या अलङ्कार, क्या रीति, क्या गुण, यहॉ तक कि व्याकरण, काव्य, राजनीति, काम आदि से भी अछूते नही रहे। जिसके सकेत यथावसर महाकाव्य मे उपलब्ध होते है।

महाकवि भारवि ने महाभारत के सक्षिप्त से कथाक्रम को महाकाव्य के लक्षणो के अनुरूप ऋतु, पर्वत, सूर्यास्त, रतिक्रीडा आदि विभिन्न वर्णनो से मण्डित करके एक महाकाव्य के रूप मे प्रस्तुत किया। इन विभिन्न विस्तृत वर्णनो के होते हुए भी कथावस्तु मे निरन्तर अविच्छिन्नता बनी रहती है। अपने इन्ही प्रशस्त गुणो के कारण इस महाकाव्य ने सस्कृत महाकाव्यो की वृहत्त्रयी में प्रमुख स्थान ग्रहण कियाहै। महाकवि भारवि ने अपने काव्य का प्रारम्भ श्री शब्द से किया है– और प्रत्येक सर्गान्त मे लक्ष्मी शब्द का प्रयोग किया है– इस प्रकार भारवि ने अपने महाकाव्य की रचना इस ढग से की है जिससे नियमो का उल्लङ्घन न होने पाये तथा काव्य की रसोद्रेक शक्ति मे भी कोई अन्तर न आने पाये।

काव्य के सुकुमार कलेवर मे राजनीति एव कूटनीति का प्रशस्त समावेश भारवि ने ही किया। प्रथम सर्ग से ही कवि की राजनीति प्रवीणता पदे–पदे परिलक्षित होने लगती है। "शठेशाठ्यं समाचरेत्" सिद्धान्त का वर्णन भारवि ने अत्यन्त सुन्दरता से किया– उससे उस समय की राजनीति का स्पष्ट परिचय परिलक्षित होता है–

"व्रजन्ति ते मूढधिय पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिन ।
प्रविश्य हि ध्नन्ति शठास्तथाविधानसवृतागान निशिता इवेषव.।।"[1]

युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरित करती हुई द्रौपदी ने राजनीति का सार एक ही श्लोक मे कह डाला है– इतना ही नही वह साग्रह कूटनीति का आश्रय लेने को भी कहती है।

---

1 किरातार्जुनीयम् – 1/30

न समयपरिरक्षण क्षम ते भूरिधाम्न निकृतिपरेषु परेषु।
विजयार्थिन॰ हि क्षितीशा विदधति सोपधि सन्धिदूषणानि।।[1]

अर्थात् विजय कामना करने वाले राजा कभी समय व्यर्थ नही गवाते। वे अपनी दुर्बलता के समय की गयी सन्धि को किसी न किसी बहाने से भग करके अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते है।[2] फिर आप युधिष्ठिर ही निरन्तर अपमान करने में तत्पर शत्रुओ के प्रति इस प्रकार अवधि–शर्त का पालन करते रहे, यह उचित नही है।[4] इस प्रसग के माध्यम से द्रौपदी ने युधिष्ठिर को कूटनीति विषयक शिक्षा दी है। और कहा कि गुप्तचर की सूचनाएं भी राजनीति के रहस्य को बताने वाली होती है।

भीम द्रौपदी की बात का समर्थन करता है। युधिष्ठिर को उत्साहित करता हुआ वह स्पष्ट कह देता है कि समृद्धियॉ पराक्रमी मनुष्य का ही आश्रय लेती हैं, अनुत्साही व्यक्ति का नही।

"निवसन्ति पराक्रमाश्रया न विषादेन सम समृद्धय॰।" किरात– 2/15

भीम के उक्त वक्तव्य मे कार्यसिद्धि के पाचो अङ्गो का उल्लेख है। भीम की बातो का जो उत्तर "युधिष्ठिर के मुॅह से यह कहा गया कि 'व्यक्ति को काम, क्रोध आदि के वश में होकर अचानक ही कोई कार्य नही कर डालना चाहिए"। वह भी कवि के नीति ज्ञान का परिचायक है। क्रोध के आवेश मे आकर किये गये कार्य मे सफलता प्राप्त नही होती। क्रोधी पुरूष अपनी प्रभु मत्र, और उत्साह इन तीनो शक्तियो से हॉथ धो बैठता है। अहकारी राजा अपने मित्रो, प्रजा और अन्तरङ्ग मन्त्रियो आदि को भी खो देता है। बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह दुर्विनीत शत्रु के अभ्युदय की उपेक्षा कर दे। अभ्युदयशील वह शत्रु अपने दोषो के कारण एक न एक दिन अवश्य नष्ट हो जाएगा, क्योकि ऐसे दुष्ट व्यक्तियो की सम्पत्ति का अन्त विपत्ति मे होता है।

यह नीतिविषयक वचन कवि के विशिष्ट ज्ञान तथा पाण्डित्य के परिचायक है। जिसके उचित प्रसङ्ग पर कवि ने अपने राजनीति सम्बन्धी ज्ञान तथा गम्भीर अनुभव का

---

1 किरातार्जुनीयम् – 1/45

2 प्रभव खलु कोशदण्डयो कृतपञ्चाङ्गविनिर्णयो नय।
स विधेयपदेषु दक्षता नियति लोक इवानुरूध्यते।। किरात – 2/12

3 मतिमान् विनयप्रमायिन समुपेक्षेत समुन्नति द्विष।
सुजय खलु तादृगन्तरे विपदन्ता ह्यविनीतसम्पद।। किरात – 2/52

कोष खोलकर जनमानस के सामने रख दिया है। इसी प्रकार अमराङ्गनाओ के क्रीडा विलास का सजीव तथा सरस चित्रण करके कवि ने अपने कामशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान का प्रदर्शन किया है। कवि ने किरातार्जुनीयम् मे विभिन्न नायिका, भेदो, काव्यरूढियो, अलङ्कारो तथा विभिन्न वृत्तो के प्रयोग से उनका 'पिङ्गलशास्त्र' तथा अलङ्कारशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान प्रकट होता है।[1]

द्वितीय सर्ग मे युधिष्ठिर भीम के वक्तव्य की प्रशसा करते हुए कहते हैं कि भीम की वाणी में उसकी बुद्धि उसी प्रकार प्रतिविम्बित हो रही है जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण मे प्रतिविम्ब स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। यह कथन भारवि की कविता के बौद्धिक पक्ष की ओर सकेत करता है।[2] उनका कहना है कि, काव्य को पढकर कवि के बुद्ध वैभव की स्पष्ट प्रतीति होनी चाहिए, किन्तु बौद्धिक चमत्कार के फेर मे पडकर भारवि अपने काव्य के महत्त्वपूर्ण गुणो का परित्याग नही करना चाहते। युधिष्ठिर के स्वर मे नि सन्देह कवि ही अपनी काव्यशैली के आदर्श का निरूपण कर रहा है। इससे कवि का यही मत प्रतीत होता है कि काव्य की पदयोजना मे स्पष्टता हो तथा अर्थगौरव का निर्वाह अवश्य होना चाहिए, अर्थ की पुनरूक्ति भी न हो तथा वाक्यो मे अभीप्सित अर्थ प्रकट करने की शक्ति का भी अभाव नही होना चाहिए। इसके अलावा काव्य मे श्रुति–मधुर शब्दो का इतना सुरूचिपूर्ण प्रयोग होना चाहिए कि वह कोमल कान्त पदावली शत्रुओ के मन को भी प्रसन्न कर दे। ये सभी विशेषताए भारवि की कविता मे ही विद्यमान है। यद्यपि यह सत्य है कि, भारवि काव्य के कलापक्ष पर विशेष ध्यान देते हुए अपने काव्य मे अलङ्कारो की सचेष्ट स्थापना करते है शाब्दीक्रीडा और चमत्कार प्रदर्शन की ओर उनका ज्यादा झुकाव प्रतीत होता है, किन्तु सिद्धान्त रूप मे वे काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष दोनो के ही महत्त्व को भलीभॉति समझते है। अर्जुन का यह कथन उनके इस विचार को स्पष्टता प्रदान करता है–

स्तुवन्ति गुर्वीमभिधेयसम्पद, विशुद्धि मुक्तेरपरे विपश्चित.।
इति स्थितायां प्रति पूरूषरचौ, सुदर्लभा सर्वमनोरमागिर ।। किरात–14/5

---

1 किरात – 2/26
2 स्फटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरा न च सामर्थ्यमपोहितक्वचित्।। किरात– 2/27

उक्त श्लोक मे एक ओर शब्दो की अपेक्षा अर्थ पर अधिक बल देने और दूसरी ओर शब्द की विशुद्धि कोही अधिक महत्त्वपूर्ण मानने की दोनो विचारधाराओ को कवि उपयुक्त नही समझता है। वह मध्यम मार्ग का समर्थक है वह काव्य मे शब्द योजना को ही आवश्यक समझता है। साथ ही अर्थ की स्पष्टता तथा गम्भीरता को भी काव्य के लिए अनिवार्य मानता है। "सर्वमनोरमागिर" कहने से कवि का यही अभिप्राय है। उक्त श्लोक से यह भी सहज मे ही ज्ञात होता है कि कवि जन–प्रियता को श्रेष्ठ काव्य की कसौटी मानता है। भारवि के विचार से उस काव्य को सफल नही माना जा सकता जो केवल एक विशेष प्रकार की अभिरूचि वाले व्यक्ति को ही मनोहर प्रतीत हो। व्यक्तियो की रूचिया तो भिन्न–भिन्न होती है, किन्तु सत्कवि को अपनी प्रतिभा के द्वारा ऐसे काव्य की सृष्टि करनी चाहिए जो सभी रूचि के अनुकूल हो। महाकवि भारवि यहॉ पर काव्य के किसी एक पक्ष पर ही अधिक बल देने वाली अतिवादी विचारधारा को उपेक्षणीय घोषित करते हुए प्रतीत होते है। उनका कहना कि वाणी मनोगत भावो की अभिव्यक्ति का श्रेष्ठ साधन है।[1] किन्तु उस वाणी के द्वारा गम्भीर अर्थ की अभिव्यक्ति कराने मे किसी प्रत्युत्पन्न मति व्यक्ति को ही सफलता मिलती है। यही अर्थगाम्भीर्य भारवि के काव्य का आदर्श है।

भारवि ने अपनी अलड्कृत काव्यशैली द्वारा अप्रस्तुत विधान को प्रकट करते हुए अलङ्कारो की सुन्दर योजना की है। शाब्दिक चमत्कार और आर्थिक चमत्कार दोनो का समुचित सन्निवेश किया। काव्य को यथासम्भव अलङ्कारो से मण्डित करने मे खूब प्रयत्न किया है। जगह–जगह ऋतु, जलक्रीडा, चन्द्रोदय का वर्णन बडी सुन्दर भाषा मे किया है। पञ्चम सर्ग का कवि का यमकमय चित्रण उसकी सर्वप्रियता को प्रदर्शित करता है। उपमा, श्लेष, अर्थान्तरन्यास आदि अलङ्कारो का भी काव्य में उचित सन्निवेश किया। वहॉ पर भी अर्थ गौरव का लक्ष्य उसने नहीं भुलाया है। श्लेष किसी न किसी अर्थालङ्कार का उपकारक बन कर ही प्रयुक्त हुआ है। अपने शुद्ध रूप में नही। हॉ उनके चित्रालङ्कार अवश्य खटकने वाली चीज है जिसमे अपनी चातुरी प्रदर्शित करने के

---

1 भारविकृत किरातार्जुनीयम् – डा0 राजेन्द्र मिश्र – भूमिका भाग

लिए एक समग्र सर्ग– पचदश ही लिख डाला। हृदय मे भावो को जाग्रत करके रसनिष्पत्ति की दशा तक पहुचने मे तो ये पद्य सर्वथा असमर्थ रहते ही है, इनके अर्थ को समझ लेना भी टेढी खीर है। इनका पाठक बुद्धि की अच्छी करसत करके इस प्रकार के पद्यो के विषय मे जो कुछ समझ पाता है वह बौद्धिक उपलब्धि मात्र ही होती है हृदय का उससे कोई सम्बन्ध नही होता। इन चित्रालङ्कारो मे कवि की पाण्डित्य प्रदर्शन की ही भावना बलवती हो गयी है और पन्द्रहवॉ सर्ग अपनी कारीगरी दिखाने के लिए लिख डाला है। इस सर्ग मे सर्वतोभद्र, यमक, विलोम, तथा अन्यान्य चित्रकाव्य की शैली के नमूने पाये जाते है। एक श्लोक मे गोमूत्रिकाबन्ध का चमत्कार है तो दूसरे मे प्रथम पक्ति को दूसरी पक्ति मे ही ठीक उसी प्रकार दुहराया गयाहै। एक श्लोक के प्रत्येक पाद मे एक व्यञ्जना का प्रयोग किया गया है तो दूसरा सम्पूर्ण श्लोक ही एक व्यञ्जना के द्वारा लिख डाला गया।

न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानरना ननु।
नुन्नोऽनुन्नो ननुन्नोनो नानेना नुन्ननुन्ननुत्।। किरात – 15/14

"अरे अनेक प्रकार के मुखवालो/नीच मनुष्य द्वारा विद्ध मनुष्य, मनुष्य नही है। नीच मनुष्य को विद्ध करने वाला मनुष्य भी मनुष्य नही है। जिसका स्वामी विद्ध नही हुआ है तो समझो पुरूष भी अविद्ध है तथा अत्यन्त पीडित व्यक्ति को पीडा देने वाला मनुष्य निर्दोष नही होता है।

एक ही अक्षर का यह श्लोक कितना चमत्कारपूर्ण है। अकेले अक्षर के प्रयोग के द्वारा ही गम्भीर अर्थ की अभिव्यक्ति करा देना भारवि जैसे कलाकार का ही काम था। किन्तु ऐसे स्थलो पर अर्थ की वह अभिव्यक्ति स्वाभाविक तथा सरल ढग से नही हो पाती। चित्रालङ्कारो की इस योजना ने ही 15वे सर्ग को अत्यन्त दुरूह बना दिया है।[1]

यद्यपि सर्वप्रथम चित्रालङ्कारो का प्रयोग भारवि ने किया है जिसने निसन्देह काव्य को विकृत बना दिया है।

गोमूत्रिकाबन्ध का एक उदाहरण देखिए– इसमे प्रत्येक चरण मे विषम वर्णों पर वर्ण परिवर्तन हो सकता है। यथा–

1 सस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – पृ0 190 – कपिलदेव द्विवेदी

नासुरोऽय न वा नागोधरसस्थो न राक्षस।
ना सुखोऽय नवाभोगो धरगिस्थो हिराजस।। किरात – 15/12

'स्कन्द अपनी भागती हुई सेना को समझाते हुए कहते है कि यह मुनिवेष धारी अर्जुन न दैत्य है न नागराज है (गजेन्द्र या सर्पराज) न पर्वताकार राक्षस ही है, अपितु सुखद, महोत्साही, रजोगुण प्रधान एव भूतलचारी एक मनुष्य है।[1]

चित्रालङ्कार का एक अत्यन्त श्रम साध्य भेद सर्वतोभद्र है इसे सीधा उल्टा ऊपर या नीचे जिस प्रकार भी पढा जाएगा वही पद बनता है।

देवाकानिनि कावादे वाहिकास्वस्वकाहि वा।
काकारेभभरे काका निस्वभव्यव्यमस्वनि।। किरात – 15/25

शिव की भागती हुई सेना के प्रति सेनापति स्कन्द का कथन है कि आप लोग कायरता दिखाकर हमारे गौरव को नष्ट न कीजिए। (काका) हे काकतुल्य कापुरूषो? इस युद्ध मे जो कि (देवाकानिनि) देवों के लिए उत्साहप्रद है, (कावादे) वाग्युद्ध प्रधान है, (वाहिकास्वस्वकाहि वा) क्रमश· नेतृत्व के समय शत्रुओ पर सम्यकतया प्रहरणशील है, (काकारेभरे) मदस्त्रावी हस्ति समूह से युक्त है और जो (निस्वभव्यव्यभस्वनि) निर्बल तथा सबल दोनो के पराक्रम से सुशोभित है, (अपना पुरूषार्थ न छोडिये)।

इससे भी क्लिष्ट पदावली मे गोमूत्रिकाबन्ध चित्रमयता प्रहेलिकादि का वर्णन 15वें सर्ग मे देखने को मिलता है जहॉ प्रत्येक पद मे एक ही व्यञ्जन ध्वनि पाई जाती है। यह एकाक्षर पद चित्रकाव्य है–

स सासि· सासुसू सासो येयायेयाययायय।
ललौ लीला ललोऽलोल शशीशशिशुशीः शशन्।। किरात – 5/5
धन विदार्यार्जुनबाणपूग ससारबाणोऽयुगलोचनस्य।
धन विदार्याऽर्जुनबाणपूग ससारबाणोऽयुगलोचनस्य।। किरात – 15/50

इस प्रकार उपर्युक्त पद्य सुन्दर होते हुए भी कठिन है। इनके अर्थ निकालने मे विद्वानो को भी श्रम करना पडता है। यद्यपि रसिकजनो के लिए भारवि के काव्य मे वर्णित चित्रबधों का प्रयोग भले कोई महत्त्व न रखता हो किन्तु काव्यरूढियो का

---

1 सस्कृत सुकवि समीक्षा – बलदेव उपाध्याय – प्रथम सस्करण।

अध्ययन करने वाले आलोचको के लिए ये कम महत्त्व नही रखते। भारवि की इन कलाबाजियो मे उस जादूगरी का आरम्भ पाया जाता है जिसकी शिष्ट परम्परा परवर्ती कवियो तक बढती चली आयी है।[1] राजनीतिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन, सुश्लिष्ट पदविन्यास एव कवि के पाण्डित्य प्रदर्शन के कारण यह काव्य अधिक कठिन हो गया है। कालिदास जैसी ललित वैदर्भी रीति का यहॉ अभाव है। कालिदास की कविता मे तो द्राक्षापाक है, अगूर मुॅह मे रखते ही रस का आस्वादन होता है, किन्तु भारवि की कविता मे नारिकेल पाक है जिसे तोडने के लिए कठोर परिश्रम करना होता है। तब कविता का सार हॉथ मे लगता है। जहॉ भारवि ने 21 छन्दो मे चित्राङ्कारो का प्रयोग किया वही माघ ने 28 छन्दो मे यह चमत्कारप्रियता एक दूसरे से आगे बढ जाने की थी।

महाकवि भारवि ने अर्थालङ्कारो का प्रयोग करते हुए चमत्कार प्रदर्शन को अपना लक्ष्य नही बनाते। उनके अर्थालङ्कार अप्रस्तुत योजना मे सहायक होते है और वर्ण्यविषयक को अत्यन्त रमणीय एव प्रभावपूर्ण ढग से व्यक्त करते है।

भारवि कलापक्ष के कवि है।[2] कलापक्ष मे उनका ध्यान माघ की तरह शब्द और अर्थ दोनो की गम्भीरता पर नही रहता[3] और न नैषध के यशस्वी कलावादी की तरह प्रौढोक्ति की लम्बी उडान, पदलालित्य और परिरम्भक्रीडा पर ही भारवि का विशेष ध्यान केवल अर्थ गाम्भीर्य पर था। जिस प्रकार महाकवि कालिदास को उपमा अलङ्कार के लिए सस्कृत काव्य जगत मे ख्यति है उसी प्रकार महाकवि भारवि अर्थगौरव के लिए प्रसिद्ध है।

'भारवेरर्थगौरवम्' स्वल्पशब्दों मे विपुल अर्थ का सन्निवेश करना ही अर्थगौरव है अथवा दूसरे शब्दो में जिसे "गागर मे सागर भरना" भी कहा जा सकता है। ऐसी भारवि की मान्यता है। एक अन्य स्थल पर उन्होने अपना मत अर्थ गौरव, कल्पना और सूक्ष्म विचारो का मनोहर मिलाप, युधिष्ठिर द्वारा भीम के भाषण की प्रशसा कराते हुए व्यक्त किया गया है।[4]

---

1 भारविकृत किरातार्जुनीयम् – समीर शर्मा पृ0 8
2 किरातार्जुनीयम् – कपिलदेवद्विवेदी – पृ0 27
3 शिशुपालवध – 2/86
4 देखिए – भारविकृत किरात0 के चौदहवें सर्ग का तीसरा श्लोक

सम्पूर्ण किरातार्जुनीयम मे भारवि की इन्ही मान्यताओ के उत्कृष्ट उदाहरण देखे जा सकते है। अपनी इसी अर्थगौरव सम्बन्धी मान्यता को प्रकट करने के लिए भारवि ने अधिकतर अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का सहारा लिया है। उनके सम्पूर्ण काव्य मे लगभग 115 श्लोक अर्थान्तरन्यास अलङ्कार से युक्त है। कालिदास के अतिरिक्त अर्थान्तरन्यास के प्रयोग मे कोई भी कवि इनकी समता नही कर सकता। एक स्थल पर कवि ने ऋतु सौन्दर्य के चित्रण के साथ ही सहृदय मानस के अकथनीय भावो को अर्थान्तरन्यास द्वारा उतारा है। मदमस्त मयूरो के मनोहर कूजन राजहसो के शब्दों के साथ तथा कुमुदो के वन समूह पुष्पों की वृष्टि के साथ होकर अनुपम सौन्दर्य धारण करने लगे क्योकि उत्कृष्ट गुणो का सयोग अतुलनीय गुणो का वर्धक होता है।

समदशिरिवरूतानि हसनादै कुमुद वनानि कदम्ब पुष्प नृष्टया।

श्रियमतिशयिनी समेत्य जग्मुर्गुणमहता महते गुणाय योग ।। किरात0–10/15

इसी प्रकार कवि अर्थान्तरन्यासो के माध्यम से राजनीति सम्बन्धी अपनी मान्यताओ का भी स्पष्टीकरण किया है। यथा–ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाला महात्माओ के साथ विरोध भी दुष्टो के ससर्ग की अपेक्षा श्रेयस्कर है।

तथापि जिह्म स भविज्जिगीषया तनोति शुभ्र गुणसम्पदा यश·।

समुन्नयत्भूतिमनार्यसङ्गमाद्वर विरोधोऽपि सम महात्ममि ।। किरात 1/8

यद्यपि भारवि–काव्य मे कालिदास के समान उपमाओ का आधिक्य नही है, फिर भी उपमा के प्रयोग मे मौलिकता, सौन्दर्यसरसता, औचित्य और पाण्डित्य का सुन्दर समन्वयन हुआ है। उपमा का एक उदाहरण दृष्टव्य है– प्रस्थान के पश्चात् अर्जुन कृषको की निवास भूमि पर उसी तरह गया जैसे कोई नायक अपनी प्रेयसी के पास जाता है। शरदभूमि पर कलहस उसी तरह कूजन कर रहे थे जैसे– नायिका की मेखला झन–झन शब्द कर रही हो। उसके पके धान्य की पाण्डुता नायिका के गौरवर्ण के समान दिखाई दे रही थी। उपमा के अतिरिक्त कवि ने रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक, अतिशयोक्ति, निदर्शना, एकावली, समासोक्ति, दृष्टान्त विरोधाभास आदि अलङ्कारो का प्रयोग किया। इसके अतिरिक्त चित्रालङ्कारो का भी प्रयोग भारवि ने किया जिसका वर्णन हम पहले कर चुके है।

भारवि काव्य मे प्रकृति वर्णन मे अलङ्कार और अप्रस्तुत विधान ही बहुलता से मिलता है। इस तरह के एक अप्रस्तुत विधान के लिए भारवि को विद्वानो ने 'आतपत्र भारवि' की उपाधि दे दी थी।[1] इस ढग के अप्ररतुत विधान का प्रयोग भारवि की मौलिक कल्पना है। जो सर्वत्र नही दिखाई पडते।

भारवि का काव्य भाषा, भाव, अलङ्कार, रस, वर्णन, वैचित्र्य छन्दोयोजना और शास्त्रीय पाण्डित्य का सुन्दर निदर्शन है। भाषा मे लालित्य, माधुर्य और पाण्डित्य का सुन्दर निदर्शन है। भारवि की भाषा कोमल भावो को प्रकट करने मे जितनी समर्थ है उतनी ही उग्र भावो के प्रकाशन मे उनकी उक्तिया स्वाभाविकता, व्यङ्ग्य, और पाण्डित्य से पूर्ण है। युधिष्ठिर और भीम के व्यक्तित्व को कवि ने केवल सवादो के रूप मे ही वर्णित किया है। फिर भी भारवि के युधिष्ठर शान्त, न्यायपरायण और अविचलता मे इतने अद्वितीय वर्णित किये गये है कि सस्कृत साहित्य मे ऐसा वर्णन अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। मानव मनोभावो के विश्लेषण मे भारवि की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि का परिचय मिलता है। मानव स्वभाव की कितनी सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति इस कथन मे है कि कोई विद्वान तो भाव और अर्थगौरव को महत्त्व देते है ओर कोई भाषा के परिष्कार। ऐसी स्थित मे वास्तविक परेशानी तो यह है कि सबकी मन पंसद बात कैसे कही जाय। उनकी शब्द योजना भावानुकूल है। भावो के अनुसार ही कही प्रसाद है कही माधुर्य है और कही ओजगुण। तभी तो उनका काव्य सौन्दर्य नारिकेल फल सम्मित बताया गया है। "भारवेरर्थगौरवम्, प्रकृतिमधुरा भारविगिर" आदि सूक्तिया भारवि की महत्ता को सूचित करती है।[2]

भारवि कर्तृवाच्य क्रिया पदो के प्रयोग की अपेक्षा कर्मवाच्य या भाववाच्य का अधिक प्रयोग करते है जो इनके प्रौढ व्याकरण ज्ञान का परिचय दिलाता है। यथा– 'तिरोवभूवे'[3], अभिदधे[4], आनिन्ये आदि। 'दर्शयते' मे आत्मनेपद का प्रयोग विचित्र तथा पाण्डित्य–प्रदर्शन मात्र की भावना से किया गया मालूम होता है।

---

1 उत्फुल्लस्थल नलिनीवनादमुष्मादुद्धूत सरसिजसम्भव पराग ।
वात्याभिर्वियति विवर्तित समन्तादाधत्तेकनकमयातपत्रलक्ष्मीम् ।। किरात० – 5/39

2 किरातसैन्यादुरूचापनोदिता सम समुत्पेतुरूपस्तरहस ।
महावनादुन्मनस खगा इव प्रवृत्तपत्रध्वनय· शिलीमुखा ।। किरात – 14/45

3 इति ब्रुवाणेन महेन्द्रसूनु महर्षिणा तेन तिरोवभूवे।
त राजराजानुचरोऽस्य साक्षात्प्रदेशमादेशमिवाधितष्ठौ ।। किरात – 5/33

4 इत्युक्तवानुक्ति विशेषरम्य मन समाधाय जयोप्तौ।
उदारचेता गिरमृत्युदारां द्वैपायनेनाभिदधे नरेन्द्र ।। किरात – 3/10

सखीनिव प्रीतियुजोऽनुजीविन समानमानान् सुहृदश्चबन्धुभि ।
स सन्तत दर्शयते गतस्मय कृताधिपत्यामिव साधु बन्धुताम्।। किरात0 – 1/10

इसी प्रकार "जहातु नैन कथमर्थसिद्धि सशय्य कर्णादिषु तिष्ठते य।" कि/3/14 मे लोट्लकार का प्रयोग चौका देने वाला है। "द्विषा विघाताय विधातुमिच्छत" कि0 –1/3 मे तुमर्य चतुर्थी और विघाताय मे तुमर्थ मे घञ् प्रत्यय नवीन प्रयोग मालूम होता है। कारको के प्रयोग, यथा तृतीया के स्थान पर षष्टी जैसे– 'लभ्याधरित्री तवविक्रमेण" कि0 3/17 का प्रयोग किया। "आजध्नेविषमविलोचनस्य वक्ष" कि0– 17/63 मे हन् धातु का प्रयोग आत्मनेपदी धातु रूप मे किया है। 'वृणुते हि विमृश्य' कि0 2/30 मे वृणवरणे के स्थान पर वृङ् सभक्तौ धातु का प्रयोग अप्रयुक्त और भ्रम में डालने वाला प्रतीत होता है। इन सब प्रयोगो द्वारा भारवि के व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान की अगाधता का परिचय मिलता है। इससे इस नूतन विधा का प्राचीन कालिदासीय–महाकाव्य–विधा से अन्तर भी व्यक्त होता है। जहॉ प्राचीन विधा प्रसाद और सुबोधता पर बल देती थी वहॉ नवीन विधा अपरिचित और विकट रूपो के प्रयोग द्वारा अपने पाण्डित्य तथा कला–नैपुण्य पर अधिक बल देती दिखाई पडती है। सुरूचिपूर्ण महाकाव्य के निर्माता के विषय मे काव्यशास्त्रीय ज्ञान की चर्चा करना थोडा अटपटा भले ही प्रतीत होता है, परन्तु फिर भी इनकी कुछ चाटूक्ति जैसे कि "स्फुटतानपदैरपाकृता' तथा विविक्तवर्णाभरणा सुखश्रुतिः" बरबस अपनी ओर हृदय को आकर्षित कर लेती है ऐसी चमत्कारपूर्ण वाणी पुण्यशालियों को ही प्राप्त होती है।

इस प्रकार महाकवि भरवि ने विभिन्न विषयो के वर्णनो के द्वारा महाकाव्य को महिमामण्डित किया। क्योकि कवि के लिए नायक–नायिकाओ के भावो के घात–प्रतिघात से परिचित होना इनके मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मे सहायक होता है, विलास लीला इत्यादि ऐसे सरस वर्णनो मे ही कवि को ऐसे शास्त्र की अपेक्षा होती है।[1] किरातार्जुनीयम् के सर्ग आठ, नौ एव दस अप्सराओ के विविध क्रीडा कलापो का सुन्दर निदर्शन प्रस्तुत करता है। इसके अलावा इस महाकाव्य का कथानक भी पौराणिक है, जो पुराण पर आधृत किरातवेषधारी शिव और अर्जुन के सघर्ष का वर्णन करता है। अन्यत्र तो शिव के अर्धनारीश्वर होने का वर्णन है।

---

1 किरात – 7/3

इसी प्रकार शिव–गौरी के पाणिग्रहण की चर्चा है जो कि पाठक को विस्मयीभूत करता है।

"अस्मिन्न गृह्यत पिनाकभृता सलीलमाबद्ध वेपयुरधीर विलोचनाया ।

विन्यस्तमङ्गलमहौषधिरीश्वराया स्रस्तोरगप्रतिसरेणकरेण पाणि ।। कि0–5/33

पॉचवे ही सर्ग मे उमा की तपस्या का उल्लेख कवि की पौराणिक अभिरूचि का सङ्केत दिलाता है –

ईशार्थमम्भसि चिराय तपश्चरन्त्या यादो विलङ्घनविलोल विलोचनीया ।

आलम्बताग्रकरमत्र भवो भवान्या श्च्योतन्निदाघसलिलाङ्गुलिनाकरेण।। कि0–5/29

इस (हिमालय) पर शिव के लिए बहुत समय तक जल में भवानी ने तपस्साधन किया था। उस समय जब कभी जलजन्तु परिस्फुरण करते थे तो उनके नेत्र सचकित हो जाते थे। (आशुतोष) शंकर ने भी अपने हाथ से इनके हॉथ का अग्रभाग ग्रहण किया था। भगवान शकर के हॉथ की अङ्गुलियो से ग्रीष्म काल के स्वेद बिन्दु टपक रहे थे।

वैदिक ज्ञान द्वारा प्रतिपादित यज्ञीय परम्परा का सन्निवेश मुख्यत. 'मन्त्रैरिव सहिताहुति' किरात0 4/32 से प्राप्त होता है। मन्त्रों द्वारा विधिवत दी गयी आहुति को जगत्प्रसूतिर्जगदेकपालिनी कहा गया है। इन सुरूचिपूर्ण तथ्यों से कवि की वैदिक परम्परा मे आस्था का सड्केत भी द्योतित होता है। यहॉ तक कि कवि का न्यायशास्त्रीय ज्ञान युधिष्ठिर की इस उक्ति मे परिलक्षित होता है–

उपपत्तिरूदाहृता बलादनुमानेन न चागम क्षत ।

इदमीदृगनीदृगाशय प्रसभ वक्तुमुपक्रमेत कः।। किरात0– 2/25

इन विषयो के अतिरिक्त भारवि ने योगशास्त्र जैसे विषयो को अपने से अछूता नही रखा। उनका कहना है कि तप के लिए काम, क्रोध, लोभ और मोह की प्रवृत्तियो पर सयम रखने का योगशास्त्र का सिद्धान्त उसे मान्य है। तपस्या में रत अर्जुन के आचरण में शास्त्रीय सिद्धान्तो का प्रतिविम्ब दृष्टिगत होता है। इन्द्र का अर्जुन से कहना है कि –

त्वया साधु समारम्भि नवे वयसि यत्तप ।

ह्रियते विषयै. प्रायो वर्षीयानपि मादृश ।। किरात0 – 11/10

तुमने युवावस्था मे ही जो तप करना आरम्भ किया। वह बहुत अच्छा किया, क्योकि मेरे जैसा वृद्ध व्यक्ति भी विषयो से प्राय हर लिया जाता है।

इसके अतिरिक्त महाकवि भारवि ने अट्ठारहवे सर्ग मे शैवदर्शन का विशद वर्णन कर शिव की सर्वव्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता तथा सर्वज्ञता का भक्त की दृष्टि से हृदयस्पर्शी वर्णन किया है जो कि कितना चमत्कारी है–

न रागि चेत. परमा विलासिता, वधू शरीरेऽस्ति न चास्ति मन्मथ ।
नमस्क्रिया चोषसि धातुरित्यहो निसर्गदुर्वोधमिद तवेहितम् ।।  कि0– 18 / 31

लेकिन माघ ने इन्ही की प्रतिस्पर्धा मे विष्णु का हृदय स्पर्शी वर्णन किया है। यह चमत्कार प्रियता की होड थी।

महाकवि भारवि शब्दो की कृत्रिमता पर बिल्कुल नही उलझते। इनकी शाब्दीक्रीडा का विन्यास पॉचवे और पन्द्रहवे सर्ग मे ही मिलेगी।[1] भारवि श्लेष अलङ्कार के प्रेमी है, पर माघ या श्रीहर्ष जितने नही। उनके कलापक्षीय दृष्टान्तो से यह विदित हो जाता है। काव्य के पद–प्रयोग मे अस्पृष्टता न हो तथा अर्थगाम्भीर्य पर विशेष ध्यान दिया जाय। इस कसौटी को लेकर भारवि के सोने की परख करेगे तो भारवि इस पर खरे सिद्ध होते है। किरातार्जुनीयम् की इतिवृत्तात्मकता का अध्ययन करते समय कालिदास की भावप्रधान इतिवृत्त निर्वाहकता से तुलना करने पर मालूम होता है कि कालिदास जैसा कथाप्रवाह भारवि के काव्य मे नही है। क्योकि कालिदास वस्तुत. सहज प्रतिभा के सुकुमार मार्ग के कवि है। भारवि उनकी छाया नही छू सकते। वे आहार्य प्रतिभा के कवि है। महान् रचनाकार बाणभट्ट ने कालिदास की ही प्रशस्ति गायी है, भारवि की नही।

हम मानते है कि महाकाव्य की कथावर्णन शैली मन्थर गति से चलती है पर इसका यह अर्थ नही कि वह कई स्थानो पर इतने लम्बे–लम्बे अवरोध लगाती चले कि सहृदय पाठक मे नीरसता महसूस होने लगे।

---

1 कवि और काव्यकार – डा0 सुरेश चन्द्र पाण्डेय

कालिदास की कथावस्तु क्या कुमारसम्भव, क्या रघुवश दोनो मे ही यद्यपि बहुत बार प्रश्रय लेती है लेकिन मध्य मे एक से एक रमणीय दृश्य परिलक्षित होते है। परन्तु कालिदास का पाठक अपने कवि की स्थिति से भलीभॉति परिचित होता है और इसके पहले कि पाठक एक ही वर्णन के पिष्टपेषण को पढ–पढकर ऊबे वह कथाप्रवाह को पकडकर आगे बढ जाता है। सम्भवत यह सफलता उसे अपने महाकाव्य मे मिली है। लेकिन भारवि, माघ, श्रीहर्ष मे ये बाते नही है। वे जहॉ रमते है वही सारा दिमाग का गुबार (वर्णनवैचित्र्य मे) निकाल लेते है और जब एक ही वर्ण्य–विषय से सम्बद्ध शब्दवैचित्र्य, अलङ्कारवैचित्र्य और कल्पना की उडान का खजाना खाली हो जाता है तब वह किसी विषय का पुन आगे वर्णन करने मे समर्थ होते है। माघ तथा श्रीहर्ष इस कला के पूरे उस्ताद है और उनसे भी बढकर माघ के एक चेले रत्नाकर जिनके 50 सर्ग मे 50 स्थल ही ऐसे है जहॉ कथा ही नही सहृदय पाठक के मस्तिष्क को भी ब्रेक लगाना पडता है, क्योकि प्रबन्धकाव्य मे बार–बार कथा का प्रवाह रोकना उसकी प्रभावोत्पादकता मे विघ्न डालता है। इसकी जानकारी तो स्वय सभी कवियो को है। फिर भारवि मे कई स्थल प्रभावोत्पादकता से समवेत् है। सम्पूर्ण काव्य चाहे रघुवश महाकाव्य के समान स्थिर प्रभाव न डाले ये स्थल सहृदय पाठक के दिल और दिमाग दोनो पर प्रभाव डालने मे पूर्णत समर्थ है।

भारवि ने मुख्य रूप से वीर तथा श्रृङ्गार रसो का प्रयोग किया। दूसरे सर्ग की भीम की उदात्त उक्तियॉ रसोचित वीर के दर्प से भरी पडी है। भीम यह कभी नही चाहते कि उन्हे दुर्योधन की कृपा से राज्य प्राप्ति हो। उनका कहना है कि अपने तेज से सारे ससार को तुच्छ बनाने वाला महान् व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति की सहायता से (कृपा से) ऐश्वर्य प्राप्त नही करना चाहता। सिह अपने ही हॉथो से मारे हुए दान–जल से सिक्त हाथियो को अपनी ही जीविका बनाता है।[1] इसके अलावा पाण्डवों की वीरता का भी वर्णन जगह–जगह देखिए। इस तरह के पद्य भारवि मे एक और गुण की ओर सङ्केत करता है। भारवि के पद्यो में नादानुकृति बहुत कम पायी जाती है।[2]

---

1 मदसिक्त मुखैर्मृगाधिप करिभिर्वर्तयते स्वय हतै ।
लधयन्खलु तेजसा जगन्न महानिच्छति भूतिमन्यत.।। किरात0– 2/18

2 अथविहितविधेयैराशु मुक्ता वितानैरसित नगानितम्बश्यामभासा धनानाम्।
विकसदमलधाम्ना प्राप नीलोत्पलाना श्रियमधिकविशुद्धा वह्निदाहादिव द्यौ ।। कि0 – 16/62

किरातार्जुनीयम् के आठवे, नौवे, दसवे, सर्ग भारवि के प्रणय–कला विशारदत्व को प्रतिस्थापित करते है। अप्सराओ का पुष्पावचय, जलक्रीडा, रतिक्रीडा आदि वर्णन दिल को भले ही कम जचे किन्तु नर्मसाचिव्य करने मे पूर्णरूपेण पटु है। भारवि, माघ श्रीहर्ष के श्रृङ्गार वर्णन वासना और विलास की वृत्ति को जितने उभारते है उतने कालिदास तथा अश्वघोष के वर्णन नही। कालिदासोत्तर सभी कवियो के श्रृङ्गारिक वर्णनो मे वासना युक्त एव ऐन्द्रियता की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है।

विहस्य पाणौ विधृते धृताम्भसि प्रियेणवध्वा मदनार्द्रचेतस ।
सखीव काञ्ची पयसा धनीकृता वभार वीतोच्चयवन्धमशुकम्।। कि0 – 7/51

जलक्रीडा के वर्णन मे देखिए – कैसा श्रृङ्गारिक चित्रण है –

कि पति ने पत्नी का हाथ पकडा और प्रेम विभोर पत्नी के वस्त्र शिथिल हो गये औरआर्द्रमेखला ने उन्हे रोक कर लज्जा सवरण किया। उक्त सभी वर्णनो मे मुक्तक श्रृङ्गार वर्णनो का आकार दिखाई देता है। अलग–अलग नायिका की अवस्था का चित्रण इस बात को द्योतित करता है।

"न किञ्चिदूचे चरणेन केवल लिलेख वाष्पाकुललोचनाभुवम्।" कि0 – 8/14

महाकवि भारवि ने अपने प्राकृतिक वर्णनों का चाकचिक्य भी शब्दो द्वारा व्यक्त किया। महान् कवि ने उद्दीपन तथा आलम्बन दोनो रूपो मे प्रकृतिचित्रण किया। प्रकृति तथा युवतियो की सहज सुन्दरता के सूक्ष्म निरीक्षण की छवि को प्रस्तुत करने की प्रतिभा भारवि मे ही थी।[1] अप्सरा विहार के समय सूर्यास्त वर्णन, प्रभात वर्णन रात्रिवर्णन इत्यादि कही–कही इतने विस्तृत रूप मे वर्णित किये गये है, जिनसे काव्य मे क्लिष्टता का भाव उत्पन्न हो गया है। किरातार्जुनीयम् मे प्रकृति–चित्रण की प्रचुरता का कारण यह है कि इसकी सम्पूर्ण कथा प्रकृति की ही रम्य क्रोड मे जन्म लेती है, विकास को प्राप्त होती है तथा समाप्त हो जाती है। अकेले भारवि ही नही, बल्कि सस्कृत के सभी परवर्ती कवियो को प्रकृति से प्रति अनुराग की यह भावना भारत की प्राचीन वनप्रधान संस्कृति से ही प्राप्त हुई। यह विशेषत. उल्लेखनीय है कि वनप्रधान

---

1 सस्कृत के महाकवि और काव्य – रामजी उपाध्याय – पृ0 64

सस्कृति से जैसे हम नगर प्रधान सस्कृति की ओर बढते आये है, वैसे–वैसे हमारा प्रकृति के प्रति स्वाभाविक प्रेम समाप्त होता गया है। इसी का परिणाम यह है कि वाल्मीकि और कालिदास के हृदय मे जो प्रकृति के प्रति सहज आकर्षण था वह परवर्ती सस्कृत कवियो मे हमे नही दिखाई देता। दुरूह कल्पनाओ और कृत्रिम अलङ्कारो के दुर्वह बोझ से लदे हुए उनके प्रकृति–चित्रण अपने स्वाभाविक सौन्दर्य को खो बैठते है।

भारवि को प्रकृति चित्रण की दृष्टि से हम सन्धिकाल का कवि कह सकते है, जिसके वर्णनो मे कही तो वाल्मीकि और कालिदास जैसा प्रकृति का स्वाभाविक एव सश्लिष्ट रूप मे देखने को मिल जाता है, तथा अप्रस्तुत विधान वाला रूप प्राप्त होता है।[1]

आलम्बन दृष्टिकोण से किया गया प्रकृति चित्रण तृतीय, चतुर्थ तथा पञ्चम सर्ग मे मिलता है।[2]

हिमालय वर्णन का एक सुन्दर दृश्य देखिये–

रूचिपल्लवपुष्पलतागृहै· लसज्जलजैर्जलराशिभि·।
नयति सततमुत्सुकतामय धृतिमतीरूपकान्तमपि स्त्रिय ।। किरात0–5/19

मनोहर पत्र पुष्प से लदे लतागृहो से, शोभासम्पन्न कमलो से भरे सरोवरों से युक्त हिमालय संयोग से तृप्त कामिनियो को पति के समीप होने पर भी उत्सुक बनाता है।

इन सब प्रयोगो को देखकर यह भली भॉति मालूम होता है कि यद्यपि भारवि का चतुर्थ सर्ग कलापक्षीय दृष्टिकोण से बहुत ही अलड्कृत एवं रमणीय है पर दो चार ही ऐसे स्थल आते है जो अनलड्कृत तो है, परन्तु स्वाभाविकता की मार्मिक कामना से युक्त है।

---

1 'सस्कृत काव्यकार' हरिदत्त शास्त्री पृ0 – 174
2 उदारता पश्चिमरात्रि गोचराद पारयन्त पतितु जवेन गाम्।
तमुत्सुकाश्चक्रुरवेक्षणोत्शुकं गवां गणा प्रस्तुतपीवरौधस ।। किरात0 – 4/10

इसके अलावा सप्तम से दशम सर्ग तक जितने पद्यो मे प्रकृति चित्रण हुआ है वह प्राय उद्दीपन रूप मे ही है। चन्द्रोदय इत्यादि का वर्णन भी वातावरण की मादकता मे वृद्धि करने मे ही सहायक होता है। शीघ्र ही उदित हुआ चन्द्रमा रात्रिजन्य अन्धकार को पूर्णत. दूर नही कर पाया है तो जन्ता को वह प्रकाश से युक्त रात्रि एक नवपरिणीता वधू के समान प्रतीत होती है जिसके मुँह पर से घूघट हट जाने के कारण मुख तो स्पष्ट दिखाई दे रहा हो किन्तु फिर भी जो लज्जा से नत हो रही हो—

उद्गतेन्दुमविभिन्नतमिस्त्रा पश्यतिस्म रजनीभवितृप्त ।

व्यशुकस्फुटमुखीमतिजिह्ला व्रीडया नववधूमिव लोक ।। किरात0— 9/24

महाकवि भारवि के इस वर्णन का तो कहना ही क्या था? यह उनकी पैनी दृष्टि का साक्षात् प्रमाण था। आन्तरिक भावो की व्यञ्जना कराने का अधिक अवसर कवि को प्राप्त नही हुआ। इसका एक—मात्र कारण यही है कि उनके महाकाव्य की कथावस्तु अर्जुन की पाशुपतास्त्र प्राप्ति से ही सम्बन्ध रखती है, उनके समग्र जीवन से नही।

जहॉ कालिदास की पार्वती अपने विवाह की बात सुनकर लीला कमल के पत्तो को गिनने लगती है[1] तो भारवि की नायिका ईर्ष्या जन्य मान के कारण नायक से कुछ नही कहती बस केवल पैर से धरती को कुरेदने लगती है।[2]

इस प्रकार भारवि के काव्य मे किये गये विभिन्न वर्णनो पर यदि हम समग्र रूप से दृष्टि डाले तो कवि की दुर्बलता हमे स्पष्ट रूप से परिलक्षित होगी। किरातार्जुनीयम् की सक्षिप्त सी कथा मे इतने विस्तृत वर्णन उचित प्रतीत नही होते।

इस प्रकार भारवि की काव्यशैली के सम्बन्ध मे विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इनका भाषा और शैली सम्बन्धी दृष्टिकोण परिमार्जित एव क्लिष्टता की भरमार से परिपूर्ण तो था लेकिन सर्वत्र हर स्थल मे स्वाभाविकता का पुट भी नही रह पाया। पञ्चम सर्ग मे यमकमय कोमलकान्तपदावली का प्रयोग करने वाले कवि को युद्ध—वर्णन के प्रसङ्ग मे हम ऐसे शब्दो की योजना करते हुए पाते है, जिनकी कठोर ध्वनि युद्ध के उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करने मे अत्यन्त सहयोग देती है।

---

1 "एववादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती।। कालिदासकृत कुमारसम्भव — 6/84

2 किरात0 — 8/14

जिह्वाशतान्युल्लसयन्त्यजस्त्रं लसत्तडिल्लोलविषानलानि।
त्रासान्निरस्ता भुजगेन्द्रसेना नभश्चरैस्तत्पदवी विवव्रे।। किरात0–16/37

महाकवि भारवि छन्द योजना मे भी अपने पूर्ववर्ती कवि कालिदास से आगे है। भारवि का प्रिय छन्द वशस्थ है– किरातार्जुनीयम् मे वशस्थ छन्दो की उत्कृष्टता को देखकर क्षेमेन्द्र ने अपने सुवृत्ततिलक मे यहॉ तक कह डाला–

वृत्तछत्रस्य सा काऽपि वशस्थस्य विचित्रता।
प्रतिभाभारवेर्येन सच्छायेनाधिकीकृता।। क्षेमेन्द्र कृत सृवृत्ततिलक

इतना ही नही किरातार्जुनीयम् के चार सर्गो यथा प्रथम, चतुर्थ, अष्टम् व चतुर्दश सर्ग मे भी इस छन्द का प्रयोग हुआ है। इसके अलावा अनुष्टुप, उपजाति प्रमिताक्षरा आदि छन्दो का भी प्रयोग किया है। द्वितीय सर्ग मे अनुष्टुप छन्द का बडा ही चमत्कारी रूप प्रस्तुत किया। भारवि ने अपनी प्रतिभा का प्रयोग छन्दो की रचना मे भी किया जहॉ भारवि ने 13 छन्दो का यक्षावसर प्रयोग किया वही माघ ने तो 16 छन्दो के काव्य निबद्ध किया था। भारवि के छन्द विधान को देखकर प्रतीत होता है कि इनको 8 वर्ण से लेकर 13 वर्ण तक के छन्दो में पूर्णता ज्यादा प्राप्त थी इसीलिए सर्गान्त मे केवल मालिनी एव वसततिलका का सम्यक् प्रयोग कर अपनी अलङ्कृत शैली की चमत्कारिता को प्रदर्शित किया।[1]

## कालिदास एवं भारवि की काव्यशैली का संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन –

वस्तुविन्यास की दृष्टि से यदि हम भारवि और कालिदास के काव्यो की तुलना करते है तो दोनो का अन्तर तो स्वत ही स्पष्ट हो जाता है। महाकवि भारवि मे कालिदास जैसी वह मनोवैज्ञानिक सूझ–बूझ नही है, जिनकी सहायता से वह अपने पाठको की रूचि, अरूचि को पहचान कर विस्तृत एवं दीर्घ वर्णनो से अवरूद्ध होने वाले अपने कथाप्रवाह को स्वाभाविक रूप से बहने दे। एक दृष्टि से भारवि के काव्य का कथा प्रवाह अश्वघोष के काव्यो से कुछ समानता रखता है। महाकवि अश्वघोष के ग्रन्थो की कथा अनेक स्थलो पर विस्तृत दार्शनिक विवेचन के सेतु से रूद्ध होकर

---

1 भारविकाव्य मे अर्थान्तरन्यास – पृ0 7 से उद्धृत

अपनी स्वाभाविक गतिशीलता तथा सरसता को गँवा बैठी है। महाकवि भारवि भी कही तो विस्तृत उक्तियो की योजना करके अपने राजनैतिक पाण्डित्य की दुहाई देने लगते है।, तो कही युद्ध के दृश्यो का विस्तारपूर्वक चित्रण करने मे इतने अधिक तन्मय हो जाते है कि आगे कि घटनाओ का भी उन्हे ध्यान नही रहता और कथा उनके वर्णन समाप्त होने की राह देखती हुई खडी रहती है। वस्तु विन्यास के प्रति यह प्रवृत्ति भारवि मे अपने बीज रूप मे है। जो माघ, श्रीहर्ष आदि विचित्रतावादी परवर्ती कवियो मे अत्यन्त विकृत रूप को प्राप्त हो गयी और इसलिए उनके काव्यो को वस्तुयोजना की दृष्टि से कदापि सफल नही बताया जाता।

भारवि की काव्यकला का अध्ययन करने से यह तो पूर्ण रूपेण ज्ञात होता है कि इनमे कालिदास और अश्वघोष जैसी प्रसादता, सारस्वत प्रवाह, ललित सन्निवेश नही दृष्टिगत होता– यद्यपि भारवि की शैली माघ की भाति विकट समासान्त पदावली का आश्रय नही लेती तथापि कालिदास जैसी ललित वैदर्भी भी नही है।

भारवि की रीति गौडी[2] तो नही कही जा सकती पर वह वैदर्भी रीति भी नही है, जो कालिदास मे पाई जाती है। भारवि कालिदास की तुलना मे पाण्डित्य के क्रीडाक्षेत्र मे ज्यादा रमते नजर आते है। वे अपने गुह्यक्लिष्ट व्याकरण का पद–पद पर सन्निवेश करना चाहते है। भारवि की यही प्रवृत्ति आगे भट्टि माघ तथा श्रीहर्ष मे अत्याधिक हो चली, क्योकि भट्टि ने अपना रावणवध काव्य व्याकरण ज्ञान प्रदर्शन के लिए ही लिखा था।

भारवि ने तन् धातु के अत्यधिक प्रयोग कर्तृवाच्य एवं कर्मवाच्य के बेहद प्रयोग से किरातार्जुनीयम् महाकाव्य की प्रभुता को बेहद बढा दिया। उनके लिट्लकार तथा काकुवक्रोन्ति के प्रयोग उसकी स्वाभाविकता का अपहरण कर लेते है।

यहॉ तक कि कालिदास और अश्वघोष की सरस सूक्तियों की भॉति गम्भीर अनुभव को व्यक्त करने वाली अनेक सूक्तियों को भारवि ने भी प्रदर्शित किया। महाकवि भारवि की सूक्तिया अश्वघोष के सुभाषितो की भॉति नीरस नही है।[2] वे कालिदास की

---

1 गौडीरीति का लक्षण – ओज प्रकाशकैर्वर्णैर्बन्ध आडम्बर पुन ।
समासबहुला गौडी।। विश्वनाथकृत सा0द0

2 किरात0 – 1/4

सूक्तियो की भॉति हमारे सस्कारो मे समा जाने तथा हमारी भावनाओ के साथ सामञ्जस्य स्थापित करने की क्षमता रखती है।[1] हमारा जीवन क्षेत्र विस्तीर्ण है।[2] विभिन्न विषयो के मीठे–कड़ुवे अनुभव हमे प्रतीत होते रहते है।[3] "हित मनोहारी च दुर्लभ वच" हितकारी और साथ ही मनोहर वचन दुर्लभ है। "वरविरोधोऽपि सम महात्मभि" सज्जनो के साथ विरोध रखना भी अच्छा है। अहो दुरन्ता बलवद्विरोधिता, बलवान् के साथ विरोध करने का फल बुरा होता है। 'विपदन्ता ह्यविनीत सम्पद' अविनीत व्यक्तियो की सम्पत्तियो का अवसान विपत्ति मे होता है। इत्यादि।

, भारवि को उनके काव्य मे पाई जाने वाली आलङ्कारिक चमत्कार की प्रवृत्ति, शब्दक्रीडाओ तथा विस्तृत वर्णनो के प्रति अभिरूचि रखने के लिए हम अधिक दोषी नही ठहरा सकते। अपने काव्य कौशल के बल पर उन्होने इस शैली को प्रौढता प्रदान की। साथ ही वे कविता के भावपक्ष को भी सर्वथा न भुला सके। माघ और श्रीहर्ष आदि परवर्ती कवियों ने भी उनकी शैली को अपनाया, किन्तु वे कवि काव्य के शिल्प विधान मे ही उलझे रहे, भाव पक्ष की ओर उनका विशेष ध्यान नही दिया गया। भारवि की काव्यशैली का अनुकरण करने पर भी उन कवियो के काव्यो मे भारवि जैसा अर्थ गौरव नही है, हॉ भारवि से बढकर चमत्कार प्रदर्शन तथा पाण्डित्य प्रदर्शन करने की प्रवृत्ति उनमे अवश्य विद्यमान है।

भारवि की उक्त शैली को देखकर यह प्रतीत होता है कि महाकवि भारवि ने महाभारत के इस छोटे से कथानक को आवश्यकतानुसार उलटफेर करके उसे सरस बना दिया है।

महाभारत के अतिरिक्त महाकवि भारवि अपने महाकाव्य किरातार्जुनीय मे अपने पूर्ववर्ती कवियो कालिदास, अश्वघोष तथा विशाखदत्त से प्रभावित दृष्टिगोचर होते है। कालिदास के महाकाव्य रघुवश के भावों की समानता किरातार्जुनीय के कुछ स्थलो पर देखी जा सकती है। यथा– कालिदास ने रघुवश महाकाव्य मे दिलीपसिहसवाद के प्रसङ्ग मे दिलीप के मुख से कहलवाया है कि 'क्षत्र' शब्द 'क्षत' से रक्षा करने के अर्थ मे विश्वविख्यात है।[1] भारवि काव्य मे "जो सज्जनो की रक्षा करने मे समर्थ है, वही क्षत्रिय

---

1 क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्र क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषुरूढ। रघु0 2/53

है।"[1] इसके अतिरिक्त अश्वघोष के बुद्धचरित मे बुद्ध का 'काम से युद्ध'[2] तथा काम का अप्सराओ की सेना के साथ अर्जुन पर आक्रमण[3] इन दोनो कथनो मे कितना साम्यभासित होता है। अश्वघोष के अतिरिक्त भारवि पर विशाखदत्त के भी विचारो का प्रभाव दिखाई पडता है, जैसे– महापुरूषो के स्वभाव के वर्णन के प्रसङ्ग मे मुद्राराक्षस के दूसरे अङ्क का 18वा श्लोक और किरातार्जुनीय के चौदहवे सर्ग के चौदहवे श्लोक मे अर्जुन का कथन।[4]

महाकवि भारवि नीति के तो पण्डित थे ही, पर विशेषत राजनीति के प्रकाण्ड ज्ञाता थे। अपने राजनीति विषयक ज्ञान[5] मे भारवि कौटिल्य के अर्थशास्त्र और विष्णुशर्मा के पचतत्र से पूर्णत प्रभावित प्रतीत होते है।[6] उनका राजनीति सम्बन्धी ज्ञान किरातार्जुनीयम् के प्रथम श्लोक से ही दिखाई देने लगता है।

"श्रिय· कुरूणामधिपस्य पालनी प्रजासु वृत्ति यमयुड्क्त वेदितुम्
स वर्णिलिङ्गी विदित समाययौ युधिष्ठर द्वैतवने वनेचर ।। किरात0 – 1/1

कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे दूत को कापटिक कहा गया है।[7] राजनीति के तत्त्वदर्शी मनीषी होने के कारण भारवि का लक्ष्य राजीनति के विचार ही है।[8] राजनीति के क्षेत्र मे सफलता का मूलमत्र है– "प्रबलसत्ता के साथ विरोध को बचाना अन्यथा अपनी ही हानि है"। भारवि ने इस सत्य को अपने काव्य मे आरम्भ से ही प्रकट किया है। "बलवान् के साथ विरोध का परिणाम बुरा होता है।"[9] भारवि के इस कथन का समर्थन अनेक राजनीतिज्ञो ने किया है तथा इस कथन मे भी भारवि विष्णुशर्मा के पचतत्र से प्रभावित होते है।

---

1 स क्षत्रियस्त्राण सह सता यस्तत्कार्मुक कर्मसु यस्यशक्ति। किरात0– 3/48
2 बुद्धचरित सर्ग 13
3 किरातार्जुनीय, सर्ग 7, 8, 9 एव 10
4 कि राषस्य भरव्यथा न वपुषि (मुद्राराक्षस 2/18)
5 किरात – 2/28
6 कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृ0 27
7 परमर्मज्ञ प्रगल्भ छात्र कापटिक" कौटिल्य अर्थशास्त्र, पृष्ठ 27
8 स किसखा साधु न शास्ति योऽधिप हितान्न य सश्रृणुते स कि प्रभु।
सदाऽनुकूलेषु, हि कुर्वते रति नृपेष्वमात्येषु च सर्वसम्पद ।। किरात0 – 1/5
9 प्रलीनभूपाल मपि स्थिरायति प्रशासदावारिधि मण्डल भुव।
स चिन्तयत्येव भियस्त्वदेष्यतीरहो दरन्ता बलवद्विरोधिता।। किरात0 – 1/23

क्योकि कालिदासोत्तर काल मे भी सस्कृत महाकाव्यो की भाति सस्कृत नाटको मे भी भारवि जैसी शैली के दर्शन होने लगे थे। नाटको मे नाटकीयता के तत्त्व कम हो गये। केवल शास्त्रोक्त नाटकीय लक्षणो का निर्वाह करना मात्र ही नाटककारो का कर्तव्य हो गया। शूद्रक रचित नाटक अवश्य इसका अपवाद कहा जा सकता है। जिसमे कवित्व प्रदर्शन तथा चमत्कारिता की अपेक्षा नाटकीय योजना पर नाटककार का विशेष ध्यान रहा। वस्तुत यदि साहित्य जीवन की व्याख्या है तो उसमे भी जीवन के बहुविध कार्यकलापो का चित्रण होना ही चाहिए। कहा ही गया है– कि साहित्य समाज का दर्पण होता है– क्योकि साहित्य का सृष्टा सामाजिक प्राणी होता है– अत उसका भी जीवन समाज के सास्कृतिक, आर्थिक, एवं राजनैतिक उत्थान पतन और घात–प्रतिघातो से सदैव प्रभावित होता रहता है– फलस्वरूप उसकी कृतियों मे सास्कृतिक, आर्थिक एव राजनैतिक परिस्थितियो के मूल्याकन की झलक सहज मे ही उजागर हो उठती है। श्रेष्ठ कवि या साहित्यकार अपनी मर्मस्पर्शिनी साहित्य सुधा से मानवीय गुणो को अमर बनाया करते है। वे मानव के मौलिक मनोभावो–रति, उत्साह, ह्रास, करूणा के देशकालोचित्त चित्रण द्वारा समाज को सिक्षा देते है कि इन मनोभावो की कौन सी अवस्था कब स्पृहणीय होती है और कब गर्हणीय पर ऐसा करने मे वे तभी समर्थ होते है जब उनकी चित्सवेदना अतीव तीव्र उर्वर एव मुखर होती है। क्योकि इसी के द्वारा वे जनजीवन मे गहराई तक प्रवेश करते है वहॉ की वस्तुस्थिति पर सहज सहानुभूतिपूर्वक चिन्तन मनन करते है तथा इसी की मुखर से सप्रेरणा से वे जनजीवन की किसी रसीली किवा दर्दीली समस्या की अभिव्यक्ति मे अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा लगाते है। यही कारण है – कि उनके काव्यो मे जन जीवन झलक उठता है लोपोन्मुख मानवीय गुण प्रतिष्ठोन्मुख हो उठते है, सिसकता हुआ सदाचार मुस्करा उठता है तथा नदी की उच्छृङ्खल सगम धारा मे डूबती–उतरती सहानुभूति को एक सहारा मिलने लगता है – शक्ति मे सवेदना, बुद्धि मे सर्जना का भाव जागृत होने लगता है और इस प्रकार जर्जर होती हुई मानवता मे पुन· यौवन का मादक बसन्त महक उठता है। जिसके सौरभ से समस्त जीवन आप्यायित एव आह्लादित हो उठता है। इस प्रकार हम देखते है कि– साहित्य जन जीवन का परिष्कार करता है, मानवता का विकास करता है बुद्धि और वाणी का सगम कराता है, किन्तु इस प्रकार के साहित्य की सर्जना की

आशा सभी साहित्यकारो से नही की जा सकती है। स्पष्ट है कि ऐसा साहित्य साहित्यकार के पाण्डित्य तथा बुद्धि–विलास का तो परिचायक होगा पर जनजीवन से दूर और दूरतर होता जाएगा। लेकिन साहित्यकारो का जो दूसरा वर्ग है जो "कला जीवन के लिए" के सिद्धान्त की हिमायती है सवेदनशील है, सहृदय है भावुक है और जिसकी साहित्य सम्पदा मे कलापक्ष की गौणता और भावपक्ष की प्रधानता रहती है। उसका साहित्य नि सन्देह जनजीवन का स्पर्श करता है और वह समाज की एक स्वस्थ एव प्रशस्त विरासत भी बन जाता है।[1]

सस्कृत साहित्य जगत् मे वाल्मीकि, व्यास, भास, कालिदास, विशाखदत्त, भट्टि भवभूति, मुरारी, श्रीहर्ष आदि अनेक भावपक्षवादी साहित्यकारो के साहित्य कोषागार मे राष्ट्रीय भावना के देदीप्यमान हीरे पडे है तथा जिनमे जनजीवन को शाश्वत आलोक प्रदान करने का आनन्द एव अजर्य्य प्रकाश पुञ्ज़ परिव्याप्त है। इसी तथ्य को कालिदास के परवर्ती कवियो एवं नाटककारो ने समझा और अपने पूर्ववर्ती नाटककार कालिदास तथा मृच्छकटिककार से अपना भिन्न नाटकीय आदर्श स्थापित करते हुए जीवन के कठोर सघर्षो को अपनी कल्पना का आधार बनाया।

प0 बलदेव उपाध्याय ने कहा है– "भाषा तथा भाव, शैली तथा कृतित्व वस्तु तथा पात्रचित्रण के समीक्षण के आधारपर हम यह कह सकते है कि विशाखदत्त का यह नाटक वास्तव मे एक महान् कृति है– जिसमे कालिदास के भावो के समान भावो में कोमलता नही है– और न भवभूति के समान हृदय को रूला देने वाली करूणा का प्रसार है, न भट्टनारायण के समान योद्धाओ को समर भूमि मे प्राण देने को बाध्य करने की नगाडो की गडगडाहट ही है– परन्तु जिसमे दो विशाल राजनीतिज्ञो के बुद्धिवैभव के नानाखेलो का विपुल आभार है और मानवता की भव्य मूर्ति को उपस्थित करने वाली नाट्यकला का सुन्दर ओजस्वी रूप है–"[2]

---

1 'सस्कृत साहित्य मे राष्ट्रीय भावना' – पृष्ठ – 43
2 पण्डित बलदेव उपाध्याय – सस्कृत साहित्य का इतिहास ।

इस प्रकार यह विदित होता है– महाकवि भारवि अपने पूर्ववर्ती कालिदास, अश्वघोष, विशाखदत्त इत्यादि कवियो से पूर्णतया प्रभावित रहे और उन्ही की काव्यशैलियो का यथावत् अनुकरण कर किरातार्जुनीय जैसे महाकाव्य को लिपिबद्ध किया। निष्कर्ष यही निकलता है कि महाकवि भारवि की प्रमुखता वर्णनात्मक तथा तार्किक प्रसङ्गो मे विशेष है– लयसमन्वित गीतिकाव्योचित माधुर्य का उनमे अभाव है– वे हिमालय के वर्णन मे तथा राजनीतिक समस्याओ के तार्किक समाधान मे जितने समर्थ है– उतने किसी कोमल भावो की अभिव्यञ्जना मे नही। अलङ्कृत पदावली का विन्यास भारवि का निजी क्षेत्र है– अशसय तथा चाकचिक्य जिसका कि भारवि के परवर्ती कवियो ने अनुसरण किया।

## महाकवि भट्टि –

कालिदासोत्तर काल मे काव्य के भावपक्ष की उपेक्षा करके कलापक्ष के प्रति विशेष आग्रह प्रदर्शित करने वाले प्रसिद्ध कवियो की जो श्रृङ्खला दिखाई देती है उसमें काल क्रम से भारवि के बाद दूसरा नाम 'भट्टि' का आता है।

महाकवि भट्टि ने अपने युग की मान्यताओ के अनुरूप काव्य की रचना की। उनके पहले से ही प्राकृत साहित्य पर्याप्त रूपेण समृद्ध हो चुका था। 'प्रवरसेन' कृत 'सेतुवध' नामक प्राकृत महाकाव्य की रचना निश्चित रूप से भट्टि के पूर्व हो चुकी थी। लोकमानस के अत्यधिक निकट होने के कारण प्राकृत–साहित्य उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता जा रहा था। इसके अलावा प्राकृत–साहित्य की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही थी। शौरसेनी, मागधी इत्यादि प्राकृत भाषाओ के व्याकरणो तथा व्यवहार मे सरलीकरण की प्रवृत्ति अपनाई गई थी। भाषा का यह नैसर्गिक विकास था जो जटिलता से क्रमश सरलता की ओर उन्मुख हो रहा था। ऐसी स्थिति मे संस्कृत जिज्ञासुओ के समक्ष सस्कृत व्याकरण के सूत्रो, वृत्तियो को स्मरण करने की जटिल समस्या रही होगी। इसलिए अपेक्षाकृत प्राकृत व्याकरण के समान सस्कृत व्याकरण को भी सरल बनाने की आवश्यकता थी। इस कार्य मे महाकवि भट्टि ने अपना पूरा योगदान किया, और अपने

महाकाव्य 'रावणवध' (भट्टि काव्य) के द्वारा इस दिशा मे विशेष प्रयत्न करके लोकमानस को प्रभावित किया।

महाकवि भट्टि की कीर्ति का आधार एकमात्र उनका 'भट्टिकाव्य' ही है। इस महाकाव्य मे रामायण की सुपरिचित प्राचीन कथा को उपनिबद्ध किया गया है। साथ मे व्याकरण के नीवन प्रयोगो के द्वारा सम्यक् बोधन की परिपाटी अपनाई गयी है। इस ग्रन्थ मे शास्त्र और काव्य दोनो का समन्वय मिल जाता है। भट्टि ने स्वय लिखा है–

"दीपतुल्य प्रबन्धोऽयं शब्दलक्षणचक्षुषाम्।
हस्ताऽमर्ष इवाऽन्धाना भवेद्व्याकरणादृते।।" भट्टि काव्य – 22/33

अर्थात व्याकरण का ज्ञान रखने वाले पाठको के लिए यह काव्य दीपक की भॉति है लेकिन व्याकरण ज्ञान से शून्य लोगो के लिए यह उसी प्रकार उपयोगी नही है जैसे अधे के हाथ मे दर्पण।

यद्यपि भट्टिकाव्य के पूर्व रामचरित सम्बन्धी कई महाकाव्यो नाटको का प्रणयन हो चुका था जिनमे महाकवि कालिदासकृत 'रघुवश' महाकाव्य 'प्रवरसेनकृत सेतुबध' तथा भासकृत प्रतिमानाटक तथा अभिषेक नाटक[1] काफी प्रसिद्धि पा चुके थे। प्रवरसेनकृत सेतुवध (छठी शता0) 15 आश्वासो मे बद्ध महाराष्ट्री प्राकृत मे लिखा गया महाकाव्य है। इस महाकाव्य मे प्रवरसेन ने नयी–नयी मौलिक उद्भावनाओ मे बाल्मीकि कृत युद्धकाण्ड का जो वर्णन अलङ्कृत शैली मे किया है, उसकी सुधीजन तारीफ करते नही थकते।

कालिदासोत्तर काव्य की पाण्डित्य प्रवृत्ति एव कलात्मक सौष्ठव का एक पक्ष जहॉ भारवि मे प्रतिविम्बित होता था, वही दूसरा पक्ष वैयाकरण भट्टि में परिलक्षित होता है। भारवि मूलत कवि हैं, जो अपनी कविता कामिनी को विद्वज्जनो की अभिरूचि के अनुरूप सजाकर लाते है। भट्टि मूलत वैयाकरण तथा अलङ्कारशास्त्री है, जो व्याकरण और अलङ्कारशास्त्र के सिद्धान्तो को व्युत्पित्सु सुकुमारमति राजाओ तथा भावी काव्यमार्ग

---

1 भासकृत – स्वप्नवासवदत्ता –गणेश दत्त शर्मा पृष्ठ – 2

के पथिको के लिए काव्य के बहाने निबद्ध करते है। भारवि तथा भट्टि दोनो के काव्यो का लक्ष्य भिन्न–भिन्न है। इनके लक्ष्य मे ठीक वही अन्तर है जो कालिदास तथा अश्वघोष के काव्यों मे है। एक ओर जहॉ कालिदास रसवादी कवि है, तो भारवि कलावादी कवि, अश्वघोष दार्शनिक उपदेशवादी कवि है, तो भट्टि व्याकरण शास्त्रोपदेशी कवि। उक्त दृष्टिकोण को लेकर यदि हम भट्टि की प्रशसा कर सकेगे तो "भट्टि के काव्य का एक मात्र लक्ष्य व्याकरिणक शुद्ध प्रयोगो का सङ्केत"।[1]

भट्टि ने काव्य के द्वारा व्याकरण सम्मत प्रयोगो और अलङ्कारो को सिखाने का ढग अपनाया है। यही नही भट्टि ने दामोदर से उलटा ढङ्ग भी अपनाया है। जहा दामोदर कोसली के द्वारा सस्कृत की शिक्षा देते है, वहा भट्टि संस्कृत के द्वारा प्राकृत (महाराष्ट्रीप्राकृत) सिखाने का ढग भी अपनाते है व्याकरण को जीवन का लक्ष्य बनाकर चलने वाले अन्य काव्य भी पाये जाते है जिनमे भट्टभौम का 'रावणार्जुनीय' तथा वासुदेव का 'वासुदेवचरित' प्रसिद्ध है। कविवर वासुदेव ने भगवान् श्री कृष्ण की कथा को लेकर सस्कृत व्याकरण के धातुपाठ के अनुसार सभी धातुओ का तत्तत् लकारगत प्रयोग बताने के लिए इस अन्तिम काव्य की रचना की थी।

महान् कविवर भट्टि को कौन नही जानता? जिन्होने अपने अद्‌भुत कार्य कलापो से सस्कृत भाषा को महिमा मण्डित कर उसे लोकप्रिय बनाया। महान कवि एव नाटककार राजशेखर ने तो कवियो के तीन भेद (शास्त्रकवि, उभयकवि, काव्यकवि) बताते हुए उन्हे 'उभय कवि' के विरूद से सुशोभित किया। संस्कृत वाङ्मय के दूसरे कवियो एव भट्टि मे प्रमुख अन्तर यही है कि अन्य कवि या तो काव्य कवि है और या केवल पण्डित। उनके काव्यो मे या तो केवल रस की सम्यक् अभिव्यञ्जना ही हो सकी है, या पुन शास्त्रीय नियमो का शुष्क प्रतिपादन है। काव्य शक्ति के दिव्य आलोक मे शास्त्रीय पथप्रदर्शन असम्भाव्य नही, तो एक दुरूह विषय अवश्य है। कवित्त्व तथा शास्त्रीयता के मणिकाञ्चन संयोग ने महाकवि भट्टि को संस्कृत के इतर कवियों की तुलना मे चरमपद प्रदान किया।[2]

---

1 सस्कृत कविदर्शन – पृष्ठ – 115 – भोलाशकर व्यास
2 राजशेखर कृत – काव्यमीमासा पाचवा अध्याय

कविवर भट्टि ने शास्त्रीय प्रतिपादन की अपनी अनुपम छटा बिखेर कर एक अप्रतिम लावण्य का ताना–बाना उपस्थित कर दिया है। कुछ सहृदय विचारक काव्य मे उपदेश तत्त्व या शास्त्रपक्ष के निराकरण मे आस्था रखते है। तथा केवल रसाभिव्यक्ति को काव्य का मौलिक प्रतिपाद्य विषय मानते है किन्तु उनका यह विचार काव्य के सिद्धान्तो के प्रतिकूल होने के कारण कोई महत्त्व नही रखता, केवल रसाभिव्यक्ति को काव्य का प्रतिपाद्य विषय मान लेने पर राजशेखर कृत पूर्वोक्त कवि विषयक वर्गीकरण से विरोध हो जाता है। तब तो शास्त्रकवि और काव्यकवि की सत्ता ही समोन्मूलित हो जाएगी। प्रत्युत राजशेखर ने उभय कवि को उक्त वर्गीकरण मे उत्तम स्थान प्रदान किया है। महाकवि भट्टि के कागजगत् मे पदार्पण करते समय सस्कृत–साहित्य मे प्राकृत भाषाओ का बोलबाला था। प्राकृत भाषाओ के विस्तार के कारण सकृतसाहित्य और व्याकरण दोनो को ठेस पहुँच रही थी। पाणिनि के सूत्रो को रट–रटकर पदो की रूपसिद्धि पर ध्यान देना पाणिनि के नियमो के अपवाद रूप या पूरक रूप वार्तिको तथा उनके पल्लवन पातञ्जलि महाभाष्य की कारिकाओ को याद कर उन पर शास्त्रार्थ करना हर एक के बस का काम नही था, पर सस्कृत साहित्य के महासागर मे प्रविष्टार्थ व्याकरण–ज्ञान के बिना काम नही चल सकता था। भट्टि ने इस बात को खूब पहचाना था, ब्राह्मण होने के नाते भट्टि को सस्कृत व्याकरण एव साहित्य की चिन्ता थी।[1]

भट्टिकाव्य में एक ओर भट्टिकवि की प्रतिभा का शत्–शत् भगिमाओ मे नूतन विलास है, दूसरी ओर उनके आलोक–सामान्य वैदुष्य भी।2

साहित्य काव्य का एक अङ्ग है। साहित्य मे ही किसी भी देश की रीतियो, अवस्थाओ, तथा प्रसिद्ध प्रणालियो का चित्रण होता है। साहित्य समाज का दर्पण है। यह कथन यथार्थ रूप से सत्य है, क्योंकि साहित्य मे समाज के रूप का अङ्कन होता है। सामाजिक रूढियो का प्रतिपालन होता है। मानवीय भावनाओ एव विशिष्ट सिद्धान्तो का समावेश होता है। समय के चक्रानुसार जैसे ही परिस्थितियॉ मोड लेती है, रूढियॉ

---

1 सस्कृत कवि दर्शन – डा0 भोलाशकर व्यास पृ0 – 36
2 शोधग्रन्थ – भट्टिकाव्य एक साहित्यिक अनुशीलन पृ0 – 137

करवट लेती है। रीति रिवाजों का परिवर्तन होता है। मानवीय मनोभावो मे परिवर्तन होता है, उसी प्रकार साहित्य भी युगान्तर पाकर परिवर्तित होता है तथा उसकी रूढियो एव स्थितियो मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो जाते है जिससे उसके स्वरूप का विकास होता है।

प्राय यह देखा जाता है कि कोई भी महापुरूष कवि या विद्वान् जिन सस्कारो मे प्रादुर्भूत होता है, जिस सांस्कृतिक परिवेश मे पलता है, जिस सभ्यता मे पोषित होता है, उस सम्प्रदाय, सस्कृति तथा परम्परा के प्रति वह अपनी कृतज्ञता स्वीकार करके भविष्य मे यथाशक्ति उसका पोषण करता है, तथा उसकी विभूतियो मे अपने मौलिक योगदान को समुज्जवलता प्रदान कर अपनी कृत्यकृत्यता की चरमकोटि पर देखने मे कुछ उठा नही रखता।

वैयाकरण पाणिनि के पूर्व सस्कृत भाषा का पूर्ण विकास हो चुका था। प्राकृत भाषाओ के परिप्रेक्ष्य मे आकर सस्कृत भाषा विकृत की दशा मे मोड ले रही थी, किन्तु पाणिनि के लिए यह बात आवश्यक थी कि उन्होने अष्टाध्यायी जैसे व्याकरण ग्रन्थ का प्रणयन कर डाला और सस्कृत भाषा को विकृति की ओर उन्मुख होने से रोका। वही अष्टाध्यायी बाद मे सस्कृत भाषा की नियामक बनी, जिसकी परम्परा आज भी चलती आ रही है।

भट्टिकाव्य (रावणवध) उपर्युक्त गुणो से युक्त एक अलौकिक कृति है। डा0 भोलाशकर व्यास, एवं पं0 बलदेव उपाध्याय इत्यादि विद्वान् भट्टिकाव्य के प्रणेता इन्ही भट्टि को ही स्वीकार करते है। सरलता से व्याकरण सिखाने के लिए निर्मित भट्टिकाव्य के लेखक महाकवि भट्टि के पूरे जीवन का चरित बताना नितान्त दुष्कर कार्य है। इस प्रकार पूर्वोक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि भट्टिकाव्य के कर्त्ता भट्टि ही है। डा0 वरदाचार्य ने भी इसी मत को स्वीकार किया है–[1]

'साहित्य समाज का दर्पण है' इस कथन की सर्वमान्य मौलिकता में मानव विज्ञान का शालीनतम संदेश निहित है। कवि या रचनाकार क्रान्तदर्शिता के मञ्जुल

---

1 'सस्कृत साहित्य का इतिहास' – डा0 वरदाचार्य

विरूद् से विभूषित होकर वर्तमान के मस्तिष्क, अतीत एव यथासाध्य अनागत का ललित समन्वय लेकर अपने शब्द रूपी प्रतिमानो को आगे बढाता है। कविवर भट्टि भी इस सिद्धान्त की पूर्ण स्वीकृति लेकर उतरे। जब भट्टि ने काव्यजगत् मे पदार्पण किया तो उनके सामने सस्कृत काव्य के तीन रूप प्रस्तुत थे– (1) कालिदास का रसमय काव्य (2) उपदेश प्रधान काव्य (3) अलङ्कृत काव्य।

भट्टि ने सस्कृत के अतीत का सूक्ष्म निरीक्षण किया, और काव्य रूप के उक्त त्रैविध्य मे समन्वय की स्वीकृति लेकर मध्यम मार्ग को प्रशस्त करना समीचीन समझा। भट्टि के लिये यह करना उचित भी था।[1] यदि कविता कामिनी बौद्ध उपदेशो का हृदयावर्जक बना सकती थी तो उसकी कमनीयता व्याकरणोपदेश को प्रश्रय प्रदान करने मे अपनी हास्यास्पद हार कैसे स्वीकार कर लेती। कहते है कि विश्वास ही फल का दाता है।[2] भट्टि की कविता–कामिनी की सहृदयता का पूर्ण परिचय प्राप्त हो चुका था। भूत ही भविष्य का पथ–निर्देश करता है। अतीत के गम्भीर एव पौन–पुण्य चितन ने भट्टि को प्रस्तुत विषय मे पूर्ण विश्वस्त कर दिया था। प्रकृत रचना मे, जैसा कि भट्टि ने स्वय निर्देश किया है उनका मूल उद्देश्य व्याकरण के शुद्ध प्रयोगो का प्रदर्शन ही है। किन्तु उसका यह तात्पर्य नही कि भट्टि मे कवित्त या दूसरे शब्दों मे हृदयपक्ष की कमी है। देखिए –

प्रभातवाताहतिकम्पिताकृति कुमुद्वतीरेणुपिशङ्गविग्रहम्।
निरास भृङ्गं कुपितेव पद्मिनी, न मानिनी ससहतेऽन्यसङ्गमम्।।[3]

"प्रात कालीन पवन से कम्पायमान शरीर वाली कमलिनी मानिनी नायिका की तरह मानो क्रोधित होकर कुमदिनी के पराग से पीले शरीर वाले भौरे को हटाती है, क्योकि स्वाभिमानिनी नायिका (स्त्री) दूसरी स्त्री के साथ अपने पति का ससर्ग सहन नही करती है।"

कविवर भट्टि ने कतिपय मौलिक सत्यो का प्रतिपादन किया है जो पाठक के हृदय एव मस्तिष्क पर अपना अमिट प्रभाव डालते है तथा जिनके द्वारा कवि के व्यक्तित्व की दिव्य झाकी मिलती है।

---

1 अभिनव साहित्य चिन्तन – डा0 भगीरथ दीक्षित – पृ0 स0 इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन
2 अश्वघोष कृत सौन्दरानन्द – भूमिका भाग।
3 भट्टिकाव्य 2/6

## भट्टि की शैली :–

सस्कृत–साहित्य की मध्ययुगीन कृति होने के कारण प्रकृत प्रबन्ध मे अलड्कृत महाकाव्यो की परम्परा का निर्वाह हुआ। परिणामत. इस महाकाव्य मे चित्रात्मक शैली का व्यापक प्रयोग आदर्शगत होता है। अलड्कृत महाकाव्यो में सौन्दर्य की आदर्श उद्भावना होने के कारण यथार्थ चित्रण वास्तविक 'मूल्याकन नही कर पाता। सस्कृत की कवि परम्परा सौन्दर्य का अतिशय उदात्त एव चामत्कारिक रूप कल्पना की महिमामण्डित आदर्श उद्भावना मे स्वीकार करती है। भट्टिकाव्य मे वस्तुओ के वस्तुगत चित्रण के साथ उनमे आदर्शीकृत चित्रात्मकता का अभिनव योगदान प्रदर्शित किया गया है। कतिपय वर्णनात्मक स्थलो के सन्दर्भ मे महाकवि भट्टि कुछ तटस्थ से दिखाई देते है। इसके दो प्रमुख कारण है – (1) व्याकरण विषयक सूत्रो को क्रमबद्ध उदाहरण प्रस्तुत करने का अप्रतिहत प्रयास (2) ऐतिहासिक कथानक को सक्षिप्त करने की तत्परता, किन्तु अधिकतर प्रसङ्गो मे जहॉ महाकवि भट्टि की लेखनी कथाप्रवाह से विराम लेकर अन्य स्थलो या दिशाओ मे प्रवृत्त होती है, वहॉ कवि की भव्य वर्णनाशक्ति एवं प्रकृष्ट काल्पनिक साहित्य का परिचय प्राप्त किया जा सकता है।

ग्रन्थ मे कविवर भट्टि ने कथानक के सक्षिप्तीकरण के प्रयास मे नगरवर्णन के प्रति अपनी उदासीन बुद्धि का परिचय दिया है। उन्होने केवल तीन नगरो अयोध्या, जनकपुरी, तथा लङ्का का वर्णन किया है। प्रारम्भिक सर्ग के अयोध्या वर्णन में कवि ने आदर्श चित्रात्मक शैली का अनुसरण किया है। देखिए –

निर्माणदक्षस्य समीहितेषु सीमेव पद्माऽऽसनकौशलस्य।<br>ऊर्ध्वस्फुरद्रत्नगभस्तिभिर्या स्थिताऽवहस्येव पुर मघोन ।।[1]

प्रस्तुत प्रबन्ध मे कविवर भट्टि ने जगह–जगह समुद्र के विविध रूपो का चित्रण किया है। सीतान्वेषण के समय हनुमान् इत्यादि वानरगण समुद्रतट पर उपस्थित होकर मणियो तथा रत्नो के आधारभूत समुद्र का अवलोकन करते है। यहॉ समुद्र के रमणीय रूप का चित्रण कवि की मौलिक उद्भावना को व्यक्त करने मे सहायक हुआ है,[2]

---

1 भट्टिकाव्य – 1/6

2 निकुञ्जे तस्य वर्तित्वा रम्ये प्रक्ष्वेदिता परम्।<br>मणिरत्नाऽधिशयित प्रत्युदैक्षन्त तोयधिम्।। भट्टिकाव्य 7/103

भट्टि ने सागर वर्णन के चित्रण मे अधिकतर अप्रस्तुत विधान का ही आश्रय लिया है तथा समुद्र की स्वाभाविक प्रकृति के अङ्कन मे मौलिक उत्प्रेक्षाए प्रस्तुत की है। निम्नश्लोको को देखकर यह विदित होता है कि कवि ने प्रकृति के विभिन्न कार्यकलापो मे मानवीकरण प्रक्रिया का आरोप व्यञ्जित किया है– दशम सर्ग के समुद्र वर्णन मे सागर की मणिमयता व्यञ्जित है।

पृथुगुरूमणिशुक्तिगर्भभासा, ग्लपित रसातल सभृताऽन्धकारम्।
उपहत रविरश्मिवृत्ति मुच्चै, प्रलघुपरिप्लवमानवज्रजालै ।। भट्टि – 10/53

"राम और लक्ष्मण के साथ वानरो की सेना बडी और अपरिच्छेद्य मोतियो से युक्त सीपियो के गर्भ की कान्ति से पाताल मे बढे हुए अन्धकार को नष्ट करने वाले और ऊपर छोटे–छोटे तैरने वाले हीरो के समूह से सूर्य किरण को ताडित करने वाले समुद्र को महेन्द्र पर्वत के कुञ्ज से (अर्थात् उसे छोडकर) चली गयी।"

इसके अलावा भट्टिकाव्य मे पर्वतो का वर्णन भी कई स्थलो पर हुआ है यद्यपि यह उल्लेखनीय है कि सन्दर्भो मे कवि रूढिवादी परम्परा का अन्धा–आराधक बनकर सर्वत्र अन्धाधुध वर्णनात्मक चातुर्य ही प्रदर्शित नही करने लगता।[1] वह प्रधान इतिवृत्त के औचित्य के सम्बन्ध मे भी पूर्णतया सावधान है। मलयपर्वत के विषय मे मानो आकाश का परिमाण करने के लिए उन्नत हुआ सा मात्र कहकर कवि आगे बढ जाता है।[2] इसी प्रकार दो–तीन श्लोको मे कवि ऋष्यमूक का रोमाचकारी वर्णन करके कवि की लेखनी प्रधान इतिवृत्त के सन्दर्भ मे प्रवृत्त हो जाती है, किन्तु अवसर–प्राप्त महेन्द्र तथा सुबेल आदि चित्रण मे कवि की लेखनी विराम लेना आवश्यक समझती है–

स्थितमिव परिरक्षितु समन्तादुदधिजलौध परिप्लवाद् धरित्रीम्।
गगनतलवसुन्धराऽन्तराले, जलनिधिवेगसह प्रसार्य देहम्।। भट्टि0 10/45

कवि का प्रकृति के साथ जितना सामरस्य होता है, इतना किसी और श्रेणी के मानव का नही होता।[3]

---

1 अमर्षितमिव घ्नन्त तटाऽद्रीन सलिलोर्मिमि ।
श्रिया समग्र द्युतित मदेनेव प्रलोठितम्।। भट्टिकाव्य– 7/104

2 पूत शीतैर्नभस्वद्भिर्ग्रन्थित्वेव स्थित रूच ।
गुम्फित्वेव निरस्यन्त तरङ्गान् सर्वतो मुहु ।। भट्टिकाव्य– 7/105

3. स शत्रुलावौ मन्वानो राघवौ मलय गिरिम्।
जगाम सपरीवारो व्योममायमिवोत्थितम्।। भट्टि – 6/88

प्रकृति के साथ कवि का यह सामरस्य प्रकृति के विभिन्न रूपो की मार्मिक अभिव्यक्तियो मे सहज ही प्रतिविम्बित होता रहता है। ऐसा ही चित्रण भट्टि की कविताओ मे परिलक्षित होता है। द्वितीय सर्ग की सौन्दर्यमयी प्रकृति षष्ठ सर्ग मे विरही राम के लिए पीडा हो जाती दिखाई गयी है। इस प्रकार कवि ने प्रकृति के प्रिय एव अप्रिय दोनो पक्षो के प्रति रूचि प्रदर्शित की है।

"परिभावीणि तराणा पश्य मन्थीनि चेतसाम्।
उद्भासीनि जलेजानि दुन्वन्त्यदयित जनम्।।" भट्टिकाव्य – 6/75

"राम लक्ष्मण से कह रहे है कि हे लक्ष्मण! ताराओ को तिरस्कृत करने वाले, वियोगियो के चित्त को मन्थन करने वाले तथा विकसित हुए कमल, प्रियाविरहित व्यक्ति को पीडित करते है।

कविवर भट्टि का कहना है कि प्रकृति मानव की सहचरी होती है। उसका मानव के साथ सहानुभूति का तादात्म्य रहता है। हतोत्साहित मानव मे आशा का सञ्चार करती है। महेन्द्र ने अपनी कतिपय विशेषताओ मे सीता की कान्ति का प्रतिफलन प्रस्तुत करके राम को भविष्यम्भावी प्रियमिलन का सङ्केत प्रस्तुत किया ऐसे आदर्श चित्रण के अवसर पर अपनी भावमयी भावनात्मक उडान मे कवि पाठक को प्रस्तुत विषय से अपहृत कर कल्पना के साम्राज्य मे पहुँचा देता है। जिससे पाठक पुन प्रस्तुत की ओर लौटना ही नही चाहता। एक समासोक्ति की महनीयता देखें–

"महेन्द्र पर्वत कामार्त की तरह रत्नमेखला रूप गृहों से युक्त विस्तीर्ण उत्कृष्ट शोभा से सम्पन्न तथा जिसमें वस्त्र सदृश मेघ हट गये है, ऐसे आकाश के रमणीय नितम्ब प्रदेश को अपने हस्तरूप शिष्यो द्वारा स्पर्श सा कर रहा था। रमणीयता की इस विराट् उद्भावना मे प्राकृतिक क्रियाकलापो मे मानवीय अनुभावो का आरोप व्यञ्जित है।

इन सभी वर्णनो को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उक्तचित्रण अलङ्कृत महाकाव्यो की सामान्य विशेषता है जिनका यथावसर सन्निवेश किया गया है। भट्टिकाव्य का द्वितीय सर्ग 'शरदृऋतु' के वर्णन से प्रारम्भ होता है। शरद्काल का यह मनोहर वर्णन महाकाव्य की घटनाओ की पृष्ठभूमि का कार्य करता है। शरदृऋतु एव गोप–गोपिकाओ के सुन्दर वर्णन के साथ ही दुष्टराक्षसो का वध इत्यादि प्रसङ्ग आगे

आने वाली घटनाओ के लिए मङ्गलमय मार्ग प्रशस्त करते है। महाकवि भट्टि जैसा कि इनके बारे मे पहले ही कहा जा चुका है कि आदर्श कल्पनाओ के कवि है। अतएव उक्त प्रसङ्ग मे भी वे विशेषत आदर्श के ही सन्दर्भ रहे है। अयोध्यापुरी से निकलकर राम रमणीय शरदृऋतु का दर्शन करते है–

तरङ्गसङ्गाच्चपलै पलाशैर्ज्वालाश्रियं साऽतिशया दधन्ति।
सधूमदीप्ताऽग्निरूचीनि रेजुस्ताम्रोतापलान्याकुलषट्पदानि।।[1]

"पानी की तरङ्गों के लगने (के कारण) चचल पत्तो से अत्यधिक प्रज्जवलित अग्नि की ज्वालाओ की समानता को धारण करने वाले एव घूमते हुए भ्रमरो से युक्त होने के कारण धूमयुक्त जलती हुई अग्नि की तरह कान्ति वाले (लगते हुए) रक्तकमल सुशोभित हुए"।

महाकवि भट्टि ने प्रकृति के जड रूप का ही चित्रण नही किया, बल्कि वे उसमे चेतन रूप की कल्पना कर उसको सजीव रूप मे लाकर उसका वर्णन करते है।

"विरही राम को गुञ्जन करते हुए भ्रमर गायको के समान प्रतीत होते है और हिलती हुई शाखाओ वाले वृक्ष नर्तको की तरह। यही नही, राम पशु–पक्षियो के शावको से सीता का पता भी पूछते हुए दिखाये गये है।"[2]

कवि भट्टि के प्रकृति चित्रणो से उनकी सूक्ष्मपर्यवेक्षण शक्ति और उर्वर कल्पनाओ का पता चलता है।[3] द्वितीय तथा एकादश सर्ग का प्रकृति चित्रण हृदय को लुभाने वाला है। साथ ही इस वर्णन से कवि की कमनीय कल्पना का चरमोत्कर्ष देखने को मिलता है।

महाकवि भट्टि के महाकाव्य मे अप्रस्तुतविधान के नियोजन मे अलङ्कारो का अप्रतिम योगदान रहा। भट्टि ने पृथक् रूप मे भी बहुप्रयुक्त शब्दालङ्कारो और अर्थालङ्कारों

---

1 भट्टिकाव्य – 2/2
2 वाताऽऽहतिचलच्छाखा नर्तका इव शाखिन।
दु सहा हा! परिक्षिप्ता क्वणद्भिरलिगाथकै।। भट्टि – 6/85
3 स्वपोषमपुषद्युष्मान्या, पक्षिमृगशावका।
अद्युतच्चेन्दुना सार्धं ता प्रब्रूत गतायत।। भट्टि – 6/26

के भेदोपभेदो के उदाहरण प्रस्तुत किये। दशम सर्ग का यमकमय वर्णन आलङ्कारिक दृष्टि से जितना महत्त्व रखता है, कवित्व की दृष्टि से उतना नही। आयासपूर्वक अलङ्कारो की योजना करके कवि ने इन वर्णनो मे कृत्रिमता का समावेश कर दिया है। कुछ वर्णनो मे स्वाभाविकता का भी पुट विद्यमान है।

महाकवि भट्टि ने अपने इस ग्रन्थ का निर्माण कर उस महाकाव्य परम्परा का शुभारम्भ कर दिया जिसमे काव्यो द्वारा रामायण के कठिन नियमो का प्रदर्शन करना ही कवियो का लक्ष्य रहा है। अधिकाशत अलङ्कार ग्रन्थो 'मे दृष्टान्त रूप मे प्रयुक्त एकावली अलङ्कार का प्रसिद्ध उदाहरण भी द्वितीय सर्ग का एक श्लोक है।

न तज्जलं यन्न सुचारूपङ्कज न पङ्कज तत् यदलीनषट्पदम्।
न षट्पदोऽसौ न जुगुञ्ज य कल न गुञ्जित तन्नजहार यन्मन ।।     भट्टि0–2/19

"शरत्काल मे ऐसा कोई जल नही था, जहॉ सुन्दर कमल न सुशोभित हो रहे हो, ऐसा कोई कमल नही था, जिसमे भौंरे न छिपे हुए हो, ऐसा कोई भौरा न था, जो मधुर गुञ्जन नही कर रहा था, और ऐसी कोई गुञ्जन भी न थी, जो मन नही हरती थी"। ऐसा ही एक उदाहरण निश्चयान्त सन्देह का देखिए –

गिरेर्नितम्बे मरूता विभिन तोयाऽवशेषेण हिमाभमभ्रम्।
सरिन्मुखाऽभ्युच्चयमादधान शैलाऽधिपस्याऽनुचकार लयगीत.।।     भट्टि0–2/8

'पर्वत के मध्यभाग मे हवा के कारण विभिन्न रूप मे वह जाने से जो जल थोडा रह गयाहै वह बर्फ की तरह सफेद और नदीप्रवाह को बढाने वाला बादल हिमालय की बराबरी का अनुकरण किया।

इसके अतिरिक्त भट्टि के काव्य मे सुन्दर उत्प्रेक्षाओ का भी अभाव नही है। कवि अपनी नवीन कल्पना के द्वारा सुन्दर–सुन्दर उत्प्रेक्षाओ मे जान डाल देता है– ऐसा ही एक उदाहरण देखिए–

दुरुत्तरे पङ्क इवान्धकारे भग्न जगत् सन्ततरश्मिरज्जु ।
प्रनष्टमूर्तिप्रविभागमुद्यन् प्रतयुज्जहारेव ततो विवस्वान्।।     भट्टि0–11/20

इस प्रकार प्रकृति चित्रण के साथ–साथ भट्टि ने वस्तुओं के आदर्श एव यथार्थ रूपो को भी उपस्थित किया है। यथार्थ के रूपाङ्कन मे भी कवि की स्वाभावोक्ति उत्तम

कोटि की बन पडी है। सातवे सर्ग का शरदवर्णन यथार्थ एव स्वाभाविक रूप से बन पडा है।

अथोपशरदेऽपश्यत् क्रौञ्चाना चेष्टनै कुलै ।
उत्कण्ठावर्धनै शुभ्र रवणैरम्वर ततम्।। भट्टिकाव्य–7/14

वर्षा के बाद राम शरदऋतु के समीप, चेष्टाशील, उत्कण्ठावर्धक शब्दायमान क्रौञ्च पक्षियो के समूहो से व्याप्त स्वच्छ आकाश को देखा।

कविवर भट्टि के काव्यो में यत्र–तत्र उक्तिवैचित्र्य भी देखने को मिलता है। वैसे भी भट्टि बकृत्वकला में बहुत निपुण थे।[1]

रामोऽपि दाराऽऽहरणेन तप्तो, वय हतैर्बन्धुभिरात्मतुल्यैः।
तप्तस्य तप्तेन यथा यसो न. सन्धि परेणास्तु, विमुञ्च सीताम्।।[2]

"राम अपनी प्रिया का अपहरण हो जाने के कारण तप्त है। राक्षस लोग भी हनुमान द्वारा मारे गये। अक्षकुमार आदि अपने बान्धवो के शोक से तप्त है। फिर सन्तप्त राम के साथ सन्तप्त रावण की सन्धि क्यो न हो जाये? तपे हुए होने पर तो जड लोहे के टुकडे भी आपस मे जुड जाते है, फिर चेतन मानव हृदयो की तो बात ही क्या? कवि का यह उक्तिवैचित्र्य पाठक एव लोकमानस के मस्तिष्क को सीधा प्रभावित करता है। महाकविवर भट्टि ने दशम सर्ग मे जो यमक के 20 प्रभेद उपभेद बताये उसका तो शास्त्रीय दृष्टि से वेहद महत्त्व है। निम्नलिखित पद्य मे भट्टि ने सर्वयमक का चामत्कारिक वर्णन कितने अलौकिक ढग से किया है–

"बभौ मरूत्वान् विकृत समुद्रो, बभौ मरूत्वान् विकृत समुद्र ।
बभौ मरूत्वान् विकृत. समुद्रो, बभौ मरूत्वान् विकृत समुद्र ।"[3]

इस प्रकार के वैचित्र्य प्रधान अलङ्कारो के सम्बन्ध मे डा0 कीथ ने कहा है – कि "अलङ्कारो को उदाहृत करने का कार्य कवि की इस रचना मे आनन्द का आस्वाद लेने वाले टीकाकारो के अतिरिक्त सबके लिए आयासप्रद है।"[4]

---

1 भट्टिकाव्य – 10/69
2 भट्टिकाव्य – 12/40
3 भट्टिकाव्य – 10/19
4 डा0 कीथ – सस्कृत साहित्य का इतिहास' हिन्दी सस्करण पृ0 – 145

त्रयोदश सर्ग का एक ऐसा उदाहरण भट्टि ने सङ्केत रूप मे दिया है जिसको सस्कृत और प्राकृत मे समान रूप से पढा जा सकता है–

> चञ्चलतरूहरिणगण बहुकुसमाबन्धबद्धरामावासम्।
> हरिपल्लवतरूजाल तुगेरूसमिद्धतरूवरहिमच्छायम्।। भट्टिकाव्य–13/6

"समुद्र चञ्चल वानरो से युक्त अनेक पुष्पो के एक दूसरे से गुथ जाने के कारण निर्मित रामचन्द्र जी के निवास स्थान से अन्वित्, पिग्लवर्ण किसलय वाले वृक्ष समूह से सम्बद्ध उन्नत वृक्षो से शीतल छाया वाले जल तीर को प्राप्त हुआ।"

वैयाकरण होते हुए भी भट्टि व्याकरण आदि शास्त्रो से सम्बन्धित उपमाए अधिक नही देते। क्योकि भट्टि भाषा के आचार्य है, तथा व्याकरण के महान् पण्डित है। यद्यपि उन्होने अपने प्रबन्ध के सभी सर्गों मे यथा प्रथम, द्वितीय, दशम, एकादश, द्वादश तथा त्रयोदश सर्ग मे प्रसङ्गानुकूल शब्दावली का प्रयोग किया। साथ ही स्वाभाविक पुट देकर विविध अलङ्कारो का भी प्रयोग किया। लेकिन दशम सर्ग के वर्णन को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होने अलङ्कार निरूपण की दृष्टि से इस सर्ग का प्रणयन किया है, जैसा कि मल्लिनाथ ने स्वय कहा है–[1]

कविवर भट्टि ने शब्दालङ्कारो मे अनुप्रास, यमक तथा भाषासम को स्वीकार किया है। शब्द श्लेष को प्रस्तुत प्रबन्ध मे अवसर नही मिला है। यह अलग बात है कि इसके उदाहरण स्वाभाविक रूप से कही उपलब्ध हो जाय, किन्तु कवि को यह अभीष्ट नही है। दशम सर्ग का प्रथम श्लोक वृत्यानुप्रास का उदाहरण है,[2] द्वितीय श्लोक युक्पादयमक अलङ्कार का उदाहरण है एव तृतीय श्लोक पादान्त यमक का उदाहरण है–

> "रणपण्डितोऽग्रयविवुधाऽरिपुरे,
> कलहं स राममहित कृतवान्।
> ज्वलदग्नि रावणगृह च बलात्
> कलहसराममहित· कृतवान्।।"[3]

---

1 "शब्दलक्षण प्रधानेऽप्यस्मिन् काव्ये।

2 अथ स वल्कदुकूलकुथाऽऽदिभि, परिगतो ज्वलदुद्धनबालधि।
उदपतद् दिवमाकुललोचनैर्नृरिपुभि सभयैरभिवीक्षित।। भट्टि– 10/1

3 भट्टिकाव्य – 10/2

"युद्धकुशल, रामचन्द्र जी से सत्कृत रावण के शत्रु और विशिष्ट कार्य की अपेक्षा करने वाले हनुमान जी ने रावण की नगरी लका मे बलपूर्वक सग्राम किया तथा कदम्ब हसो की क्रीडा के साधन रावण के भवन मे अग्नि लगा दी।"

हम यह कह सकते है कि भट्टि की शैली मे प्रवाह का अभाव है। अधिकतर स्थलो मे काव्योचित सरस शैली के दर्शन नही होते। कविवर भट्टि को लम्बे–लम्बे समस्त पदो का प्रयोग करने का मोह नही है। अनुष्टुप जैसे छोटे छन्द का बहुलता से प्रयोग होने के कारण भट्टि की काव्य शैली सरल और सुबोध तो हो गयी है, लेकिन ऐसे स्थलो पर न तो काव्य के भावपक्ष को हम विकसित रूप मे पाते है, और न अभिव्यक्त पक्ष को। भट्टि के काव्य मे उनकी शैली की जो नवीनता तथा सरसता दृष्टिगोचर होती है वह उनकी काव्य प्रतिभा की ओर सङ्केत करती है। उसमे जो नीरसता तथा प्रवाहावरोधकता दृष्टिगोचर होती है उसमें हम निसकोच कवि के उपयोगितावादी दृष्टिकोण को ही एकमात्र कारण मान सकते है।[1]

यद्यपि कविवर का लक्ष्य व्याकरण शिक्षण है और उन्होंने उसकी क्रमिक शिक्षा अपने महाकाव्य (रावणवध मे) यथा स्थिति सन्निविष्ट भी किया है, उनमे हृदयपक्ष की न्यूनता नही है। भट्टि मे ही वह समर्थ विद्यमान था जिसने व्याकरण जैसे विषय को स्वीकार करते हुए एक प्रबन्ध काव्य की रचना कर डाला और व्याकरण के नवीन प्रयोगो के द्वारा सम्यक् बोधन की परिपाटी अपनाई गयी।[2] यद्यपि आलोचकों ने उस पर कृत्रिमता, आडम्बर, जटिलता और नीरसता के अनेक आरोप लगाये है, परन्तु ये आरोप वस्तुस्थिति से दूर है। भट्टिकाव्य के अध्ययन से यह विदित होता है कि भट्टिकाव्य कही व्याकरण के दुरूह प्रयोगो से शुष्क हो गया है तो दूसरे स्थान पर वह अत्यन्त सरसता से भी परिपूर्ण कर दिया गया है। यदि कही लङ् और लिट् के प्रयोग भाषा मे नीरसता लाते हुए देखे जाते है तो भाषा–सम के प्रयोग सरस कविता का रसास्वाद कराते है। यदि कही व्याकरण की जटिलता से मन ऊबता है तो अन्यत्र अलङ्कारो की सुन्दर झङ्कार से पाठक आह्लादित हो उठता है। वे नरसिंहवतार के तुल्य खर और कोमल दोनो है।

---

1 सस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास – राधावल्लभ त्रिपाठी
2 सस्कृत साहित्य का इतिहास – कपिलदेव द्विवेदी

## भट्टिकाव्य व्याकरण शास्त्र–काव्य है–

सस्कृत के कतिपय मूर्धन्य आचार्यो ने 'भट्टिकाव्य' अथवा 'रावणवध' को 'शास्त्रकाव्य' की सज्ञा से विभूषित कियाहै। 'व्यड्ग्यकार क्षेमेन्द्र' ने अपने सुवृत्ततिलक ग्रन्थ मे साफ–साफ शब्दो मे भट्टिकाव्य को 'शास्त्रकाव्य' की सज्ञा दी है।[1] प्रसिद्ध टीकाकर मल्लिनाथ ने तो इसे 'उदाहरणकाव्य' की सज्ञा प्रदान की है। सामान्यत ऐसा प्रतीत होता है कि भट्टि का सम्मान व्याकरण के तत्त्वज्ञ के रूप मे भी किया जाता है। कविवर भट्टि के व्याकरणात्मक प्रयोगो मे जहॉ पर प्रकटत पाणिनीय नियमो का उल्लड्घन होता है वहॉ भट्टोजिदीक्षित 'कथ तर्हिभट्टि' कहकर उनका प्रतिपादन किया है।

"सोऽध्यैष्ट वेदास्त्रिदशानयष्ट, पितृनपारी त्सममस्त बन्धून्।
व्यजेष्ट षड्वर्गमरस्त नीतौ, समूलघात न्यवधीदरीश्च।।" भट्टिकाव्य 1/2

"वे दशरथ वेदो का पाठ, देवताओ का यजन, पितरो का तर्पण तथा बान्धवो का आदर करते थे। उन्होने काम क्रोधादि षड्रिपुओ को जीत लिया था, वे नीति मे दिलचस्पी लेते थे और उन्होने शत्रुओ को जड से हटा दिया था। (मार डाला था)"

इस पद्य मे भट्टि ने अध्यैष्ट, अयष्ट, अताप्सीत्, सममस्त, व्यजेष्ट, अरस्त, न्यवधीत् सभी क्रिया रूपों मे सामान्य भूते लुङ्ग का प्रयोग किया है। साथ ही पहली तथा सातवी क्रिया के अतिरिक्त बाकी पॉच प्रयोग आत्मनेपद के है। सभी प्रयोग प्रथम पुरूष एकवचन के है। यही नही √तृप् धातु के लुङ्ग रूप मे सिच् के कारण अताप्सीत् रूप बनता है। इसी तरह √मन् तथा √रम् धातु के लुङ्ग में धातु तथा तिङ् प्रत्यय के बीच मे 'इ' का प्रयोग न होने से 'व्' तथा 'म्' दोनो ध्वनियॉ अनुस्वार बन जाती हैं।

सिद्धान्त–कौमुदी तथा मनोरमा मे भट्टिकाव्य के अनेक अश इस प्रकार उद्धृत किये गये है। इस ढंग के सदर्भो मे कुछ निम्नाकित है–

क= 'तृप प्रीणने–प्रीणन तृप्तिस्तर्पणा च'।
नाग्नि स्तृप्यति काष्ठानाम् पितृनताप्सीदिति
भट्टि । इत्युमयत्र दर्शनात्।

सिद्धान्तकौमुदी – पृ0 236

---

1 सुवृत्ततिलक – 3/4

उक्त स्थल के अतिरिक्त भट्टिकाव्य के और भी अनेक अश सिद्धान्त कौमुदी तथा मनोरमा मे विद्यमान है जिनका भट्टि ने यथावसर समाधान प्रस्तुत किया है। टीकाकारो की भट्टिकाव्य के प्रयोगो के प्रति इस प्रकार की प्रतिष्ठा भट्टि के महान् सम्मान की परिचायका है। शास्त्रीय दृष्टि से भट्टिकाव्य को चार भागो मे बाटा गया है।

(1) प्रकीर्णकाण्ड (2) अधिकारकाण्ड

(3) प्रसन्नकाण्ड, (4) तिङ्न्तकाण्ड

**1. प्रकीर्णकाण्ड** :— इस काण्ड का विस्तार प्रथम सर्ग से लेकर पञ्चम सर्ग तक है।[1] इसमे पाणिनीय सूत्रों के उदाहरण प्रकीर्ण रूप मे उद्धृत है तथा इस प्रक्रिया मे पाणिनि—विहित तथा स्वकृत किसी भी प्रकार की योजना का निर्वाह नहीं किया गया है। भट्टि के प्रयत्न का स्वरूप तथा उनकी योजना का उपक्रम भट्टिकाव्य से प्रस्तुत कतिपय उदाहरणों द्वारा अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। प्रकीर्ण काण्ड मे उन्होने विविध सर्ग के प्रयोगों को अनियमित ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।[2]

प्रथम सर्ग के 22वे श्लोक तक कृत् तथा तद्धित प्रत्ययान्त शब्दो के साथ—साथ लुङ्लकार की विविध क्रियाओ के प्रयोग प्रदर्शित किये गये है।[3] प्रकीर्णकाण्ड के पद्यो मे भट्टि की कविता निश्चित व्याकरण—नियम योजना लेकर नही आती, किन्तु वहॉ भी भट्टि में कई ऐसे प्रयोग देखे जा सकते है, जो किन्हीं कठिन रूपो का प्रकृति—प्रत्यय का सङ्केत करते है।

"प्रयास्यतः पुण्यवनाय जिष्णो रामस्य रोचिष्णुमुखस्य धृष्णुः।" भट्टि0 — 1/25

इस पद्यार्थ मे 'जिष्णोः' (जिष्णु का षष्ठी एक वचन) रोचिष्णु, धृष्णु. रूप क्रमशः √जि, √रूच्, √धृष् धातुओं के स्नु, इष्णुच् तथा क्नु प्रत्यय से बने है। इन तीनो का प्रयोग प्रायः ताच्छील्य—अर्थ मे होता है।

---

1 भट्टिकाव्य — 5/32 पर मल्लिनाथ की टीका

2 भट्टिकाव्य — 16/5 पर मल्लिनाथ की टीका

3 अभून्नृपो विबुधसख परंतपः, श्रुतान्वितो दशरथदूत्युदाहृत.।
गणैर्वर भुवनहितच्छलेन यं सनातन. पितरमुपागमत् स्वयम् ।। भट्टिकाव्य 1/1

भट्टि ने द्वितीय सर्ग मे भी ऐसे कई उदाहरण प्रस्तुत किये जो व्याकरण की दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते है।

"लताऽनुपात कुसुमान्यगृह्णात् स नद्यवस्कन्दमुपास्पृशच्च।
कुतूहलाच्चारुशिलोपर्वश काकुत्स्थ ईषत्स्मयमान आस्त।।"[1]

इस पद्य के लतानुपात, नद्यवस्कन्दं, तथा शिलोपवेश के प्रयोग भट्टि ने खासतौर पर किये है। ये प्रयोग भी व्याकरण के नियमो के प्रदर्शन की प्रवृत्ति के परिचायक है। इनके द्वारा भट्टि इस बात का सङ्केत करना चाहते है कि विश्, पद् (पत्), स्कन्द् आदि धातुओ के वीप्सार्थ मे णमुल् प्रत्यय होता है।

इतना ही नही भट्टि ने चतुर्थ सर्ग के श्लोक उन्नीस,[2] बीस, इक्कीस[3], तेइस में खच् और खश् प्रत्यय के योग प्रदर्शित किये गये है। पचम सर्ग के प्रथम श्लोको में इष्णच प्रत्यय के पॉच प्रयोग एक साथ रखे गये है– ट, और आम् प्रत्ययो के प्रयोग भी इसी सर्ग मे मिलते है।

निराकरिष्णू वर्तिष्णू वर्धिष्णू परितो रणम्।
उत्पतिष्णू सहिष्णू च चरेतु खरदूषणौ।। भट्टिकाव्य 5/1

**2. अधिकारकाण्ड** – अधिकारकाण्ड, पञ्चमसर्ग के 104 श्लोक से आरम्भ होता है, तथा इसका विस्तार ग्रन्थ के नवम सर्ग तक प्रपञ्चित है। व्याकरण के नियमो का अधिक स्पष्टता के साथ प्रतिपादन होने के कारण यह काण्ड अधिकार काण्ड के नाम से अभिहित किया गया है। यद्यपि आधार रूप से पाणिनि–विहित एक श्रेणी का आश्रय लिया गया है, फिर भी बीच–बीच मे प्रकीर्णक उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये है। पाचवे सर्ग के 104 श्लोक से छठे सर्ग के चतुर्थ श्लोक तक आमधिकार का विस्तार है। इस सन्दर्भ में अष्टाध्यायी के क्रम से आमधिकार के सूत्रो के निदर्शन प्रस्तुत है। उदाहरणार्थ, पचमसर्ग के 104, 105 श्लोको मे 'कास्प्रत्ययादाममन्त्रेलिटि' 3/1/35 सूत्र

---

1 भट्टिकाव्य – 2/11

2 प्राव्य चञ्चूर्यमाणाऽरसौ पतीयन्ती रघूत्तमम्।
अनुका प्रार्थयाञ्चक्रे प्रियाकर्तुं प्रियवदा।। भट्टि0 4/19

3 तामुवाच स गौष्ठीने वने स्त्रीपुसभीषणे।
ससूर्यम्पश्यरूपा त्व किमभीरूररार्यसे।। भट्टि0 /21

के उदाहरण उपस्थित किये गये है। श्लोक सख्या 106 मे 'इजादेशश्च गुरूमतोऽनृच्छ', 3/1/26 तथा दयायासश्च, 3/1/37 सूत्रो के निदर्शन प्रस्तुत है। छठे सर्ग के प्रथम श्लोक में 'उपविदजागृम्योऽन्यतरस्याम्' 3/1/38 सूत्र का विलास है तो द्वितीय श्लोक मे 'उषविद——' के साथ—साथ 'भीह्री भृहुवाश्लुवच्च' 3/1/39 सूत्र का विभव प्रदर्शित किया गया है। 'कुचानुप्रयुज्यते लिटि', 3/1/40 सूत्र के तो अनेक उदाहरण इस प्रसङ्ग मे उपलब्ध होते हैं। छठे सर्ग के चतुर्थ श्लोक में विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम् 3/1/41 का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। उसके अनन्तर छठे सर्ग के 5 से 7 श्लोक तक प्रकीर्णक उदाहरण प्रस्तुत है। 137 से 146 तक अनुपपदाधिकार है। सप्तम सर्ग मे 1 से 27 श्लोक तक ताच्छीलिकादि प्रत्ययाऽधिकार। अष्टम् सर्ग में 1 से 69 श्लोक तक आत्मनेपद प्रक्रिया को सविस्तर प्रस्तुत किया गया है। 70 से 84 तक कारकाधिकार के अन्तर्गत अपादान, सम्प्रदान, कर्म, करण, अधिकरण, कारक तथा षष्ठी के प्रयोगों का प्रकाशन हुआ है। नवम् सर्ग मे 1 से 7 श्लोक तक फुटकल प्रयोग है। और इसी प्रकार सर्ग के अन्त तक प्रकीर्णक के प्रयोग है।

**3. प्रसन्नकाण्ड** – भट्टिकाव्य का दशम सर्ग से लेकर त्रयोदश सर्ग तक का अंश प्रसन्नकाण्ड कहलाता है। यह काण्ड व्याकारण की दृष्टि से नही लिखा गया है। प्रस्तुत इस अश मे साहित्यशास्त्र के कतिपय प्रमुख अङ्गो का विलास प्रस्तुत किया गया है। इसमे दशम सर्ग मे अलङ्कार, एकादश मे माधुर्यगुण, द्वादश मे भाविक, तथा त्रयोदश मे 'भाषासम' के प्रयोग प्रदर्शित किये गये है।

**4. तिङन्तकाण्ड** :– इस काण्ड का विस्तार चतुर्दश सर्ग से 22वे सर्ग तक है। इस काण्ड में वेद मे प्रयुक्त लेट्लकार को छोडकर शेष 9 लकारों के प्रयोग प्रस्तुत किये गये है। चौदहवें सर्ग में लिट् विलास है। पञ्चदश मे लुङ्, सप्तदश मे लङ्, अष्टादश में लट्, उन्नीसवें में लिङ्, तथा 22वें सर्ग के 24वे श्लोक तक लृट् लकार के प्रयोग प्रकाशित किये गये हैं और इसके अनन्तर प्रकीर्णक उदाहरण प्रस्तुत है।

उक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि व्याकरण विषयक—प्रयोगो को उपस्थित करने मे उनका उद्देश्य पाणिनि के व्याकरण—सम्मत प्रयोग प्रस्तुत करना ही था, किन्तु भट्टिकाव्य मे कुछ ऐसे भी प्रयोग उपलब्ध होते है, जिनकी व्युत्पत्ति पाणिनीय व्याकरण

से नही सम्पन्न की जा सकती। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे प्रयोग है, जिन्हे अधिकाश लोग तो प्रमाद मान लेते है, तथा कुछ अन्य विद्वान इतस्तत खीच तान कर उन्हे पाणिनीय बनाने का प्रयास करते है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भट्टिकाव्य मे कविवर भट्टि ने वर्तमान ऐसे प्रयोगो को भी प्रस्तुत किया है, जो पाणिनीय व्याकरण की दृष्टि से सगत न होते हुए भी उनकी समसामयिक भाषा मे प्रयोगक्षम थे।

पाणिनि के व्याकरण–सम्मत प्रयोगे को प्रस्तुत करने का लक्ष्य सामने रखकर भी भट्टि का यह लक्ष्य कदापि नही था कि अष्टाध्यायी के क्रम को स्वीकार करके सिलसिलेवार प्रत्येक नियम का निदर्शन उपस्थित किया जाय। सम्भवत. महाकाव्य की कथावस्तु की मर्यादा को ध्यान मे रखते हुए भट्टि ने प्रकीर्ण काण्ड मे स्वतंत्रता पूर्वक सुविधानुसार विविध प्रयोगो को प्रस्तुत किया।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कविवर भट्टिकाव्य की उस परम्परा के अनुयायी है जिसमें कवित्व और पाण्डित्य सामानान्तर रूप से चलते है। भट्टि की बहुज्ञता का परिचय उनके ग्रन्थ के अध्ययनोपरान्त ही विदित हो जाता है। कवित्व और पाण्डित्य का विलक्षण समन्वय उनके काव्य मे चार चॉद लगा देता है। भट्टि ने स्वय कहा है–

> व्याख्या–गम्यमिद काव्यमुत्सव सुधियामलम्।
> हतादुर्मेधसश्चाऽस्मिन् विद्वत्प्रियतया मया।।[1]

अर्थात् मेरी यह रचना व्याकरण के ज्ञान से ही पाठको के लिए नहीं है। बल्कि मेरा यह काव्य मेधावी विद्वान् के मनोविनोद के लिए तथा सुबोध छात्रो को प्रायोगिक पद्धति से व्याकरण के दुरूह नियमो से अवगत कराने के लिए रचा गया है।

भट्टि वस्तुत. एक पण्डित है। सम्पूर्ण काव्य पर उनका पाण्डित्य छाया हुआ है। यद्यपि कवि भट्टि, कालिदास की भाति रसवादी नही है, न ही अश्वघोष की तरह दार्शनिक अथवा धर्मोपदेशक। वे पूर्णतया व्याकरण दुरूह काव्य की कसोटी पर खरे

---

1 भट्टिकाव्य – 22/34

उतरने वाले कोई मर्मज्ञ विद्वान है। वस्तुत· भट्टि के सम्मुख व्याकरण के एक जैसे रूपो की योजना करने का लक्ष्य न होता तो उनकी भाषा अधिक काव्यात्मक होती। साथ ही साथ शब्द विन्यास मे भी अधिक प्रौढता आ सकती थी।

'भट्टि' की कविता पर समालोचको ने आडम्बर तथा कृत्रिमता का दोषारोपण किया है, क्योकि उन्होने एक साथ अपने काव्य में व्याकरण के नियमो तथा काव्य की नूतन मौलिकताओ का समावेश किया। किन्तु आलोचको का यह कहना कि भट्टिकाव्य मे काव्यगत गुणों का सर्वथा अभाव है, उचित नही प्रतीत होता, उनके वस्तु वर्णन मे व्यञ्जना के प्रभाव वाली छटा, संवादो की रोचकता, और प्राकृतिक दृश्यों का मनोरम चित्रण उनकी काव्यात्मकता का मूल्यांकन करने के लिए यथेष्ट रूप से इस काव्य में सन्निविष्ट है। ऐसे ही दृश्यो से सवलित द्वादश सर्ग मे विभीषण अपने नीतिपूर्ण वचनो से युक्त रावण को शिक्षा देता है तथा सीता को लौटा देने के लिए रावण से निवेदन करता है, किन्तु रावण उसके प्रस्ताव को ठुकरा देता है।

रामोऽपि दाराहरणेन तप्तो, वय हतैर्बन्धुभिरात्मतुल्यै.।
तप्तस्य तप्तेन यथायसो न·, संधि परेणास्तु विमुञ्जसीताम्।। भट्टि0–12/40

इस प्रकार विभीषण का उक्त उपदेश आज के समय अर्थात् (वर्तमान मे) विश्व राजनीति से कितना मेल खाता है।

ऐसे काव्योचित भाव भट्टिकाव्य मे विद्यमान होते हुए भी यह कहना कहॉ तक सम्भव है? कि भट्टि मे हृदय पक्ष ही नही है। उनके काव्य मे प्रबन्धात्मक प्रौढता की अवश्य कमी है, किन्तु उनकी प्रसाद गुणोपेत भाषा उनके उत्कृष्ट कवि कर्म की पहचान है।

तात्पर्य यह है कि कही–कहीं जो कृत्रिमता और आडम्बर दीख पडता है, उसका कारण विषय की गम्भीरता ही है।

इतना ही नहीं त्रयोदेश सर्ग का एक ऐसा उदाहरण देखिए जो सस्कृत और प्राकृत दोनो भाषाओं मे समान है–

चल–किसलय–सविलासं चारूमही–कमल–रेणु–पिञ्जर–वसुधम्।
सुकुसुम–केसर–बाणं लवङ्ग–तरू–तरूण–वल्लरी–वर–हासम्।। भट्टि0 13/39

"चञ्चल पल्लवो से विलास वाले, सुन्दर स्थल कमलों के परागों से पीली पृथ्वी से युक्त, फूलो से सयुक्त, केसर और झिण्टी वृक्षो से सम्पन्न लवङ्ग वृक्ष के नवीन मञ्जरी रूप उत्तम हास्य से युक्त सुवेल पर्वत पर रामचन्द्रजी की सेना चढ गयी।" कवि ने दशमसर्ग में यमक के बीस रूपो का प्रयोग कर अपनी अलङ्कार निपुणता का परिचय दिया है– युग्पाद, पादान्त, पादादि, पदमध्य, चक्रवाल, समुद्ग, काञ्ची, यमकावली, अयुक्तपाद, पादाद्यन्त, मिथुन, वृन्त, पुष्प, आदिमध्य, द्विपथ, मध्यान्त, गर्भ, सर्वयमक, महायमक, आद्यन्त यमक। एक पद्य का चमत्कार देखिए–

न गजा नगजा दयिता, दयिता विगत विगत ललितं ललितम्। (यमकावली)
प्रमदा प्रमदाऽऽमहता महता मरण मरण समयात् समयात्।। भट्टि0 10/9

"पर्वत में उत्पन्न अभीष्ट हाथी रक्षित नही हुए। पक्षियो की गति नष्ट हो गयी। प्रमदा रोग से या पालापन से पीडित के समान हर्ष से रहित हो गयी एवम् समय के कारण शूरो का बिना युद्ध का मरण उपस्थित हो गया।

दशमसर्ग का यमकमय वर्णन इतना शास्त्रीय है कि वहॉ काव्यत्व लुप्त हो गया है। अर्थालङ्कारो मे परिगणित रूपक के पाच रूपो परम्परित, कमलक, खण्ड, अर्द्ध तथा ललाम रूपक का प्रयोग कवि ने किया है–

अक्षारिषु शराम्भासि तस्मिन् रक्ष. पयोधरा ।
न चाऽकृवालीन्न चाव्राजीत् त्रास कपि महीधर ।। भट्टि0 – 9/8

उक्त श्लोक मे रावण पर मेघो का बाण पर जलों का तथा वानर पर पर्वत का आरोप होने से रूपक अलङ्कार है।

इसी प्रकार उपमा अलङ्कार के प्रचलित सामान्य रूपो के अतिरिक्त अप्रचलित रूपो सहोपमा, तद्वितोपमा, समोपमा इत्यादि का कवि ने काव्य मे प्रयोग किया है–

"अवसन्नरूचि वनाऽऽगतं तमनाऽऽमृष्टरजोविधूसरम्।
समपश्यदपेत मैथिली दधत गौरवमात्रमात्मवत्।। भट्टि0– 10/34

इस प्रकार दशम सर्ग में सौन्दर्य अलङ्कार की प्रवृत्ति का पालन परिपूर्ण रूप से किया गया है।

महाकवि भट्टि का शब्द ज्ञान प्रशसनीय है। अवसरानुकूल शब्द प्रयोग मे वे दक्ष है। अयोध्याधिपति दशरथ के कार्य व गुण के अनुरूप कही उन्हे 'नृप' कही क्षितीन्द्र, कही राजा सम्बोधित किया गया है। इसी प्रकार भट्टि ने नायक राम के लिए वीरता हेतु 'रघुव्याघ्र', 'रघुसिह', कुलेचित आचरण हेतु 'राघव' काकुत्स्थ आदि विशेषणो का अवसरोचित प्रयोग किया है। वीररस प्रधान भट्टिकाव्य मे ओजगुण का प्रसङ्ग स्वाभाविक रूप से होना अनिवार्य है। इसके स्थल द्वादश तथा त्रयोदश सर्ग मे प्रतिविम्बित होते है। लङ्कायुद्ध के प्रसङ्ग मे अशोक वाटिका भङ्ग के समय मे प्राय 'ओज गुण' के ही दर्शन होते है।

त्वयाऽद्य लङ्काऽभिभवेऽतिहर्षाद् दुष्टोऽतिमात्र विवृतोऽन्त रात्मा।

धिक् त्वा मृषा ते मपि दु.स्थवुद्धिर्वदन्निद तस्य ददौ स पार्थिम्।।भट्टि0–12/80

लेकिन भट्टिकाव्य प्रसादगुण गुम्फितकाव्य है। यही कारण है कि भट्टि ने इस शैली को अपनाकर व्याकरणशास्त्र की शिक्षा देने मे पर्याप्त ख्याति अर्जित की है। रामजन्म, सीता–परिणय, रामप्रवास, विभीषण शरणागति नामक सर्गो मे प्रसाद गुण की ही प्रधानता है।

महाकवि भट्टि ने प्राय· वैदर्भीरीत का ही आश्रय ग्रहण किया है। इसके अतिरिक्त गौडी, पाञ्चाली, लाटी का भी प्रयोग किया है। भट्टिकाव्य के द्वितीय सर्ग का शरद्वर्णन वाला प्रसङ्ग 'न तज्जल' पूर्णतया वैदर्भी–रीति से ओत–प्रोत है। यहाँ सर्वत्र वैदर्भी का ही विलास ध्वनित होता है। समासबहुला गौडी रीति का स्थल भट्टिकाव्य मे महर्षि विश्वामित्र के आश्रमवर्णन, दशमसर्ग तथा त्रयोदश सर्ग में दृष्टिगत होता है– यथा–

घोरजलदन्तिसकुलभट्टमहापङ्ककाहलजलावासम्।

आरीणं लवणजल समिद्धफलवाणविद्धघोरफणिवरम्।। भट्टिकाव्य– 13/4

"राम के आग्नेयबाण छोड़ने पर भयकर जलहस्तियो से व्याप्त सूखे महापङ्क मे विह्वल मत्स्य आदि जलजन्तुओ से युक्त प्रदीप्त फल (अग्रभाग) वाले बाणों से ताडित और भयकर श्रेष्ठ सर्गो से युक्त समुद्र का जल सूख गया।

इसी प्रकार भट्टि ने शरद्वर्णन की शोभा के वर्णन के समय पाञ्चाली रीति के भी कुछ स्थल प्रदर्शित किये। नवम सर्ग मे तो पूरी तरह कवि ने रावण के क्रोधावेशी चित्रण मे इसी शैली का प्रयोग किया।

"वनानि तोयानि च नेत्रकल्पै पुष्पै सरोजैश्च निलीनभृङ्गै ।
परस्परां विस्मयवन्ति लक्ष्मीमालोकयाञ्चक्रुरिवादरेण।।"

"भट्टि ने 'नवम तथा द्वादश' सर्ग मे लाटी रीति का भी प्रयोग किया। 'विश्वनाथ' के शब्दो मे 'लाटी रीति' ऐसी रीति है जो वैदर्भी और पाञ्चाली रीतियों विशिष्टताओं से मण्डित होती है।"[2] अतः कविवर भट्टि ने चारों रीतियों का सम्यक् प्रयोग कर अपनी पैनी प्रतिभा का परिचय दिया।

इस क्षेत्र में कालिदास से लेकर भट्टि तक की प्रमुख प्रवृत्तियो का परिचय 'डा० भोलाशकर व्यास' के शब्दो मे इस प्रकार प्राप्त कर सकते है– "कालिदास रसवादी कवि है तो भारवि कलावादी कवि, अश्वघोष दार्शनिक उपदेशवादी कवि है तो भट्टि व्याकरणशास्त्रोपदेशी कवि। उनका यह व्याकरण निष्ठ अन्तर ही उनके कविहृदय को स्वतन्त्र गति से आगे नही बढने देता है। यही कारण है कि उनकी शैली मे सहज प्रवाह का अभाव है।[3]

इस प्रकार इस ग्रन्थ के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाकाव्य का रसास्वादन वही कर सकता है जो वैयाकरण भी हो और आलङ्कारिक भी। इस प्रकार भट्टि के सङ्केत से ही स्पष्ट है कि उसकी रचना का मुख्य उद्देश्य व्याकरण के नियमो की जानकारी देना है। व्याकरण के नियम उनकी भाषा में एक विशेष रूप मे निबद्ध किये गये है। भट्टि ने पाणिनीय सूत्रो के उस क्रम को छोड दियाहै। जो वैदिक सन्धि के विषय मे निर्देश करते है। भट्टिकाव्य मे कई स्थानों पर दीर्घ समासों का प्रयोग किया गया है। पर सर्वत्र ऐसा नहीं है। तेरहवे सर्ग में तो प्राय. सभी श्लोकों की दोनों पक्तियो में विभक्तियों का लोप करके एक–एक शब्द बना दिया गया है। इसमें अधिकतर बहुव्रीह समास का प्रयोग किया गया है– यथा–

लकालय तुमुलारव सुभरग भीरो रूकुंजकन्दर विवरम्।
वीणारवरस सगमसुरगण संकुल महातमाच्छायम्।। भट्टिकाव्य–13/32

उर्पयुक्त सभी तथ्यो पर ध्यान देने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि– भट्टि का भट्टिकाव्य काव्यशास्त्रों की अपेक्षा व्याकरण प्रेमियो के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है। यदि कहा जाय कि काव्य की सुकोमल प्रकृत को व्याकरण के निर्मम हॉथो से इस काव्य मे ऐसा मसल दिया गया है कि वह महाकाव्य की जगह व्याकरण ग्रन्थ ही बन गया है, अनुचित न होगा।[1]

डा० भोलाशकर व्यास ने तो कहा है कि– " भट्टि के हृदय की रसिकता को पाण्डित्यपूर्ण व्यक्तित्त्व ने कुचल दिया है। भावपक्ष की दुर्बलता का मूलकारण कवि का व्याकरणपरक अध्ययन है।"

कविवर भट्टि पर अपने पूर्ववर्ती कवियो का प्रभाव पडना स्वाभाविक था। संस्कृत काव्यकारो के लिए यह अनुकरण जरूरी भी था। कविवर भट्टि पर अपने पूर्ववर्ती महाकवि कालिदास, प्रवरसेन, अश्वघोष, भारवि इत्यादि कवियों का पर्याप्त प्रभाव पडा। यह चमत्कार प्रियता केवल एक दूसरे से बढ जाने की थी। कविवर भट्टि की शैली कालिदास के लघुत्रयी मे परिगणित कुमारसम्भव महाकाव्य से प्रभावित दिखलाई पडती है। कुमारसम्भव महाकाव्य के द्वितीय सर्ग मे अत्यन्त क्रूर एवं नृशस तारकासुर के कार्यो का वर्णन है। भट्टिकाव्य में चित्रित रावण से साम्य रखती हुई प्रतीत होती है।

इसके अलावा रघुवश की भी चमत्कार प्रियता का प्रभाव भट्टिकाव्य मे पूर्णतया परिलक्षित होता है– भावसाम्य तथा उक्तिसाम्य का अद्‌भुत सामञ्जस्य भट्टिकाव्य मे विद्यमान है– राजा दिलीप की प्रशसा मे कालिदास की भणिति है– कि निश्चय ही सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने दिलीप को महाभूतो की कारण सामग्री से निर्मित किया था तथापि उनके समस्त गुण परार्थ अर्थात् परोपकार के लिए है।

"त वेधा विदधे नून महाभूतसमाधिना।
तथा हि सर्वे तस्यासन्परार्थैकफला गुणा ।।" रघु0 – 1/29

ठीक ऐसा ही दृष्टान्त भट्टिकाव्य मे चन्द्रोदय के वर्णन के प्रसङ्ग मे भी अभिव्यक्त हुआ है– कि सभी महान प्राणी परोपकार के लिए ही होते है।

"भवति महान हि परार्थ एव सर्व ।" भट्टिकाव्य – 10/67

'मालविकाग्निमित्रम्' नाटक मे भी नर्मसचिव विदूषक के प्रति विपिशापति अग्निमित्र की उक्ति है कि – सर्वसमर्थ होते हुए भी सविघ्न कार्य का सम्पादन कोई प्रभुत्व सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकता है नेत्र सम्पन्न व्यक्ति भी अंधकार मे स्थित वस्तु को दीपक की सहायता से बिना नहीं देख सकता है– विशेष अध्ययन हेतु देखे – माल0 – 1/9

भट्टिकाव्य के अन्त मे ग्रन्थकार ने प्रबन्ध की प्रशक्ति के सन्दर्भ मे कुछ घुमाफिराकर लगभग इसी प्रकार का भाव व्यक्त किया है–

"दीपतुल्य· प्रबन्धोऽय" भट्टिकाव्य – 22/33

भट्टि पर भारवि की अलङ्कृत एव पाण्डित्य पूर्ण शैली की पर्याप्त छाप पडी। भारवि का पाण्डित्य उनके कवित्व के साथ सन्निविष्ट है और वे कलावादी कवि है। जबकि भट्टि का पाण्डित्य उनके काव्य का उद्देश्य बनकर सामने आया है। जहाँ भारवि अलङकृत काव्यशैली के रचयिता है वहीं भट्टि काव्य के माध्यम से जिज्ञासुओ को व्याकरण ज्ञान कराने के इच्छुक वैयाकरण है। कही–कही दोनो कवियो मे जो साम्यभाव परिलक्षित होता है– उसका वर्णन देते है– किरात के द्वितीय सर्ग मे उपस्थित राजनीतिक वाद–विवाद पूर्ण रूप से भट्टिकाव्य के द्वादश सर्ग मे स्थित विभीषण और माल्यवान के बीच हुए राजनैतिक संवादों से पूर्णतया मेल खाता हुआ प्रतीत होता है।

"विपदोऽभिभवन्त्यविक्रमं रहयत्यापदुपेतमायति·।
नियता लघुता निरायतेरगरीयान्न पद नृपश्रिय·।।" भारवि0 – 2/14
"शस्त्रम् तरूर्वीधरमम्बुपानं वृत्ति· फलैर्नो गजवाजिनार्य·।
राष्ट्रं न पश्चान्न जनोऽभिरक्ष्य· कि दु स्थमाचक्ष्व भवेत् परेषाम्।।" भट्टि0–12/53

उक्त दृष्टान्तों को देखकर यह विदित होता है कि कविवर भट्टि पर जहाँ अपने पूर्ववर्ती कालिदास, भारवि की चमत्कारप्रियता का प्रभाव था वही भट्टिकाव्य ने परवर्ती काव्य माघकाव्य को भी प्रभावित किया। इतना ही नहीं वर्ण्यविषय, भाव तथा शैली मे भी महाकवि माघ भट्टि से प्रभावित रहे। एक का आधार बाल्मीकि रामायण है तो दूसरा महाभारत जैसे उपाख्यान ग्रन्थ पर अवलम्बित है। एक मे नृशस दैत्यरावण का वध प्रदर्शित है तो दूसरे में महान् आततायी शिशुपाल का हनन वर्णित है–

यद्यपि उक्त दृष्टान्तो मे विशेष कोटि का साम्य परिलक्षित नही होता, किन्तु दोनो प्रबन्ध काव्यो की वर्णनशैली की प्रकृति लगभग एक सी है।

उक्त दृष्टान्तो के अतिरिक्त भट्टिकाव्य तथा माघकाव्य मे राम–रावण तथा कृष्ण शिशुपालवध की रणात्मक प्रवृत्तियो मे समानता परिलक्षित होती है। इस प्रकार भट्टिकाव्य का माघ काव्य मे जो अनुकरण परिलक्षित होता है उसको देखकर हम यह विश्वास पूर्वक कह सकते है कि– शिशुपालवध महाकाव्य को पुनर्जीवन देने में भट्टि की मौलिक प्रतिभा काही परिणाम है।[1]

प्रस्तुत प्रबन्ध की सृष्टि करके उन्होने काव्य तथा शब्दशास्त्र दोनो का भलीभाति सम्यक निर्वाह किया जिसके लिए सस्कृत काव्य साहित्य सर्वदा उनका ऋणी रहेगा। शिशुपालवध जैसी भावपूर्ण सूक्ति "सदाभिमानैकधनाहिमानिन" का अनुसरण भट्टिकृत "भवति महान हिपरार्थ एव सर्व" इत्यादि सूक्ति के जैसा भाव दृष्टिगत होता है।

सस्कृत साहित्याकाश मे महाकवि कुलगुरू कालिदास के बाद सस्कृत कविता का एक नवीन युग शुरू हुआ। जिसकी सरणि मे आने वाले कवियों ने तरह–तरह की भावजन्य स्पृह शैली द्वारा अपने युग मे परिवर्तन का दौर स्थापित किया। जिसके द्वारा इस विशाल सस्कृत साहित्य ने सहस्त्रो वर्षों तक लम्बी प्रतिष्ठा प्राप्त की। अनेक साम्राज्यो, राज्यो और सामंतो की छत्रछाया मे उसने अपने वैभव के सुनहले दिन को बिताया। सम्भवत किसी भी भाषा को इतनी लम्बी अवधि तक इतने विशाल भूखण्ड पर इतने सुन्दर दिन देखने को नही मिले है। प्रकृति की सहचरी हमारी देश की धरती ने सहस्त्रो वर्षों तक अपनी सम्पदाओ समृद्धियो सुविधाओं तथा प्रेरणाओ से इसका सम्वर्द्धन किया है– देश का ऐसा कोई अञ्चल नही बचा जहॉ इसने अपने वैभव–विलास की वैजयन्ती न बजायी हो। विदेशी विधर्मियो तक को इसकी शरण लेनी पडी है। ऐसी सर्वसाधारण सम्पन्न सहस्त्रों वर्षों की सुख समृद्धियो में पली एक उन्नत राष्ट्र की विजयिनी भाषा मे केवल आठ दस उच्चकोटि के काव्यो की गणना आश्चर्य

---

1 'भट्टिकाव्य एक साहित्यिक अनुशीलन'– शोध प्रबन्ध

की बात नही है। विपरीत परिस्थितियो और विपत्तियों के जिस क्रूर झझावत से होकर सस्कृत साहित्य को गुजरना पड रहा है उसकी भी समानता कोई दूसरी भाषा नही कर सकती है। इस प्रकार भट्टि के पूर्व तक जिन महाकाव्यो की चर्चा की गयी, वे सस्कृत साहित्य के अनुपम रत्न है। सहस्त्रो वर्षो की लम्बी अवधि मे उन ग्रन्थो की समानता करने की क्षमता किसी अन्य रचना मे नही हुई। समय और विपत्तियो के थपेडे में भी वे हिमवान् की भाति अविचल रहे। विरोधियो के विध्वसक प्रभावो का उन पर कोई प्रभाव नही पडा।

समय चक्र की दिशा बदली और लोगो ने जनमानस के मस्तिष्क को दोलायमान करके रख दिया। एक दूसरे के प्रति प्रतिस्पर्धा का दौर शुरू हुआ जिससे अपने को कविगणो ने अन्य से आगे बढ जाने की अपेक्षा की। कुलगुरू कालिदास के बाद सस्कृतनिष्ठ काव्य का कलेवर ही नही, बल्कि उसकी अन्त प्रकृति मे भी मूलभूत परिवर्तन आया। यह परिवर्तन समय के दौर के साथ होना स्वाभाविक था। क्योकि वह यथेष्ठ परिवर्तन जो आगे आने वाली पीढियो को चमत्कृतिजन्य काव्य सौष्ठव से अवगत कराता, उसकी स्थापना का श्रेय अलङ्कृत शैली के जनक भारवि को मिला।[1] महाकवि भारवि ने अपनी अनुपम, श्रुतिमधुर रस प्रवर्तित लेखनी से उस नवप्रवर्तित युग का शुभारम्भ किया जिसकी उस युग के लोगो ने माग की। यह नवीनता थी काव्य भाव को अपने करकमलो से सजाकर पण्डित जनो को आह्लादित करने की। इस युग मे कालिदास की सारगर्भित सारस्वत प्रवाह जन्य ललित एव प्रसन्न शब्दावली का पूर्णतया परित्याग कर चमत्कार जन्य वैदुष्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने अपना स्थान ले लिया। इन लोगों ने वाणभट्ट के समास भूयस्त्व एवं अलङ्कार बाहुल्य से ओत प्रोत शैली को अपनाने का साधन बनाया।

संस्कृत महाकाव्यो की इस रचना मे यह परिवर्तन विचित्र शैली के आचार्य एवं जन्मदाता महाकवि भारवि से प्रारम्भ होकर दिनोदिन अक्षुण्ण रूप मे से स्पन्दित होता रहा।

---

1 कुमारदास कृत जानकीहरण – अनु – ब्रजमोहन व्यास

माघ, भट्टि, भारवि, भवभूति हर्ष इत्यादि उल्लेखनीय कवियो की रचना पद्धति की एकात्मकता, आलङ्कारिक चमत्कार सृष्टि, पाण्डित्य दर्शन और वर्ण्यविषयो की विविधता अनेक रूपो मे देखी जा सकती है। स्वय कविवर कुमारदास भी इसी युग के युगदृष्टा एव प्रतिनिधि कवि थे।

कविवर कुमारदास विचित्रशैली के जन्मदाता महाकवि भारवि और प्रकाण्ड मूर्धन्य विद्वान माघ के अन्तरालवर्ती युग के, सर्वश्रेष्ठ कवि है। कालिदासीय वैदर्भी के प्रशसक होने पर भी कुमारदास ने युगप्रकृति को सिर झुकाकर बडे नम्र ढग से स्वीकार किया और ऐसे सुष्ठपरिमार्जित काव्य का निर्माण किया जिसमे कवि के अनुराग को दोनो प्रवृत्तियो के जागरूक होने पर भी विचित्र मार्ग ने उन्हे अपना परम आराधक भक्त बनाया।[1]

'कविवर कुमारदास' ने रघुवश को आदर्श मान कर ही अपने काव्य 'जानकीहरण' का प्रणयन किया, परन्तु ज्यो–ज्यो वे आगे बढते गये आदर्श से दूर हटते चले गये। कविवर राजशेखर ने कहा भी है –

> "जानकीहरणकर्तुं रघुवशे स्थिते सति।
> कविः कुमारदासश्च रावणस्य यदि क्षमौ।।[1]

भावुक जनो के हृदय को रघुवश के प्रतिस्पर्धी 'जानकीहरण' की रसचर्वणा के लिए लालायित कर रखा है। कुमारदास के विषय में कथित उक्त पद्य का भावार्थ है कि– रघुवश (रामचन्द्र) के रहते यदि किसी की क्षमता जानकी को हरण करने की थी, तो रावण की ही। इसी प्रकार कालिदास के रघुवश (काव्य) के रहते किसी को जानकीहरण रचने का यदि सामर्थ्य था तो कवि कुमारदास को।[2]

उक्त प्रशस्ति ध्वनि से कविवर कुमारदास को लका के अधिपति रावण का स्वदेशी बतला रही है। उत्तरभारतीय जानकी को तथा तद्विषयक काव्य को लकापति रावण ने तथा लंकावासी कुमारदास न हठात् अपहरण किया था।

---

1 'सस्कृत साहित्य का इतिहास' – आचार्य बलदेव का उपाध्याय
2 काव्यमीमासा – चतुर्थ अध्याय

इस प्रकार कुमारदास का जानकीहरण 20 सर्गों मे निबद्ध एक सुरूचिपूर्ण काव्य है। ऐसी जनश्रुति है।

एक ओर आदिकवि बाल्मीकि की कविदृष्टि और अद्‌भुत विस्मयकारी सर्जनात्मक प्रतिभा थी, जिसने सम्पूर्ण युग का अवतार अपनी कृति मे ही कर दिया था। दूसरी ओर कवि शिरोमणि कविता कामिनी के जनक कुलगुरू कालिदास की कलामयीदृष्टि थी जिसने स्वय कविता को उदात्तता की रस मयी भावना से विलसित कर दिया, और अपने को चमत्कृत कवियो की श्रेणी मे परिगणित कराया। इस सम्पूर्ण काव्य प्रतिभा के भार को सम्भालते हुए तथा अपने विशिष्ट स्वतत्र उन्मुख व्यक्तित्त्व की सृष्टि कर पाना हर के लिए कठिन ही था, लेकिन आगे आने वाले कवियोंने अपने उत्साह को जाग्रत कर इनकी काव्यप्रतिभा को अपनाने मे एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने लगे। कविवर कुमारदास ने भी स्वयं इसी स्वरूप को प्राप्त किया।[1]

'जानकीहरण' की कविता नि·सन्देह रघुवंश की अपेक्षा प्रयत्न सृष्ट और कृत्रिम है। किन्तु किरातार्जुनीय के समान ही अलङ्कारिता तथा पाण्डित्य भार के प्रति साग्रह होकर भी बहुश· नवीन सरस और आकर्षक है। फिर भी कुमारदास मे ऐसे–स्थल पद–पद पर स्थित है, जहॉ कवि की मौलिक प्रतिभा है। साथ ही इसमें सहृदय के हृदयावर्जन की अद्‌भुत क्षमता भी है।

महाकवि भारवि के काव्यपक्षीय दृष्टिकोणो का सहज एव स्वाभाविक रूप से अनुकरण करते हुए कुमारदास ने नगर, नायक, नायिका, उद्यानक्रीडा, जलक्रीडा, रतोत्सव, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, ऋतुवर्णन, पर्वतवर्णन, दूतसप्रेषण, सचिव मन्त्रणा, युद्ध आदि का परम्परानिष्ठ चमत्कृत वर्णन किया, किन्तु वे हमेशा इस बात से सावधान रहे कि उनके वर्ण्यविषय से सम्बन्धित प्रसङ्ग अनुचित रूप से लम्बे न हो जाय नही तो पाठक नीरसता का अनुभव करने लगेगा और वर्ण्यविषयों से सम्बद्ध प्रसङ्ग जो कि मधुर है उनको भी नीरसता से ग्रसित समझकर परित्याग कर देगा। इस अंश में कविवर

---

1 कालिदास की समीक्षा परम्परा – राधा वल्लभ त्रिपाठी – प्र0स0 –

कुमारदास कालिदास का अनुकरण अधिक करते है, क्योकि कालिदास ने वर्णन प्रपञ्च के लोभ मे कथा के सूत्र को भी कभी विच्छिन्न नही होने दिया। उन्होने वर्णनीय विषय का सूची सरीखा विवरण कभी नही प्रस्तुत किया, अपितु उनकी सन्तुलित काव्यदृष्टि ने कथा और वर्णन चरित्राकन और कलात्मक परिष्कार के सुकुमार सन्तुलन को सर्वथा बनाये रखा। कुमारदास ने सर्वत्र यह बात ध्यान मे रखी है कि वर्णन की विवरणात्मकता और अनेपक्षित विस्तार काव्य के कथावस्तु को ही न तोड दे।[1]

उनका व्यक्तित्व कथा के उपस्थापन एव शब्द संहति के प्रयोग में उतना ही उभरा जितना वर्णनो मे प्रयुक्त नवीन कल्पनाओ मे, जबकि उत्तरवर्ती सस्कृत कवियो ने जीवन के अङ्कन, जीवनदर्शन के संप्रेषण और कलात्मक सन्तुलन के प्रति अपने को अत्यन्त सावधान नही रखा। उदाहरणार्थ– व्यास और बाल्मीकि ने जिस व्यापक पृष्ठभूमि मे और जैसी अकृत्रिम भङ्गिमा से अपनी रचनाओं मे जीवन की सृष्टि कर दी, और एक नई जीवन दृष्टि भी प्रदान की सस्कृत के उत्तकालीन महाकवि से वैसी आस्था नही की जा सकती, किन्तु उत्तरकालीन कवियो ने वर्णनविधि मे कुछ न कुछ नवीन कल्पना जोडने की सतत् चेष्टा की है। इस दृष्टि से कुमारदास के काव्य मे नि सन्देह ऐसे वर्णन स्थल है जो उनके स्वतत्र व्यक्तित्त्व को प्रस्तुत करते है। वर्णनो मे उन्हे कदाचित् सर्वाधिक सफलता प्रकृति वर्णन में मिली। सस्कृत के कवियो ने अपने को अपने चारो ओर के प्राकृतिक परिवेश से गहराई से जोडे रखा। इसलिए उसके लिए प्रकृति जड दृश्यावली मात्र नही है। वह तो सर्वथा चेतन और उसकी भावनाओ की सहभोक्ती एव सहानुभवित्री है। इसका सुन्दरतम् उदाहरण जानकीहरण के षोडश सर्ग मे चन्द्रोदय का वर्णन है–

"अरूणकरदृढावकृष्टरश्मि प्रशमितकन्धरभुग्नचारूघोणा ।
दिवसकरहया गिरीन्द्रभित्तेर्जघनपतद्रथनेमयो वतेरू.।। जानकी0– 16/2

"अरूण ने (अस्ताचल की ढलान पर) बडी दृढता से रास खीची, इससे सूर्य के रथ के घोडो के कन्धे झुक गये और सुन्दर नथुने तिरछे हो गये, रथनेमि उनकी जॉघो से सट गयी। इस तरह वे अस्ताचल से उतर गये।"

वर्णन की चित्रात्मकता नवीन उत्प्रेक्षाओ और समासोक्तियो में अत्यन्त प्रभावशाली रूप मे व्यहृत हुई है। अनूठी कल्पानाओ ने प्रकृति के उपादानो मे मानवीय कार्य व्यापारो के मार्मिक दर्शन कराये है।

"द्रुतमपसरतैति भानुरस्त सरसिरूहेषु दर्लागला. पतन्ति।

भ्रमरकुलमिति ब्रुवन्निवालिः क्वणितकल विचचार दीर्घिकायाम्।। जानकी0 16/6

कविवर कुमारदास को ऐसी ही सफलता ऋतुओं के वर्णन मे भी मिली है। शरद् इत्यादि ऋतुओं के कवि ने अनोखे चित्र खीचे है। एकादश सर्ग का वर्षावर्णन उनके ऋतुवर्णनो का सुन्दर प्रतिनिधि है।

"भुवनतापनधर्म्मजयोतसव समुदित परिनृत्यत बर्हिर्ण।

इति जघान यथा समयस्तडित्कनकदण्डरातैर्धन दुन्दिभम्।। जानकी0–11/43

"आह्लाद से नाचते हुए मयूरो ने अवसर आने पर बादल रूपी नगाडे को, बिजली रूपी सैकडो सोने के डंडो से पीटा। जैसे संसार मे ग्रीष्म ऋतु की तपन पर विजय पाने का उत्सव मनाया जा रहा हो"।

इस प्रकार कोमल चतुरचितेरे सुकुमार भावो के प्रसङ्ग में, शब्दावली के वाक्य विन्यास मे तथा हृदयगत भावो को समुच्छलित कर कुतूहल पैदा करने वाली कल्पना के निर्माण में वे कुमारदास आरम्भिक सर्गो मे ज्यादा सलग्न दीखते है परन्तु युद्ध के चित्रण मे अन्तिम सर्गों मे चित्रबन्ध का नैसर्गिक दृश्य दिखाई पड़ता है। जो विदग्ध एव कवि पण्डित चतुर–चितेरे लोगो के हृदय से हटकर प्रकाण्ड पण्डितो के मानस पटल को आप्यायित करती है। कविवर कुमारदास ने महाकवि भारवि के चित्रबन्ध का सम्यक् अनुकरण कर अपनी काव्य शैली का रूप प्रकट किया। एकाक्षर, द्वयक्षर, विलोम, सर्वतोभद्र, मुरजबन्ध, गोमूत्रिकाबन्ध इत्यादि नाना प्रकार के यमकों का साङ्गोपाङ्ग विवेचन करके काव्य शैली को प्रंशनीय बनाया। साथ ही इस अलङ्कार के प्रति अपनी रूचि भी प्रदर्शित की। लेकिन उनका सर्वप्रिय अलङ्कार अनुप्रास है जिस पर एकछत्र उनका राज्य है।

शब्दालङ्कार में परिगणित अनुप्रास का साङ्गोपाङ्ग विवेचन कविवर कालिदास के अनुकरण पर ही किया। रघुवश मे सर्वत्र प्राय सभी सर्गों मे अनुप्रास का चमत्कारिक प्रयोग किया है।[1] जहॉ कालिदास परिष्कृत एवं परिमार्जित कला शैली के कवि है वही कुमारदास भी इनकी परिष्कृत शैली का अनुकरण करते हुए प्रतीत होते हैं। कुमारदास की अनुप्रास पर रूचि उनका स्वाभाविक गुण प्रतीत होता है इसके अलावा अनुप्रास जैसे अलङ्कार पर वह स्वय हावी होते हुए दिखाई देते है। ऐसे ही कुछ प्रसङ्ग अनुप्रास से सम्बन्धित देखिए –

"निनदता नदताडितमेखलं विगलताऽगलतावृतसानुना।
असुभुजा सुभुजाऽसुरसंहतिः प्रविदिता विदिता दिशि भूभृता।।[2]

"ध्वनि करते हुए नद जिसके ढलवान पर टक्कर मार रहे थे, जिसके श्रृङ्गों के ऊपर की समतल भूमि वृक्षो और लताओ से भरी थी और जिनसे पानी निरन्तर बह रहा था ऐसे पर्वत के सामने उन असुरो के समूह जो अपनी सुन्दर भुजाओ के लिए दिशाओ मे प्रख्यात था।" इसी प्रकार कविवर कुमारदास ने सेतुनिर्माण के प्रसङ्ग पर भी अत्यधिक चमत्कृत वर्णन करके अपना स्वाभाविक रूझान अनुप्रास के प्रति प्रदर्शित किया –

प्रथिमणि प्रथिते कृतकौतुकैरूदधिमापनदण्ड उपाहित ।
इति चकारमनो ननुवशजश्चिरविचारपरम्परमादृत ।।[3]

"कुतूहल से प्रेरित होकर वानरों ने इस विख्यात और मणियो से भरे समुद्र पर उसके नापने का दण्ड रख दिया है, ऐसा मनु के वंशज एव आदृत राम ने (सेतु के सम्बन्ध मे) विचार किया"।

ऐसी ही एक चारूता की उक्ति पन्द्रहवे सर्ग मे रावण की गर्वोक्ति के समय मिलती है। जिसमे अनुप्रास ने चारूता की चरमसीमा को प्राप्त कर लिया है–

"विनोपभोगं भवने भवन्तु सीतादयो मे वशगस्य देव्या.।
अनन्तकोशस्य नृपस्य रत्नं शिखान्तमारोहति किञ्चिदेव।। जानकी0– 15/59

रावण अपने मत्री मान्यवान से कह रहा है– कि मै तो देवी मन्दोदरी के वश मे हूँ। सीता ऐसी कितनी (नगण्य) स्त्रियॉ हमारे महल मे पडी है। जिसके पास स्वय रत्नो का अनन्त कोश है वह किसी खास ही रत्न को सिर पर चढाता है।

इन चित्र–विचित्र प्रसङ्गो मे अनुप्रास के प्रति कवि का हाव भाव ज्यादा चमत्कृत एव आह्लादमय प्रतीत होता है। साथ ही कविवर कुमारदास के प्रौढ पाण्डित्य और काव्याभ्यास का चिर अनुभव प्रकट होता है। इस अनुप्रास के प्रयोग मे कृत्रिमता को न जन्म देने से शैली उत्कृष्ट कोटि की हो गयी है। शैली मे अनुप्रासालङ्कार के प्रयोग जो स्वाभाविक एव हृदयावर्जक है विशेष चारूता प्रदर्शित करते है।

कविवर कुमारदास ने पग–पग पर रघुवंश से प्रभावित होकर ही अनुप्रास का प्रयोग किय। जहॉ कुमारदास अनुप्रास प्रयोग मे रूचिर पद विन्यास के साथ उपस्थित होते है वही कालिदास भी उचित पद्यो के साथ उपस्थित होते हैं।

इसलिए कालिदास की कविता अत्यधिक और आवश्यक अलङ्कारो के भार से अतिक्रान्त कामिनी की भॉति मन्द मन्थर गति से चलने वाली नहीं है अपितु 'स्फुटचन्द्रत्तारकाविभावरी' की भॉति अपने सहज सौन्दर्य से सहृदयो के चित्त को आकृष्ट करने वाली है उनके अनुप्रास उनके काव्य धारा मे सर्वत्र अनायास ही आ गये है। एक उदाहरण देखिए–

"तस्या· खुरन्यासपवित्रपासुमपांसुलाना धुरि कीर्तनीया।
मार्ग मनुष्येष्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थ स्मृतिरन्वगच्छत्।।" रघुवश – 2/2

इसके अतिरिक्त 'मायूरी मदयति सार्जना मनासि' तथा 'निर्ममेनिर्ममोऽर्थेषु' आदि वाक्यो में भी अनुप्रास का चमत्कृत वर्णन निर्दिष्ट है। ये सभी अनुप्रास कालिदास की काव्यधारा मे सहज ही आ गये है। ये वर्णन आह्लादपूर्ण एवं सरसोचित है।

यमक अलङ्कार के प्रसंङ्ग में जहॉ कालिदास ने रघुवश के नवम और अष्टादश सर्ग को अलङ्कारों के विकटबन्धों से लाद दिया है। वहीं कुमारदास ने 25 प्रकार के यमको के प्रयोग से 'जानकीहरण' काव्य का अठाहरवॉ सर्ग चमत्कृत कर दिया है। इस

प्रकार कुमारदास ने यमको के माध्यम से जो शब्द चित्र खीचा है उससे रसानुभूति मे बाधा तो आ गयी है साथ ही हर स्थान पर रसभङ्ग का भय बना ही रहता है। ऐसे ही कुछ दृश्य देखिए—

"न मृगयाभिरतिर्न दुरोदर न च शशिप्रतिमाभरण मधु।
तमुदयाय न वा नवयौवना प्रियतमा यतमानमपाहरत्।।" रघुवश – 9/7

"उदय के लिए प्रयत्नशील उस राजा दशरथ को, शिकार का अनुराग, जुआ का व्यसन, चन्द्रमा की परछाई पडी हुई मदिरा और नवयौवना स्त्रियॉ कोई भी अपनी ओर आकृष्ट न कर सकी।"

इसके अलावा कालिदास की कृत्रिम शैली मे आबद्ध एक यमक का उदाहरण देखिए—

तेन द्विपानामिव पुण्डरीको राज्ञामजय्योऽजनि पुण्डरीक ।
शान्ते पितर्याहृत पुण्डरीका य पुण्डरीकाक्षमिव श्रिताश्री.।। रघुवंश – 18/8

"नभ को पुण्डरीक नाम का पुत्र हुआ, जैसे हाथियो मे पुण्डरीक नाम का हाथी सर्वश्रेष्ठ है, वैसे ही उस समय के राजाओ मे वे ही सर्वश्रेष्ठ राजा थे। पिता के स्वर्ग चले जाने पर पुण्डरीक (कमल) धारिणी लक्ष्मी ने उस पुण्डरीक को ही विष्णु मानकर वर लिया।"

यहॉ पर एक 'पुण्डरीक' शब्द का चार बार प्रयोग कियागया है। पहले 'पुण्डरीक' शब्द का अर्थ है 'दिग्गज विशेष', दूसरे पुण्डरीक का अर्थ— सज्ञा वाला राजकुमार, तीसरे का 'श्वेतकमल' तथा चतुर्थ पुण्डरीकाक्ष का अर्थ विष्णु है। वस्तुत ये दुरूह श्लोक कालिदास के काव्य का सच्चा प्रतिनिधित्व नही करते क्योंकि इस प्रकार की आडम्बर पूर्ण दुरूह अलङ्कार योजना रस व्यञ्जना मे बाधक होती है।

इससे ही प्रभावित कुमारदास का यमक प्रयोग बेहद सुष्ठु एवं परिमार्जित है। अपनी उत्कृष्ट वर्णनशक्ति और सन्तुलित दृष्टि के कारण कुमारदास निःसन्देह एक श्रेष्ठ कोटि के कवि होते यदि उन्होंने इन चित्रबन्धो को मोह न किया होता।[1] एक उदाहरण देखिए—

---

2 सस्कृत काव्यकार – हरिदत्त शास्त्री, पृष्ठ – 115

पादयमक का उदाहरण –

"दधानौ नृपती खिन्ने शतधा मनसी तया।

दृष्टौ विवशयाऽनार्तिशतधाम न सीतया।।

"शोक से विवश सीता ने, दोनों राजपुत्रो को जिनके मन मे हजारो व्यथाएँ थी, देखा पर यह न देख सकी कि उनको पीडा पहुचाना असम्भव है जिससे उनका तेज हजार गुना बढ गया है।[1]

यमकावलि का उदाहरण देखिए–

"महता महता समरे समरे विभया विभया सहिता सहिता।

विशदा विशदा शुभया शुभया जनता जनता न हिता नहिता।।"

"महान् वीरों के सग्राम मे अविनष्ट, (वीरोचित) कान्ति के कारण भयरहित, सहायक मित्रो से युक्त, दुर्गुणो से रहित अतएव निर्मल किन्तु शीघ्रभय से आक्रान्त रावण की सेना ने अज (राम) के लिए नम्र विभीषण आदि के प्रति पूर्ण रूप से हितकारिणी होकर (राम की सेना मे) प्रवेश किया।"[2]

सन्दष्टक का उदाहरण देखें – रावण युद्ध भूमि में अपनी वीरता का निदर्शन कैसे करता है–

चक्रे रण वानर–कान्तकारी, चक्रे रणन्वा–नर–कान्त–कारी।

चक्रे रण वा–नरका–न्तकारी, चक्रे रणन्वानर–कान्त–कारी।।

सेना में गरजते हुए (चक्रे–रणन्) रावण ने जो वानरो तथा अन्य जीवों की प्रसन्नता का अन्त करने वाला था (वानर–क–अन्तकारी) युद्ध किया (रणं चक्रें)। उसी प्रकार राम ने भी जिन्होने नरकासुर का अत किया था (नरक–अन्त–कारी) और जो वानरो को प्रसन्न कर रहे थे (वानर–कान्तकारी) शत्रुओ की सेना को क्षुब्ध करने वाला जयघोष कर (रण–चक्र–ईरणं–चक्रे) युद्ध किया।[3]

---

1 जानकीहरण – 18/9
2 जानकीहरण – 18/71
3 जानकीहरण – 18/68

उक्त दोनो कवियो के यमक प्रसङ्गो को देखकर विदित होता है कि कालिदास ने जहॉ छोटे–छोटे यमको की रचना से रघुवंश के नवम् और अष्टादश सर्ग को व्याप्त किया वही कुमारदास ने भी विधिवत् अनुकरण कर छोटे–छोटे एव लालित्य पूर्ण शब्दो से यमको का निदर्शन किया। कनिष्ठ यमको को कालिदास ने नही अपनाया लेकिन कुमारदास ने अपनाया है क्योकि रस की दृष्टि से यमक का प्रयोग उन्होने अधम माना है। कालिदास मे प्रसाद गुण और नैषध में पदलालित्य इतना अधिक है कि दंगली यमको के लिए उनके काव्य मे कोई स्थान नही है।

कविवर कुमारदास इस बौद्धिक कलावाजी और बाजीगरी से एक बार वह विस्मय विस्फारित प्रशंसा दृष्टि के अधिकारी तो हो सकते है किन्तु यहॉ वे हमे आन्दोलित कर सहज श्रद्धावनति को कहॉ प्राप्त कर पाते है? उनकी रससिद्ध एव कल्पना प्रवणता स्वय विजडित हो जाती है । अपने वर्णन प्रखर, कल्पना प्रवण और रससिद्ध तथा रूढिग्रस्त अलङ्कार विजडित पाण्डित्यजन्य दोनो ही रूपो मे उपस्थित होकर कुमारदास एक ओर कालिदास के अनुवर्तन मे श्रद्धा के अधिकारी बनते है तो दूसरी ओर प्रौढ भारवि से भी एक कदम आगे रखकर हमे विस्मित करते हैं। इसके अलावा सुकुमार कविमार्ग से हटने के लिए दोषी भी बनते है। वे निश्चय ही कालिदास की कोटि में नही आ सकते, किन्तु उत्तरवर्ती भारवि, माघ, श्रीहर्ष जैसे महान कवियो के साथ उनकी 'गणना' अपरिहार्य रहेगी।[1]

यद्यपि कविवर ने ऐसा कोई चित्रित प्रसङ्ग नही वर्णित किया, और न इसमे कथानक की दृष्टि से ही कोई नवीनता का सञ्चार किया है, लेकिन मौलिकता अधिक न होते हुए भी इनकी वर्णनशैली वर्ण्यविषय पर हावी प्रतीत होती है, भले ही उन्होने कालिदास का अनुधावन किया लेकिन कालिदास जैसी सारस्वत प्रवाह माधुर्य और ललित शब्दो से युक्त वाणी का प्रयोग नही कर पाये। कालिदास का काव्य लास्य–विलास की जीवन धारा में प्रवाहित था। काव्यतत्त्व संविधान की दृष्टि से उनके काव्यो मे अनेक प्रकरण ऐसे है जो चोटी के हैं नि.सन्देह कला प्रयोग के हस्तलाधव मे कालिदास अद्वितीय है।

---

1 सस्कृत साहित्य का इतिहास – महेश चन्द्र प्रसाद

यद्यपि कुमारदास ने कालिदास की शुद्ध वैदर्भी रीति का सम्यक् रूप से अनुधावन कर अपने काव्य का पोषण किया है लेकिन हू–ब–हू कालिदासीय प्रतिभा का अपने काव्य में वर्णन नहीं कर सके।[1] कुमारदास ने कविताकामिनी को प्रसाद और माधुर्य गुणों से सुसज्जित कर पाठको के समक्ष काव्यकला की चमत्कृति का प्रदर्शन किया। शब्द सौष्ठव और पदविन्यास मे जिस सौन्दर्य का सञ्चार हुआ है। उसका तो वर्णन करना अशक्य है।

यह तो सभी को मालूम है कि कविवर कुमारदास कालिदास के उत्साही प्रशसक थे। रघुवंश के 12वे सर्ग मे 'जानकीहरण' प्रसङ्ग मे तथा कुमारदास के दशवें सर्ग मे उपस्थित जानकीहरण के प्रसङ्ग मे तुलना करने पर निःसन्देह रूप से सिद्ध होता है कि उन्होंने शैली तथ विषय के सामान्य निर्वाह मे कालिदास का खुलकर अनुकरण किया है।

भाषा शैली के उक्त तुलनात्मक वर्णनो का पर्यवेक्षण करने के उपरान्त यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि कविवर कुमारदास पर कालिदास का सर्वातिशायी प्रभाव छाया हुआ था। इसके अलावा कुमारदास ने अपने कथा प्रसङ्गो मे अपनी सूझ–बूझ का अच्छा अवसर प्रदर्शित किया है यद्यपि रमणीय नवीनता उपेक्षणीय है परन्तु कथानक मे प्राप्त होने वाले वर्णन के अनेक अवसरो का सदुपयोग वे बडे आह्लादपूर्ण ढग से करते है। प्रथम सर्ग मे राजा दशरथ, उनकी पत्नियो तथा अयोध्या के कवित्व पूर्ण चित्र, विचित्र प्रसग हमें प्राप्त होते है। ऐसे ही दृष्टान्त रघुवंश मे भी यथावत निर्दिष्ट है– देखिए –

तृतीय सर्ग मे दशरथ की अपनी पत्नियो के साथ रमण क्रीडा का क्या ही श्रृङ्गारिक दृष्टान्त कुमारदास ने प्रस्तुत किया है–

पातु सुदत्या वदनारविन्दमादाय दृष्टो ललनाभिरीश।
अपुष्परेणु व्यथितेऽपि तस्याश्चिक्षेप नेत्रे मुखगन्धवाहम्।। जानकी0– 3/19

ठीक इसी के समतुल्य रघुवश के अयोध्यापुरी का वर्णन देखिए–

"निववृते स महार्णवरोधस· सचिव कारितबालसुताञ्जलीन्।
समनुकम्प्य सपत्नपरिग्रहाननलकानलकानवमा पुरीम्।।" रघुवश – 9/14

इस प्रकार कुमादास के अनेको उदाहरण कालिदास की शैली से मिलते–जुलते प्रतीत होते है। जिनका सम्यक् वर्णन उपर्युक्त किया गया। रामायण की सरल अलङ्कृत शैली ने महाकवि कालिदास, अश्वघोष, कुमारदास इत्यादि महाकवियो को पूर्णरूप से प्रभावित किया। ठीक यही स्थिति कुमारदास की भी थी कि इन्होने अपने पूर्ववर्ती भारवि, भट्टि, प्रवरसेन इत्यादि कवियो से प्रेरणा प्राप्त करके उन्हीं के बताये मार्ग पर चलना श्रेयस्कर समझा।[1]

कविवर कालिदास ने अपने कथानको का बीज आख्यानो से अर्जित किया तथापि रचना कौशल के कारण उनमे नवीन तथा मर्मस्पर्शी चमत्कार उत्पन्न हो गया है। इनकी कृतियों मे सस्कृत काव्यशैली का जो रूप प्रस्फुटित हुआ है उसका वर्णन अवर्णनीय है। यही भाव कुमारदास के लेखनशैली मे दृष्टिगत होता है। जिसका भलीभाति अनुधावन करके कालिदास के कट्टर अनुयायी बन गये।[2]

कालिदास के परवर्ती कवियो ने काव्य का उद्देश्य वाह्य शोभा अर्थात् अलङ्कार श्लेषयोजना तथा शब्दविन्यास चातुरी तक ही सीमित कर दिया[3] जबकि पूर्ववर्ती कवियो ने भावपक्ष के वर्णन मे अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा को प्रकाशित कर दिया। इस प्रकार कवियो के प्रधान लक्ष्य मे अतर आ गया अर्थात् काव्य का विषय गौण हो गया तथा भाषा और शैली को अलङ्कृत करने की कलाप्रधान हो गयी। ठीक यही भाव कालिदासीय वैदर्भी का सम्यक् अनुकरण करने से इनके काव्य मे प्रसाद और सुकुमारता के साथ–साथ शब्द सौष्ठव का सौन्दर्य दृष्टिगत होता है साथ मे छन्दो का नाद सौन्दर्य उसकी गुणवत्ता मे वृद्धि कर उसके चमत्कार में चार चॉद लगा देता है। ऐसा ही एक अपूर्व सौन्दर्य राम की नटखटलीला में विद्यमान है–

> न स राम इह क्वयात इत्युनुयुक्तो वनिताभिरग्रत.।
> निजहस्तपुटावृताननो विदधेऽलीकनिलीनमर्भक ।। जानकी0– 4/8

"राम यहॉ नही है, वह गया कहॉ? इस प्रकार सामने ही ढूँढती हुई स्त्रियो से पूंछे जाने पर दोनों हाथो से अपना मुख ढककर बालक उनसे लुकाछिपी खेलता रहा।"

---

1 सस्कृतसाहित्येतिहास– आचार्य श्री रामचन्द्र मिश्र

2. जानकीहरण – 9/6 देखिए – शाकु0 4/18 कालिदास

3 सस्कृत वाड्मय का विवेचनात्मक इतिहास – डा0 सूर्यकान्त

कविवर कालिदास की पद पक्ति पर चलने के बाद भी कुमारदास की रचना मे उच्चकोटि की कल्पना बलवती नही हुई। फिर भी हम यह कह सकते है कि वे वर्ण्य विषय के वर्णन मे निष्णात् तथा उच्चकोटि के प्रतिभाजन्य दृष्टिकोणो को ग्रहण किये हुए थे। कुमारदास का अनुप्रास एव यमक प्रयोग चारूता की सीमा को स्पर्श करता है वहॉ माघ इत्यादि के एक ही वर्ण की निरन्तर आवृत्ति से प्रभावित होकर नीरसता नही प्रकाशित होती। तात्त्पर्य यह है कि जैसे– भारवि, भट्टि, माघ के अनुप्रास और यमक अलङ्कार के चित्रण पाठक को एक सुनसान वन मे ले जाकर नीरसता का भाव जाग्रत कराने लगते है वैसे कुमारदास के अलङ्कार प्रसङ्गो मे यह भाव नही है। उनको यमक और अनुप्रास पर पर्याप्त स्नेह विकसित होता हुआ दिखाई देता है। इसके अलावा यमक शब्दालङ्कार भी उन्हे एक सीमित मात्रा में ही प्रयोग होना श्रेयस्कर प्रतीत होता है। कविता मे प्रसाद और माधुर्य युक्त शैली द्वारा विविध छन्दो को लयात्मक ढग से प्रयुक्त कर अपने कवित्वपूर्ण प्रसङ्गो पर जगमगाहट पैदा कर देते है। ऐसे रङ्ग–बिरङ्गे दृष्टिकोणो को विविध आभूषणो से बना ठनाकर अपनी काव्यात्मकता को स्फुटित करने मे कुमारदास ही निपुण है और में यह भाव कहॉ? देखिए ऐसा हो भाव–

"कैतवेन कलहेषु सुप्तया स क्षिपन् वसनमात्तसाध्वस ।
चोर इत्युदित हासविभ्रम सप्रगल्भमवखण्डितोऽधरे।। जानकी0–8/52

"प्रणयकलह मे बहाना बनाकर सोयी हुई उसके वस्त्र का कुछ डरे–डरे से प्रेमी ने जैसे ही स्पर्श किया, वैसे ही उसने 'चोर' कहकर विभ्रम युक्त हास के साथ प्रगल्भतापूर्वक उस प्रेमी के निचले ओठ पर काट लिया।"

महाकवि कुमारदास पाण्डित्य के मूर्धन्य न होते हुए भी प्रकाण्ड वैयाकरण वेत्ता थे। इसमें कोई संशय की बात नही है– जानकीहरण में कवि के व्याकरण के प्रचुर प्रयोग मिलते है। कुमारदास ने अपने व्याकरण को असाधारण शब्दो के लिए छान डाला। एक स्थान पर उन्होंने पाणिनि के एक शब्द को अपने काव्य में अच्छा बना दिया है–

दम्भाजीवकमुत्तुङ्गजटामण्डितमस्तकम्।
कञ्चिन्मस्कारिण सीता ददर्शाश्रममागतम्।। जानकीहरण – 10/76

"तब देवी सीता ने एक भिक्षुक को, जिसका मस्तक लम्बी जटा से परिवष्टित और दम्भ ही जिसकी जीविका का साधन था, आश्रम मे आया हुआ देखा।"

व्याकरण और कोश के लिए कुमारदास की शैली का विद्वत्तापूर्ण सौन्दर्य उनके काव्य को विशेष महत्ता प्रदान करता है शैली की दृष्टि से जानकीहरण मे रघुवश से अधिक कृत्रिमता है सम्भवतः किरातार्जुनीयम् से भी अधिक है। गौणी और पाञ्चाली रीतियो का समाश्रयण कर ही कुमारदास आगे बढे, क्योकि इसके पहले कहा ही जा चुका है कि 'जानकीहरण' काव्य की शैली भारवि और माघ के बीच की शैली है तथा उनके काव्य मे भारवि और माघ का वर्णन कौशल भी समन्वित है इनका काव्य इतना भी गूढ नही जैसे वासवदत्ता का गद्य। शब्दों की साधारण क्रीडा ही इसके काव्य में सर्वत्र पायी जाती है।

"अथ स विषमपादगोपितार्थ जगदुपयोगवियुक्त भूरिधातुम्।

बहुतुहिननिपातदोषदुष्ट गिरिमसृजत्कुकवेरिव प्रबन्धम्।। जानकीहरण – 1/89

उक्त पद्य मे पाद, तुहिन, धातु और निपात मे शाब्दी क्रीडा है। इस प्रकारके परिमार्जित सुष्ठ प्रयोग करने मे यदि हम उन्हें एक प्रामाणिक रचनाकार माने तो कोई भी अत्युक्ति नही होगी।

वाक्य निर्माण के प्रसङ्ग में कुमारदास ने क्रिया विशेषणात्मक कर्मप्रवचनीय, पूर्वपदो का, समासो का प्रयोग, लिट्लकार का भववाच्य मे प्रयोग और 'मुनिनाजोषमभूयत' जैसा विचित्र भाववाच्य का प्रयोग खुलकर किया है। सर्वत औरउभयत· एक साथ कर्मकारक व्याकरण सङ्गत है। 'कालस्य कस्यचित्' का भी प्रयोग व्याकरण सम्मत है, परन्तु 'समाः सहस्त्राणि' का प्रयोग असावधानी से किया हुआ जान पडता है। इसके अलावा 'दोषन्' शब्द के तृतीया मे दोषा गह प्रयोग अन्यत्र अदृष्ट है। पाद के आरम्भ मे वतु तथा इव का प्रयोग नितान्त अयुक्त है। जहॉ तक 'खलु' का सम्बन्ध है उसे तो 'वामन' ने भी अनुचित ठहरायाहै। कविवर कुमारदास ने वाल्मीकि से तनुच्छद (पङ्ख) और कालिदास से अवर्ण (लज्जा) तथा अजर्य (मैत्री) का ग्रहण भारवि से किया। किसी बात को सीधे न कहकर उसे प्रकृत प्रसङ्गो से सम्बद्ध कर कहना इनका

अपना भाव है। इसी लिए वह अपने को कई स्थानो पर कुमारदास के स्थान पर 'कुमार परिचारक' कह देते है।

कुमारदास ने अपने काव्य मे छन्दो का प्रयोग बडी निपुणता से किया है, परन्तु भारवि के समान परिवर्तित होते हुए छन्दो के प्रयोग का विस्तार न करके उन्होंने इस विषय मे अधिकतर कालिदास के ढग का ही अनुकरण किया है। दूसरे, छठे और दशवे सर्ग मे श्लोक छन्द का क्या ही भाव भीना दृश्य उपस्थापित किया है? जैसे–

वृहस्पतिदेव भगवान विष्णु के पास जाकर दैत्य रावण के अत्याचारो का वर्णन किन शब्दो मे करते है उसी का प्रसङ्ग है–

मानिनामग्रणीरस्ति पुलस्तिसुत सम्भव ।
दर्पोद्धृतजगद्रक्षो रक्षोवायो दशानन ।। जानकीहरण– 2/35

"पुलस्त्य के पुत्र (विस्त्रवा) से उत्पन्न, घमण्डियो मे सबसे आगे बढा हुआ, राक्षसो के स्वामी, रावण ने अपने दर्द से विश्व की शान्ति भग कर दी है।"

इसके अलावा एकादश सर्ग मे वर्षावर्णन को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए द्रुतविलम्बित छन्द का सम्यक् प्रयेग किया है। वैसे ही कालिदास ने भी नवे सर्ग के वसन्तवर्णन को भी यमक और द्रुतविलम्बित छन्द से सजा संवारकर काव्य को नाद सौन्दर्य के आवरण से परिवेष्टित किया।

"अरूणरागनिषेधिभिरंशुकैः, श्रवणलब्धपदैश्च यवाङ्कुरैः।
परभृताविरूतैश्च विलासिनः स्मरबलैरबलैकरसा कृता.।। रघुवंश–9/43

इसी प्रकार कुमारदास ने तेरहवे सर्ग में प्रमिताक्षरा, पहले, तीसरे और सातवे सर्ग मे इन्द्रवज्रा की कोटि का उपजाति, चौथे मे वैतालीय, आठवे मे रथोद्वता, तीसरे के कुछ पद्यो मे वंशस्थ का साम्राज्य बिछाया है। गौण रूप से प्रयुक्त छन्दो मे शार्दूलविक्रीडित शिखरणी, स्त्रग्धरा, पुष्पिताग्रा, सोलहवे सर्ग मे प्रहर्षिणी, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, मालिनी आदि है, जैसे–

"न ददर्श मारूतिगतामुदितेनयनस्य वारिणि दिश नृहरिः।
न चकार राजदुहितुश्च शुचा गुणकीर्तितानि विधृते वचने।।" जानकी0–13/5

उक्त पद्य मे कुमारदास ने प्रमिताक्षरा छन्द मे राम की विकलता का वर्णन इतने हृदयोद्गारक शब्दो मे किया है कि शायद पाठक को भी हठात् अश्रु छलक पडे। इस प्रकार उक्त वर्णनो को देखकर यह भलीभाति आभास होता है कि कविवर कुमारदास को छायाचित्र के माध्यम से हृदयग्राही रूप प्रस्तुत करने की कला का सम्यक् ज्ञान था। वर्णन और आख्यान का यथोचित रूप वैसे ही सन्निविष्ट है जैसे कालिदास की रचनाओ मे। छन्दो में दक्षता प्राप्त थी। जिससे काव्य मे नाद सौन्दर्य से युक्त सगीत की अभिव्यक्ति तो मिलती थी ही, साथ ही कवि का अपूर्व माधुर्य भी परिलक्षित होने लगता था।

इस प्रकार हम देखते है कि कालिदास का अनुकरण करते हुए ही कुमारदास अपनी रचना मे अभिनव चमत्कार का सयोजन करने मे सफल हुए है–

पुष्परत्न विभवैर्यथेप्सित सा विभूषयति राजनन्दने।

दर्पण तु न चकांक्ष योषितां स्वामिसम्मतफल हि मण्डनम्।। जानकी०–8/42

"राम के इच्छानुसार वह राजकुमारी सीता पुष्पो और रत्नों के विभव से अपना अलङ्करण करती थी, वह दर्पण की भी इच्छा नही करती थी, क्योंकि स्त्रियो के मण्डन की सफलता अपने पति को प्रसन्न कर देने मे है।"

कुमारदास के इस पद्य का भाव कालिदास के 'कुमारसम्भव' महाकाव्य में उल्लिखित 'प्रियेषु सौभाग्य फला हि चारूता'[1] से पूर्णतया प्रभावित प्रतीत होता है। कुमारदास की कोमल काव्य प्रतिभा मे ऐसे अनेक प्रसङ्ग है जिन पर भारवि की अलङ्करण प्रियता का चमत्कार तो दिखता है, साथ ही माघ की शब्दचातुरी भी परिलक्षित होती है। जैसे शरदृऋतु का वर्णन है–

प्रवासमालम्बय घनागमश्रिय· पयोधरस्पर्श वियोगनिस्पृह।

महीधर· स्व शिखरावसङ्गिन त्यजत्यसौ मत्तशिखण्डि शेखरम्।। जानकी0 12/13

देखे किरात मे– बारहवें सर्ग के चौथे श्लोक को–[2]

---

1 कुमार सम्भव – 5/1
2 देखे – किरातार्जुनीय – 12/4

समय एव करोति बलाबलं प्राणिगदन्त इतीव शरीरिणाम्।
शरदि हसरवा परूषीकृता स्वरमयूर मयूरमणीयताम्।। माघकाव्य – 12/13

उक्त प्रसङ्गो को देखकर यह सहज ही मालूम होता है कि पग–पग पर रघुवश, कुमारसम्भव की पदावली तथा वाक्यविन्यास का स्पष्ट अनुकरण कुमारदास ने किया। काव्यप्रतिभा की इस होड मे वह प्रौढालङ्कृत भारवि के चतुर–चितेरे न बनकर कालिदास के पीयूषप्रवाह की अलौकिक आनन्दवारिधि मे ही बह जाते है। कुमारदास की साहित्यवधू प्रसाद एव माधुर्य गुणो से ओतप्रोत है, यह भाव कालिदास के अनुकरण से ही इनमे जाग्रत हुआ। शब्दमाला मे अद्भुत कमनीयता और रसमयता विराजमान है। कुमारदास की अमरकीर्ति जिस पर अवलम्बित है वह रघुवश ही है। इतना ही नही कुमारदास की काव्यप्रतिभा का निकष तो वाल्मीकि रामायण ही है जो कालिदास क्या समग्र महाकाव्यो की परम्परा का उपजीव्य है। देंखे–

"एकत्वया साधयताऽपि लक्ष्यं नीत विनाश त्रितय निराग·।
मच्चक्षुषा कल्पितदृष्टिकृत्यौ वृद्धौ वने मे पितरावह च।।" जानकीहरण – 1/77

श्रवण कुमार राजा दशरथ से कह रहा है कि– 'आपने एक ही निशाने से तीन निरपराध व्यक्तियों की जान ली। मेरे वृद्धमाता–पिता की और मेरी, जिसकी ऑखों ही के द्वारा वे इस वन मे देखते थे।'

ऐसा ही प्रयोग बाल्मीकि रामायण मे भी मिलता है जिससे प्रतीत होता है कि कविवर कुमारदास पर रामायण का भी सर्वव्यापी प्रभाव था। देखिए रामायण का प्रसग–

"एकेन खलु बाणेन मर्मण्यभिहिते मयि।
द्वाबन्धौ निहतौ वृद्धौ माताजनयिता च मे।।" वा०रामा० अयो० – 63/40

कुमारदास ने रस, अलङ्कारादि से प्रभावित होकर जिन वर्णनों का कमनीय रूप प्रस्तुत किया, उन सभी मे कालिदास की ही शैली का अनुकरण परिलक्षित होता है। इतना ही नहीं कुछ एक स्थलो में तो भारवि और माघ के गौडी और पाञ्चाली से समन्वित भावों को भी अपनी काव्य धारा मे लपेट लिये है।[1] लेकिन अनिर्वचनीय

---

1 सौन्दर्यशास्त्र – हरद्वारी लाल शर्मा – भूमिका भाग

और कर्णकुहरो को आह्लादित करने वाले कालिदास के प्रभाव मे तो पूरी तरह बह ही गये है। इसलिए कवियो ने जो प्रशस्ति 'जानकीहरण कर्तुं' दी उसका साफ–साफ शब्दो में निदर्शन प्रस्तुत किया गया।

ऐसा ही भाव चौथी पांचवी शती0 की कलाकृतियो मे भी परिलक्षित होता है। क्या संगीत, क्या स्थापत्य, क्या वास्तुकला, क्या मूर्तिकला, क्या साहित्य सभी में अलङ्करण की बेसुरी झङ्कृत प्रवृत्ति प्रतिविम्बित होती है। जिस समय हूण, यवन, शक इत्यादि विदेशी जातियो के आक्रमण हुए थे, उस समय कला का जो जीवन्त रूप था वह नही रह पाया साथ ही ऐसे दौर मे कला मे भी परिवर्तन देखा जाने लगा। यह युग का माहात्म्य था। अलङ्करण की अभिव्यक्ति इतनी साजसज्जा पूर्ण ढग से होने लगी कि कवियों ने भी अपने विम्बविधान को सजाना आवश्यक समझा। नही तो जीवन का लक्ष्य ही नही पूरा होता। इस लक्ष्य हेतु कवियो ने (भारवि, भट्टि, कुमारदास, ने भी) अलङ्करण की बहुआयामी प्रवृत्ति को अपनाते हुए सर्वविध श्रृङ्गारों से उसमे जीवन्त रूप डाला। जिससे सजीवता तथ स्वाभाविकता का तो हनन हो गया तथा वह कृत्रिमता के आवरण से आवेष्टित हो लोगो के सामने प्रकट होने लगी। कला का कार्य ही यही होता है कि वह अपने समय के सामाजिक जीवन की तो अभिव्यक्ति करे साथ ही उसका बहुआयामी रूप भी प्रस्तुत करे, क्योकि कला से ही उस युग की शिल्प विद्या उस युग का वैभव उस समय प्रचलित शैली का भाव दृष्टिगोचर होता है।

❐

# चतुर्थ अध्याय

**महाकवि माघ** – कालिदासोत्तर काल मे सस्कृत कविता का कलापक्ष क्रमश. समुन्नत होता गया, और भावपक्ष शिथिलता की ओर प्रवृत्त होता गया। महाकवि भारवि के काव्य–कलेवर मे कलावादिता का जो स्वर मुखरित हुआ और जो एक नई शैली का जन्म हुआ उसको परवर्ती कवियो ने बडी सहजता पूर्वक स्वीकार कर उसमे अपने काव्यकौशल के सौन्दर्य को उभारने का प्रयत्न किया। यह नवीनता का युग था, जिसने पण्डित जनो को वाहवाही के कटघरे मे लाने का प्रयास किया तथा इस प्रयास मे प्रत्येक कवि अपने पूर्ववर्ती कवि को अपने काव्यकौशल के चमत्कार–युक्त विश्लेषण से पछाडने की कोशिश करने लगा। समाज ने इस शैली को स्वीकार करने मे अपनी अभिरूचि जताई, जो पण्डित जनो के लिए प्रेरणा स्रोत बन गई।

महाकवि माघ ने अपने काव्यकलेवर मे अपमे पूर्ववर्ती भारवि, भट्टि कवियो की विभिन्न विशेषताओ को अङ्गीकार करके सहर्ष अपनाया और उन्हें अत्यधिक प्रौढता प्रदान की। अपनी विचित्रतावादी अलङ्कृत एवं चामत्कारिक काव्य–शैली के स्पृहणीय गुणो के कारण माघ तथा माघ–काव्य को सस्कृत साहित्य में जो लोकप्रियता प्राप्त हुई उसका वर्णन करना अवर्णनीय है।[1]

महाकाव्यों की इस सयुक्त महात्रयी मे शिशुपालवध महाकाव्य का अपना अलग ही महत्त्व है। किरातार्जुनीयम् के रचयिता महाकवि भारवि ने विद्वत्ता प्रदर्शन के लिए जिस शैली मे लेखन किया, माघ ने भी पूर्ण रूप से उसका अनुपालन किया, माघ ने भी पूर्णरूप से उसका अनुपालन किया। इतना ही नही, माघ ने वर्ण्यविषयो के प्रतिपादन में भी भारवि का अनुकरण किया है।

महाकवि माघ ने उसी चामत्कारिक शैली का प्रयोग करते हुए 'शिशुपालवध' जैसी लघुकथा को अपनी विशेष अलङ्कृत एवं चामत्कारिक शैली द्वारा अतिरञ्जित करते हुए बीस स्कन्दों में उसकावर्णन किया है जो कि सबके सामर्थ्य के बाहर है।

---

1 सदर्भ संख्या – संकृत काव्यकार – हरिदत्तशास्त्री – 403

महाकाव्यो के विविध आवश्यक तत्त्व पर्वत, नदिया, समुद्र, वन, सूर्योदय, ऋतु, प्रभात, सायकाल आदि का सौन्दर्यपूर्ण वर्णन करते हुए उन्होने काव्य मे रोचकता ही नही पैदा की बल्कि उसके काव्य–कलेवर को भी बढा दिया।

माघकाव्य का प्रधान रस वीर है। महान् आततायी एव नृशस शिशुपाल के वध के लिए उपेन्द्र के पास इन्द्र का सन्देश लाकर महर्षि नारद ने काव्य का बीज वपन किया है। काव्य का प्रमुख प्रयोजन क्रूर चेदिराज शिशुपाल का सहार है। युधिष्ठिर का राजसूययज्ञ वर्णन तो उसका आनुषगिक कार्य है। काव्य के प्रत्येक सर्ग इस चरम लक्ष्य की ही प्राप्ति के लिए प्रस्तुत किये गये है। अन्ततोगत्वा श्रीकृष्ण एव शिशुपाल का युद्ध इष्टसिद्धि की प्राप्ति कराकर काव्य की इतिश्री करता है।

महाकवि माघ के जीवनवृत्त के विषय मे यद्यपि ज्यादा विस्तार से कुछ भी नही प्राप्त होता है। माघ ने स्वय अपना स्वल्प वश परिचय अपने ग्रन्थ के अन्तिम सर्ग मे उल्लिखित पाच श्लोको मे दिया है।

सर्वाधिकारी सुकृताधिकार श्रीवर्मलाख्यस्य वभूव राज्ञ.।
असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपर सुप्रभदेवनामा।। 1–

कालेमित तथ्य मुदर्कपथ्य तथागतस्येव जन सचेता।
विनानुरोधात् स्वहितेच्छयैव महीपतिर्यस्य वचश्चकार।। 2–

तस्या भवद्दत्तक इत्युदात्त. क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः।
यं वीक्ष्य वैयासमजातशत्रोर्वचो गुणग्राहि जनैः प्रतीये।। 3–

सर्वेण सर्वाश्रय इत्यनिन्द्यमानन्दभाजाजनितं जनेन।
यश्च द्वितीयं स्वयमद्वितीयो मुख्य. सता गौणमवापनाम।। 4–

श्रीशन्दरम्यकृत सर्ग समाप्तिलक्ष्म लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु।
तस्यात्मजः सुकविकीर्ति दुराशयाद. काव्य व्यधत्त शिशुपालवधाभिधानं।। 5–

कविवशवर्णन– शिशुपालवध

महाकवि माघ का जन्म विषयक वर्णन शिशुपालवध की कुछ हस्त लिखित प्रतियो में मिलता है– "इति श्री भिन्नमालवास्तव्य दत्तकसूनोर्महावैयाकरणस्य माघस्यकृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये————————"।

महाकवि माघ के काल निर्धारण मे सबसे अधिक भूमिका और विवाद का निर्वाह करने वाला निम्न श्लोक है।[1] कुछ विद्वानों का मत इससे भिन्न है। उनका कहना है कि डा0 कीलहार्न का वसतगढ़ नामक स्थान से एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जो वर्मल नामक राजा द्वारा लिखा बताया जाता है जिसका समय 625ई0 है। इन्ही वर्मल के आश्रित सुप्रभदेव थे जिस कारण माघ का समय सातवी शता0 का उत्तरार्ध मानना समीचीन प्रतीत होता है– अन्त· साक्ष्य एव बहि साक्ष्य दोनों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि माघ का समय सप्तम शती0 का उत्तरार्ध मानना ही श्रेयस्कर है।

हमारा मुख्य प्रयोजन काव्यकलेवर मे अपनायी गई शैली एव विभिन्न काव्यगत उद्देश्यो से है न कि इनके जन्मविषयक मतमतान्तरो से इसलिए इस प्रसङ्ग मे हम अधिक विस्तार से न जाकर स्वल्प वर्णन करना ही उचित समझेगे जो हमारे लिए प्रासङ्गिक है।

कविवर माघ ने जिस कथानक को आधार मानकर अपने महाकाव्य शिशुपालवध की रचना की। वह कथा महाभारत के सभापर्व मे (अध्याय 33 से 45 तक) यथा श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध मे वर्णित है। इसके अलावा पद्मपुराण, अग्निपुराण, विष्णुपुराण में भी यह कथा कुछ व्युत्क्रम रूप में प्राप्त होती है।

माघ ने अपने इसी ग्रन्थ मे अपने पूर्ववर्ती सभी कवियों (कालिदास, अश्वघोष, भारवि, भट्टि) यथा कालिदास से काव्य–सौन्दर्य, भारवि से अर्थ गौरव, और भट्टि से व्याकरण पाटव का सकलन किया। माघ की विशेषता यह है कि उन्होंने तीनो गुणों का मणिकाञ्चन संयोग प्रस्तुत किया।

महाकवि भारवि ने जिस अलङ्कृत शैली का शिलान्यास किया था महाकवि माघ के काव्य मे उसका उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। यद्यपि माघ असाधारण मेधावी तथा अक्षुण्ण पाण्डित्य शक्ति से सम्पन्न थे, किन्तु अलङ्कार तथा चामत्कारिकता के

---

1 अनुत्सूत्र पदन्यासा सद्वृत्तिःसन्निबन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा। शिशुपालवध – 2/112

कारण उनकी भावुकता लुप्त हो गयी है, तथा उसका स्थान बुद्धि चातुर्य व कृत्रिमता ने ले लिया है। माघ भारवि की अपेक्षा अधिक कलाबाजी करने मे निपुण है तथा भट्टि से किसी कदर कम पण्डित नही है, किन्तु वे जितने कलाबाज और पाण्डित्य की चामत्कारिता से परिपूर्ण है उतने ही वे कालिदास की भाव–तरलता से हीन है। माघ ने भारवि की कलापूर्ण शैली को और अधिक अलङ्कृत तथा प्रौढ बनाने का प्रयत्न किया। श्रीहर्ष जैसे कोरी दूर की कौडी माघ मे कम मिलती है। श्रीहर्ष मे पदलालित्य है पर माघ में भी पदलालित्य की कमी नहीं है किन्तु माघ का पदलालित्य वैदर्भी या पाञ्चाली रीति वाला पदलालित्य न होकर गौडी वाले विकटबन्ध का पदलालित्य है।

## शिशुपालवध पर पूर्वकालीन कवियों तथा काव्यों का प्रभाव :–

विस्तृत एव सर्वाङ्गीण चित्रण का वर्तमान रूप हमारे लिए पाश्चात्य साहित्य की देन है जिसमे प्रौढ़ पण्डितों ने अपने एकाङ्गी दृष्टिकोण से साहित्य को समृद्ध एव गौरवान्वित किया। महाकवि माघ के विषय मे भी ऐसी ही कुछ त्रुटिया उपलब्ध होती है जो पुरालोचको के विचारो का अनुकरण करती हुई प्रतीत होती है। एक अत्यन्त प्रसिद्ध उक्ति है :–

उपमा कालिदास्य भारवेरर्थगौरवम्।<br>
दण्डिन: पदलालित्यम् माघे सन्ति श्रृयोगुणा:।। कवि प्रशस्ति

शिशुपालवध पर कालिदास की कविता का प्रभाव अनेक स्थलो पर दृष्टिगोचर होता है। शिशुपालवध के एकादश सर्ग का प्रभातवर्णन, रघुवश के पंचम सर्ग के प्रभात वर्णन से निश्चित रूप से प्रभावित है। कुलगुरू कालिदास के रघुवश का प्रभात वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त अर्थात् केवल दस पद्यो में होते हुए भी अत्यन्त मार्मिक है। परन्तु महाकवि माघ का प्रभात वर्णन अत्यन्त विस्तृत (पूरे एकादश सर्ग के सरसठ पद्यो मे) एवं अत्यधिक अलङ्कृत (कृत्रिम) है। दोनों मे ही हाथी तथा घोडे आदि के निद्रात्याग का स्वाभाविक वर्णन है। ऐसे ही कुछ स्थल निम्नवत् है :–

शय्या जहत्युभयपक्षविनीतनिद्रा स्तम्वेरमा मुखरश्रृङ्खलकीर्षणस्ते।
येषा विभान्ति तरूणारूणरागयोगाद भिन्नाद्रि गौरिकतटाइवदत्तकोशा ।।
दीर्घेष्वमी नियमिता पटमण्डपेषु निद्रा विहाय वनजाक्ष[1] वनायुदेश्या ।
वक्त्रोष्मणामलिनयन्ति पुरोगतानि लेह्यानि सैधवशिलाशकलानि वाहाः ।।

रघुवश 5/72–73

क्षितितटशयनान्तादुत्थित दानपङ्क–प्लुतबहुलशरीर शाययत्येष भूय ।
मृदुचलदपरान्तादीरितान्दूनिनाद गजपतिमधिरोह पक्षकव्यत्ययेन।।
परिशिथिलतकर्णग्रीवमामीलिताक्षः क्षणमयमनुभूय स्वप्नमूर्ध्वज्ञुरेव।
रिरसयिषति भूयः शब्यमग्रे विकीर्णं पटुतरचपलोष्ठ. प्रस्फुरत्प्रोथमश्व ।।

शिशुपाल 11/7, 11

उक्त वर्णन को देखने से यह प्रतीत होता है कि कालिदास का व्यञ्जनाशक्ति का वर्णन बेजोड है, जबकि माघ का वर्णन उससे अधिक विलासमय है। यहॉ दोनो का भाव साम्य दर्शनीय है। इसके अतिरिक्त अन्य कई स्थल है जिन पर कालिदास का भरपूर प्रभाव स्पष्टतया दिखाई पडता है।

यद्यपि इस काव्य परम्परा मे कालिदास के समय से ही कवियो का ऐसा वर्ग हो गया था जो काव्य में शाब्दीक्रीडा तथा पाण्डित्य को महत्त्व प्रदान करता था। ऐसे कवि पण्डितो के लिए ही कालिदास को रघुवंश के नवम् सर्ग की रचना करनी पडी। यह प्रवृत्ति भारवि और माघ से होती हुई श्रीहर्ष में चरमावस्था को प्राप्त हुई। महाकवि माघ का लक्ष्य रहा है भारवि की कृति को सभी दृष्टि से पीछे छोड देना।[1]

महाकवि माघ मुख्यतया भारवि के प्रतिस्पर्धी है। उनकी चमत्कारप्रियता की होड भारवि को पीछे पछाड़ने की है। इनकी चमत्कारप्रियता ने ही पाण्डित्यविहीन कविता को काव्य के प्राङ्गण से हटा ही दिया और इस कदर पाण्डित्य का भूत सवार हुआ कि कोमलकान्त पदावली से परिपूर्ण कविता को पाण्डित्य ने आक्रान्त कर लिया। महाकवि भारवि कालिदास की अपेक्षा 'पाण्डित्य के प्रति अधिक अनुरक्त

---

1. शिशुपालवध – देव नारायण मिश्रा – पृष्ठ 33

है। उनका महाकाव्य किरातार्जुनीय उनकी बहुज्ञता और बहुश्रुतता का स्पष्ट परिचायक है। इसके अलावा माघकाव्य के विस्तृत तथा सरस वर्णन उसकी उत्कृष्टता का एक मुख्य कारण है। उनके वर्णनो का सजीव एवं प्रभावशाली होगा।

महाकवि माघ, भारवि के आवश्यकता से अधिक ऋणी है। माघ के 'शिशुपालवध' की कथावस्तु भारवि के किरातार्जुनीय की कथावस्तु की प्रतिमूर्ति कही जा सकती है। इतिवृत्त की सजावट, सर्गों के विभाजन और वर्ण्यविषय के उपस्थान मे माघ प्रायः भारवि के पदचिह्नो पर चलते देखे जाते है। इनके काव्यो के अनुशीलन से यही ज्ञात होता है कि महाकवि माघ मानो भारवि के काव्य का सम्बल लेकर ही साहित्यिक क्षेत्र मे प्रविष्ट हुए और इसी का परिणाम है कि राजनीतिक कवि भारवि के अनुकरणकर्ता माघ का शिशुपालवध भी राजनैतिक काव्य बन गया। माघ ने भारवि के प्रत्येक पद का अपने काव्य मे अनुकरण किया है और अपने काव्य को भारवि के काव्य से उत्कृष्ट बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया है और वे इसमे सफल भी हुए है।[1] इसलिए भारवि और माघ दोनो एक ही क्षेत्र के युगप्रवर्तक महाकवि कहे जा सकते है, जिससे विभिन्न स्थलो मे 'किरातार्जुनीय' का 'शिशुपालवध' ऋणी प्रतीत होता है। देखिए –

| | **किरातार्जुनीयम्** | | **शिशुपालवध** |
|---|---|---|---|
| 1 | इस महाकाव्य की कथा महाभारत के वनपर्व से ग्रहीत की गयी है। | 1. | इस महाकाव्य की कथा महाभारत के सभापर्व से ली गयी है। |
| 2 | किरातार्जुनीय सम्पूर्ण रूप से महाकाव्य के लक्षणो से युक्त है। | 2. | शिशुपालवध कथा भी सम्पूर्ण रूप से महाकाव्य के लक्षणो से युक्त है। |
| 3. | भारवि शिवभक्त है अतः उन्होने अपने काव्य के लिए शिव सम्बन्धी घटना को लिया है।[2] | 3 | माघ विष्णु भक्त है अतः उन्होने अपने काव्य के लिए विष्णु सम्बन्धी घटना को लिया है "तथा लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारू" कहकर अपने ग्रन्थ का सम्बोधित किया है।[2] |

1 शिशुपालवधम् – श्रीराम जी लाल शर्मा – पृष्ठ – 15

2 विधिसमयनियोगाद्दीप्तिसहारजिह्मां<br>शिथिलवसुमगाधे मग्नमापत्पयोधौ।<br>रिपुतिमिरमुदस्यादीयमान दिनादौ<br>दिनकृतमिव लक्ष्मीस्तवा समभ्येतु भूय.।।<br>किरात 1/46

2. ओमित्युक्तवतोऽथ शार्ङ्गिणइति व्याहृत्य<br>वाचं नभस्तस्मिन्नुत्पतिते पुर सुरमुगन विविन्दो श्रिय विभति।<br>शत्रूणामनिशं विनाशपिशुनः क्रुद्धस्यचैद्यप्रति,<br>व्योमनीवभृकुटीच्छलेन वदने केतुश्चकारास्पदम्।।<br>शिशु0

4 भारवि ने अपने काव्य का आरम्भ श्रीशब्द से किया और प्रत्येक सर्ग के अन्त मे लक्ष्मी शब्द का प्रयोग किया है।

श्रिय कुरूणामधिपस्य पालनी प्रजासु
वृत्ति यमयुड्क्त वेदितुम्।
स वर्णिलिङ्गी विदितः समाययौ
युधिष्ठिर द्वैतवने वनेचर ।।
किरात0 1/1

4 माघ के काव्य का आरम्भ भी श्रीशब्द से होता है और प्रत्येक सर्ग के अन्त मे भी श्री शब्द का ही प्रयोग है।

श्रिय पति-श्रीमतिशासितु जगन्
जगन्निवासो वसुदेव सद्मनि।
वसन्ददर्शावतरन्तमम्बराद्
हिरण्यगर्भाङ्गभुव मुनिं हरि ।।
शिशु0 1/1

5. भारवि का किरातार्जुनीय लक्ष्मीशब्द से अन्त होने के कारण लक्ष्म्यङ्क कहलाता है।

5 माघ का शिशुपालवध श्री शब्द से अन्त होने के कारण श्रयङ्क कहलाता है।

6 भारवि के किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग मे ही युधिष्ठिर वनेचर संवाद, एवं राजनीति विषयक चर्चा।

कृतप्रणामस्य मही महीभुजः
जितां सपत्नेन निवेदयिष्यत.।
न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रिय
प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिण·।।[1]

6. माघ के शिशुपालवध के प्रथम सर्ग मे कृष्ण नारद संवाद एव राजनीतिक चर्चा।

हरत्यघ सम्प्रति हेतुरेष्यत.
शुभस्य पूर्वाचरितैः कृत शुभैः।
शरीरभाजा भवदीयदर्शनं
'व्यनक्ति कालत्रितयेऽपि योग्यताम्।।[1]

7 किरातार्जुनीय में युधिष्ठिर महर्षि व्यास का विधिवत स्वागत करते है।

7 शिशुपालवध मे श्रीकृष्ण देवर्षि नारद का विधिवत् स्वागत करते है।

8. किरातार्जुनीय के प्रथम सर्ग मे यक्ष द्वारा युधिष्ठिर की विपत्तियो को दिखाकर दुर्योधन की समृद्धि का प्रदर्शन करते हुए युद्ध की प्रेरणा है।

विहाय शान्ति नृपधाम तत्पुर,
प्रसीद सन्धेहि वधाय विद्विषाम्।
व्रजन्ति शत्रूनवधूय नि.स्पृहा.,
शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृत ।।[2]

8. शिशुपालवध मे भी प्रथम सर्ग मे नारद द्वारा देवताओं की विपन्नावस्था का प्रतिपादन करके इन्द्र के सन्देश के रूप में युद्ध की प्रेरणा की गयी है

तदेनं मुल्लग्तिशासनं विदेर्विधेहि
कीनाशनिकेतनातिथिम्।
शुभेतराचार विपक्त्रिमापदो
विपादनीया हि सताम साधव.।।[2]

---

1 किरात – 1/2
2 किरात – 1/42

1 शिशुपाल – 1/26
2 शिशुपाल – 1/73

| | | | |
|---|---|---|---|
| 9 | किरातार्जुनीय के पञ्चम सर्ग मे हिमालय का वर्णन यमक द्वारा किया गया है।<br><br>क्षितिनभ सुरलोक निवासिभि<br>कृतनिकेतम दृष्टपरस्परै ।<br>प्रथयितु विभुतामभिनिर्मित,<br>प्रतिनिधि जगतामिवशम्भुना।।[1] | 9 | शिशुपालवध के चतुर्थ सर्ग में रैवतक पर्वत का वर्णन यमक द्वारा किया गया है।<br><br>यत्राधिरूढेन महीरूहोच्चैरून्निद्र<br>पुष्पाक्षिसहस्त्रमाजा।<br>सुराधिपाधिष्ठितहस्तिमल्ललीला<br>दधौ राजतगण्डशैल·।।[1] |
| 10 | किरात के चतुर्थ सर्ग मे शरद् ऋतु का वर्णन क्या ही रमणीय रूप मे प्राप्त होता है।<br><br>"विनम्र शालिप्रसवौधशालिनीरपेतपङ्का<br>ससरोरूहाम्भस ।<br>ननन्द पश्यन्नुपसीम स<br>स्थलीरूपायनीभूत शरद्गुणश्रिय ।।"[2] | 10 | शिशुपालवध के छठे सर्ग मे छहो ऋतुओ का क्रमश· वर्णन अपनी चमत्कारिकता को व्यक्त कर रहा है—<br><br>अथ रिरसुममु युगपद् गिरौ,<br>कृतयथास्वतरू प्रसवश्रिया।<br>ऋतुगणेन विषेवितुमादधे<br>भुवि पदम् विपदन्तकृतसताम्।।[2] |

इस प्रकार इस प्रसङ्ग में वर्णन शैली तथा छन्द प्रयोग की दृष्टि से दोनों महाकाव्यो मे पर्याप्त समानता परिलक्षित होती है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| 11 | किरात के षष्ठ, सप्तम् तथा अष्टम् सर्गों में अप्सराओ और गन्धर्वों की विलास केलियों का विस्तार से वर्णन किया गया है।<br><br>"आमत्तभ्रमर कुलाकुलानि<br>धुवन्नुद्धूत ग्रथितरजांसिपङ्कजानि।<br>कान्तानां गगननदीतरङ्गशीतः<br>सतापं विरमयति स्म मातरिश्वा।।[3] | 11 | शिशुपालवध के अष्टम, नवम् तथा दशम सर्गों में यादवो और यादव रमणियो की जलकेलि का वर्णन किया गया है।<br><br>नेच्छन्ती सममुना सरोऽवगाढ्,<br>रोधस्त· प्रतिजलमीरिता सखीभिः।<br>आश्लिक्षद्भयचकितेक्षणं नवोढा<br>वोढारं विपदि न दूषितातिभूमि·।।[3] |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1 | किरात — 5/3 | 1 | शिशुपालवध — 4/13 |
| 2 | किरात — 4/2 | 2 | शिशुपालवध — 6/1 |
| 3 | किरात — 7/10 | 3 | शिशुपालवध — 8/20 |

| | किरातार्जुनीय | | शिशुपालवध |
|---|---|---|---|
| 12 | किरातार्जुनीय के अष्टम सर्ग मे गन्धर्वों और अप्सराओ की जलकेलि का वर्णन है।<br><br>विहस्य पाणौ विधृते धृताम्भसि,<br>प्रियेण वध्वा मदनार्द्रचेतस ।<br>सखीव काञ्ची पयसा घनीकृता<br>वभार वीतोच्चयवन्धमशुकम् ।।[1] | 12 | शिशुपालवध के अष्टम सर्ग मे यादवो और यादव रमणियो की जलकेलि का वर्णन है।<br><br>"आकृष्ट प्रतनुवपुर्लतैस्तरद्भिर –<br>तस्याम्भस्तदथ सरोमहार्णवस्य ।<br>अक्षोभि प्रसृतविलोलबाहुपक्षै–<br>र्योषाणामुरूभिरूरोजगण्डशैले ।।"[1] |
| 13 | किरातार्जुनीय मे दूत सात्त्वना पूर्वक प्रिय और युक्तियुक्त साथ ही उत्तेजक वचन कहता है।<br><br>"वाजिभूमिरिभराजकाननं सन्ति,<br>रत्ननिचयाश्च भूरिशः।<br>काञ्चनेन किमिवास्य पत्रिणा<br>केवल न सहते विलङ्घनम्।।"[2] | 13 | जबकि शिशुपालवध मे दूत श्लेष द्वारा प्रिय–अप्रिय द्वयर्थक वचन कहता है।<br><br>"चलितानकदुन्दुभि· पुर· सबलस्त्व<br>सह सारणेन तम्।<br>समितौ रभसादुपागत सगदः<br>संप्रतिपर्त्तुमहसि।।"[2] |
| 14 | किरात के पन्द्रहवे सर्ग में 21 प्रकार के विविधबन्धों और चित्रालङ्कारो द्वारा युद्ध का वर्णन किया गया है। देखिए–<br><br>स सासिः सासुसू· सासो<br>येयायेयाययायय:।<br>ललौलीला ललोऽलोल·<br>शशीशशिशुशी·शशन्।।[3]<br>ऐसा ही एक उदाहरण और देखिए–<br>स्यन्दना नो चतुरगा,<br>सुरेभा वाविपत्तयः।<br>स्यन्दना नो च तुरगा·,<br>सुरेभावा विपत्तय ।[4] | 14 | तो शिशुपालवध मे माघ ने 28 प्रकार के सर्ग मे विविधबन्धो एव चित्रालङ्कारो द्वारा युद्ध का वर्णन किया गया है। यह चमत्कार इस प्रकार भारवि से आगे बढ जाने की है–<br><br>शूर· शौरिरशिशिरैराशाशैराशु, राशिश ।<br>शरारू· श्रीशरीरेश· शुशूरेऽरिशिर शरै·।।[3]<br>और भी–<br>भीमास्त्रराजिनस्तस्य वलस्य,<br>ध्वजराजिनः।<br>कृतघोराजिनश्चक्रे भुव·<br>सरूधिरा जिन·।।[4] |

1 किरात – 8/51
2 किरात – 13/55
3 किरात – 13/12
4 किरात – 15/5

1 शिशुपालवध – 8/25
2 शिशुपालवध – 16/13
3 शिशुपालवध – 16/39
4 शिशुपालवध – 19/108, 112

हर विषय मे माघ भारवि से आगे बढने के इच्छुक थे भारवि का अनुकरण उनके लिए आवश्यक था क्योकि उनसे अधिक चमत्कारप्रियता का प्रदर्शन कर काव्य मे वह अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहते थे। भारवि की प्रतिभा को धराशायी कर उनसे आगे बढ जाना उनका यही उद्देश्य था।

अन्त मे जब किरात वेषधारी शिव और अर्जुन के युद्ध का ही अनुकरण कर माघ ने भी कृष्ण और शिशुपाल के मध्य घोर भयकर युद्ध विचित्र शब्दावली द्वारा व्यक्त किया। देखिए–

15 "शिवभुजाहतिभिन्नपृथुक्षती·
सुखमिवानुबभूव कपिध्वज।
क इव नाम बृहन्मनसा,
भवेदनुकृतेरपि सत्त्ववता क्षम.।।"[1]

15 "शितचक्रनिपातसप्रतीक्षं वहत,
स्कन्धगत च तस्य मृत्युम्।
अभिशौरि रथोऽथ नोदिवाश्व
प्रययौ सारथिरूपया नियत्या"।।[1]

राजनीतिक चर्चाओ मे जहॉ भारवि ने विभिन्न नीतिप्रद उक्तियो के द्वारा राजनीति का दिग्दर्शन कराया वही माघ ने विभिन्न शास्त्रीय प्रमाणो का उल्लेख करते हुए राजनीतिक पटुता को व्यक्त किया। देखिए –

16 "अचिरेण परस्य भूयसी,
विपरीता विगणय्यचात्मन।
क्षययुक्तिमुपेक्षते कृती
कुरूते तत्प्रतिकारमन्यथा।।"[2]

16. अनिर्लोडितकार्यस्य बाग्जाल,
वाग्मिनो वृथा।
निमित्तादपराद्धेषोर्धानु–
ष्कस्येव वल्गितम्।।[2]

इतना ही नहीं जहॉ भारवि ने शिव स्तुति द्वारा अपने ग्रन्थ का आरम्भ करना चाहा वही माघ ने विष्णु स्तुति का बेहद प्रशसनीय रूप व्यक्त कर काव्य का समापन किया। इसलिए यह प्रतिद्वन्दिता माघ मे भारवि से सभी विषय मे उनसे आगे बढ जाने की थी क्योकि तभी वह अपनी चमत्कारप्रियता से पाठक एव श्रोता को अपनी ओर आकृष्ट कर सकते थे।

1 किरात – 18/3
2 किरात – 2/9

1 शिशुपालवध – 20/2
2 शिशुपालवध – 2/27

| किरात | शिशुपालवध |
|---|---|
| 17 किरातार्जुनीय के अठाहरवे सर्ग मे शिव स्तुति से ग्रन्थ की समाप्ति होती है।<br><br>"स पिङ्गाक्षः श्रीमान्भुवनमहनीयेन,<br>महसा तनु भीमां विभ्रत्रिगुण–<br>परिवार प्रहरण परीत्येज्ञान त्रि<br>स्तुतिभिरूपगीत सुरगणै सुत<br>पाण्डवोर्वीर जलदमिव<br>भास्वानभिययौ।।"[3] | 17 शिशुपालवध के 20वे सर्ग मे कृष्ण स्तुति से प्रारम्भ एव अन्त होता है।<br><br>श्रियाजुष्ट दिव्यै सपटहर वैरन्वितं<br>पुष्पवर्षे र्वपुष्टश्चै द्यस्य क्षणमृषिगणै.<br>स्तूयमान निरीय।<br>प्रकाशेनाकाशे दिनकरकरान्वि क्षिपद्वि<br>स्मिताक्षै नर्रेन्द्रैरौपेन्द्र वपुरथ<br>विशद्धाम<br>वीक्षावभूवे।। |

भारवि का इतनी स्पर्द्धा के साथ अनुकरण करते हुए भी माघ के सेना प्रयाण वाले सर्ग 5, 12, 13 तथा 11 वें सर्ग का प्रभातवर्णन अपने निजी है। माघ अपने पाण्डित्य को कभी नहीं छोडते है। यही कारण है कि राजनीति चर्चा के साथ–साथ भी उनका व्याकरण, दर्शन तथा अलङ्कारशास्त्र का ज्ञान भी चलता रहता है। माघ ने अपने काव्य का कथानक चुनते समय इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि वे ऐसे कथानक का चयन करे जिसमें भारवि काव्य का पूर्ण अनुकरण किया जा सके।

माघ की कलात्मक सजावट, कल्पना तथा शब्दावली का भण्डार भारवि से बढकर है। माघ के पास अलङ्कारो की भरमार है। उनकी शैली मे धीर तथा गम्भीर सङ्गीत है। उनका भावपक्ष भी भारवि से अधिक है, इसलिए वे भारवि से उत्कृष्ट कहे जाते है।

इतना ही नहीं माघ के व्याकरणनिष्ठ प्रयोगों को देखकर यह भलीभांति प्रतीत होता है कि माघ अवश्य ही अपने पूर्ववर्ती व्याकरणज्ञ भट्टि से भी प्रभावित है, क्योकि शिशुपालवध भट्टिकाव्य के बाद की रचना है। एक का आधार वाल्मीकि

| किरात — 18/45 | शिशुपालवध — 20/79 |
|---|---|

रामायण है तो दूसरे की नीव महाभारत जैसे इतिहास ग्रन्थ पर अवलम्बित है। यही नही कही–कही माघ के काव्य मे भट्टि के काव्य की छाया भी मिलती है। देखिए–

क्व स्त्रीविषह्या. करजा. क्व वक्षो दैत्यस्य शैलेन्द्रशिलाविशालम्।
सपश्यतैतद् द्युसदा सुनीत विभेद तैस्तन्नरसिह मूर्ति ।।                भट्टि 12/59

सटाच्छटाभिन्न घनेन बिभ्रता नृसिह सैहीमतनु तनु त्वया।
स मुग्धकान्तास्तनसङ्गमङ्गुरैरूरोर्विदार प्रतिचस्करे नखै.।।   शिशुपाल – 1/47

इसके अतिरिक्त अन्य कवियो के काव्य का भी प्रभाव माघ के काव्य मे देखा जा सकता है। महाकवि माघ केवल सरस कवि ही नही थे, किन्तु एक प्रचण्ड सर्वशास्त्र निष्णात् विद्वान भी थे। पाण्डित्य मे माघ निश्चित् रूप से कालिदास भारवि, भट्टि या हर्ष से अधिक दिखाई पडते है।[1]

माघविद्वत्समाज के कवि रहे है। इस दृष्टि से कालिदास के साथ उनकी कुछ भिन्नता है। माघ की कविता को समझने के लिए पडित होना आवश्यक है। माघ की सुन्दर रसोचित कल्पनाए उनके भावपक्ष की पूर्ण परिचायक है, किन्तु फिर भी उनकी प्रवृत्ति काव्य के कलापक्ष की ओर बहुत अधिक है। काव्य के वाच्यपक्ष की विविध विभूतियों मे उनका मन अधिक रमता है। यही कारण है कि उनके काव्य मे भावपक्ष अर्थात् काव्य का व्यञ्जना पक्ष गुणीभूत प्रतीत होता है। अर्थात काव्यरसज्ञ विद्वान ही माघ की कविता का पूरा रस ले सकते है। ऐसा निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है।

माघ के रसवादी दृष्टिकोण का परिचय स्वय उनके महाकाव्य मे प्राप्त होता है, जैसा कि भवभूति ने उत्तररामचरित मे लिखा हे– 'वाचमर्थोऽनु धावति' अर्थात् अर्थ स्वत ही वाणी का अनुगमन करता है।[2] इसी प्रकार माघकी वाणी भी सिद्ध थी। उन्होंने भी यही कहा है कि रसो और भावो के ज्ञाता कवि को ओजः प्रसाद, आदि गुणो के पीछे नही जाना पडता, वे तो कवि की वाणी का स्वतः अनुगमन करते है।[3]

---

1 'वृहत्त्रयी' एक तुलनात्मक अध्ययन – डा0 सुषमाकुलश्रेष्ठ
2 उत्तररामचरित 1/10
3 तेज क्षमा व नैकान्त कालज्ञस्य महीपते ।
नैकमोज प्रसादो वा रसभावविदः कवे ।।                शिशुपालबध – 2/83

कवियो की काव्यचिन्ता का उल्लेख करते हुए माघ ने एक स्थल पर लिखा है–

स्थायिनोऽर्थे प्रवर्तन्ते भावा. सञ्चारिणो यथा।
रसस्यैकस्य भूयांसस्तथा नेतुर्महीभृत ।।   शिशुपालवध – 2/87

यह श्लोक इस तथ्य का परिचायक है कि माघ अपनी काव्यरचना मे शब्द, अर्थ, भाव, रस आदि का सन्निवेश पर्याप्त सोच विचार के अनन्तर ही करते है।

माघ मूलत कवि थे, किन्तु वे शास्त्रो के ज्ञाता भी थे। माघ का वैशिष्ट्य उनके रससिद्ध कवीश्वर होने मे है किन्तु भारवि के अनुकरण पर उन्होंने कही–कही चित्रात्मकता तथा काव्य शिल्प के मोह मे पड़कर अपने वर्णनो को कलात्मकता की चरम सीमा पर पहुँचा दिया है।

माघ की भाषा अलङ्कारो से अलङ्कृत है। भाषा मे सर्वत्र ध्वन्यात्मकता का साम्राज्य छाया हुआ है। चित्रालङ्कारो की विशेषता माघ की भाषा की विशेषता है। भारवि की प्रतिस्पर्धा मे माघ की भाषा चमक पडी है। कल्पना अनूठी तथा शैली व्यञ्जनात्मक है। सुरूचिपूर्ण उक्ति से उनकी भाषा का पाण्डित्य विदित हो जाता है। व्याकरण के नियमो के अनुसार माघ की भाषा निर्दोष है।[1] माघ की भाषा शैली मे तारतम्यता विराजमान है। युद्ध के वर्णन मे अपनी शैली को युद्ध के व्यूहो के समान ही प्रस्तुत किया है– उनके युद्ध वर्णन युद्ध व्यूह के समान ही दुर्भेद्य है। ऐसे युद्ध के काव्यात्मक वर्णन से पाठक को वीररस की अनुभूति होने लगती है। इनका कहना है– कि सीधे सीधे शब्दो से पदार्थ निरूपण ऊँचे काव्य की कसौटी नहीं हैं– प्रत्युत वक्रोक्ति से मण्डित शाब्दिक और आर्थिक चमत्कार के उत्पादक शब्द ही सच्चे काव्य का निदर्शन है। उनकी शैली की सर्वत्र अर्थात् सभी क्षेत्रों (गुण, अलङ्कार, रस, वृत्ति आदि) मे भारवि से भी आगे बढ जाने की ललक लिये रहती है। यहाँ भारवि की शैली गागर में सागर भरने की भांति विपुल भाव के वहन में सक्षम थी वही माघ की शैली बाण के लक्ष्य की भाति अभीष्ट भाव के बोधन मे सक्षम थी। इतना ही नहीं श्लेष प्रियता जो उस युग रूचि का प्रतिबिम्ब उपस्थित करती है–

---

1. संस्कृत साहित्य का सरल सुबोध इतिहास – जितेन्द्र चन्द्र भारतीय शास्त्री

वह भी सुबन्धु और बाण की प्रतिस्पर्धा करता हुआ प्रतीत होता है। सुबन्धु तथा बाण की शैली माघ तक पहुचते–पहुचते अलङ्कृत घटा मे मिलकर अलङ्कार प्रधान तो बन ही जाता है तथा उसका चरम पर्यवसान भी परिलक्षित होने लगता है।[1] डॉ0 व्यास के अनुसार माघ का समासान्त पद विन्यास उनकी शैली को गम्भीरता और उदात्तता प्रदान करता है।

माघ के काव्य मे प्रमुख रस से गौडी रीति की विकटबन्धता प्राप्त होती है लेकिन कोई प्रख्यात कवि एक ही रीति मे बधकर काव्य रचना नही करता इसलिए माघ ने गौडी रीति के अतिरिक्त वैदर्भी रीति का भी प्रयोग किया। सर्वत्र गौडी की विकटबन्धता देखकर ही बाण ने कहा कि माघ की शैली में एक क्षणिक नशा है जो नये अभ्यास शील व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।[2] इसी विशिष्टता को देखकर धनपाल ने भी लिखा है–

माघेन विघ्नितोत्साहा नोत्सहन्ते पदकमे।
स्मरन्तो भारवेरिव कवय कपयो यथा।।

माघ मे उत्कृष्ट काव्य रचना करने का सामर्थ्य भारवि से बढकर था। तभी पण्डितो ने काव्येषु माघ. कहकर जैसी श्रेयस्कर उक्तिया कही है। व्यास ने कहा है– जहॉ एक ओर कालिदास का काव्य शेक्सपियर की भाति है– वहीं माघ का काव्य मिल्टन की भांति है। जिसे हम अलङ्कृत शब्दो का उदभावक कह सकते है।[3]

शब्दार्थौ सत्कविरिवद्वयविद्वानपेक्षते' को सत्कवि की कसौटी मानने वाले माघ की शैली नि.सन्देह उत्कृष्ट कोटि की है। माघ ने चमत्कार को पैदा करने के लिए अपने काव्य के 19वे सर्ग मे विविध चित्रबन्धो का प्रयोग किया। माघ को स्वय यह आभास होता था कि ये दिमागी उपज काव्य को और भी अधिक दुर्बोध्य बना रहा

---

1 सस्कृत के महाकवि और काव्य – रामजी उपाध्याय
2 कोमल–मलय–मरूतावतार–तरङ्गितानङ्ग–ध्वजाशुकेषु, मद–कलित–कामिनी–गण्डूष–सीधु–सेक–पुलकित वकुलेष–सहकारेषु– महाश्वेता वृत्तान्त पृ0 25
3 माघकृत शिशु0 – देवनारायण मिश्र पृ0 14

है, लेकिन पैनी व तीखी दृष्टि से जब वे वर्णन करने मे संलग्न होते है तो फिर उन पर किसी और भाव का प्रभाव नही पडता दीखता। अपने चित्रालङ्कारो का कौशल दिखाकर माघ ने अपने काव्य की विचित्रतावादी प्रवृत्ति का दर्शन कराया है, और उसे अन्य वर्णनो की अपेक्षा एक महत्त्वपूर्ण प्रसङ्ग मे उद्धृत किया है।

कविवर माघ की 'मधुरया मधुवोधितमाधवी' जैसे सानुप्रास पदावली बडी मनोहर है। यमक और श्लेष का युगपद् वर्णन करने मे भी माघ का कोई सानी नही है। श्लेषनिष्ठ यमक का एक दृष्टान्त देखिए–

नवपलाशपलाशवनपुर स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभि सुमनोभरै.।।[2]

"श्रीकृष्ण ने पहले नवीन पत्तो से युक्त ढाक के वनो वाले विकसित तथा पुष्पराजो से व्याप्त कमलो वाले, कोमल अतएव गर्मी से कुछ म्लान पल्लवों से युक्त पुष्प समूहों से सुगन्धित वसन्त ऋतु को देखा।"

षष्ठी सर्ग के ऋतु वर्णन मे तो माघ अनुप्रास और यमक की झडी लगा देते है, और उनमें शब्द अर्थ के अनुरूप नाद–ध्वनि का सचार करके एक नयी सरसक्रीडा को जन्म देते है।

"अपशङ्कमङ्कपरिवर्तनोचिताश्चलिता पुर पतिमुपैतुमात्मजा।
अनुरोदितीव करूणेन, पत्रिणा विरूतेन वत्सलतयेष निम्नगा." ।।[3]

"अर्थात् जिस प्रकार गोद में खेलने वाली कन्या जब पति के घर जाने लगती है, तब पिता वत्सलता से करूण रोदन करता है। उसी प्रकार रैवतक पर्वत से उत्पन्न तथा उसी के मध्य (गोद) से बहने वाली नदियॉ अपने पति (समुद्र) से मिलने के लिए समतल भूमि पर उतरने लगती है, तब पक्षियो के कलरव के बहाने मानो वह (रैवतक पर्वत) नदी रूपी पुत्रियो के लिए अनुरोदन कर रहा है।

---

1 शिशु० – 6/20

2 शिशु० – 6/2

3 शिशुपालवध– 4/47

इतना ही नही माघ ने अर्थान्तर न्यास का भी प्रचुरता से समावेश किया है। ऐसा ही एक उदाहरण देखिए–

विपुलाचलस्थलघनेन जिगमिषुभिरग्ना प्रियै।
पीनकुचतटनिपीऽदल द्वरबारबाणमुरसालिलिङ्गिरे।। [1]

माघ की अतिशयोक्ति पूर्ण उक्तियॉ अत्यधिक हृदयोद्रेककारक है, और ऐसे वर्णन करने मे माघ ने अपनी सीमा का अवश्य उल्लङ्घन भी किया है, जिससे वे वर्णन हास्यास्पद हो गये है– एक अतिशयोक्ति देखिए –

क्षणतुहिनधाम्निप्रोष्य भूय पुरस्तादुपगतवति पाणिग्राहवद्दिम्बधूनाम्।
द्रुततरमुपयाति स्रसमानाशुकोऽसा वपुपतिरिव नीचै पश्चिमान्तेन चन्द्र.।।[2]

इसके अतिरिक्त अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा का भी विभिन्न श्लोको के माध्यम से चमत्कार दिखाया गया है। साथ ही स्वाभावोक्ति, दृष्टान्त, निदर्शना आदि का समुचित सन्निवेश भी माघ–काव्य मे विद्यमान है। अर्थालङ्कारो के प्रयोग मे कविवर माघ बहुत सजग है। अनुप्रास का अत्यन्त सुन्दर उदाहरण दृष्टव्य है–

"मधुरया मधुबोधितमाधवीमधुसमृद्धिसमेधितमेधया।
मधुकरागनया मुहरून्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे।।"[3]

कविवर माघ की उपमाए कालिदास से बढकर है, जैसे उपमा सौन्दर्य से प्रभावित होने पर कालिदास को 'दीपशिखा' की उपाधि से अलङ्कृत कियागया था, ठीक वैसे ही महाकवि माघ की उपमा से प्रभावित होकर विद्वत्समाज ने उन्हे घण्टामाघ' की उपाधि से विभूषित किया–

"उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरूचौ, हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारित वारणेन्द्रलीलाम्।।[4]

"प्रात किरणो को बिखेरता हुआ सूर्य इस पर्वत के ओर उदित हो रहा है और अपनी किरणो को समेटता हुआ, चन्द्रमा एक ओर अस्त हो रहा है, ऐसे समय मे यह पर्वत उस हाथी के समान सुशोभित हो रहा है जिसके दोनों ओर रस्सी से बंधे दो घण्टे लटक रहे है।"

---

1 शिशु0 – 1/72
2 शिशु0 – 4/20
3 शिशु0 – 6/20
4. शिशु0 – 4/20

माघ श्लेष अलङ्कार के भी शौकीन थे। इनकी श्लेष प्रियता के सम्बन्ध मे 'डा0 भोलाशकर व्यास' कहते है "माघ श्लेष के प्रयोग मे दक्ष है, जहॉ श्रीहर्ष को अपनी परिरम्भक्रीडा (श्लेष) का घमण्ड है वही माघ के शब्दविलास की परिरम्भक्रीडा अपना अलग सौन्दर्य रखती है। श्लेष प्रयोग में माघ भारवि से अधिक कुशल है। माघ के अन्य अलङ्कार भी श्लेष का सहारा लेकर आते है– श्लेष सङ्कीर्ण उपमा का उदाहरण देखिए–

"हस्तस्थिताखण्डितचक्रशालिन द्विजेन्द्रकान्त श्रितवक्षसं श्रिया।
सत्यानुरक्त नरकस्य जिष्णवो गुणर्नृपा· शार्ङ्गिणमन्वयासिषु·।।[1]

"अर्थात् हॉथ मे चक्र की रेखा धारण करने वाले, सुशोभित वक्षस्थल वाले, चन्द्रमा के समान सुन्दर, सत्यशील नरक को जीतने वाले (पुण्यात्मा) राजाओं ने हॉथ मे चक्र धारण करने, चन्द्रमा के समान सुन्दर नरकासुर के विजेता लक्ष्मी से युक्त वक्षस्थल वाले तथा सत्यभामा मे अनुरक्त कृष्ण का उनके गुणो की दृष्टि से अनुमान किया"।

इतना ही नही माघ ने बहुज्ञता के परिचय मे उत्प्रेक्षा का चमत्कार भी नही छोडा। कवि की कल्पनाशीलता तथा प्रतिभा का वास्तविक चमत्कार तो उत्प्रेक्षा के प्रयोग मे दिखाई देता है। नारद और श्रीकृष्ण की कान्तियॉ परस्पर दूसरे पर पड़ने के कारण दोनो एक वर्ण के हो जाते है–

"प्रफुल्लतापिच्छनिभैरभीषुभि· शुभैश्च सप्तचछदपाशुपाण्डुभि·।
परस्परेणच्छुरिता मलच्छवी तदैक वर्णाविव तौ वभूवतु ।।"[2]

कविवर माघ का कहना है कि स्वाभावोक्ति को अलङ्कार माना जाय अथवा न माना जाय, परन्तु स्वाभावोक्ति के चित्रण से काव्य मे विशेष सौन्दर्य अवश्य आ जाता है। कालिदास तो स्वाभावोक्ति के चित्रकार माने जाते है, परन्तु उनके बाद धीरे–धीरे इसका प्रयोग कम होने लगा। अलङ्कृत शैली के कवियों मे माघ ही एक ऐसे कवि है, जिनके काव्य मे स्वाभावोक्ति का वर्णन पर्याप्त रूप से मिलता है। कविवर माघ ने बिगडैल घोडे का कितना स्वाभाविक चित्रण किया है–

---

1 शिशु0 – 12/3
2. शिशु0 – 1/2

"दुर्दान्तमुत्प्लुत्य निरस्तसादिन सहासहाकारमलोकयज्जन।
पर्याणतस्स्रस्तमुरोविलम्बिनस्तुरङ्गम प्रद्रुमतेकयाादिशा।।"[1]

अस्तु, महाकवि माघ आलङ्कारिक चित्रणो में अत्यन्त निपुण है। उनकी आलङ्कारिक छटा प्रशसनीय है। कही–कही पर अलङ्कारिता से कृत्रिमता का समावेश हो जाता है तथा काव्य की प्रासादता एव स्वाभाविकता व्याधातित हो जाती है। इस प्रकार अन्य कवियो की अपेक्षा माघ अलङ्कार योजना मे अधिक सफल रहा है। इनकी अलङ्कार योजना मे भाव जागृति और भाषा को अलङ्कृत करने का विशिष्ट गुण विद्यमान है। माघ का कहना है कि वर्णनो की दीर्घता मे यदि अलङ्कारों का बहुल प्रयोग किया जाय तो काव्य की सहजता नष्ट हो जाती है। ऐसे स्थल पाण्डित्य का भले ही निर्वाह करते रहे, किन्तु पाठक के हृदयस्थित रसतन्तु को नही छू पाते। माघ काव्य का सम्पूर्ण उन्नीसवा सर्ग विविध काव्यबन्धो के कारण चित्रकाव्य का रूप प्रस्तुत करता है जैसा कि भारवि ने अपने किरातार्जुनीयम् के 15वे सर्ग मे 21 प्रकार के चित्रमय काव्यवधो का वर्णन करके काव्य को श्रेष्ठ अलङ्कृत श्रेणी के काव्यो में खडा कर दिया वैसे ही माघ ने भी 28 प्रकार के चित्रालङ्कारो का प्रयोग कर भारवि से आगे निकल जाने का प्रयास किया। माघ ने चित्रालङ्कारो के भेदोपभेदो के प्रयोग में अपनी विशेषज्ञता की पराकाष्ठा कर दी है–

माघ ने भारवि के समान ही चित्रबन्धो प्रदर्शन किया गया है। ऐसे चमत्कृति जन्य उदाहरणो को देखकर यह विदित होता है कि चित्रबन्धो पर माघ का विशेष बल है। इन चित्रालङ्कारों मे कहीं एकाक्षर श्लोक कही द्वयक्षर श्लोक कही सर्वतोभद्र, चक्रबन्ध, द्वयर्थक श्लोक, त्रयर्थक श्लोक आदि चित्रालङ्कारो का व्यूह ही रच दिया गया है। एकाक्षर श्लोक का उदाहरण देखिए–

"दाददो दुद्ददुद्दादी दादादो दूददीददो.।
दुद्दादं दददे दुद्दे ददाददददोऽददः।। शिशु0 – 19 / 114

माघ ने भारवि के चित्रवंध का आधार लेकर ही द्वयक्षर श्लोक का भी वर्णन किया। उनकी शाब्दीक्रीडा का एक विचित्र उदाहरण देखिए– जिसमें 'भ' और 'र' के अतिरिक्त कोई और तीसरा अक्षर ही नही है–

द्वयक्षर – "भूरिभिर्भारिभिभीरैर्भुभारैरभिरेभिरे।

भेरोरेभिभिरभ्राभैरभीरूभिरिभैरिभा ।।" शिशु0 – 19/66

"अर्थात् हाथियो का द्वन्द्व युद्ध आरम्भ हो गया था। हाथी हाथी से गुंथ रहा था। उनकी सख्या बहुत थी। उनकी पीठ पर पताका एव अन्यान्य युद्ध सामग्री लदी हुई थी। वे देखने मे भयानक मेघ जैसे काले और महाकाय होने के कारण भूभार की तरह जान पडते थे।"

यह तो हुई अक्षरो की करामात अब देखिए– श्लोक की पहली पूरी पक्ति ही दूसरी पक्ति बन गयी है–

समुद्र – सदैव संपन्नवपू रणेषु स दैवसम्पन्नवपूरणेषु।

महो दधे स्तारिमहानितान्तं, महोदधेऽस्तारिमहा नितान्तम्।। शिशु0 19/118

ऐसे ही विभिन्न चित्रवन्धो के और भी वर्णन देखिए –

गोमूत्रिकाबन्ध –

प्र वृ ते वि क स द्धा नं सा ध ने प्य विषादिभि ।

व वृषे वि क न द्दा न यु ध मा प्य वि षा णि भि ।। शिशु0 19/46

मुरजबन्ध :–

सा से ना ग म ना र म्भे

र से ना सी द ना र ता।

ता र ना द ज ना म त्त

धी र ना ग म ना म या।। शिशु0 19/29

सर्वतोभद्रः–

स का र ना ना र का स

का य सा द द सा य का

र सा ह वा वा ह सा र

ना द वा द द वा द ना शिशु0 19/27

प्रतिलोमानुलोमपाद–

नानाजावजानाना सा जनौघघनौजसा।

परानिहाऽहानिराथ तान्वियातातयाऽन्विता।। शिशु0 19/40

युग्म –

अधिनाग प्रजविनो विकसत्पिच्छचारव ।
पेतुर्बर्हिणदेशीया शङ्कव· प्राणहारिण ।। शिशु0 19/40

समुद्रयमक –

अयशोभिदुरालोके कोपधामरणादृते।
अयशोभिदुरालोके कोपधा मरणादृते।। शिशु0 19/59

असयोग –

निपीऽनादिव मिथो दानतोयमनारतम्।
वपुषामदयापातादिभानामभितोऽगलत्।। शिशु0 19/68

अर्धभ्रमक :–

अभी क म ति के ने द्धे
भी ता न न्द स्य ना श ने।
क न त्स का म से ना के
म न्द का म क म स्य ति।। शिशु0 19/72

द्वयक्षर–

नीलेनानालनलिननिलीनोल्ललनालिना।
ललनालालनेनाल लीलालोलेन लालिना।। शिशु0 19/84

और भी–

विभावि विभवी भाभो विभाभावी विवोविभी ।
भवाभिभावी भावावो भवाभावो भुवो विभु· ।। शिशु0 19/86

गूढचतुर्थ –

शरवर्षी महानादः स्फुरत्कार्मुककेतन ।
नीलच्छविरसौ रेजे केशवच्छलनीरद ।। शिशु0 19/96

अतालव्य –

नामाक्षराणां मलना मा भूद्भर्तुरतः स्फुटम्।
अगृह्वत पराङ्गानामसूनस्त्र न मार्गणाः।। शिशु0 19/110

अर्थत्रयवाची–

सदामदबलप्राय· समुद्धतरसो बभौ।
प्रतीतविक्रमः श्रीमानहरिर्हरिरिवापर ।। शिशु0 19/116

श्लोक प्रतियमकम् –

निध्वनज्जवहारीभा भेजे रागरसात्तम ।
ततमानवजारासा सेना मानिजनाहवा।। शिशु0 19/34

गतप्रत्यागतम्–

त श्रिया घनयाऽनस्तरूचा सारतया तया।
यातया तरसा चारूस्तनयाऽनघया श्रितम्।। शिशु0 19/88

इसी प्रकार विभिन्न चरणो या पादो के अनुलोम–प्रतिलोम के तो बीसो उदाहरण कवि ने प्रस्तुत किये है। सर्वतोभद्र, गोमूत्रिकाबध, अर्थभ्रमक, असयोग, समुदयमक, मुरजवन्ध, प्रतिलोमानुलोम, गूढचतुर्थ तीन अर्थवाची, चार अर्थवाची आदि विकटाति विकटबधो की रचना कर कवि ने अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य एव अद्‌भुत कवित्व शक्ति का जो प्रदर्शन किया है उसका लोहा सस्कृत समाज मे सदा माना जाता रहेगा। भारवि की रचना मे यह शैली इतनी दुरूह नही थी। अतएव उक्त बधों के प्रयोग से भारवि की कृति रम्यता से हीन नही हुई एव बृहत्त्रयी में उसे प्रथम स्थान मिला था। इनके वर्णनो मे सर्वत्र अलङ्कारो एव अप्रस्तुत विधानो का आधिक्य देखा जाता है।[1] कविवर माघ मे पाण्डित्य प्रदर्शन का शौक दुर्निवार था। कवित्व की सहज शक्ति के साथ ही उनमे पाण्डित्य का स्वाभिमान एवं दूसरो को स्तम्भित करने की इच्छा भी पूर्णत. नामरूप थी। अपने अकेले महाकाव्य को उन्होने सर्वसाधन सम्पन्न सम्राट् के लाडले किन्तु दुराराध्य एकलौते बेटे की भांति अपनी समस्त शक्तियो एवं समृद्धियो से लालित पालित किया है। अपने पूर्ववर्ती कवियो एव उनकी कृतियों की समस्त विशेषताओ को आक्रान्त करने की उनमे प्रबल स्पर्धा पायी जाती है। और उनको अपने महाकाव्य मे भी आत्मसात किया है, किन्तु उनसे बीस करके उन्नीस करके नहीं। कही पर उसी रूप और प्रकार का अनुसरण करके उसे रख दिया है, तो कहीं पर बिल्कुल नये ढग और नयी रीति से उसका मुकाबला किया है। विविध चित्रबधो की इस विकट कल्पना मे एक निपुण वैयाकरण के नाते जो कृतकार्यता माघ को मिली है वह भारवि को नही मिल सकी है। माघ के कुछ विकट बधो के नमूने ऐसे है जिन्हे देखकर पाठक को दातो तले अंगुली दबानी पडती है। यद्यपि इन बधो से क्लिष्ट कल्पनाओं एव बलपूर्वक ग्रहण की जाने वाली अर्थशक्ति का सौन्दर्य घटिया कोटि का हो गया है, किन्तु कवि ने जिस दृष्टिकोण से यह कठिन कार्य किया है, उसमें तो वह पर्याप्त सफल माना ही जायेगा। इस प्रकार युद्ध चित्रण की दृष्टि से माघ काव्य सर्वथा सफल है। उन्नीसवें सर्ग के युद्ध चित्रण में चित्रालङ्कारों के मोह मे पडकर कवि ने दुरूहता को अपने

---

1 भारवि प्रणीत् – 'तरणीश झा'

काव्य मे प्रश्रय दिया है। विकट युद्ध का विकट शैली मे वह वर्णन आज के आलोचक को पसन्द नही आएगा, किन्तु चित्रकाव्य की रचना करते हुए कवि ने काव्य परम्परा का पालन किया है। वह चित्रण उसके युग की मान्यताओ के अनुरूप है, शेष स्थलो का वर्णन स्वाभाविकता, ओजस्विता तथा सजीवता की दृष्टि से सस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ युद्ध वर्णनो से टक्कर ले सकता है। कविवर माघ ने भारवि से समान क्षेत्र मे विशेषता प्राप्त करने के लिए पद–पद पर उन्ही योजनाओं को ग्रहण किया है जिनका सग्रन्थन भारवि की रचनाओ मे पहले से ही था।

भारवि और माघ दोनो की श्रृङ्गारप्रियता, शब्दाऽम्बर और चित्रवध की ग्रन्थियॉ भले ही युगानुरूप रही है पर किसी भी देश के काव्य के इतिहास मे इनको शाश्वत् गौरव नहीं प्राप्त हो सकता। माघ के सामने भारवि का ग्रन्थ और उससे उपलब्ध भारवि का यश एवं ख्याति का चित्र उपस्थित था। उसी के सामने उसी प्रकार का विषय चयन करने के लिए माघ ने अपने काव्य का निर्माण किया। इन सब बातो पर विचार करने से ज्ञात होता है कि माघ भारवि के बाद हुए है और उसने भारवि को अपना प्रतिस्पर्धी मानकर अपने काव्य मे एक बहुत बडा चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। ठीक भी है बड़ो की प्रतिस्पर्धा कभी–कभी उन्नति का कारण बन जाती है। डा0 व्यास के शब्दो मे– कालिदास मूलत कवि है, भारवि राजनीति के व्यवहारिक ज्ञाता और भट्टि कोरे वैयाकरण किन्तु माघ सर्वत्र पाण्डितय लेकर उपस्थित होते है। माघ भारवि और भट्टि दोनो के परवर्ती है। महाकवि माघ केवल एक कवि नही थे, बल्कि सर्वशास्त्र निष्णात् विद्वान थे। भारवि में जो राजनैतिक उदभटता तथा श्रीहर्ष में जो दार्शनिक उदभटता उपलब्ध होती है, परन्तु माघ में सर्वशास्त्रों का जो परिनिष्ठित ज्ञान है वह उन दोनों कवियो मे कहॉ? उनमे भी पाण्डित्य है परन्तु वह केवल एकाङ्गी है परन्तु माघ का पाण्डित्य सर्वगामी है, माघ के लिए प्रयुक्त महावैयाकरण शब्द उनके प्रकाण्ड पाण्डित्य का ही द्योतक है।[1]

---

1. तदीसितारं चेदीना भवांस्तमवमस्त मा।
निहन्त्यरीनेकपदे य उदात्त स्वरानिव।। शिशु0 2/95

अपने व्याकरण ज्ञान को उन्होने प्रत्येक सर्ग मे वर्णित किया। साहित्य के तुल्य व्याकरण पर भी उनका एकाधिकार था। व्याकरण की नीरस परिभाषाओ को उन्होने मनोहर उपमाओ के माध्यम से प्रयोग कर वर्णित किया। ऐसे–ऐसे शब्दो को गढकर प्रयोग किया कि जिससे छन्दो की श्रुतिमधुरता बढ़ गयी है। व्याकरण सम्बन्धी पाण्डित्य के लिए उद्धरणो की कोई आवश्यकता नही है, क्योकि शायद ही ऐसा कोई श्लोक हो जिनमे नूतन सुघड़ शब्दो का प्रयोग न किया गया हो।

माघ का श्रुति विषयक ज्ञान अत्यन्त प्रशसनीय है। प्रात.काल के समय इन्होने अग्निहोत्र का सुन्दर वर्णन किया है। हवन कर्म में आवश्यक सामधेनी ऋचाओ का उल्लेख किया है।

प्रतिशरणमशीर्ण ज्योतिरग्न्याहितानां
विधिविहितविरिब्धै सामधेनीरधीत्य।
कृतगुरूदुरितौघध्वंसमध्वर्युवर्यै–
र्हुतमयमुपलीढे साधु सांनाय्यमग्नि.।। शिशु0 11/41

उनका कहना है कि – एक पद मे होने वाला उदात्त स्वर अन्यस्वरो को अनुदात्त बना डालता है। स्वर विषयक इस प्रसिद्ध नियम का उल्लेख भी माघ ने बडी ही विद्वत्ता पूर्ण ढंग से किया है। "निहन्त्यरीनेकपदे यउदत्त· स्वरानिव" शिशु0 2/95 चौदहवें सर्ग में युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का बडा ही विस्तृत तथा सुन्दर वर्णन माघ के विशिष्ट वैदिकत्व का पर्याप्त परिचायक है।[1]

कविवर माघ का दार्शनिक ज्ञान भी अत्यन्त प्रौढ प्रतीत होता है। राजसूय यज्ञ की चर्चा के प्रसङ्ग में इन्होने अपने मीमासा तथा वैशेषिक दर्शनों की चर्चा की है। चौदहवे सर्ग के राजसूय यज्ञ के प्रकरण में व्याकरण, वेद, कर्मकाण्ड एवं दान की छोटी–छोटी चर्चाओ से काव्य को ओत–प्रोत कियाहै। कविवर माघ ने नास्तिक दर्शनों में बौद्धमत की चर्चा अनेक अवसरो पर की है तथा जैन मत के आदि

---

1. नाञ्जसा निगदितुं विभक्तिभिर्व्यक्तिभिश्च निखिलाभिरागमे।
तत्र कर्मणि विपर्यणीनमन्मन्त्रमूहकुशला प्रयोगिण·।। शिशु0 14/23

प्रवर्तक महावीर स्वामी के प्रति भी एक स्थान पर आदर व्यक्त किया है। यहाँ पर विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि कवि ने पुराणवादियो की भाति महावीर स्वामी को भी भगवान् विष्णु का एक अवतार स्वीकार किया है।

इतना ही नही स्थान–स्थान पर सगीत के मूल तत्त्वो का निदर्शन कराकर अपनी अभिज्ञता का पूर्ण परिचय दिया। माघ का ज्ञान ललित कलाओ मे भी ऊँची कक्षा का था। वे सगीत शास्त्र के सूक्ष्म विवेचक थे। प्रात सजीवन के समय मे पञ्चम तथा ऋषभ को छोडकर षड्ज स्वर अलापने का उल्लेख है। इतना ही नही नृत्यकला एव नाट्य कला पर भी उन्होने अधिकार प्राप्त किया था। कवि की सगीत निपुणता निम्नांकित श्लोकों से प्रकट होती है–

रणद्भिराघट्टनया नभस्वत पृथग्विभिन्न श्रुतिमण्डलै· स्वरै।
स्फुटीभवद्ग्रामविशेषमूर्च्छनामवेक्षमाण महती मुहुर्मुहु ।। शिशु0 1/10

श्लोष की सुन्दर छटा के साथ–साथ कवि ने नाट्यशास्त्रीय ज्ञान का परिचय देकर अपनी पकड सिद्ध की है जो उच्च कोटि का है–

दधतस्तनिमानमानुपूर्व्या बभुरक्षिश्रवसो मुखे विशाला।
भरतज्ञकविप्रणीतकाव्यग्रथिताङ्का इव नाटक प्रपञ्चा ।। शिशु0 20/44

माघ की इस राजनीतिक बुद्धि का परिचय शिशुपालवध के द्वितीय, चतुर्दश, एकोनविश तथा विश सर्गो मे प्राप्त होता है। माघ को राजनीति शास्त्र विषयक ज्ञान भी था। भारवि व्यावहारिक राजनीति के जानकार हैं और उनका ज्ञान शास्त्रों के गम्भीर अनुशीलन की अपेक्षा अपने लम्बे अनुभव पर ही मुख्य रूप से आधारित प्रतीत होता है, जबकि माघ भारवि की अपेक्षा राजनीति शास्त्र के सिद्धान्त पक्ष के विशेषज्ञ मालूम होते है। उनके राजनीतिक पक्ष को देखकर विदित होता है कि उन्होने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का सम्यक् अध्ययन किया था–

"मम तावन्मतमिदं श्रूयतामङ्ग? वामपि।
ज्ञातसारोऽपि खल्वेक· सन्दिग्धे कार्यवस्तुनि।।" किरात0 – 2/12

"मेरी तो यह राय (सम्मति है)। हे मान्यवरो? आप दोनों की राय भी मुझे सुननी (आवश्यक) है, क्योकि सारभूत तत्त्वार्थ को जानने वाला भी अकेला व्यक्ति कर्तव्य कार्य में संदिग्ध ही रहता है।"

सर्वकार्यशरीरेषु मुक्त्वाङ्गस्कन्धपञ्चकम्।
सौगतानामिवात्मान्यो नाऽस्ति मन्त्रो महीभृताम्।। शिशु0 2/28

"जैसे बौद्धो के मत में सभी शरीरो मे रूपादि पॉच स्कन्धो को छोडकर अन्य कोई आत्मा (नाम का पदार्थ) नही है (परन्तु पॉच स्कन्ध ही आत्मा हैं) उसी तरह से (राजाओ के कर्त्तव्य–रूप–सन्ध्यादि) समस्त कार्यों मे सहायादि पॉच अङ्गो के अतिरिक्त कोई दूसरा मत्र नही है (किन्तु सहायादि पॉच अङ्ग ही मन्त्र है)"।

बुद्धिशस्त्र· प्रकृत्यङ्गो धनसवृतिकञ्चुक ।
चारेक्षणो दूतमुख· पुरूष· कोऽपि पार्थिव ।। शिशु0 2/82

"बुद्धि ही जिसका शस्त्र है, स्वामी अमात्यादि प्रकृतियॉ ही जिसके अवयव हैं मन्त्र को गुप्त रखना ही जिसका कवच है, गुप्तचर (खुफिया) ही जिसकी ऑखे है और दूत ही जिसका मुख है इस प्रकार का राजा कोई विलक्षण पुरूष ही होता है।"

भारवि के समान माघ कार्यसिद्धि के पाचो अङ्गो से परिचित है। राजनीतिशास्त्र–सम्मत राजा के 12 भेदो, सात राज्याङ्गो, शत्रुपक्ष के अट्ठारह तीर्थों का उल्लेख मात्र माघ काव्य मे हुआ है। सन्धि विग्रहादि गुणो के अवसरो पर उन्होने अपनी युक्तियों तथा परस्पर विरोधी तर्कों से उन्हे इतना सुगम बना दिया है, कि उनकी सूझ–बूझ पर विस्मित होना पडता है। उद्धव और बलराम के मुख से तथा युधिष्ठिर और भीष्म के मुख से भी उन्होने राजनीति की जटिल से जटिल समस्याओ पर ऐसे उपादेय हल प्रस्तुत किये है जो आज प्रजातत्र के युग में उसी प्रकार से प्रयोग में लाये जा सकते है। प्रजा की सर्वविध हित रक्षा और राजा के विशेष व्यापक अधिकारो को ध्यान मे रखते हुए उन्होने जिस राजतंत्र की समर्पित राजनीति की चर्चा अपने महाकाव्य मे की है। राजनीति की जटिल गुत्थियों पर उन्होने जो प्रसङ्गवार विचार प्रकट किये है, उससे ज्ञात होता है कि उनका यह ज्ञान कोरा किताबी ज्ञान नहीं था। शिशुपालवध का द्वितीय सर्ग कवि की राजनीतिज्ञता का अच्छा निदर्शक है। राजनीतिक दॉवपेचों की ऐसी कोई चीज उसमे नहीं छूटने पायी है, परस्पर विरोधी विचारो को आमने–सामने रखकर उन्होने

उचित पक्ष के निर्णय का जो प्रसङ्ग उपस्थित किया है– उससे पाठको को भी दैनिक कार्यो मे आवश्यक राजनीति का अपेक्षित ज्ञान हो जाता है–

सम्पदा सुस्थिरमन्यो भवि स्वल्पयाऽपि य ।
कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य ताम्।। शिशु० 2/32

जो व्यक्ति थोडी सी सम्पत्ति से अपने को कृतकृत्य मान लेता है, कृतार्थ हुए ब्रह्मा भी उस पुरूष की उस सम्पत्ति को नही बढ़ाते है, ऐसा मै मानता हूँ। सेना के विभागो तथा उपविभागो के साथ–साथ दुर्ग रचना, अभियान, युद्धकला अथवा शस्त्रास्त्रो की मारपीट के अच्छे–अच्छे गुण कवि को बखूबी पसन्द थे। अट्ठारहवे, उन्नीसवे, बीसवे सर्ग के श्लोको मे कवि के इस विषय का परिपक्व ज्ञान मिलता है। गजो, अश्वो का क्या ही विलक्षण वर्णन किया है जो सस्कृत काव्यो मे अन्यत्र दुर्लभ है। निम्न श्लोक मे अश्वो के विषय मे जो कुछ कहा वह उनके शालिहोत्री होने का पर्याप्त प्रमाण है।

"तेजोनिरोधसमतावहितेन यन्त्रा सम्यक्कशात्रयविचारवतानियुक्त ।
आर दृजश्चटुलनिष्ठुरपादमुच्चैश्चित्र चकारपदमर्धपुलायितेन।।" शिशु० 5/10

"वेग (घोडे की तीव्रगति) को रोकने तथा समता (घोडे की गति को मध्यम करने) मे सावधान अर्थात् कुशल, अच्छी तरह, कोडे के तीन प्रकार के प्रयोग को जानने वाले घुडसवार के द्वारा शास्त्रविधि से चलाया गया बडा अरबी घोडा, चञ्चल एवं कठोर पैर रखते हुए अर्धमण्डलाकार गति से विचित्र प्रकार से चलने लगा।"

ऐसे स्वाभाविक चित्रो को देखकर विदित होता है कि विभिन्न चेष्टाओ के वर्णन मे कवि ने चित्रकार को चुनौती दे दी। सचमुच माघ बहुत बडे कवि थे। साहित्य के विभिन्न अङ्गों रसो, छन्दो, अलङ्कारों की सिद्धहस्तता का कहना ही क्या है? यह तो कवि का अपना अधिकृत क्षेत्र है जिधर से मन ने चाहा उधर से आरम्भ किया और समाप्त किया।[1]

---

1 सस्कृत साहित्य का सरल सुबोध इतिहास – साहित्याचार्य जितेन्द्रचन्द्र भारतीय शास्त्री।

माघ मे योगशास्त्र की प्रवीणता भी देखने को मिलती है। योग के सम्बन्ध मे माघ ने कहा है– जो कोई योगीजन इस परमात्मा की उपासना करता है इसे अन्तश्चक्षु से देखता है उसका विकरण होने पर (नष्ट देह होने पर) फिर इस ससार में जन्म नही होता है वह मुक्त हो जाता है।

य इम समाश्रयति, कश्चिदुदयविपदोर्निराकुलम्।
तस्य भवति जगतीह कुत पुनरूद्भवो विकरणत्वमीयुष ।। शिशु0 15/9

उक्त वर्णन से यह विदित होता है कि माघ दर्शन शास्त्रो के भी पण्डित थे। उनकी बहुमुखी प्रतिभा का उन्मेष उसके काव्य मे सर्वत्र पाया जाता है। "मैत्र्यदि चित्तपरिकर्मविदोविधाय" आदि[1] पद मे चित्त, परिकर्म, सबीजयोग, सत्त्वपुरूषान्यता ख्याति योगशास्त्र के परिभाषिक शब्द है। आस्तिक वैदिक दर्शनों की कौन कहे इसी प्रकार नास्तिक दर्शनो में भी उनकी पकड थी जिससे उनका पाण्डित्य उभर कर सामने आया।

या न ययौ प्रियमन्यवधूभ्य· सारतरागमना यतमानम्।
तेन सहेह विभर्ति रह स्त्री सा रतरागमनायतमानम्।।" शिशु0 4/45

यद्यपि इस प्रकार के भावो को प्रदर्शित करने से काव्य मे ओजगुण का आधिक्य रहा है, परन्तु सर्वत्र नही। 13वे श्लोक से 16वे सर्ग के मध्य ही इस प्रकार की काव्य पीढ़ी का प्रदर्शन किया गया है। वह भी ज्ञात होता है, कि प्रयास सिद्ध यत्न है जिसका हृदय केवल पाण्डित्य प्रदर्शन ही रहा है। जैसा कि उपर्युक्त श्लोक मे कहा गया कि– समाधि धारण करने वाले योगी रैवतक पर्वत पर मैत्री, करूणा, मुदिता, उपेक्षा के द्वारा पञ्च क्लेशो को त्याग कर परमतत्त्व को प्राप्त करते हैं। इस प्रकार माघ का अधिकार सभी क्षेत्रों मे था। इसमे प्रशसा की क्या बात? क्योकि इस युग मे उसी कवि को प्रतिष्ठा प्राप्त होती थी जो पाण्डित्य के अथाह ज्ञान को अपने गहन शास्त्रों की गूढ बातो मे स्थान देता था। इनकी कालिदास के पाण्डित्य से क्या तुलना? कालिदास तो प्रतिभा के धनी थे पाण्डित्य के नहीं। पाण्डित्य में तो माघ का कोई सानी ही नही था।

---

1 शिशु0 – 4/55

माघ एक उत्कृष्ट रससिद्ध कवीश्वर थे यह सत्य है कि कुलगुरू कालिदास की भाति उनकी कविता सर्वसाधारणजनो की मनोभाविनी नही हो सकती किन्तु यह भी स्वीकार करना पडेगा कि माघ की महत्ता समीक्षको की दृष्टि मे कालिदास से कम नही है। इतना ही नही नाटककार भवभूति ने कालिदास से प्रभाव ग्रहण करते हुए सीता को चित्रित किया।[1] जैसे कालिदास ने महाभारत से शकुन्तला का आख्यान लेकर उसे अपनी स्वतत्र प्रतिभा से बिल्कुल नया रूप दिया है– यह सत्य है कि कालिदास की विरासत को परवर्ती कवियो ने रीति, रस, अलङ्कार इत्यादि के माध्यम से जो मनोऽभिराम सामञ्जस्य ग्रहण किया था उसका वे उचित रूप से पालन नही कर सके। वक्तव्यवस्तु के औचित्यपूर्ण उपन्यास एव भावो की मार्मिकता की रक्षा की ओर उनका ध्यान नही गया और वे काव्य को अलङ्कृत करने मे ही अपनी प्रतिभा का और पाण्डित्य का उपयोग करने लगे। परिणाम यह हुआ कि कालिदास की 'वागर्थाविवसम्पृक्तौ।' वाली प्रतिज्ञा का पालन उनसे नही हो सका और उन्होने काव्य पुरूष को चमत्कारो एव अलङ्कारो से इतना भाराक्रान्त बना दिया कि साहित्य वधू के प्राणो का स्वाभाविक उच्छ्वास प्रतिहत हो गया।

भारवि, माघ एवं श्रीहर्ष इन तीनो महाकवियो के प्रयास से सस्कृत में अलङ्कृत शैली का विकास हुआ और भाषा के कलात्मक श्रृङ्गार अर्थालङ्कार की विचित्र विच्छित्तिपूर्ण योजना तथा शब्दालङ्कार श्लेष–यमक आदि के निर्बाध प्रयोग से कवि सहृदय भावको की योजनाओ को चुनौती देने लगे। कालिदास यदि विद्वज्जनो एव जनता दोनो के प्रतिनिधि कवि थे तो माघ कवियो के कवि तथा पण्डितो के पथप्रदर्शक थे। कवि मे ऐसा दुर्निवार अह था जिससे विवश होकर उसे अपने बहुश्रुतत्त्व पाण्डित्य और चमत्कारी प्रतिभा का परिचय हठात् देना पडा। इसी अह के वशीभूत होकर उन्होंने किरातार्जुनीयम् की शैली, वृत्ति और शब्दावली का अनुसरण भी कियाहै– नि:सन्देह कवि के हृदय मे यह प्रतिभा जगी हुई थी कि किरातार्जुनीयम् की ख्याति और लोकप्रियता को दबाकर शिशुपालवध अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त करे। उनमे भवभूति की सी गर्वोक्ति, कालिदास की सी कमनीय स्वच्छन्दता और बाण की निश्चल आत्माभिव्यक्ति का अभाव सा मिलता है। उन्होने अपनी

दार्शनिक, शास्त्रीय, साहित्यिक मान्यताओ को समन्वयवाद की झीनी चादर से लपेटने का भी कही–कही प्रयत्न किया है। यह निश्चित है कि माघ विशुद्ध वैदिक सनातन धर्मी परम्परा मे पैदा हुए इसलिए उन्होने जैन, बौद्ध मान्यताओ को सरक्षण प्रदान किया। यशोलिप्सु कवि ने बुद्धि कौशल द्वारा धार्मिक समन्वय स्थापित करने मे वही चातुर्य किया जो भारवि के किरातार्जुनीयम् के प्रति किया था। भारवि की भाति माघ ने भी युग का प्रतिनिधित्व करते हुए शिशुपालवध मे कथावस्तु को सक्षिप्त कर प्राकृतिक वर्णनो के चाकचिक्य द्वारा काव्य को मण्डित किया।[1] इस शैली मे कविता अलङ्कारो के भार से लदी हुई है। श्लोक के प्रयोग औरचित्रकाव्य के प्रदर्शन पाठको को बौद्धिक श्रम करने के लिए बाध्य करते है। माघ ने इस अलङ्कृत शैली को अपने पाण्डित्य से जितना उत्कृष्ट बनाया उतना किसी अन्य कवि ने नही। सचमुच वे माघ महीने की भॉति पण्डिाम्मन्य नवयुवको को भी कॅपा देने वाले थे। यही कारण थ कि कितने पण्डित लोग आजीवन माघ की इस एक मात्र अनूठी कृति के अनुशीलन मे ही अपना समग्र जीवन लगा देते थे। संस्कृत समाज मे यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि "मेघे माघे गतं वय"। इतना ही नही 'माघे सन्ति त्रयोगुणाः' कहते हुए भारतीय विद्वद्गणो ने कालिदास की उपमा, भारवि का अर्थगौरव व दण्डी के पदलालित्य की सराहना करते हुए महाकवि माघ मे इन तीनों का सन्निवेश बताया। "उपमा कालिदासस्य"

यद्यपि महाकवि माघ में उपर्युक्त सभी विशेषताए सन्निविष्ट हैं, किन्तु वे उन कवियो की तरह नही है। निम्नाकित उदाहरणो से उनकी सभी विशेषताए पूर्णतया स्पष्ट हो जायेगी। जो काव्यरसिको द्वारा भुलाई नही जा सकती। सुनहला पीताम्बर धारण करने वाले घनश्याम कृष्ण जी की उपमा माघ ने बऽवाग्नि की पीली लपटो से व्याप्त नीले नीरनिधि से दी है।

"स तप्तकार्तस्वरभास्वराम्बरा. कठोरताराधिपलाञ्छनच्छवि.।
विदिद्युते वाऽवजातवेदसः शिखाभिराश्लिष्ट इवाम्भसा निधिः।।" शिशु0 1/20

---

1 सस्कृत साहित्य चितन – डा0 प्रभुदयाल अग्निहोत्री

इस प्रकार पूर्ववत् कही गयी 'उपमा कालिदासस्य' सर्व विदित सूक्ति मे अत्युक्ति एव माघ के प्रति पक्षपात की कुछ गन्ध सूक्ष्म समालोचक को भले ही मिले, किन्तु वह भी इस बात को मानने से इन्कार नही करेगा कि माघ में उत्कृष्ट से उत्कृष्टतर उपमाए गुरू से गुरूतर एव सूक्ष्म से सूक्ष्मतर मधुर से मधुरतर ललित पदो का सन्निवेश सभी भरपूर मात्रा मे मिलते है। इस योजना मे भी वे अपने आदर्श रहे भारवि का भी अतिक्रमण कर गये। जैसा कि हरिहर ने लिखा है– सुभाषितावली मे–

"नैतच्चित्रमहं मन्ये माघमासाद्य यन्मुहु ।
प्रौढताति प्रसिद्धावि भारवेरवसीदति।।

अर्थगौरव की दृष्टि से यद्यपि भारवि विख्यात है, किन्तु माघ–काव्य मे भी अर्थगौरव का अभाव नहीं है।यह नि सन्देह सत्य है कि माघ के अर्थगौरव में पाण्डित्य प्रदर्शन की अधिकता केवल भारवि को नीचा दिखाने की भावना है।

बलभद्र श्रीकृष्ण से कह रहे है कि अनियत्रित बल और शास्त्रानुसारी बल मे बहुत अन्तर है। प्रकाश और अन्धकार की भॉति ये एक स्थान पर कैसे रह सकते है।

"समानाधिकरण्य हि तेजस्तिमिरयो कुत" । शिशु0

यद्यपि माघ की कविता मे उपमा, अर्थगौरव तथा पदलालित्य का मञ्जुल समन्वय है फिर भी माघ की अपनी एक निजी विशेषता है वह है किसी वर्णन को अलङ्कृत करने की कला। प्रत्येक वर्णन तथा प्रत्येक भाव साधारण शब्दों मे न होकर अलङ्कारो से विभूषित भाषा मे प्रकट किया गया है। माघ की कविता कृत्रिम नही है, अपितु अलङ्कृत है। वह युग ही पाण्डित्य का युग था। सामान्य सहृदय को रिझाना कविकर्म की कसौटी नही थी, बल्कि शास्त्रवेत्ता पण्डितो के हृदय मे किसी भाव को उतारना ही कवि का मुख्य उद्देश्य था।[1]

---

1 संस्कृत साहित्य का सक्षिप्त इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय पृ0 115

माघ की शब्दार्थ योजना मे अर्थ को सद्य अभिव्यक्त कर देने की क्षमता नही है, जो कालिदास मे है। कालिदास के समानान्तर माघ का भी यश प्रसृत हो रहा था, क्योकि समय की यही माग थी। युग का यही धर्म था।[1] फलत माघ ने भी उसी धर्म का अनुसरण किया। इसमे न तो कही अनौचित्य है, न अस्वाभाविकता। इसमे कहना ही क्या? माघ के पास विविध शास्त्र ज्ञान था ही वाणी उनके वशवर्तिनी थी इतने मे पदलालित्य के साथ–साथ अर्थगौरव होना उनके विशाल शब्दकोष का परिचायक था। इसलिए तो कहा गया है कि "नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते" । (शिशुपालवध)

शिशुपालवध महाकाव्य का नवसर्ग समाप्त होने पर कोई ऐसा नया शब्द नहीं रह जाता है जिसका प्रयोग कविता के क्षेत्र मे कही अन्यत्र हुआ हो। अस्तु माघ का अर्थगौरव अपरिमित एव चितनशील है। उनकी अर्थपूर्ण उक्तियॉ काव्य को अधिक प्रभावी बनाने मे समर्थ हुई है– अर्थगौरव का एक सुन्दर उदाहरण देखिए–[2]

प्रतिकूलतामुपगते हिविधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यत. करसहस्त्रमपि।। शिशु0 9/6

उक्त उदाहरण को देखकर विदित होता है कि माघ अर्थगाम्भीर्य को विशेष महत्त्व देते है। उनकी दृष्टि मे अर्थगाम्भीर्य से युक्त प्रबन्ध काव्य दुष्कर होता है "अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धोदुरूदाहर."। उनकी दृंष्टि मे सुयोग्य कवि को प्रसाद माधुर्य और ओज तीनो गुणो का आश्रय लेना चाहिए। नैकमोज. प्रसादो वा रसभावविदः कवे"।[1] इतना ही नही माघ का यह भी कहना है कि गुणो का सामञ्जस्य वैदर्भी और गौड़ी रीति से होता है। युग का प्रभाव ही कुछ ऐसा था कि कठिन शैली के काव्य की महिमा बढती थी। ऐसी स्थिति मे युगानुरूप धारा मे अपरिचित पद, लम्बे समास अनेकार्थक श्लेष यमकादि अलङ्कार और बहुविध चित्रबन्धों की जटिलता से माघकाव्य गौरवान्वित है।[2]

---

1 सस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – रामजी उपाध्याय पृ0 315
2 माघ प्रणीत शिशुपालवध – डा0 देव नारायण मिश्र

वस्तुत अर्थगम्भीरता माघ का विशेष गुण है। इसी प्रकार पदमाधुर्य की निपुणता तो कोई माघ से ही आकर सीख सकता है। पदलालित्य के विषय मे तो दण्डी व श्रीहर्ष विशेष प्रसिद्ध है "नेपधे पदलालित्यम्" अथवा "दण्डिन पदलालित्यम्" की प्रसिद्धि होते हुए महाकवि माघ किसी से कम नही है। उनकी कोमलकान्त पदावली हठात् मन को आकृष्ट कर लेती है। माघ की पद योजना तो इतनी सुगठित है एव ललित है, कि कोई भी शब्द अपने स्थान से हटाया नही जा सकता। क्योकि पदलालित्य वही होता है। जहॉ पदो मे परस्पर मैत्री होती है। पद इतने जमे–जमाये एव नपे तुले होते है कि वे अपने स्थान से हटाये नही जा सकते। उनके पदो मे "नवपलाशपलाशवन पुर"[1] तथा "वदनसौरभ लोलपरिभ्रमत्" की तरह शब्दो की सगीतात्मक एक रसता वीणा के तारो की झङ्कार की भॉति अर्थावबोध की प्रतीक्षा किये बिना ही हृदय को रसाप्लुत बनाती है। यही वह रमणीयता है जो प्रतिक्षण एक नये रूप मे आकृष्ट करती हो। "क्षणे–क्षणे यन्वतामुपैति तदेवरूप रमणीयताया"।[2] नि सन्देह ऐसा लालित्य जो माघ मे है वह दण्डी मे भी विराजमान है। इससे यह प्रतीत होता है कि दण्डी को अपने इस सरल प्रसादगुणयुक्त शैली तथा पदलालित्य[3] की प्रेरणा भी अपने पूर्ववर्ती आख्यान ग्रन्थो यथा पचतत्र, सुबन्धु के वासवदत्ता बाण की कादम्बरी, भास के नाटको और कालिदास के ग्रन्थो से अवश्य मिली हुई प्रतीत होती है। क्योकि दण्डी लालित्य के पाण्डित्य प्रदर्शन मे उलझकर किसी अभीष्ट अर्थ या भाव को मुख्य शब्द द्वारा व्यक्त न कर शब्द विस्तार द्वारा व्यक्त करते थे। एक उदाहरण देखिए– "क्षीणसार सस्यम् ओषधयो बन्ध्या. न फलवन्तो वनस्पतय क्लीवा मेघा खिन्नस्त्रौमस· सत्रवन्त्य, पङ्कशेषाणि पल्वलानि, नि स्यन्दामुत्समण्डलानि, शून्यीभूतानि नगरग्रामस्ववंटपुट मेवामि।"

---

1 शिशु0 – 6/2, 6/14
2 शिशु0 – 4/17
3 दशकुमारचरित –

यह उल्लेखनीय है कि दण्डी समस्त पदावली का प्रयोग किसी वस्तु का वर्णन करने के लिए ही करते है। जिससे उसका सजीव चित्र स्वय पाठक के सामने उपस्थित हो जाता है। इसीलिए आलोचको ने दण्डी की मनोरम पदशय्या की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है। "दण्डिन. पदलालित्यम" तो सस्कृत मे एक प्रसिद्ध उक्ति ही बन गयी है। सचमुच दण्डी की गद्य की रूक्षता पद्योचित सरसता एवं सुकुमारता मे परिवर्तित हो गयी है। जिसका एक उदाहरण दृष्टव्य है—

> "निशास्वपि श्मसानमधिशये· निजनिलयनिशितनिशेषजने नितान्त निशीते निशीथे, अयुग्मशर· शरशयने शाययिष्यति सखे! सैषा सज्जनाचरिता सरणि. यदणीयसि कारणेऽनणीयानादर सदृश्यते।" दशकुमार चरित

उक्त उदाहरण से विदित होता है कि दण्डी प्रयत्न साध्य शैली के लिए विख्यात थे। सुबन्धु की भॉति दुरूह एव कृत्रिम शैली उन्हे बिल्कुल प्रिय नहीं थी।[1] इसीलिए कवियों ने "कविर्दण्डीकविर्दण्डी कविर्दण्डी न सशय:" कहकर उनको प्रसिद्धि दिलाई। दण्डी के उक्त पद लालित्य की महाकवि माघ में भी कमी नही थी। उन्होंने शिशुपालवध मे सुन्दर एवं लालित्य पूर्ण शब्दो की कल्पना की है। देखिए —

> "कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं, त्यजति मुदमुलूक. प्रीतिमांश्चक्रवाक,।
> उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्त हतविधिलसिताना हा विचित्रो विपाक:।।"
> शिशु0 11/64

इन पदो में अनवद्य लालित्य का अनुभव सहृदय पाठक सहज ही कर सकते है। अनुप्रास और यमक की छटा होड दी जाय तो भी कर्णवुहरो में अमृत रस घोलने वाली मधुर शब्दावली ही पर्याप्त काव्यानन्द दे जाती है। माघ ने कविता कामिनी के सर्वविध श्रृङ्गारो को हस्तगत किया था।[2] वे भट्टि की भांति व्याकरण के सूत्रो का उदाहरण बनाने के लिए नही बैठे थे और न ही श्रीहर्ष की भाति जटिल शब्दों को ढूढकर कर पदो में पच्चीकारी करने का ही उन्हे व्यसन था। उन्हें तो कविसिद्ध बनने का गौरव था।[3]

---

1 जलददारूणि लोलतडिल्लताकरपत्र दरिते पवनवेगनिर्धूताश्चूर्णनिकरा इव जलकणावभु· विच्छिन्नदिग्वधूहारमुक्तानिकरा इव करकाव्यराजन्त।"
सुबन्धुकृत वासवदत्ता पु0 248—249

2 कालिदास का बिम्वविधान — डॉ0 अयोध्या प्रसाद द्विवेदी

3 सस्कृत काव्यकार — हरिदत्त शास्त्री — पृ0 421

एक प्रसङ्ग देखिए–

या या प्रिय· प्रैक्षत कातराक्षी सा सा ह्रिया नम्रमुखी बभूव।
निशङ्कमन्या· सममाहितेर्ष्यास्तत्रान्तरे जघ्नुरमु कटाक्षै ।। शिशु0 3/16

माघ मे कालिदास के रस चित्रण की मौलिकता के स्थान पर रूढिग्रस्तता तथा सामाजिक मर्यादा के स्थान पर उच्छृङ्खलता के दर्शन होते हैं। वह गाम्भीर्य जो कालिदास मे है माघ मे नही है जो हृदय को तन्मय कर दे तथा आत्मा की प्यास को शान्त कर दे।

छन्द विधान के साम्राज्य को भी माघ ने भारवि से अधिक प्रयोग करते हुए विविध छन्दो के माध्यम से काव्य को सुसज्जित किया। इससे माघ की अतिशय कलावादी रूचि का परिचय मिलता है। द्वितीय सर्ग मे राजीनति का वर्णन अनुष्टुप छन्द मे ही करते है। ऐसा प्रतीत होता है कि माघ का यह सर्वप्रिय छन्द है।

तन्त्रावापविदा योगैर्मण्डलान्यधिष्ठिता।
सुनिग्रहा नरेन्द्रेण फणीन्द्रा इव शत्रव ।। शिशु0 2/88

19वे सर्ग मे विलक्षण एव दु·साध्य अलङ्कारो का प्रयोग वहा आकर्षक है पञ्चम सर्ग मे वसंततिलका का विलास सर्वत्र दृष्टिगत होता है।[1] इतना ही नहीं भारवि और माघ दोनो ने कामविलास वर्णन मे स्वगता एवं प्रहर्षिणी का अनोखा वर्णन कर अपनी चमत्कार जन्य प्रतिभा का प्रदर्शन किया। इन वर्णनों से माघ के विलासी, एव विनोप्रिय होने का स्पष्ट सङ्केत मिलता है। समस्त अलौकिक अलङ्कारों से अलङ्कृत शिशुपालवध के छन्दोंमय शरीर पर नौ रसों की अमृतवर्षा कर उसे अमर एवं स्पृहणीय बनाने का श्रेय माघ को ही है। इस प्रकार सम्यक् अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि कविवर माघ और उनका ग्रन्थ उस युग का प्रतिबिम्ब है जिसमे तीन गुणो का सयोजन है। इसलिए सत्य ही कहा गया है– "उपमा कालिदासस्य"।

इस प्रकार निष्कर्ष यही निकलता है कि माघ की अलङ्कृत भाषा, पदविन्यास की प्रौढता, समस्त पदावली तथा सरसता ने उनकी शैली को एक अनूठा व्यक्तित्व प्रदान किया है। माघ की प्रशंसा करते हुए विद्वानों ने कहा है–

---

1 उन्नम्रताम्रपटमण्डपमण्डितं तदानीलनामकुलसङ्कुलमाबभासे।
सन्ध्यांशुमिन्नधनककुर्बरितान्तरीक्षलक्ष्मीविडम्बि शिविर शितरीतनाय।। शिशु0 5/68

मुरारि–पद–चिन्ता चेत् तदा माऽघे रतिकुरू।
मुरारिपदचिन्ता चेत् तदा माघेरतिकुरू।।

माघ कवि के विषय मे यह उक्ति कही गयी है कि यदि मुरारि पद अर्थात् भगवान श्रीकृष्ण के पदो की चरणारविदो की चिन्ता हे, भगवद्भक्ति प्राप्त करना चाहते हो तो 'अघे मति मा कुरू' (माघे मति कुरू) पाप मे बुद्धि मत लगाओ, पाप बुद्धि से मुक्त रहो। और मुरारी कवि के पदो की शैली देखना चाहते हो तो माघ कवि के पदों का चितन करे अर्थात् जब तक माघ कवि के पदो से परिचय न होगा तदनुवर्ती मुरारि कवि का काव्य समझ में नही आएगा। यह उक्ति चमत्कारिणी होने पर भी सत्य है, क्योकि ऐसे पाण्डित्यपूर्ण काव्य का अध्ययन करने से सस्कृतज्ञ लोग कदापि नहीं चूकते। माघ शब्दशास्त्री थे। इसलिए उभयार्थक चतुर उक्ति नवसर्गगते" के साथ उनका शब्द भण्डार भी अप्रतिम था। निश्चय ही माघ ने भारवि पर विजय पा ली। भारवि की अपेक्षा माघ अवश्य बढे हुए है। तभी तो माघ के प्रशसको ने कहा है कि–

"तावद्भाभारवेर्भाति यावन्माघस्यनोदय·।

अन्तत माघ के समस्त चित्रण अलङ्कारो से विभूषित है। कोई भी चित्रण मे नवीनता का अभाव नहीं है। वृक्षो, लताओ आदि के वर्णन मे उद्दीपन विभाव की चरम अभिव्यक्ति हुई है। श्रृङ्गार मे तो सिद्वहस्त है। फिर भी उन्होने कहीं भी शिष्टाचार का अतिक्रमण नही किया है। अतिमानवता के दुराग्रह में फॅसकर उन्होंने अपने आदर्श चित्रो को आकाश मे नही उडाया, बल्कि अपनी कल्पना के द्वारा उनमे नवीन भाव स्थापित करके धरती के पुतलो से दूर करने का यत्न किया है।[1] इस प्रकार माघ सिद्धहस्त कवि ही नही सर्वशास्तज्ञ प्रकाण्ड पण्डित भी थे। उनकी जैसी बहुलता अन्यान्य संस्कृत कवियो मे कम मिलती है। छन्द शास्त्र सभी पर इनका यथेष्ठ अधिकार था। सनातन परम्परा के अनुयायी होते हुए भी नास्तिक तथा आस्तिक दोनो दर्शनो के सूक्ष्म बातो का भली भॉति ज्ञान भण्डार निहित था। इस प्रकार विभिन्न शास्त्रो एव दर्शनो मे अपनी मेधा का इस्तेमाल कर उन्होने अपनी स्पष्ट पकड सिद्ध की। सचमुच महाकवि माघ का व्यक्तित्व उत्कृष्ट कोटि का था। डा0 एस0के0डे0 के शब्दो मे –

---

1 संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – राम जी उपाध्याय

"The extent of his influence on his successors, in whose estimation he stands even higher than Kalidasa and Ba\haravi, indicates the fact that it is Magha, More that Kalidasa and Bharavi, who sets the standard of !ater verse making, but the immense popularity of this poem also shows that there is always a demand for poetry of a little lower and more artificial kind. History of sansprit Literature P. 194.

**महाकवि रत्नाकर :–** अभी पण्डितो और विद्वज्जनो की जिह्वा से साथ ही काव्य जगत् से माघ की अलङ्कृत शैली का प्रभाव समाप्त ही नही हुआ था, कि उनके परम प्रतिद्वन्दी रत्नाकर का सद्य आविर्भाव हो जाता है। महाकाव्यो की इस उन्नत प्रणयन परम्परा मे 'रत्नाकर' का आगमन अवश्य कौतूहल पैदा करने वाला था, क्योकि महाकाव्यो के वृहत्काय की अद्भुत विशेषताओ को समेटे हुए 'रत्नाकर' की यह कृति ('हरविजय') परोक्ष रूप से माघ काव्य के लिए चुनौती थी। यद्यपि इनके ग्रन्थ 'हरविजय' में काव्यगत विशेषताओ का भाव नगण्य नही था, फिर भी माघ काव्य के समान इसका प्रचार–प्रसार नही हो पाया। यह इसके लिए दुर्भाग्य का ही विषय था। कविवर रत्नाकर ने पूर्णरूपेण अपनी अलङ्कृत शैली को विकास के चरम बिन्दु पर पहुचाने का कार्य किया, जिसमें उनके आदर्श रहे उनके पूर्ववर्ती, भारवि, माघ, बाण, सुबन्धु इत्यादि जिनसे यथावत् प्रेरणा लेकर अपनी कविता वनिता को सर्वविध श्रृङ्गारो से सुसज्जित कर उसे काव्य जगत् मे एक अभूतपूर्व स्थान दिलाया। इतना ही नही इनके भाषा, भाव, शैली, अलङ्कार, गुण, छन्द आदि सभी भावो को माघ की प्रतिभा ने पूर्णरूपेण प्रभावित किया। यद्यपि कविवर रत्नाकर के समक्ष तो वाल्मीकि और व्यास के काव्य उपजीव्य रूप में विद्यमान थे, और वैदिक कविता धारा साहित्य संसार को रसन्वित करती हुई शनै–शनै. रूप मे प्रवाहित होकर बह रही थी, फिर भी इन्होने अपने काव्य का आधार माघ काव्य को ही बनाया, क्योकि वे अपने काव्य को 'पण्डितो के काव्य' की उपाधि से समलङ्कृत करना चाहते थे। वाल्मीकि के समक्ष तो संस्कृत

काव्य का कोई भी शास्त्रीय रूप विद्यमान ही नही था। उन्होंने अपने आर्षचक्षुओ से जैसे ही भावो को देखा था वैसा ही भाव, वैसी ही उदात्तशैली, वैसा ही उदात्त चरित्र उपनिबद्ध कर काव्य प्रणयन कर डाला था। महाकाव्य के बहुविध आयामो का सर्वाङ्गीण अध्ययन कर सौन्दर्यवर्धक दृष्टि से आर्षकाव्य रामायण का ग्रन्थन किया जिसमे वह सौन्दर्य निवेशित था जो परवर्ती काव्य ग्रन्थो मे आज भी उपलब्ध न हो सका। भारतीय ललना का यह आदर्शभूत कथन सीता के ही चरित्र मे द्योतित होता है–

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेय निशाचरम्।
रावण कि पुनरहं कामयेय विगर्हितम्।।[1]

कालिदास के ग्रन्थो में रामायण और महाभारत का वह श्लाघनीय प्रभाव दिखाई देता है, जो कालिदास के परवर्ती कवियो मे नही दृष्टिगत होता। वह सारस्वत प्रवाह और वैदर्भी शैली कालिदास के ग्रन्थो मे ही मिलती थी अन्य कवियो में नहीं। इसके अनन्तर यह पीयूष–प्रवाह थोडा बहुत कुमारदास के ग्रन्थो मे भी परिलक्षित होता है, क्योकि कुमारदास ने तो पूर्णरूपेण कालिदास का ही अनुधावन करना चाहा था। भाषा के आडम्बर मे अवश्य नही है, किन्तु शकुन्तला के स्वाभाविक सौन्दर्य के सदृश उनकी भाषा का सहज सौन्दर्य भी सहृदयो को आकृष्ट करता है। सर्वत्र उनके महाकाव्यो मे गङ्गा प्रवाह के सदृश निरन्तर स्वाभाविक गति से बहने वाली उनकी शैली सस्कृत महाकाव्यों की श्रृड्खला में मानदण्ड है। कालिदास और अश्वघोष के अनन्तर कई आचार्य इस क्षेत्र मे सक्रिय हुए, लेकिन उनके काव्य काव्यगत रूढियों से इस प्रकार आबद्ध थे, कि स्वाभाविकता का तो हनन हो ही गया साथ ही वह सामान्य जनो को रसोद्बोधन कराने मे भी अक्षम हो गये। रूढ़ियो मे भी ऐसे–ऐसे वर्ण्य विषयो (यथा ऋतुवर्णन, पर्वत वर्णन, सूर्योदय वर्णन, जलकेलि वर्णन, नदी वर्णन इत्यादि) को चुना, जिनमे भावपक्ष का तो नामोनिशान ही मिट गया केवल प्रतिद्वन्द्विता मे चमत्कृत प्रदर्शन करना ही कवियों का उद्देश्य बन गया। और इस प्रकार काव्य का क्षेत्र सहृदय

---

1 सस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय – पृ0 74

रसिको के हॉथ निकल कर पण्डित लोगो के ही अधिकार मे हो गया। अब काव्य का आस्वाद सुदीर्घ मानसिक व्यापार करने के बाद ही प्राप्त करने मे सम्भव हुआ और सद्य पर निर्वृत्यात्मक काव्य का उद्देश्य पीछे चला गया। मानव मनोभावो के तादात्म्य से चित्रित प्रकृति भी इस काल मे पूर्णतया कृत्रिम चित्रित होने लगी और उसको प्राय उद्दीपन रूप मे देखा जाने लगा। अप्रस्तुत विधान को तो सहजता से पूर्णतया छोड ही दियागया। इस प्रकार माघ तक चमत्कृत काव्यजगत्पूर्ण विकसित हो चुका था। अत अब उसे आलङ्कारिकों द्वारा नियमित किया जाने लगा था। आलङ्कारिको ने उसे नियमवद्ध कर दिया था। फलत कालिदासोत्तर काव्य इन्ही आलङ्कारिक नियमो की परिधि मे आबद्ध होकर लिखे जाने लगे। अश्वघोष के काव्यो के दार्शनिक विचार भी प्रासादिक शैली मे अभिव्यक्त होने के कारण ही इतने लोकप्रिय हो सके हैं, क्योकि सरल भाषा में अभिव्यक्त भाव जितना प्रभावकारी होता है एव हृदयग्राही होता है उतना कृत्रिम एवं अलङ्कृत भाषा मे नही। काव्य का उद्देश्य कवि की अनुभूतियो को जन साधारण तक पहुँचाना होता है और यह तभी हो सकता है जब वह सरल भाषा मे लिखा गया हो। पाण्डित्य प्रदर्शन से कभी भी काव्य का उद्देश्य पूरा नही होता है। सुन्दर भावो की अभिव्यञ्जना मे शाब्दीक्रीडा सहृदय पाठक को कर्कश ही जान पडती है। अलङ्कारो का आधिक्य भावो को तिरोहित कर देता है। जहॉ माघ की काव्यरीति गौडी थी, वही कालिदास की वैदर्भी।इससे प्रतीत होता है कि कालिदासोत्तर कालीन कवियो ने काव्य की नैसर्गिकता को नही अपनाया है। जहॉ एक ओर आर्षकाव्यो मे भाषा का स्वाभाविक प्रवाह प्रवाह था वही इन काव्यो मे (यथा– किरात, माघ, भट्टि, हरविजय इत्यादि) वह प्रयत्न साध्य अलङ्कारो के बोझ से दबी हुई है। राज्याश्रित होने के कारण इन कवियो के काव्यों मे सर्वत्र राजकीय जीवन की विलासित एवं कृत्रिमता तथा आमोद–प्रमोद का वातावरण देखा जाता है। जिससे समाज का साधारण जीवन दब गया है। यहॉ सर्वत्र शाब्दीक्रीडा ही है और अलङ्कार ही परम साध्य है। इन्ही के लिए कवि ने सर्वत्र प्रयत्नशील देखा जाता है। उक्तिवैचित्र्य ही काव्य के लिए सर्वस्व है। यहॉ न कालिदास जैसी विदग्धता है और न भावों की मधुर व्यञ्जना। अलङ्कारो

का कौशल प्रदर्शन करने में और विशेषतया अनुप्रास, श्लेष एव विरोधाभास के चमत्कार प्रदर्शन से भाषा को अधिक से अधिक सजाने मे, भावो को गूढ बनाने मे ही इन कवियो ने अपने कविकर्म की महत्ता समझ ली। यही कारण है कि इन काव्यों का विषय गौण हो गया और कला का चमत्कार ही प्रधान बन गया। ऐसा प्रतीत होता है कि ये काव्य जन साधारण के लिए नही लिखे गये थे। अतः अवसर आने पर भी इन कवियो ने साधारण जीवन के चित्रण की उपेक्षा कर दी है। ऐसी ही विशेषताओं से ओतप्रोत "महाकवि रत्नाकर" का "हरविजय" भी सस्कृत साहित्य मे अपना अनुपम स्थान रखता है। 'हरविजय' महाकाव्य की भाषा नितान्त सरल एव आलङ्कारिक है। दुरूह शब्दाऽम्बर से वह आच्छादित नही है। इन्होंने अपनी कविता कामिनी को बहुविध आयामो एव रूढिवादी शैली से अलङ्कृत किया जो बाद के कवियो तथा काव्यो के लिए मार्ग निर्देशक के रूप मे साबित हुई। इतना ही नही 'रत्नाकर' ने स्वय अपनी शैली की दर्पोक्ति की है। कि – उनकी शैली ललित, मधुर, अलङ्कार प्रसाद, मनोहर, विकट यमक व श्लेष से मण्डित चित्रमार्ग मे अद्वितीयवाणी को सुनकर वृहस्पति के मानस पटल मे भी चिन्ता हो जाती है।

"ललितमधुराः सालङ्काराः प्रसाद मनोरमा।
विकटयमकश्लेषोद्वार प्रबन्धनिरर्गला ।।
असदृशगतीश्चित्रे मार्गे ममोग्दिरतोगिरो।
न खलु नृपते चेतो वाचस्पतेरति शङ्कते।।[1]

कविवर रत्नाकर ने जिस चमत्कारप्रियता को पराकाष्ठा पर पहुचाया उससे यही आभास होता है कि इस युग ने स्वान्तः सुखाय वाली प्रवृत्ति का पूर्णतया परित्याग कर दिया था और पाण्डित्य प्रदर्शन का दिखावा मात्र काव्यों का उद्देश्य रह गया था। इनकी अपनी शैली के प्रति की गयी दर्पोक्ति अनेक अशो में यथार्थ है।[2]

---

1 संस्कृतसाहित्य का इतिहास – डा० राजकिशोर सिह, आचार्य देवीशकर सिंह पृ० 84
2 कल्याणी गिरमुत्स्त्रष्टुं विरला एव जानते।
सत्या लेखा विलिखितु चित्रकर्मविदो यथा।। हर०– 32/70

भामह, दण्डी, रूद्रट, आदि कवियो ने अपने अलङ्कारिक ग्रन्थो मे महाकाव्य के जो लक्षणं दर्शाये तथा उसमे जिन–जिन विशेपताओ का निहित होना बताया वह आगे चलकर रूढ रूप मे विद्यमान पायी जाने लगी। साथ ही महाकाव्यो मे मानव जीवन के जिस सर्वाङ्गीण विकास के चित्रो की यहाँ आवश्यकता थी, उनका यहाँ लोप हो गया। महाकवि भारवि ने जिस एक नवीन शैली को प्रादुर्भूत किया उसी काव्य सरणि को अपनाते हुए भट्टि, माघ, रत्नाकर के 'हरविजय' का कथानक पौराणिक (शिवपुराण से) है।[1] फिर भी कवित्व के लिए तो आर्षकवि वाल्मीकि ही उनके आदर्श है। इस ग्रन्थ मे भावो की अभिव्यक्ति भी कवि ने अपनी शैली के अनुरूप ही कियाहै। इस दृष्टि से इनकी शैली मौलिक है। किसी कवि द्वारा वर्णित भाव को अन्य रूप मे व्यञ्जित करना रत्नाकर की अपनी विशेषता है।[2] इस दृष्टि से 'रत्नाकर का हरविजय' काव्य कला का चूडान्त निदर्शन प्रस्तुत करता है। पचास सर्गो मे निबद्ध इस ग्रन्थ मे रत्नाकर ने अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा को उडेल दिया है। साथ ही उसको विपुलकाय करने में अपनी क्षमता का अद्भुत प्रदर्शन भी दिखाया है। रत्नाकर का मानना है कि क्षण–क्षण मे नवता धारण करने वाली प्रकृति मे जो मधुर सौन्दर्य एव रमणीयता दृष्टिगत होती है। मानवसौन्दर्य उसी का एक अङ्ग है। माघ काव्य की ख्याति को देखकर प्रतिस्पर्धा मे ही रत्नाकर ने अपने हरविजय की रचना किया। माघ की स्पर्धा में ही रत्नाकर ने चित्रालङ्कारो का जो रमणीय प्रदर्शन किया उससे इनके काव्य की शोभा बेहद आकर्षक एव चमत्कृत हो गयी है। अनेक बन्धो यथा– सर्वतोभद्र, गोमूत्रिका मुरजबन्ध, अनुलोम, प्रतिलोम इत्यादि का व्यापक प्रयोग कवि की प्रतिभा का परिचायक है। पाण्डित्य की निकष कसौटी होते हुए भी अलङ्कृत शैली से युक्त है। इतना ही नही छन्दों की उचित भावाभिव्यक्ति का माध्यम अलङ्कृत भाषा है।

---

1 गर्भो वभूवाथ करालवक्त्रो भयङ्कर क्रोधपर कृतघ्न ।
अन्धो विरूपी जटिलश्च कृष्णो निरन्तरो वैकृतिक सुरोम ।।

2 गायन्, हसन्, प्ररूदन्, नृत्यमानो विलेलिहानो, घनघोरघोष ।
जातेन तेनाद्भुतदर्शनेन गौरी भवोऽसौ स्मितपूर्वमाह।।
शिव पु0 – अध्याय 43, श्लोक 19–20

कविवर रत्नाकर ने अपने महाकाव्य 'हरविजय' मे हर (शिव) द्वारा अंधकासुर की कथा अङ्कित की है, और कवि का कहना है कि पार्वती ने शिव के नेत्रो को लीलावश अपने हॉथो से ढक लिया अत शिव से उत्पन्न अन्धक दृष्टिहीन हुआ पर तपस्या करके उसने शिव दृष्टि प्राप्त की तथा तीनो लोको का स्वामी बन बैठा। लेकिन अन्त में शिव को उसका वध करना पडा।

सम्पूर्ण ग्रन्थ में वर्णन कुशलता का भाव दीख पडता है। कवि ने तो केवल तेरह सर्गो मे अन्धकासुर का नाश करने के लिए सचिवो का परामर्श दिखाया है तथा अन्य तेरह सर्गों मे शिवप्रमथो के विहार का वर्णन किया है– इसके अलावा सात सर्गों मे शिव के दूत और अन्धकासुर का सवाद होता है। इसी प्रकार अन्य सर्गों का भी वर्णनानुसार विभाग कर दिया गया है। इससे ही 'हरविजय' के विपुल परिणाम की अद्वितीयता का आभास होता है। नि सन्देह काव्य गुणो के समुचित समावेश से वह अद्वितीय है। रत्नाकर के 'हरविजय' में वस्तुवर्णन की कुशलता तो सर्वत्र विद्यमान ही है। साथ ही नाटक, सगीत, अलङ्कार व चित्रकला जैसे विषयो पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रकाश डाला गया है। तात्त्पर्य यह है कि जिस तरह काव्य शब्दो द्वारा भावो को अभिव्यक्त करता है, उसी प्रकार प्रेक्ष्यकलाए आकृतियो के द्वारा हर युग मे उनकी अभिव्यक्ति करती है। अतएव जिस भॉति प्रत्येक भाषा की प्रकृति अलग–अलग होती है, उसकी अपनी विशेषताए होती है, मुहावरे होते है, अलङ्कार होते है, उसी भॉति प्रेक्ष्य कला की भिन्न–भिन्न शैलियो की प्रकृति भिन्न–भिन्न होती है। अनुभूति और अभिव्यक्ति में सहानुभूति है, अत उसकी रचना मे रस होता है। रमणीयता होती है, इसलिए कला रसात्मक है, रमणीय अर्थ प्रतिपादक है।[1] हमारी नवम शती0 की मूर्तिकला खजुराहो के मन्दिर, पल्लवो के मन्दिर, चोलो के मन्दिर जिसमे हमारे युग युग की संस्कृति और आध्यात्मिकता के सन्देश भरे पडे है, और जो ससार के हजारो कोस मे फैली हुई है– आज हमारी उपेक्षा की वस्तु हो रही है–

---

1 भारतीय मूर्तिकला – रायकृष्णदास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

हमारा कर्तव्य है कि हम उसे समझे उसका सरक्षण करे और उसे पुनरूज्जीवित करे। इस दृष्टि से कविवर रत्नाकर की अलङ्कृत शैली भी बेहद प्रभावी दिखाई पडती है, जिसका पाठक के ऊपर तत्काल प्रभाव पडता हे। कवि के भाव पाठक या श्रोता पर सम्मोहन का कार्य करते प्रतीत होते हैं। भाषा तथा भाव दोनो दृष्टियो से धनी कवि की यह कृति हरविजय मे सर्वत्र लालित्य परिलक्षित होता है— देखिए पदलालित्य का एक उदाहरण —

लीला—विलोल—कलकण्ठ—विहङ्गकेलि, कोलाहलाकुल—कुलायकुलामलाङ्के।
कक्कोल—कन्द—कदली—लवली—लवङ्ग माला—ललाम—जल—मञ्जुल—कूलकच्छे।।
हर0— 4/35

रत्नाकर की भाषा विषय के अनुरूप है। गम्भीर एव गूढ राजनीतिक विवादो मे दक्ष रत्नाकर का उक्तिवैचित्र्य अनुपम है। युद्ध प्रसङ्गो तथा प्रकृति प्रसङ्गो मे भी सवादो का अविरल प्रवाह स्फुरित होता है। रत्नाकर को भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था जिससे उनके अलौकिक वाक्पटुता का ज्ञान होता है। अधकपुरी के वर्णन मे कवि की भाषा कितनी सुबोध, प्रसादयुक्त और प्रवाहशील है— देखिए कुछ उदाहरण —

"विकासि—किंशुकच्छायाद्वनादिव विभावसो।
तत्क्षणापहृतान् पत्रशुकानैक्षत सत्यथ।।" हर0— 32/36
"चन्द्रांशु गौर सत्पक्षबालभारान् प्रचेतस।
ददर्श वाहहसाश्च चामरांश्च हृतानसौ।।" हर0 — 32/37

राजनीतिक वाद—विवाद के प्रसङ्ग मे गूढ और गम्भीर भावो की प्रतिक्रिया देखते ही बनती है। जैसे माघ ने द्वितीय सर्ग पूर्णतया राजनीतिक सवादो से ओत प्रोत किया है, उसी प्रकार हरविजय मे रत्नाकर ने दसवे सर्ग मे वैसे ही प्रसङ्ग उपस्थित किये है— देखिए—

"शङ्के समाप्य महता हृदयेषु पूर्वमीषत्तदश परमाणुलवावशेषाम्।
गम्भीरता जलीधषु स्थिरता नगेषु विस्तीर्णता च नभसिव्यधिताथ वेधा.।।
हर0 10/18

उक्त वर्णन को देखकर यह आभास होता है कि हरविजय महाकाव्य प्रौढ और प्रत्युत्पन्नमति जनो तथा सहृदयश्लाघ्य पुरूषो के लिए है। इनके वाक्यविन्यास तथा शैली तो पराकाष्ठा को पार कर गयी है। अलङ्कृत शैली का विकट प्रभाव इनकी रचना पर सर्वत्र दिखाई पडता है। काव्य के बहुविध आयामो यथा भाषा, छन्द, रीति, गुण, अलङ्कार सभी का अप्रतिम भण्डार इनके काव्य मे निहित है। यद्यपि अनेक कवियो के द्वारा प्रयत्नपूर्वक इस ग्रन्थ की गुत्थियॉ सुलझाई गई है, लेकिन वे सभी इनके गुत्थियो से विलग रहे। रत्नाकर की इच्छानुसार भाषा इनके ग्रन्थ मे सर्वत्र परिवर्तित होती रहती है भाषा उनके अधिकार मे ही निहित है। कही प्रसाद गुण गुम्फित, कही माधुर्य से उपेत, कही ओजगुण युक्त कहीं रस से आप्लुत, कही–कही अलङ्कारो के चाकचिक्य से युक्त और चित्र–विचित्र रचना मे निष्णात् अपनी लोकातिशायिनी भाषा का वैभव अनवरत प्रकाशित करते है। ध्वन्यात्मकता, चित्रात्मकता, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, सजीवता, विम्बयोजना आदि गुण आधुनिक आलोचको ने इनकी भाषा मे स्वीकार किये है।

इतना ही नही रत्नाकर ने कुछ ऐसे स्तोक रूप में प्रयुक्त शब्दो का अपनी भाषा मे इस्तेमाल किया है जैसे– कासर (महिष.), कुलि (चटका), रसायु. (भृङ्ग), एकपिङ्गल (कुबेरः), इत्यादि शब्द भण्डार द्योतित होता है। इतना ही नही विशकटविटक, प्रतिघ–पट्ट–छटा–कूट, इत्यादि शब्द कवि को अत्यन्त प्रिय है।[1] रत्नाकर की भाषा मे वैदर्भी, गौडी, पाञ्चाली इत्यादि रीतियो का सर्वत्र प्रयोग हुआ है। कविवर रत्नाकर के समक्ष कविवर माघ की बहुत ज्यादा प्रसिद्धि थी। उनके काव्य को पूरी तरह दबा देने के उद्देश्य से इन्होने अपनी प्रतिभा का इस्तेमाल किया है। माघ वैष्णव थे इन्होने अपने काव्य को लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारू'' (अर्थात् भगवान कृष्ण के चरित कीर्तन के कारण सुन्दर)[2] कहा है उसी प्रकार शिवभक्त रत्नाकर ''चन्द्रार्धचूड

1. देखिए – हरविजय प्रशस्ति – 15/3,4,5,6, 16/82, 23/24,61, 25/49–59 इत्यादि।
2 श्री दुर्गादत्त निजवश हिमाद्रि सानुगगाहृदाश्रयसुतामृतभानु सूनु ।
रत्नाकरो ललितबन्धमिद व्यघत्त चन्द्रार्धचूडचरिताश्रयचारू काव्यम्।।
हरविजय प्रशस्ति – श्लोक – 1

चरिताश्रयचारू" लिखा है। रत्नाकर की प्रतिभा के आगे तो माघ की प्रतिभा हमे हतप्रभ ही दिखाई देती है। इतना ही नही रत्नाकर का व्यक्तित्व उच्चतम् कोटि का था। इनमे कवित्व की अपेक्षा पाण्डितय प्रतिभा के कुछ ज्यादा गुण विद्यमान थे। छठे सर्ग मे लगभग 200 श्लोको मे भगवान् शङ्कर की स्तुति बेहद परिमार्जित एव स्पृहणीय है। जिसके एक–एक पद मे शास्त्रो का गूढज्ञान समायोजित है। कविवर रत्नाकर दुर्वह अलङ्कृति से अपने को कभी मुक्त नही कर पाये, बल्कि नये–नये विषयो की ओर उनकी मेधा उन्मुख होती हुई दिखाई देती है। नई उत्प्रेक्षाए, नए विम्ब, कविता को कभी विस्मृत नही होने देती। इनकी कला अलङ्कृत तथा रगीन है। काव्यकला के प्रदर्शन के लिए ऐसी दुरूह सरणि का अवलम्बन किया है जिस पर चलना सरल नही है। इतना ही नही रत्नाकर का उदय ही उस युग मे हुआ था, जिस समय शास्त्रकाव्य एव अलङ्कृत काव्य का बोलबाला था। कवि का पाण्डित्य नानात्मक तो था ही साथ ही उसकी यथार्थता और भी चमत्कारिणी है। अनेक शास्त्रो के प्रदर्शन मे नगर, सागर, इत्यादि के वर्णन मे ही विचित्र मार्गी कवियो ने अपनी बुद्धि सन्निवेशित की। अलङ्करण की सर्वग्रासिनी प्रवृत्ति का उदय इसी युग मे हुआ। वस्तुत. यह कविता का सब प्रकार से ह्रास युग था। उत्तरवर्ती कवियो ने इस मान्यता की सीमा को दृढता से अङ्गीकृत करके जो कथाप्रवाह काव्य मे नितान्त गौण हुआ वह शब्दो के ऐन्द्रजालिक प्रयोगो द्वारा चमत्कृत कर दिया। यह प्रवृत्ति अनन्तर इतनी प्रबुद्ध होती गई कि रत्नाकर जैसे कवि को काव्य रचना का एक महत्त्वपूर्ण आयाम मिल गया। इसीलिए काव्यमीमांसाकार राजशेखर ने 'रत्नाकर' को 'उभय कवि' की कोटि मे समलङ्कृत किया है[1]– शास्त्रो में अप्रतिहत वैदुष्यता इच्छानुसार रस की अवधानता, अपने समय मे 'प्रचलित' सभी शैलियो मे काव्य रचना को साधने का समर्थ रत्नाकर मे ही था। युगपद् रूप से पाण्डित्य और वैदग्ध्य का मञ्जुल सन्निवेश अन्यत्र नही प्राप्त होता इसीलिए कश्मीरी कवि कल्हण ने इन्हे अवन्तिवर्मा की सभा का सर्वश्रेष्ठ 'कवि पण्डित' सिद्ध किया है।[2]

---

1 काव्यमीमासा – राजशेखर – (31 4)

2 मुक्तागण शिवस्वामी कविरानन्दवर्धन ।
प्रथा रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवगमण ।। कल्हणकृत तरगिणी – 2/34

इससे प्रतीत होता है कि उनके व्यक्तित्त्व का सर्वातिशायी पक्ष है। उनका अद्वितीय पाण्डित्य। वेद, उपनिषद, व्याकरण दर्शन इत्यादि के अतिरिक्त जैन, बौद्ध, आदि नास्तिक दर्शनो का शैव, शाक्त आगमो का पूर्णतया मन्थन उनके द्वारा किया गया था।

कविवर रत्नाकर प्रथम श्रेणी के वक्ता थे। उनमे भाषण कला की चतुरता माघ, भट्टि, भारवि, इत्यादि से ज्यादा थी। शिवगणो का विस्तृत भाषण, सभाचतुरता, सभागत शिष्टाचार, तर्क अनुमोदित तथ्य प्रभावोत्पादक युक्ति, उक्तिवैचित्र्य, प्रत्युत्पन्नमति ये सभी गुण इनकी वक्तृता में प्राप्त होते है। रत्नाकर ने 15वे सर्ग मे अपनी वाक् चतुरता अभिव्यक्त की। देखिए–

प्रतिपादयितु यदन्यथार्थान कुशलत्वेन जनोव्यवस्यतीमान्।
सकल· स गुणोऽस्य वाग्मिताया सतत ते पुरात्मरूपनिष्ठा ।। हर0 15–19

कविवर रत्नाकर को पर्यटन क्षेत्र का भी ज्ञान था। 'मार्गविभाग' वर्णन नामक तीसवे सर्ग मे उनका भौगोलिक ज्ञान स्पष्टता से प्रतिविम्बित होता है। काश्मीर की शस्यश्यामल भूमि का जैसा चित्र इनके द्वारा चित्रित किया गया है। वैसा अन्यत्र नही है। कवि को 'तालवृक्ष' बेहद प्रिय थे जिस कारण वह 'तालरत्नाकर' ही प्रसिद्ध हुए।

अस्तावलम्बिरविविम्बितयोदयाद्रि,
चूडोन्मिषत्सकलचन्द्रतया चसायम्।
सन्ध्याप्रवृत्तहरवाद्यगृहीत कास्य–
तालद्वयेव समलस्यत नाकलक्ष्मी· ।। हर0 19/5

इतना ही नही रत्नाकर के महत्त्व के विषय मे श्रीशकर शास्त्री द्रविड कहते है–

दुग्धाब्धीनां सहस्त्र न कुसुमलसित सद्वसन्तायुतं वा,
कोटिर्वा पार्वणानां, सुषमशशभृतां नेषदोषातनानाम्।
सम्पूर्ण वा सुघाभि पुरटघटशत हन्त धन्वन्तरेर्नो,
पाणिस्थ चारूरत्नाकरसुकविगिरां मेरूरत्न न मूल्यम्।।

ऐसा प्रतीत होता है कि कविवर रत्नाकर के समक्ष ऐसे–ऐसे महाकाव्यो का वितान प्रसृत था जिसके यश को वह सभी रूपो यथा भाषा, भाव, शैली, गुण, वक्तृता, वक्रोक्ति अलङ्कार इत्यादि से उसको पराजित करना चहाते थे। अपने पूर्ववर्ती कवि भारवि, भट्टि, माघ, बाण, सुबन्धु इत्यादि कवियो को नीचा दिखाने के दृष्टिकोण से ही[1] इन्होने अपने 'हरविजय' का प्रणयन किया था। भारवि ने जिस मार्ग को गतिशील बनाया था उसको चरम बिन्दु पर पहुंचाने का श्रेय रत्नाकर को ही दिया जाता है। यद्यपि वाल्मीकि से लेकर रत्नाकर तक का काल पूर्ण रूपेण विकसित हो चुका था, फिर भी कालिदास के समान मार्मिक भावो का वर्णन शब्द कौतूहलो मे कहाँ रह सकता है? सस्कृत महाकाव्यो मे प्रारम्भिक अवस्था मे प्रकृति का जो सहज व स्वच्छन्द रूप दिखाई देता था उसका रूप दिन प्रतिदिन रूढिबद्ध एव पारम्परिक होता गया। भास, अश्वघोष इत्यादि के समय प्रकृति और मानव का सम्बन्ध विजेता और विजित का था। सुबन्धु की प्रत्यक्षर श्लेषमयी और दण्डी की स्वाभाविक प्रकृति पूर्ण रूपेण विकसित हो चुकी थी। इसके अतिरिक्त बाण ने प्रकृति को और भी अधिक विस्तृत किया। क्योकि कादम्बरी का घटनाचक्र तो अधिकांशतया प्रकृति प्राङ्गण मे ही घटता है। समलङ्कृत होते हुए भी बाण की शैली सर्वत्र निसर्ग रूप में विराजमान दिखती है। मानव जीवन का ऐसा सामञ्जस्य विलुलित सौन्दर्य किस को आकर्षित नही करता। परवर्ती कवि रत्नाकर ने उसकी शैली वहुश अनुकरण किया। काव्य रूढियो ने साहित्य ससार में दिन प्रतिदिन बढते हुए साहित्य सौहित्य की उपेक्षा कर दी। यही काव्य का आदर्श रत्नाकर के समक्ष उपस्थित हुआ। रत्नाकर ने अपने प्रकृति चित्रण को पूर्णरूपेण पूर्ववर्ती कवियो की शैली से अनुप्राणित किया है। हरविजय के तृतीय सर्ग के उपस्थित ऋतु वर्णन मे कालिदास का यमक प्रधान वर्णन हरिवजय के पांचवे सर्ग मे पर्वत वर्णन का साम्य माघ के रैवतक वर्णन से दृष्टिगत होता है।[1]

---

1 प्रकृति और काव्य – डा0 रघुवश – भूमि का भाग

प्रकृति वर्णन के अलावा रत्नाकर के ग्रन्थ मे नीति की वर्णना का भी सम्यक् दर्शन होता है। उनका मानना है कि चञ्चला लक्ष्मी नीतिज्ञ पुरूषो का साथ कभी नही छोडती। व्यवहार मे बाधा पहुचाती नीति को वे पन्सद नही करते तथा ऐसी नीति को उन्होने 'नीतिविषूचिका' की संज्ञा से अभिहित किया है।[1] रत्नाकर को असंख्य विधाओ व कलाओं का ज्ञान था। उन्हे साधारण पुरूषों की प्रतिभा से कैसे परितोष प्राप्त हो सकता था, क्योकि सरस्वती तो उनकी वशवर्तिनी ही थी।

"सङ्कल्प एष रणदुर्ललित. क्षणेन वाचात्र कालमुसलस्य विपूरितो न ।
मन्दाकिनी प्रथितपुण्य गुणा विहाय रत्नाकर क इह पूरयितु क्षमोऽन्यः।।

हर0 – 13/46

ऐसी गुणवत्ता तो प्रौढ कवियो में ही हो सकती थी, अप्रौढ और असहृदय जनो मे कहॉ? कविवर रत्नाकर अपने महाप्राण व्यक्तितत्त्व, उदात्त दृष्टिकोण तथा गम्भीर प्रवण शैली–शिल्प के कारण प्रारम्भ से ही प्रिय कवि रहे है। यद्यपि इनके प्रबंध मे विविध वर्णनो का प्रकाम उल्लेख हुआ है, फिर भी मेरे अनुसधान का विषय तो इनकी चामत्कारिक शैली से है। विचित्र मार्ग की पराकाष्ठा का यह ग्रन्थ सस्कृत साहित्य मे बेजोड है। जिसके समक्ष भारवि, भट्टि, माघ, बाण की प्रतिभा श्रीहीन प्रतीत होती है। सचमुच रत्नाकर की कविता बडी चमत्कारिणी है।

रत्नाकर की कविता मे अलङ्कारो का साम्राजय सर्वत्र विद्यमान है, क्योकि काव्य का सौन्दर्य अलङ्कारो से ही है। भामह ने कहा भी है कि "न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्" रत्नाकर ने अलङ्कारो के सर्वविध रूपो का प्रयोग कर अपनी प्रतिभा को उजागर किया। आठवे सर्ग मे 'कालमुसल' के वर्णन में अनुप्रास का वहुविध सर्वगामी प्रयोग कर नूतन भावों को जन्म दिया है।

"कम्पाकुलीभवदनेकपलोकपालपालीकपालदलनोत्पुलकं कपोलम्।
एकोऽपिकोपकपिलं दधदुत्कृपाणपाणि. कृणोमि करूणाकृपणाऽरिचक्रम।।"

हर0 8/32

---

1 हरविजय – 10/17, 19

इतना ही नही श्लेष के द्विविध भेदो यथा सभङ्ग तथा अभङ्ग का बेहद श्लिष्ट एव चमत्कृत वर्णन करके अपनी कविता को एक नया आयाम दियाहे। इनके श्लेष तो कही–कही स्वतत्ररूप से प्रयुक्त है तो कही–कही प्रसाद, माधुर्य और ओजगुणो से युक्त होकर प्रौढता से वर्णित किये गये हे– देखिए–

"कृतकामोऽथ गोभर्ता सव्यूढकमलासन ।
भूतिधाम पर भेजे शम्भु शम्भुरिवापर ।।" हर० 43/292

इस श्लोक मे त्रिविध (शिव, ब्रह्मा, विष्णु) देवताओ को लक्ष्य करके उनके अर्थ का सम्यक् परिचय दिया गया है।

1 **शिवपक्षे**– शम्भु परम् = अत्यर्थम्, भूतिधाम = भूतेर्भस्मनोधाम = कान्ति, भेजे–सिषेवे। किम्भूत.? कृतकाम – कृतोहत कामोयेन तद्विध । गोभर्ता – गोर्वृषभस्य स्वामी। सव्यूढकमलासन· = सवी = यज्ञवान्, यजमान् मूर्तित्वात्। ऊढकमलासन = कमल = मृग, तस्यासन चन्द्र, स ऊढ्ये येन स·। अपर. – द्वितीय. शम्भुखि = विष्णोर्व्रह्मणश्चैव।

2 **विष्णुपक्षे**– कृतकाम: = कृतक = कृत्रिम वराहादिरूपम्, अमति = गच्दति य स ('अम् गतौ')। गोभर्ता = पृथ्वीधारक । भूतिधाम = भू+ऊति = भुव: = पृथिव्या ऊति = सरक्षण तस्याधाम = स्थानम्। सव्यूढकमलासन = धारित. कमलासनो ब्रह्मा येन तद्विध ।

3. **ब्रह्मण: पक्षे**– कृतकाम–पूर्णकाम । गोभर्ता = गो = वाण्या·, भर्ता,–पोषक· । व्यूढकमलासन. = विभि = पक्षिभिर्हँसै, ऊढ' कमल–मयमासन पालतद्विध । किंचभूतिधाम = भूते: = उत्पत्ते, धाम = विषय·, हेतु ।

इसी प्रकार –

ससत्वशाली समदत्वमाप्तो निबद्धमूल. स्थिरभूतिचर्च ।
उत्सेधवानस्खलित· शुचित्वात्सन्नागराज श्रियमाप गुर्वीम्।। हर० 48/124

इसमे भी रत्नाकर ने चार भावो को वर्णित किया है। हिमालय, शेषनाग, शिव, गज इन शब्दों के चामत्कारिक अर्थ प्रस्तुत किये है। अभङ्ग श्लेष की चामत्कारिता से युक्त यह श्लोक सरल से सरल विस्तृत व्याख्यान के बिना भी सहृदयो के लिए रूक्ष है। हरविजय के तृतीय एव पञ्चम सर्ग मे क्रमश (ऋतु, वर्णन एव पर्वत वर्णन) कवि ने यमक के विविध भेदों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन करके काव्य को मण्डित किया है।

इन अलङ्कारो के अलावा हरविजय महाकाव्य मे चित्रकाव्यों का भी सर्वाधिक विलास दृष्टिगत होता है। यद्यपि चित्रकाव्य और चित्रालङ्कार मे भेद है। चित्रकाव्य तो मम्मट ने कहा है कि वह गुण और अलङ्कार से होता है[1] लेकिन चित्रालङ्कार को रूद्रट ने इस प्रकार परिभाषित किया है–

"भङ्ग्यन्तरकृततत्क्रमवर्णनिमित्तानि वस्तुरूपाणि।
साङ्कानि विचित्राणि च रच्यन्ते तत्र् तच्चित्रम्।।"[2]

जिस प्रकार भारवि, इत्यादि ने अपने काव्य की चमत्कृतिधरता हेतु विविध चित्रबन्धो का प्रयोग किया ठीक उसी का अनुसरण करते हुए कविवर रत्नाकर ने भी अपने काव्य में चित्रबन्धो के नये–नये आयाम प्रस्तुत किये। इस क्षेत्र मे उनका आधार पाण्डित्य तथा अनुपम भाषाधिकार ही कारण है। इन्होने कलापक्ष की जो रसानुप्राणित त्रिवेणी प्रवाहित की है उसमे निमज्जन कर पाठक एव सहृदय अपने को कृत्कृत्य समझता है। रत्नाकर सर्वत्र काव्यकला को अलङ्कृत करने मे ही दत्तचित्त है। कलापक्ष का बहुविध आश्रय लेकर अपने काव्य को बहुविध तात्कालिक शैलियो से निबद्ध करना इनका अपना अधिकृत क्षेत्र ही है। इस युग के महाकवियो का मार्ग ही निराला होता है जिनमे वक्र उक्तियॉ ही विभूषण होती है और इसी अलौकिक चमत्कार हेतु समग्र काव्य अग्रसर होता दिखाई देता है। रसात्मकता ही काव्य की कसौटी है। इन्होने अपनी प्रतिभा से एकाक्षर, द्वयक्षर, त्रयक्षर, चतु‧अक्षर वर्णो की श्लोक रचना हुई है।

एकाक्षर यथा –

तत्तातितातोतिततुत्तितोतितोत्तेतितातीतितितोत्तितुत्ति‧।
तातोऽतितोऽतुत्त तु तत्ततोऽत्तातुतोत्तताता तु तोत्तुम्‧।। हर0– 48/126

द्वयक्षर यथा–

सालास सलिलोल्लोललोलासि सूल्लसोऽसल ।
लीलालस ललासासौ सासौ साल्लालसासुलू ।। हर0– 43/19

त्र्यक्षर यथा–

सविसरासुरसारवसासवे मुखरो विवरासुरसस्त्रव ।
स वरवीरवसावुरूवैरिसूरवसरे विरस विरराास स ।। हर0– 46/56

स सुरवरो विष्णुस्तस्मिन्नवसरे विरस = हृदयविदारक, विरराास = ध्वनि–मकरोत्। कीदृशेऽवसरे? सविसरासूरसारवसासवे = सविसरा प्रसरण – शीला वीरै, वसुभिश्च सह वर्तमाने (तस्मिन्नवसरे) उरूवैरिसू = उरूणा महता वैरिणा सू प्रेरक सन्। विवरासुरसास्त्रव = विवरे = रसातले ये सुरास्तेषा कृतेऽपि सास्त्रव. = क्लेशद (ध्वानमकरोत्)।

चतुरक्षरो यथा–

ततो ततीतितोत्तातीनाना नाना न नूनना।
स सुसासो सुसासासि रिरारोरारिरैरिरत्।। हर0– 43/3

ततस्तदनन्तरं, विद्याधरसैन्ये सुराणामन्तम् अतति = गच्छति सति सुमालीनाम दैत्यस्ततो रिपुसेनाम् ऐरिरत् = चिक्षेप। किंविध? ईतितोत्ता = अतिवृष्टिरनावृष्टिप्रभृतीनामीतीना तोत्ता = विनाशक., अतीनाना = इनस्य स्वामिनोऽन = रथम्, अतीत्य नानाविधम् स्थित. नूनना = नूतन, ना = पुरूषो न, अपितु पुराण। पुन किंविध? सुसास = सुष्ठ सह असाभ्या स्कन्धाभ्या वर्तते शक्तिमानित्यर्थ·। असुसासासि = असुसो = प्राणहारको आस· = शरासनमसिश्च यस्य स। इरारोरारि = इरा = पृथ्वी, तयारोरा = दरिद्रा अरय यस्य स।

ऐसे एकाक्षर, द्वयक्षर, श्लोक विस्मय उत्पन्न करते है इनके ऐसे प्रयोग पूर्णतया अपने पूर्ववर्ती कवियो के भरपूर अनुसरण पर ही किये गये। स्थान चित्र में तो अतालव्यम्, निरौष्ठ्यम् आदि के उदाहरण दिये गये –

"स्फुरत्कुण्डल रत्नौघतडित्किरणकर्बुर ।
मेघनीलोऽथ संग्रामे प्रावृट्कालवदावभौ।।" हर0 43/16

भरत ने यमक के 10 भेद भी कहे है।[1] इसी का अनुसरण करते हुए रत्नाकर ने यमक के विभिन्न प्रकारो का उल्लेख किया–

रत्नाकर 'सदष्ट यमक' के प्रयोग मे बेहद कुशल है देखिए–

"आभत्यसौ गजतया समरेष्ववाप्य, सार भयानकंतमेषु सदानयाग ।
श्च्योतनमदार्द्रकटया कटकान्तरेषु, सारम्भया न कतमेषु सदानयागः ।। हर0 5/6

इसी प्रकार यमक के सदश, पादभाग वृत्ति, पुच्छ, पक्ति, भागवृत्ति, समुद्गयमक, गर्भयमक, महायमक इत्यादि भेद प्रभेदो का सर्वत्र अपने काव्य मे प्रयोग कर काव्य की सर्वश्रेष्ठता में चार चॉद लगा दिया। देखिए कुछ उदाहरण–सदश यथा–

केदारयन्त समदन्तमालमरातिलोक शरलागलानाम्।
के दारयन्त समद तमालनील हरिं जेतुमलंवभूवु ।। हर0– 46/56

समुद्गयमक–

"अविस्त्रसारे समदक्षयज्ञनामशिजपादानघनाकराभे।
अविस्त्रसारे समदक्षयज्ञनामशिजपादानघनाकराभे।।" हर0– 5/134

पक्तिर्यथा–

सदानवानामवधीरितानाम्, सदानवानामवधीरितानाम्।
सदानवानामवधीरितानाम्, सदानवानामवधीरितानाम्।। हर0– 18/128

कवि ने बन्ध चित्रो के माध्यम से जो चमत्कार काव्य मे पैदा किया उसका वर्णन जितना भी किया जाय कम है। रत्नाकर ने अपने महाकाव्य हरविजय मे सबसे अधिक बन्धचित्र के ही उदाहरण प्रस्तुत किये है। अर्धभ्रमक, आवलिबन्ध, काञ्चीवन्धः, खड्गबन्ध, मुरजजालबन्ध, गोमूत्रिकाबन्ध, तूणीबन्ध, मुरजाबन्ध, शरबन्ध, शूलवन्ध., शक्तिबन्ध., मुसलवन्ध., प्रस्तर श्लोकः, षोऽशदलषदभवन्ध., सप्तदशाक्षरपद्मबन्ध, सर्वतोभद्र, इत्यादि विमित्रबन्धों के माध्यम से समस्त 43वें सर्ग को अपने कौशल के चमत्कार से ओतप्रोत किया।

---

1 शब्दाभ्यासस्तु यमक पदादिषु विकल्पितम्। इतिभरतेन तल्लक्षण मुक्त।
भरत–नाट्यशास्त्र – 16

काञ्चीवन्ध –

शातटङ्का प्रमादेन हीयमाना रणाजिरे।
चापटङ्कारनादेन साभिमाना रराजिरे।। हर0– 43/138

गोमूत्रिकाबन्ध –

"वादिता तरसा भीमा भेरीणा सकला तति ।
सादिता तत्र सायामा सारीणा सकला गति ।।" हर0– 43/63

इस प्रकार कविवर रत्नाकर ने इन विभिन्न बन्धो के द्वारा काव्य मे चमत्कार तो पैदा किया ही, साथ ही विविध अर्थालङ्कारो के माध्यम से भी सहृदयो को चमत्कृत किया। अलङ्कार भाषा मे प्रभावोत्पादकता को तो जन्म देते ही हैं, साथ मे कवि की प्रतिभा को भी गतिशील बनाते है।[1] रत्नाकर सर्वत्र अपने वर्ण्य विषय को रूपायित करने के लिए अनुप्रास, यमक आदि का हृदयहारी विनियोग करते है। द्वितीय सर्ग मे ताण्डव वर्णन के प्रसङ्ग मे उपमा का चमत्कार देखिए–

आपीतपाटलसितेतरकुन्दगौरदेहत्विषो ललितनर्तनविभ्रमस्था ।
भ्रेमुर्गणाधिपतयोऽभिनयक्रियासु, मूर्ता रसा इव परिष्कृतरङ्गपीठा ।। हर0– 2/22

प्रत्यूष वर्णन के प्रसङ्ग मे कविवर रत्नाकर को कुछ ज्यादा ही प्रसिद्धि मिली है– रूपक अलङ्कार के माध्यम से अलङ्कारो का एक विशेष जाल उपस्थित किया है। देखिए–

प्रतिककुभमधोगलन्ति सन्ध्याकपिशितभासि कुलानितारकाणाम्।
विदधति भुवनारविन्दकोष च्युतमधुशीकर बिन्दुवृन्दलीलाम्।। हर0– 28/12

इस प्रकार कविवर रत्नाकर ने बहुविध अलङ्कारो का समुचित प्रयोग करके 'हरविजय' काव्य की शोभा को द्विगुणित कर दिया है। सचमुच कविवर रत्नाकर धन्य है। जिन्होने अपनी कवि प्रतिभा का विलास सम्पूर्ण हरविजय महाकाव्य मे यथावसर उपस्थित किया। कविवर रत्नाकर ने वृहत् एवं दीर्घकाय वसंततिलका, स्त्रग्धरा, शार्दूलविक्रीडित, मन्दाक्रान्ता आदि छन्दो मे प्रयुक्त कर अपने शब्द कौशल का प्रकृष्ट ख्यापन किया। हरविजय महाकाव्य का अङ्गीरस वीर है। हास्य रस को छोडकर अन्य सभी श्रङ्गार, रौद्र, भयानक, अद्भुत आदि रस अङ्ग रूप मे प्रयुक्त हुए है। इन्होने अपनी

काव्यभूमि मे उत्साह का प्रवाह सर्वत्र वर्ण्यविषय के सयोजन में स्फुरित किया है। इतना ही नही शिवगणो के वक्तव्य मे, अन्धकासुर के आचार–व्यवहार मे, वज्रवाहु के स्फूर्ति मे, सैन्य सभार मे, समरोद्घत के वर्णन मे, सुर–असुर के विमर्दन मे वीररस का समुचित परिपाक किया है। युद्ध का तुमुल वर्णन सभी में वीररस की निर्झरिणी प्रवाहित हो रही है। देखिए– चालीसवे सर्ग मे वीरता के वेष मे भगवान् शकर का चित्रण–

"शीताशुमौलिरपि केसरिचक्रवालयोस्त्रीकृताहियति भोगसहस्त्रभीमम्।
अध्यारूरोह रथमग्निशिखापिशङ्गमायोधनागुणवेषपरिग्रह श्री·।।

हर0– 40/44

इसी प्रकार वीररस का अति विचित्र वर्णन एक और देखिए जब भगवान शूलपाणि के सैन्यवल से धरती कैसे विकम्पित हो गयी। तब सहस्त्रोफणे वाले शेषनाग ने कैसे पृथ्वी को धारण किया उसका चित्रण देखिए–

तस्यामुख सरभसार्पिताकान्तदृष्टि दृष्टवः चिरादथ शशाङ्ककलावतस·।
सन्दर्शनेषु नयनत्रितय निमेष–दोषोपघात–घटनोज्झितमभ्यनन्दत्।।

हर0 41/10

ऐसे वीरता भरे प्रसङ्गो को देखकर यह आभास होता है कि कविवर रत्नाकर ने स्वय किसी युद्ध क्षेत्र का ऐसा वर्णन अपने चक्षुओ का विषय बनाया होगा तभी उनके ये वर्णन इतने मार्मिक तथा आह्लाद युक्त है। रत्नाकर ने श्रृङ्गार की भी उद्दाम भावनाओ को अपनी सौन्दर्य दृष्टि से हृदयङ्गम बनाया है– सम्पूर्ण 27वा सर्ग श्रृङ्गार की प्रणयकेलि से ओतप्रोत है, देखिए–

समदमदनसाध्वसत्रपास्ता किमपि रसानत्रमन्तराविरान्थ.।
चिरमपहृतचेतसोऽपि चित्रं दयिततमानुपचेरूरग्चिताक्ष्य ।। हर0 27/74–75

कवि सयोग के विप्रलम्भ पक्ष का वर्णन तो विरह वर्णन और दूती सकल्प वर्णन के प्रसङ्ग मे करता है। यहॉ करूण को छोडकर सभी भेदोपभेदो का वर्णन प्राप्त होताहै। हास्य रस का प्रयोग तो कवि रत्नाकर ने किया ही नही।

इसी प्रकार रत्नाकर ने अपने व्यक्तित्व का काव्यगत भाव विभिन्न रसो के प्रसङ्ग मे अनेकश· उद्धृत कर अपने सम्यक् कृतित्व का परिचय दिया। इसके अलावा रौद्र रस का परिपाक तो 'हरविजय' मे सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है— नायक शिव की सभा मे, प्रतिनायक अन्धक की सभा मे, दूत की गर्जना मे, युद्धवर्णन मे रौद्र का जैसा भयावह रूप प्रस्तुत किया गया इतना वीभत्स रूप कही भी देखने को नही मिलता।

ऐसे रसोचित विविध विधानो को देखकर हम यह नि सन्देह कह सकते है कि, कविवर 'रत्नाकर' एक उत्कृष्ट रससिद्ध कवीश्वर तो थे ही, साथ ही अलौकिक गुणो से सम्पन्न इनका वैदुष्य भी सर्वगामी था। रस की अभिव्यञ्जना मे उनका शैव—अद्वैत भाव ही मूलाधार है। सम्पूर्ण काव्य में यथावसर वृहत् और बहुप्रचलित छन्दो की अमृत वर्षा कर काव्य को उत्कृष्टता तो प्रदान ही किया, साथ ही उसकी भव्यता मे भी आवश्यक रमणीयता को जन्म दिया। इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, मालिनी, सगधरा, मन्दाक्रान्ता, मञ्जुभाषिणी, मालभारणी, रथोद्धता, रूचिरा, वियोगिनि इत्यादि छन्दो का बहुआयामी रूप प्रकट किया। कविवर क्षेमेन्द्र ने तो इनके वसंततिलका छन्द की बेहद प्रशसा भी की है—

"बसन्त—तिलकारूढा वाग्वल्ली गाढसगिनी।
रत्नाकरस्योत्कलिका चकास्त्यानन—कानने।।          क्षेमेन्द्रकृतसुवृत्ततिलक

सचमुच रत्नाकर की शैली विचित्र मार्ग के विविध एव भव्य आकर्षण से युक्त है। विशुद्ध वर्णों के समुज्ज्वल प्रसाद एव गाम्भीर्य से अभिभूत कवि की सरस्वती इनकी काव्य पीठिका को सुशोभित करती है।

**रत्नाकर पर विभिन्न कवियों का प्रभाव :—** कहते है कि कविवर रत्नाकर पर अपने पूर्ववर्ती कालिदास, भारवि, भट्टि, बाण, माघ इत्यादि कवियो का प्रभाव था, क्योकि रत्नाकर की भाषाशैली, भावसाम्य, उक्तिसाम्य, वर्ण्यविषय, रस, अलङ्कार, रीति, गुण सभी मे पूर्णरूपेण इन कवियो का भाव परिलक्षित होता है। उनमे कादम्बरी कथाकार बाण और वृहत्त्रयी के मध्यमणि सम्राट माघ का कुछ ज्यादा ही प्रभाव 'हरविजय' पर दिखाई देता है। माघ की ही भॉति रत्नाकर ने काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक मे एक शब्द—विशेष रत्न' का प्रयोग किया है जैसे माघ ने 'श्री' शब्द का

किया था। अलङ्कृत युग के सर्वोत्कृष्ट प्रतिनिधि होते हुए भी कविवर रत्नाकर की काव्य भूमि कालिदास से अछूती नही रही। उत्तरवर्ती सभी कवियो (भारवि, माघ, भट्टि, अश्वघोष, कुमारदास, रत्नाकर ने कालिदास के विभिन्न वर्ण्यविषयो का ग्रहण बेइमानी से ही किया, क्योकि यथार्थ रूप मे तो वे समाज को अपने युग की शैली से चमत्कृत करना चाहते थे। जिस प्रकार हर युग मे रङ्गमञ्च की दीवारो पर चित्र बनाने की प्रथा जारी थी, उसी प्रकार कालिदासोत्तर युग के कवियो ने जनमानस को भाव–विभोर करने हेतु साथ ही वर्ण्यविषय मे चमत्कारिता लाने हेतु अपनी शैली का भी प्रतिक्षणरूप बदला।[1] हर युग मे शैलियो का परिवर्तन कलाकार के कौशल और कला चातुर्य का ही परिणाम है। शास्त्र केवल शास्त्र है, जो मानदण्डो का निर्देश देता है उन्हे कार्यरूप मे कलाकार को ही परिणित करना होता है। शास्त्रकारो ने इस सम्बन्ध मे अजता के चित्रो के लिए एक सुन्दर प्रतिमान स्थापित किया है।

"सुप्त च चेतनायुक्तं मृत चैतन्य वर्जितम्।
निम्नोन्नतविभाग च य करोति स चित्रवित्।।"[2]

कविवर रत्नाकर ने यथाविधि ऐसे चित्रो से प्रेरणा लेकर अपने काव्य को सर्वविध श्रृङ्गारो से अलङ्कृत किया। हरविजय के भगवत्प्रबोध नामक सर्ग मे रघुवश के अज प्रबोध का, कुमारसम्भव के शिवस्तुति एव भगवान् शकर के विचित्र रूप का वर्णन कविवर रत्नाकर के छठे सर्ग मे उपस्थित शिवस्तुति से, तथा रत्नाकर के द्वारा 24वे सर्ग मे विरह वर्णन के प्रसङ्ग में वियोगिनी वृत्त का वर्णन कालिदास से ही प्रभावित है। सुभाषित सूक्तियों एव श्लोकों के भावो मे भी परस्पर समानता दिखाई देती है। देखिए–

क्षितितोयमारूतकृशानुभानुमद्गगनामृतांशुयजमानमूर्तये।
भवते मतिध्वनिविकल्पगोचरव्यतिवृत्तरूप परमात्मनेनम ।। हर0 –6/184

इस श्लोक का भाव 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' नाटक मे प्रयुक्त प्रसिद्धनान्दी 'य· सृष्टि स्रष्टुराद्यावहति' (1/1 अभि0) मे पूर्णरूपेण प्रतिविम्बित होता है। हरविजय के बीसवे सर्ग में उपस्थित चन्द्रोदय वर्णन का प्रसङ्ग पूर्वमेध के एक श्लोक से साम्य रखता दिखाई देता है।

---

1 "तत्रापि माघस्यैव कीर्तिभवनमयितु स वद्धपरिकर इवाभाति"। हरविजय प्रशस्ति
2 विष्णु धर्मोत्तरपुराण मे चित्रकला विधान – वीणा अग्रवाल – पृ0 25

प्रत्यग्रपक्षघटनेन निशावतार रामेपुणा सपदि वासरक्रौञ्चकुञ्जे।
निर्दारिते स्फटमयुक्छदनच्छदाच्छानिर्गच्छति स्म शशिदीधिति हस पङ्क्ति ।।

हर0– 20/23

"प्रालेयाद्रेरूपतटमतिक्रम्य तास्तिान्विशेषान्।
हसद्वार भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम्।।" पूर्वमेध – 60

इसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि कविवर रत्नाकर ने कालिदास के छायानुग्रहीत भावो का अवलम्बन लेकर अपनी कविता को विभूषित किया है। इतना ही नहीं कही–कहीं तो पूर्णरूपेण रत्नाकर ने कालिदास के शब्दो को ही रख दिया है– देखिए–

"प्रमुदितवरपक्षमेकतस्तत्क्षितिपतिमण्डलमन्यतो वितानम्।
उषसि सर इव प्रफुल्लपद्मं कुमुदवनप्रतिपन्ननिद्रमासीत्"।। रघुवंश– 6/86
"विशदमधुर सारणानुबन्धक्वणदलिसहतिवल्लकीनिनादैः
जनितसुखमिव क्षयावसानेकुमुदवन प्रतिपन्न निद्रमासीत्"।। हर0– 28/60

कविवर रत्नाकर ने कालिदास के समान भारवि के भी वर्ण्यभावो का सम्यक् अनुसरण किया। जहाँ किरात का अनुकरण माघ की कविता मे देखा जाता था वही माघ की कविता का प्रभाव रत्नाकर मे भी दिखाई देने लगा। रत्नाकर ने भारवि के काव्य का भी गाढ़ानुशीलन किया था। उनके काव्य में भारवि का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है– देखिए–

1. दोनों ही काव्य शैव सम्प्रदाय के समर्थक है।
2 दोनो ही काव्य भगवान् शङ्कर की महिमा का गुणगान करते है।
3 दोनो ही ग्रन्थों का कथानक अत्यन्त सक्षिप्त है।
4 किरात और हरविजय दोनो का अङ्गीरस वीर है।
5 दोनो ही ग्रन्थो का कथानक पौराणिक है।
6 भारवि ने जिन दुरूह रूढियो का सक्षेप मे प्रयोग किया उनका रत्नाकर ने विस्तार किया।
7 किरात की शिवस्तुति से रत्नाकर की शिवस्तुति का साम्य दृष्टिगत होता है।

देखिए – किरात0 – 18/22–42

"अधितिष्ठतो हृदयपद्मविष्ठर भुवनत्रय व्यवहृदेकसक्षिण ।
प्रतिघव्यपायपरिशून्यसविद किमिवास्ति यन्न विदित तवेशितु ।।
हर0– षष्ठ सर्ग/13

'किरात' जहॉ 'नारिकेलफल सन्निभ' है वही 'रत्नाकर' का 'हरविजय' 'औषधिपाकसन्निभ' है। भारवि 'आतपत्र सज्ञा' से विभूषित है तो कविवर रत्नाकर 'तालरत्नाकर' इस उपाधि से मण्डित हैं। भारवि के बाद छठी शता0 के उत्तरार्ध मे प्रादुर्भूत हुए कविवर भट्टि के 'रावणवध' महाकाव्य का भी प्रभाव रत्नाकर के ऊपर देखा जाता है। 12वें सर्ग मे उपस्थित विभीषण की वाग् चतुरिमा और पाचवे सर्ग मे उपस्थित शूर्पणखा के भाषण से कवि की राजनीतिज्ञता का प्रकृष्ट ख्यापन होता है। देखिए–

वृद्धिक्षयस्थानगतामजस्त्र वृत्ति जिगीषु प्रसमीक्षमाण ।
घटेत सन्ध्यादिषु यो गुणेषु–लक्ष्मीर्न त मुञ्चति चञ्चलाऽपि।। भट्टि 1/26–30
"उपायशून्यास्तरव क्षिताविव क्रियाविशेषा व्यभिचारिण फले।
त एव नून नियमेन भूभृता फलन्ति कल्पद्रुमवन्नयाश्रया ।।
देखिए – हरि0– 12/37, 40, 43, 44

भट्टि के ऐसे ही विविध भावो को कविवर रत्नाकर ने सादरपूर्वक ग्रहण करके अपनी लेखनी से काव्य की शोभा को द्विगुणित किया। रत्नाकर ने केवल एक गुण को भट्टि के काव्य से सर्वविध रूप मे ग्रहण किया, वह है– 'कथाप्रवाह का सरक्षण'। महाकवि 'रत्नाकर' अपने 'हरविजय' महाकाव्य मे पग–पग पर सर्वत्र भाषा, भाव, शैली तथा वर्णन प्रसङ्गो मे बाण से प्रभावित दीख पडते है। उन्होने स्थान–स्थान पर बाण की प्रशस्ति की है। जैसे कविवर 'बाण' अपनी सर्ववृतान्तगामिनी सूक्ति 'बाणोच्छिष्ट जगत् सर्वम्' से जगत् मे विख्यात हुए, वैसे ही उक्ति यदि रत्नाकर के भी विषय मे कही जाय तो कोई अनुचित नही होगा।[1] जैसे विभिन्न काव्यो का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन बाण ने किया था, वैसे ही रत्नाकर ने भी हरविजय मे वर्णन किया।

---

1 महाकवि बाण भट्ट – विजय लक्ष्मी त्रिवेदी – पृ0 12

बाण किसी भी विषय के वर्णन को प्रारम्भ करके उनमे नयी–नयी उद्भावनाओ को जन्म देते थे वैसे ही रत्नाकर ने भी नये–नये पदविन्यास, श्रवणसुखद तथा कुतूहलजनक भावाभिव्यक्ति की उद्भावना किया। "नवोऽर्थो जातिरग्राम्या, श्लेषोऽक्लिष्ट स्फुटो रस.। विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुर्लभम्"। ऐसे विकट एव दुरूह शब्द जाल भी बाण की शैली मे सुलभ रूप से विद्यमान होते है। रत्नाकर ने भी बाण की सन्तुलित प्रवृत्ति को अङ्गीकार करके अलङ्कृत शैली मे उसे मूर्त करने का प्रयास किया। देखिए– कुछ उदाहरण कादम्बरी के सन्ध्यावर्णन का दृश्य –

"रविविनाशदु.खिता विभावरी यथा मृगचर्माम्बरधारिणी भवति तथैव चन्द्रोदयेऽपि मरूद्विधूतपर्णरन्ध्र प्रविष्टचन्द्रकिरणशबलिता तरूणा छायां विभ्रती भूमि. 'सवीतचित्रमृगचर्मपटेव' समवलोक्यते।" कादम्बरी सन्ध्यावर्णन

ऐसे ही भावो से मिलता–जुलता रत्नाकर के हरविजय का सन्ध्यावर्णन देखिए–

भाति स्म मारूतविधूतपलाशरन्ध्रलब्धप्रवेशशिशिराशुमरीचिशाराम्।
छाया विनेशुषि खौ दधती तरूणा, सवीतचित्रमृगचर्मपटेव भूमि ।। हर0 20/56

उक्त वर्णन को देखकर प्रतीत होता है कि रस और अलङ्कार की अनुपम निर्भरता का उस युग में विशेष आदर था। अच्छोद सरोवर के प्रसङ्ग मे बाण ने अलङ्कारात्मक विशेषणो की लडिया लगा दी है, क्योकि अलङ्कारो का जो चाकचिक्य पूर्ववर्ती भारवि, भट्टि, कुमारदास, माघ के माध्यम से चला आ रहा था, उसे बाण ने अपनी लेखनी से अक्षुण्ण रखा।

तस्य तरूखण्डऽस्य मध्यभागे मणिदर्पणमिव त्रैलोक्यलक्ष्म्या., निर्गमन मार्गामिव सागराणाम्, नि:स्यन्दमिव दिशाम्, अशावतारमिव गगनतलस्य, कैलाशमिव द्रवतामापन्नम्, चन्द्रातपमिवरसतामुपेतम्, हराट्टहासमिव जलीभूतं ––– मदनध्वजमिव मकराधिष्ठितम्, ––– अतिमनोहरम् अच्छोदं नामसरो दृष्टवान्।

कादम्बरी अच्छोद वर्णन पृष्ठ– 197–200

"वीचीसमीरधुतकाञ्चनपुण्डरीकपर्यस्तकेसरपरागपिशङ्गिताम्भ ।
अच्छोदमैच्छत स देवपुरन्ध्रिपादलाक्षारूणीकृतशिलातलतीरलेखम्।। हर0– 30/19

इनके समुद्रवर्णन मे शैली का जितना स्फुट रूप उभरा है उतना ही रत्नाकर क अन्धक राजधानी प्रसङ्ग मे स्फुट रूप दृष्टिगोचर होता है। देखिए–

"सन्नागमक्षततिमिश्रितमुत्प्रवाल मुद्रागमाकुलमलङ्घनताम् वाप्तम्।
सश्रीफलस्पृहतरप्लवगं वनौघमुत्तालमुच्चमरसत्त्वजुष वहन्तम्।। हर0–30/60–69

इतना ही नही भिन्न प्रसङ्गो यथा युद्ध, शोक, आदेश आदि में भी रत्नाकर की शैली बाण से प्रभावित दीख पडती थी। शैली का चरम उत्कर्ष इनके वर्णनो मे है।

रत्नाकर ने इसी भाव एव शैली का सम्यक् अनुधावन कर वर्ण्य विषय मे अद्भुत चमत्कार पैदा किया। कालमुसल के वर्णन मे, मृगयाविहार वर्णन मे, विरह वर्णन मे, मन्दर पर्वत के वर्णन मे, प्रत्यूष वर्णन मे, श्रृङ्गारिक चित्रणो मे बाण की शैली का रत्नाकर ने पूर्णरूपेण अनुधावन किया। इतना ही नही रत्नाकर के 38वे सर्ग मे उपस्थित दूतगर्जन के प्रसङ्ग मे बाण के शुकनासोपदेश का पूर्णरूपेण साम्य दिखाई पड रहा है– देखिए–

"गुरूवचनमभलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थित शूलमभव्यस्य
इतरस्य तु करिण इव शंखाभरणमाननशोभासमुदयमधिकतरमुपजनयति"–––।।
कादम्बरी – शुकनासोपदेश

"आवर्ज्यतेऽवसर एव हि चित्तवृत्तिरत्यन्तदक्षिणतया सुजनस्य वाग्भि।
प्राप्त मधावविरत नवयूतयष्टिरूल्लास्यते मलयमारूतवेल्लनाभि।। हर0– 38/14

बाण की विरोधाभास सम्पन्न शेली कैसे–कैसे प्रसङ्गो मे श्लोक रूप मे परिणत हो गयी है उसी का भाव हरविजय महाकाव्य की काव्यभूमि मे देखिए–

शैलाभिघातश्कलीकृतमव्यखण्डमाकृष्टरत्नमपि रत्ननिधित्वमाप्तम्।
लक्ष्मीमदग्धदशमप्यसभौर्ववह्नि दाहाकुलं चिरगतामपि नोत्सृजन्तम्।। हर0–30/47

ऐसे ही श्लेष–प्रधान स्थलो मे भी कादम्बरी की शैली हरविजय की शैली से साम्य रखती प्रतीत होती है। देखिए–

"निरन्तरश्लेषघना सुजातयो महास्रजश्चम्पयककुड्मलैरिव"। कादम्बरी –

इनके 'हरविजय' महाकाव्य मे वाण की उत्प्रेक्षा का भाव भी सूक्ष्म दृष्टया विद्यमान है। अलड्कृत गद्य शैली की उत्प्रेक्षा पद्य शैली की उत्प्रेक्षा से किसी भी दृष्टिकोण मे न्यून नही है– देखिए–

ऊर्ध्वमुखै —— ऊष्मपैस्तपोधनैरिव परिपीयमानतेज प्रसरो विरलातपो दिवसस्तनिमानमभजत्। क्वापि विहृत्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवन धेनुरिव कपिला परिवर्तमाना सन्ध्या मुनिभिरदृश्यत। कादम्बरी – पृ0 81, 82

"लावयणनिर्भर पुरन्ध्रिमुखावधूतच्छायो दधत्कलुषता हृदयेन यस्याम्।
इन्दुर्निशासु मणिकुट्टिमबिम्ब्यमान मूर्तिच्छलेन विशतीव रसातलान्तः।।हर0–1/31

इसी महाप्राण शैली की उपर्युक्त विशेषता का भयङ्कर रूप में निदर्शन करते हुए श्री बेवर ने कहा है – "An Indian wood where all progress in rendered impossible by the undergrowth until a traveler cuts out a paths for himself and when even than he has to reckon with malicious wild fasts in the shape of unknown words that affright him.[1]

कविवर रत्नाकर बाण की शैली से ही अनुपाणित नही थे, बल्कि माघ की कृत्रिम एव अलड्कृत शैली से भी प्रभावित थे। रत्नाकर तथा हरिचन्द्र भाव तथा कल्पनाओं के क्षेत्र मे माघ के पर्याप्त ऋणी कहे जा सकते है। इस सन्दर्भ में रत्नाकर ने दावा किया था, कि उसके काव्य को पढने पर अकवि शिशु भी कवि हो सकता है।[2] जहॉ तक कलावादी पद्धति का प्रश्न है, निसन्देह माघ उस ढर्रे की कविता बनाकर अभ्यास को देने मे रत्नाकर से कम सफल नही है। कविवर रत्नाकर अपने पाण्डित्य के बलबूते पर ही परम्परागत काव्य प्रवृत्ति के क्षेत्र मे अग्रसर होते है। अलड्कृत शैली की झङ्कार का बेसुध रूप प्रस्तुत कर माघ की प्रतिभा को भी हतप्रभ कर दिया। देखिए ऐसे ही कुछ दृश्य जिन पर माघ का प्रभाव पूर्णरूपेण परिलक्षित होता है।

---

1 Webver, Indische Studien 1, 308-86
2 "अपि शिशुरकवि कवि प्रभावात् भवति महाकवि. क्रमेण"। हरविजयम्– भूमिका

| शिशुपाल | हरविजय |
|---|---|
| 1 समय एव करोति बलाबल<br>प्रणिगदन्त इतीव शरीरिणाम्।<br>शरदि हसरवा परूषीकृता<br>स्वरमयूरमयूर रमणीयताम्।।<br>शिशु0 – 6/44 | 1 समय एव गुणोऽप्युपयुज्यते,<br>सपरिरम्भरूचि दयित स्त्रिया।<br>स्तनयुगोष्मभर शिशिरागमे,<br>यदकरोदकरोष्णिमगोपतौ।।<br>हर0 – 3/83 |
| 2 नवपलाश पलाशवन पुर<br>स्फुटपरागपरागतपङ्कजम्।<br>मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत्<br>स सुरभि सुरभिं सुमनोभरै।।<br>शिशु0 – 6/2 | 2 मधुपराजिपराजितमानिनी<br>जनमन सुमन सुरभिश्रियम्।<br>अमृतवारितवारिजविप्लवा,<br>स्फुटिता।।<br>हर0 – 3/2 |

उक्त उदाहरणो को देखकर विदित होता है, कि जैसे माघ ने भारवि के पदचिह्नो पर चलकर उनकी शैली का सम्यक् अनुसरण करके उनकी प्रतिभा को हतप्रभ कर दिया था, उसी प्रकार कविवर रत्नाकर भी माघ की अलङ्कृत एव कृत्रिम शैली का सम्यक् अनुसरण करते हुए माघ की कीर्ति को ढक देने का प्रयास किया और अपनी कीर्ति को दिग्दिगन्तर मे प्रसृत किया।

अन्त मे हम यही कहेगे कि जिस प्रकार माघ ने अपने काव्य से अपनी भीतरी स्थिति को मजबूत कर काव्य जगत् मे एक सर्जनात्मक प्रवृत्ति को जन्म दिया था,[1] वैसे ही रत्नाकर ने उनकी प्रतिभा का अतिक्रमण कर सम्यक् सुख्याति को प्राप्त किया। माघ वैष्णव थे, रत्नाकर शैव। जहाँ माघ के काव्य को "लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारू"[2] कहा गया वही रत्नाकर के काव्य को "चन्द्रार्धचूडचरिताश्रयचारू" के विरूद् से सुशोभित किया गया।[3]

निष्कर्ष रूप मे कह सकते है कि कालिदासोत्तर कवियो ने काव्य के बुद्धिवैभव के शास्त्राभ्यास को प्राप्त करने के लिए सीमा का अतिक्रमण कर दिया, जिससे नियमो मे क्लिष्टता होने के कारण कविता–कामिनी विवश रूप मे प्रतीत होने लगी। भारवि के द्वारा जो मानदण्ड स्थापित हुआ माघ ने उसमे चमत्कार और उत्कर्ष उत्पादित किया, लेकिन रत्नाकर के द्वारा तो वह पराकाष्ठा को प्राप्त हो गयी। रत्नाकर के काव्य–अध्ययन के बिना चमत्कार–युग के काव्यो का हम वास्तविक मूल्याङ्कन नहीं कर सकते।

---

1 माघकृत शिशुपालवध – कविवंश वर्णन वर्ग – 20/5 पण्डित दुर्गा प्रसाद और दधीचि पण्डित, शिवदत्त, विरचित टीका – पृ0 522,

2 हरविजय प्रशस्ति – श्लोक 1

3 महाकवि रत्नाकर विरचित – हरविजय – डॉ0 कृष्णकान्त शुक्ल, संस्करण द्वितीय 1981, प्रकाशन– 'शारदा सदन' मुजफ्फरनगर।

# पञ्चम अध्याय

**हरिचन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय –** 'कविवर हरिचन्द्र' सस्कृत–साहित्याकाश के प्रख्यातनामा कवि एव मूर्धन्य विद्वान थे। कोमलकान्त शब्दावली द्वारा नवीन अर्थ का सृजन इनकी अपनी विशेषता है। इनका 'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्य सस्कृत के जैन महाकाव्यो मे से एक उच्चकोटि का काव्यग्रन्थ है। जिसकी भाषा शैली अत्यधिक सुगम एव हृदय को भाव–विभोर करने वाली है।[1]

'कविवर हरिचन्द्र' ने अपने 'धर्मशर्माभ्युदय' महाकाव्य के इक्कीस सर्गों मे चौबीस तीर्थाङ्करो मे परिगणित पन्द्रहवे तीर्थङ्कर धर्मनाथ के जीवन चरित का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है। कवि ने मगलाचरण मे सज्जन–दुर्जनादि के वर्णन के साथ उनके पिता रत्नपुराधिपति महासेन के वर्णन से प्रारम्भ कर तीर्थङ्कर की वैराग्य प्राप्ति का वर्णन कर तथा जिन सिद्धान्तो का प्रतिपादन कर ग्रन्थ की समाप्ति की है।[2] डा० डे० के अनुसार धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य (एकादश शतक) अपने समय का प्रतिनिधि काव्य है। धर्मनाथ के प्रति रतिभाव प्रदर्शन के कारण सम्पूर्ण काव्य एक भाव–प्रधान काव्य है। इक्कीस सर्गों के महाकाव्य मे वीररस का अभाव सा है। केवल 19वे सर्ग मे वीररस का स्थल प्राप्त होता है। इनके चित्रयुद्ध वर्णन मे किसी प्रकार का वैशिष्ट्य नही प्राप्त होता है।

'कविवर हरिचन्द्र' ने धर्मनाथ जैसे महापुरूष का वर्णन कर अपनी रूचि पौराणिक आख्यानो की ओर ध्यानाकृष्ट किया है। क्योकि कवि को पौराणिक–ऐतिहासिक घटनाओ को लेकर नये–नये काव्य सृजन करने का विशेष शौख था। इस काव्य को कवि हरिचन्द्र ने अपनी अनुपम श्रुतिमधुर रसमयी लेखनी से ऐसी काव्यमयी भाषा मे परिणत किया है जिसकी प्रशस्ति अनेक कवियो ने की है। 'कविवर महाकवि हरिचन्द्र' का व्यक्तित्त्व एव कर्तृत्व दोनो महान् था। इनकी गणना कालिदास, भारवि, भट्टि, माघ, रत्नाकर जैसे प्रकाण्ड पण्डितो की सरणि मे ही की जाती थी।

---

1 'सस्कृत साहित्य का इतिहास' – रामदेव साहू

2 परस्य तुच्छेऽपि परोऽनुरागो महत्यपि स्वस्य गुणे न तोष ।
एव विधो यस्य मनोविवेक कि प्राथ्यर्ते सोऽत्र हिताय साधु.।। धर्म0– प्रथम / 18

इन्होने अपने काव्य ग्रन्थ मे काव्य के समस्त अवयवों का यथाविधि पालन कर उसका सम्यक् निर्वाह किया है। रस, गुण, रीति (वैदर्भी और पाञ्चाली), शब्दवैचित्र्य, अर्थवैचित्र्य ध्वनि के विविध भेदो को प्रदर्शित किया है। एक से एक कौतूहलपूर्ण वर्णनो को अपनी भावपूर्ण भाषा से सजा–सवॉरकर काव्य–जगत् मे अपने वैदुष्य का सम्यक् परिचय दिया है।[1] इतना ही नही महाकाव्य के विविध वर्ण्य विषयो यथा जलक्रीडा, केलिक्रीडा, चन्द्रोदय, सूर्योदय, ऋतुवर्णन, साध्यकालीन वर्णन, पानगोष्ठी, समुद्रतट वर्णन, पर्वतवर्णन, उद्यानवर्णन, मृगया वर्णन, वन वर्णन, युद्धवर्णन, नदी वर्णन इत्यादि का यथोचित चित्रण कर महाकाव्य की विविधता को घटने नही दिया है।

सस्कृत वाड्मय मे काव्यो की एक विशाल श्रृङ्खला का क्रम चला आ रहा था। उसी श्रृखला मे हम आचार्य जिनसेन के पार्श्वाभ्युदय का भी नाम सुनते है। इस ग्रन्थ मे जिनसेन ने कुलगुरू कालिदास के लघुत्रयी (रघुवश, कुमारसम्भव, मेघदूत) मे परिगणित मेघदूत नामक गीतिकाव्य के सम्पूर्ण श्लोको को समस्या पूर्ति के रूप मे ग्रहण कर 23वे तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ का दिव्य चरित वर्णित किया है। नवम शती0 के शिवस्वामी का 'कप्फिणाभ्युदय' का कुछ अपना अलग ही महत्त्व है। बीस सर्गों मे कवि ने कप्फिण नामक राजा के बौद्ध बनने का वृत्तान्त वर्णित किया है। प्रत्येक सर्ग के अन्त मे (भारवि, माघ, रत्नाकर की तरह) इन्होने 'शिव' शब्द को सम्बोधित करके काव्य को 'शिवाङ्क' पद से विभूषित किया है। इन्होने स्वय अपने को 'सुविज्ञ' कहकर चित्रकाव्य का उपदेशक 'यमक कवि' कहा है। इनके वैचित्र्यपूर्ण काव्य का अध्ययन करने से यह विदित होता है कि शिवस्वामी ने भी कालिदास, अश्वघोष, भर्तृमेण्ठ, दण्डी, इत्यादि को अपना उपजीव्य माना होगा तभी काव्य में उनके जैसे भावों को वे जन्म दे सके। इसके अलावा अन्य महाकाव्य यथा यादवाभ्युदय, भरतेश्वराभ्युदय, सालवाभ्युदय, रामाभ्युदय, नलाभ्युदय, अच्युतरामाभ्युदय, और रघुनाथाभ्युदय भी इसी श्रृंड्खला मे परिगणित किये गये है, जिनके द्वारा संस्कृत साहित्य की परम्परा समृद्ध हुई है। इसी श्रेणी मे महाकवि हरिचन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य आता है।

---

1. वाणी भवेत्कस्यचिदेव पुण्यै शब्दार्थसन्दर्भविशेषगर्भा।
   इन्दु विनान्यस्य न दृश्यते द्युत्तमो धुनाना च सुधाधुनीव।। धर्म0 – 1/16

कवि हरिचद्र ने क्षत्रिय वशोत्पन्न धीरोदात्त नायक के गुणो से ओत–प्रेत तीर्थङ्कर धर्मनाथ को काव्य का नायक बनाकर एक विशिष्ट परम्परा को जन्म दिया है। वह रानी सुव्रता तो धन्य है ही साथ ही वह कवि भी कृतकृत्य हो गया, जिसने भावपूर्ण आलङ्कारिक भाषा मे इनका वर्ण्य विषय प्रस्तुत किया। इसी प्रकरण मे कवि ने सुमेरूपर्वत[1], समुद्रमन्थन[2], एवं विशिष्ट प्रकार की देवसेना का रमणीय वर्णन कर श्रोता एव पाठक को बरबस अपनी ओर आकृष्ट किया है। यह कवि के शब्दगत भावो का कमाल था जिसमे बहुविध रूप से वैदर्भी एव पाञ्चाली जन्य पदो की लडियाँ समायोजित थी। पुत्र के अभाव से राजा महासेन बहुत चिन्तातुर दिखाई देते है। इसकी अलौकिक कल्पना को कवि ने शब्द और अर्थ के माध्यम से कैसे सराहनीय ढग से वर्णित किया है – देखिए –

क्व यामि तत्किं नु करोमि दुष्कर सुरेश्वरं वा कमुपैमि कामदम्।
इतीष्टचिन्ताचयचक्रचालित क्वचिन्न चेतोऽस्य बभूव निश्चलम्।। धर्म0 – 2/74

–कहाँ जाऊँ, कौन सा कठिन कार्य करूँ, अपने मनोरथ को पूर्ण करने वाले किस देवेन्द्र की शरण गहूँ– इस प्रकार इष्ट पदार्थ विषयक चिन्तासमूहरूपी चक्र से चलाया हुआ राजा का मन किसी भी स्थान पर निश्चल नहीं हो रहा था।

उक्त वर्णन को देखकर प्रतीत होता है कि कवि की विषयावगाहिनी बुद्धि निश्चित ही शब्द और अर्थ का युगपद् वर्णन लेकर सर्वत्र प्रवृत्त हुई है। इनकी चमत्कारिणी प्रतिभा का परिचय तो उस समय होता है जब महाराज धर्मनाथ विदर्भदेश के राजा प्रतापराज की पुत्री श्रृङ्गारवती के स्वयम्बर मे सम्मिलित होने के लिए जाते है। मार्ग मे पवित्र गङ्गा नदी को पार करते हुए राजा धर्मनाथ विन्ध्याचल पर्वत पहुँचते है। उस समय का विन्ध्याचल का वर्णन हृदय को आह्लादित करने वाला है क्योकि एक साथ छहो ऋतुओ का उदय उसी शोभा मे अभूतपूर्व वृद्धि कर देता है। विन्ध्याचल के फलपुष्प शोभित वन मे पुष्पावचयकरती हुई रमणियाँ जब थक गयी तो उनके अङ्ग

---

1 परिस्फुरत्काञ्चनकायमाराद्विभावरीवासरयोर्भ्रमेण।
विडम्बयन्त नवदम्पतीभ्या परीयमाणानलपुञ्जलीलाम्।। धर्म0–7/22

2 प्रशयितुमिवार्ति दुर्वहामौर्ववह्ने र्यदधिरजनि चान्द्री शीलयामास भास.।
तदयमिति मतिर्मे क्षीरसिन्धुर्जनानामजनि हृदयहारी हारनीहारगौर ।। धर्म0–8/17

पसीने की छोटी–छोटी बूँदो से कैसे व्याप्त हो गये तब जलक्रीडा के के हेतु वे नर्मदा नदी के तटप्रान्तो की ओर उन्मुख हुई। ऐसी थकी एव क्लान्त स्त्रियो का वर्णन देखिए–

"द्विगुणितमिव यात्रया वनाना स्तनजघनोद्वहनश्रम वहन्तय ।
जलविहरणवाञ्छया सकान्ता ययुरथ मेकलकन्यका तरूण्य ।।" धर्म0–13/1

"तदनन्तर वनविहार से जो मानो दूना हो गया था ऐसा स्तन तथा जघन धारण करने का खेद वहन करने वाली तरूण स्त्रियॉ जलक्रीडा की इच्छा से अपने–अपने पतियो के साथ नर्मदा की ओर चली।"

ऐसे प्रकृति जन्य चित्रो से माघ, रत्नाकर इत्यादि ने भी अपने काव्य को समृद्ध बनाया। माघने रैवतक पर्वत पर एक साथ छह ऋतुओ का वर्णन जैसे किया था, वैसा ही वर्णन कविवर हरिचद्र ने भी धर्मशर्माभ्युदय मे किया। इतना ही नही जलक्रीडा, पुष्पावचय, पानगोष्ठी, साध्यकालीन वर्णन, नदी वर्णन इत्यादि का दृश्य 71 श्लोको मे माघ ने अष्टम सर्ग मे बहुविध उपादानो द्वारा व्यक्त किया। वहीं सम्पूर्ण 13वॉ सर्ग कविवर हरिचन्द्र ने इन्ही दृश्यो से परिपूर्ण कर माघ से आगे बढ जाने की अपनी रूचि प्रदर्शित की। कविवर हरिचन्द्र की शैली पूर्णरूपेण अपने पूर्ववर्ती कवियो का अनुधावन करती हुई प्रतीत होती है। देखिए –

कथमपि तटिनीम गाहमानाश्चकितदृश. प्रतिमाच्छलेन तन्व्यः।
इह पयसि भुजावलम्बनार्थ समभिसृता इव वारिदेवताभिः।। धर्म0 – 13/19

कितनी ही चञ्चल–लोचना स्त्रियॉ नदी के पास जाकर भी उसमे प्रवेश नही कर रही थी परन्तु पानी में उनके प्रतिविम्ब पड रहे थे जिससे वे ऐसी जान पडती थी मानो उनकी भुजाए पकडने के लिए जलदेवियॉ ही उनके सम्मुख आयी हो।

ऐसा ही चित्रण माघ ने भी प्रस्तुत किया है–

आसीना तटभुवि सस्मितेन भर्त्रा रम्भोरूरवतरितु सरस्यनिच्छु ।
धुन्वाना करयुगमीक्षितु विलासाञ्शीतालु सवितगतेन सिच्यते स्म।। शिशु0–8/19

"कोई एक स्त्री ठण्ड का बहाना लेकर नदी तट पर बैठी हुई सरोवर मे प्रवेश करने के लिए कतरा रही है। उसका पति पानी में प्रवेश कर चुका है। पति के कहने

पर भी वह पानी मे प्रवेश नही कर रही है मात्र दोनो हाथ मिलाकर मना कर रही है तब पति उसकी विलास– चेष्टाएँ देखने के लिए मुसकराता हुआ उस पर पानी उछाल रहा है। उक्त प्रसङ्गों को देखकर यह भली भॉति मालूम होता है कि हरिचन्द्र और माघ दोनो ही कवि आख्यानात्मक अश से उतने अनुरक्त नही जान पडते जितने कि वर्णनात्मक अश से।

कविवर हरिचन्द्र की भाषा मे सरसता, सरलता, माधुर्य और रमणीयता है। वैदर्भी रीति का पद–पद पर सम्यक् प्रयोग हुआ है। शैली की सरसता तथा भावो की भव्यता इन दोनो का मधुमय सामञ्जस्य सर्वत्र दृष्टिगत होता है। इनका भाषा विषयक दृष्टिकोण भारवि, माघ, रत्नाकर की भाति अत्यधिक अलङ्कृत एव कृत्रिम नही है। कविवर हरिचन्द्र की भाषा में अभी भी वह कालिदास का सरस प्रभाव व्याप्त था जिसकी समाप्ति पूर्णरूपेण नही हुई थी। फलत इनका ध्यान शब्दसौन्दर्य की सृष्टि की ओर उतना नही गया जब भी प्रसन्न गम्भीर पदा सरस्वती किस सहृदय को बलात् अपनी ओर आवर्जन नही कर लेती। कविवर हरिचन्द्र ने अपनी वाक्सिद्धि के माध्यम एवं ललित पद के सन्निवेश से भाषा को पण्डित जनो की भाषा मे परिवर्तित कर दिया है। इसी भाषा मे परिवर्तित कर दिया है। इसी भाषा मे कही श्लेष और यमक की भरमार है तो कही उपमा और रूपक की ऑख मिचौनी है। तो कही उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति की धूप–छॉव। ऐसा प्रतीत होता है भाषा को चमत्कृत तथा आह्लाद पूर्ण बनाने के लिए अलङ्कार शास्त्र इनकी प्रतिभा के आगे सदैव हाथ जोडे समर्पित रहता है। इतना ही नही इनका श्लेष प्रयोग के प्रति विशेष आग्रह चरम को प्राप्त हो गया है। श्लेष का यह उदाहरण देखिए –

"स्वस्थो धृताच्छद्मगुरूपदेशः श्रीदानवारातिविराजमान.।
यस्या करोल्लासितवज्रमुद पौरो जनो जिष्णुरिवावभाति।। धर्म0 4/23

जिस नगरी मे नगरवारी लोग इन्द्र के समान शोभायमान है क्योकि जिस प्रकार इन्द्र स्वस्थ है– स्वर्ग मे स्थित है उसी प्रकार नगरवासी लोग भी स्वस्थ है। निरोग है, जिस प्रकार इन्द्र छलरहित गुरू–वृहस्पति के उपदेश को धारण करते है, जिस प्रकार इन्द्र श्रीदानवाराति विराजमान–लक्ष्मी सम्पन्न उपेन्द्र से सुशोभित रहता है उसी प्रकार

नगरनिवासी लोग भी श्री दानवारातिविजराजमान लक्ष्मी के दान जल से अत्यन्त सुशोभित है और इन्द्र जिस प्रकार करोल्लासितवज्रमुद्रहाथ मे वज्रायुध को धारण करताहै उसी प्रकार नगरनिवासी लोग भी करोल्लासितवज्रमुद्र किरणो से सुशोभित हीरे की अँगूठियो से सहित है।

कालिदास की उपमा तो जग विख्यात थी, लेकिन हरिचन्द्र की उपमा श्लेष, वक्रोक्ति, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलङ्कारो के साथ मिलकर कवि की अलौकिक निपुणता को एव प्रतिभा को व्यक्त करती है। कवि ने धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य मे त्रिपथगा गङ्गा का और दशवे सर्ग मे विन्ध्याचल पर्वत का विभिन्न छन्दो मे वर्णन किया है जो पाठको के लिए प्रेरणाप्रद है।[1] ऐसे महाकाव्य विषयक प्रसङ्गो को प्रस्तुत करने से कवि की प्रतिभा सहज ही चमत्कृत हो उठी है।[2] इन प्रसङ्गो की सौष्ठव भाषा एव कौतूहलपूर्ण सरस शैली ने जनमानस को झकझोर कर रख दिया है। कविकुलगुरू कालिदास ने रघुवश महाकाव्य के नवम सर्ग को जिस प्रकार द्रुतविलम्बित और यमक के माध्यम से सॅजाया सॅवारा ठीक वैसी ही काव्यसुधा माघ ने अपने षष्ठ सर्ग मे प्रवाहित की। इतना ही नही कविवर हरिचन्द्र ने भी उन्ही का अनुकरण करते हुए उनसे भी ज्यादा सरल एव परिनिष्ठित भाषा मे[3] एकादश सर्ग के ऋतुवर्णन को व्यक्त कर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया। शब्दश्लेष का चमत्कार देखिए– साथ ही एकवचन और बहुवचन का श्लेष किस प्रकार कवि के कौशल को व्यक्त करता है–

कान्तारतरवो नैते कामोन्मादकृत परम्।
अभवन्‌ प्रीतये सोऽव्युद्यन्मधु पराशय ।। धर्म0 – 3/23
उल्लसत्केसरो रक्तपलाशः कुञ्जराजित ।
कण्ठीरव इवारामः कं न व्याकुलयत्यसौ।। धर्म0 – 3/25

यद्यपि कवि हरिचन्द्र ने यमक अलङ्कार की छटा सर्वत्र विकीर्णित की है, लेकिन दसवे एव एकादश सर्ग में तो उसकी पूर्ण प्रधानता दृष्टिगत होती है।

"मन्दाक्षमन्दा क्षणमत्र तावन्नव्यापि न व्यापि मनोभर्वन।
रामा वरा भावनिरन्य पुष्टवध्वा नवध्वानवशा न यावत्।। धर्म0 – 10/36

---

1 अनेक सुरसुन्दरीनयनवल्लभोऽय दधन् मदान्धघन सिन्धुरभ्रमरूचि सहस्त्राक्षताम्।
महागहन भक्तितो मुकुलिताग्रभास्वत्कर पुरस्तव पुरन्दरद्युतिमुपैति पृथ्वीधर। धर्म0–10/17
2 संस्कृत साहित्य का इतिहास –
3 तदभिधानपदैरिव षट्पदै शबलिताभ्रतरोरिह मञ्जरी।
कनक भल्लिखि स्मरधन्विनो जनमदारमदारयदञ्जसा।।धर्म0 – 11/12

चित्रालङ्कार की छटा तो कवि ने उन्नीसवें सर्ग मे प्रदर्शित की है। कहने को तो यह जैन महाकाव्य है लेकिन यह किसी भी कीमत मे शिशुपाल वध और नैषधीयचरित से कम नही है। अलङ्कारों के कलात्मक प्रयोग ने भाषा के उत्कर्ष को तो बढाया ही है एक ओर जहॉ भारवि ने 15वे सर्ग मे और माघ ने 19वे सर्ग मे चित्रालङ्कारो का विराट रूप प्रदर्शित कर भारवि से कही ज्यादा श्रेष्ठ बनने की कोशिश मे अपनी प्रतिभा को ही धूमिल बना दिया वही और आगे आने पर रत्नाकर ने तो उसका चरम निदर्शन प्रस्तुत कर भाव पक्ष को काव्य से एकदम बाहर कर दिया यह होड प्रत्येक कवि मे अपने पूर्ववर्ती कवियो के अनुकरण पर आश्रित थी।[1] उदाहरणस्वरूप अतालब्य, प्रतिलोमानुलोमपाद, गोमूत्रिकाबन्ध, मुरजबन्ध, चक्रबन्ध, अर्धभ्रम षोऽशदलकमलबन्ध आदि चित्रकाव्यों से कवि की प्रतिभा का अनुमान लगाया जा सकता है। जबकि महाकवि हरिचन्द्र ने अपनी एतद्विषयक कुशलता सम्पूर्ण सर्ग मे प्रदर्शित की है। इस सर्ग मे कवि ने न केवल शब्दालङ्कार, व अर्थालङ्कार का प्रयोग किया है बल्कि श्लेषालङ्कार का भी चरम निदर्शन प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार शिशुपाल वध मे शिशुपाल का दूत, श्रीकृष्ण की सभा मे जाकर द्वयर्थक श्लोको के द्वारा स्तुति और निन्दा का पक्ष प्रस्तुत करता है उसी प्रकार धर्मशर्माभ्युदय के इस उन्नीसवे सर्ग मे भी अङ्गादि देशो के राजकुमारो के द्वारा सुषेण सेनापति के पास भेजा हुआ दूत भी द्वयर्थक श्लोको के द्वारा निन्दा और स्तुति के पक्ष को रखता है। देखिए –

परमस्नेहनिष्ठास्ते परदानकृतोद्यमा ।
समुन्नति तवेच्छन्ति प्रधनेन महापदाम्।। धर्म0 – 19/18

"अत्यधिक स्नेह रखने वाले एव उत्कृष्ट दान करने मे उद्यमशील वे सब राजा प्रकृष्टधन के द्वारा महान् पद–स्थान से युक्त आपकी उन्नति चाहते है अर्थात् आपको बहुत भारी धन देकर उत्कृष्ट पद प्रदान करेगे (पक्ष में– वे सब राजा आपके साथ अत्यन्त अस्नेह–अप्रीति रखते है और पर–शत्रु को खण्ड–खण्ड करने मे सदा उद्यमी रहते है। अत. युद्ध के द्वारा आपको हर्षाभाव से युक्त–मुदो हर्षस्य ततिर्मुन्नतिस्तया महिता ता समुन्नतिम्–महापदा–महती आपत्ति की प्राप्ति हो ऐसी इच्छा रखते है)।"

कविवर हरिचन्द्र की मेधाशक्ति तीक्ष्ण थी। इन्होने माघ, रत्नाकर की काव्यशैली के अनुकरण पर ही अपने काव्य सन्धान को स्फुटित किया। शान्त रस प्रधान इस ग्रन्थ मे यथावश्यक रीतियों, गुणो कल्पनाओ का उचित सामञ्जस्य प्रस्तुत कर काव्य को सरस एव रोचक बना दिया है। साहित्यिक क्षेत्र मे गुण को रस का धर्म माना जाता है इस दृष्टिकोण से शान्त रस मे माधुर्य का सन्निवेश कर कविवर हरिचन्द्र ने बहुत ही सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है–

हेलोत्तरतुङ्गमतङ्गजावलीकपोलपालीगलितैर्मदाम्बुभि ।
गङ्गाजलं गज्जलमञ्जुलीकृतकलिन्दकन्योदकविभ्रम दधौ।। धर्म0 9/75

शान्तरस का एक दृष्टान्त चतुर्थ सर्ग में राजा दशरथ के वैराग्य चिन्तन मे दिखाया है। वे किस प्रकार ससार के क्षणभङ्गुर दृश्यो को देखकर विरक्त हुये थे।[1]

अङ्ग रसो मे कवि ने श्रृङ्गार का बेहद परिनिष्ठित रूप व्यक्त किया है। पन्द्रहवे सर्ग का सुरत वर्णन देखिए जहॉ श्रृङ्गार की रस धारा निरन्तर प्रवहमान है। शान्तरस प्रधान इस महाकाव्य मे अनुष्टुप छन्द तथा चित्रालङ्कारो की विवशता के कारण यद्यपि इसमे वीर रस का उचित परिपाक नही हो पाया है जैसा माघ, भारवि, रत्नाकर इत्यादि कवियो ने अपने काव्य मे दिखाया है फिर भी शाब्दी वैचित्र्य मे कही–कही उन्होने वीररस का उचित समावेश कर दिया है। देखिये –

"गुणदोषानविज्ञाय भर्तुर्भक्ताधिका जन्य ।
स्तुतिमुच्चावचामुच्चैः का न का रचयन्त्यमी।।" –धर्मशर्माभ्युदय

दूत के उत्तर मे सुषेण कहता है– ये भक्ताधिक– भोजन से परिपूर्ण अथवा श्राद्धो मे अधिक दिखने वाले– पिण्डीशूर लोग गुण और दोषो को जाने बिना ही अपने स्वामी की, ऊँची–नीची क्या क्या स्तुति नही करते है? अर्थात् खाने के लोभी सभी लोग अपने स्वामियो की मिथ्या प्रशंसा मे लगे हुए है।

इस प्रकार कविवर हरिचन्द्र की प्रतिभा अपने पूर्ववर्ती कवि भारवि, भट्टि, कुमारदास, माघ, रत्नाकर, बाण, वीरनन्दी इत्यादि के अनुकरण पर ही यथावत फलीभूत हुई।

---

1 देखिए – धर्मशर्माभ्युदय – 4/44–60 मे

कविवर हरिचन्द्र ने कालिदास के रघुवंश मे वर्णित इन्दुमती स्वयम्बर के आधार पर ही अपने ग्रन्थ धर्मशर्माभ्युदय में श्रृङ्गारवती के स्वयम्बर की कल्पना की है।[1] समलङ्कृत स्वयम्बर मण्डप में युवराज धर्मनाथ के प्रवेश करते ही अन्य राजाओ की क्या स्थिति हो जाती है–? उसी सुन्दरता का वर्णन कवि ने अपनी सालङ्कार वाणी से किया है –

अय स कामो नियत भ्रमेण कमप्यधाक्षीद् गिरिशस्तदानीम्।
इत्यद्भुत रूपमवेक्ष्य जैन जनाधिनाथा प्रतिपेदिरेते।। धर्म0– 17/6

"जितेन्द्र धर्मनाथ के स्वयम्बर मण्डप पर पहुँचते ही लोगो ने उनके चित्ताकर्षक रूप को देखकर यह समझा कि सचमुच यह कामदेव तो नही है। उस समय महादेव ने भ्रम से किसी दूसरे को जलाया था।"

कविवर हरिचन्द्र ने बाणभट्ट की कादम्बरी मे दिये गये शुकनासोपदेश से प्रेरणा लेकर जिस परम्परा को आगे बढाया था उसका और भी कवियो ने सम्यक् पालन किया। भारवि ने युधिष्ठिरोपदेश द्वारा, माघ ने उद्धवोपदेश द्वारा और वीरनन्दी ने चन्द्रप्रभचरित मे श्रीषेण द्वारा जिस उपदेश का पालन किया है[1] उसी को और आगे बढाते हुए जो उपदेश धर्मनाथ को दिलाया है वह उसी परम्परा की सम्पुष्टि है।[2] यह चमत्कार प्रियता समाज में व्याप्त हो चुकी थी। उसकी माग पद–पद पर पण्डित समाज मे होती थी। अब रस का भाव नाममात्र भी नही रह गया था। सर्वत्र नक्काशी ही नक्काशी का बोलबाला जाग्रत हो गया था।

इस प्रकार धर्मशर्माभ्युदय का अनुशीलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् यह विदित होता है कि कविवर हरिचन्द्र एक उच्च कोटि के कवि थे। इनकी शैली पर कालिदास के रघुवश, भारवि के किरातार्जुनीयम्, माघ के शिशुपालवध, बाण की कादम्बरी तथा वीरनन्दी के 'चन्द्रप्रभचरित' की शैली का पूर्णरूपेण प्रभाव व्याप्त था। इतना ही नही रस, गुण, अलङ्कार तथा शब्द विन्यास की शैली भी लगभग एक समान है। शिशुपालवध में जहाँ कवि ने रैवतक पर्वत का वर्णन दारूक से कराया है तो धर्मशर्माभ्युदय मे कवि ने प्रभाकर से कराया है–

---

1 समागमो निर्व्यसनस्य राज्ञः स्यात्संपदा निर्व्यसनत्वमस्य।
वश्ये स्वकीये परिवार एव तस्मिन्न वश्ये व्यसनं गरीय।। चन्द्रप्रभचरित – 4/37

2 अचिन्त्यचिन्तामणिमर्थसंपदा यशस्तरो स्थानकमेकमक्षतम्।
अशेषभूभृत्परिवारमातरं कृतज्ञता तामनिश त्वमाश्रयं।। धर्म0 – 18/21

उच्चारणज्ञोऽथ गिरा दधानमुच्चा रणत्पक्षिगणस्तटीस्तम्।
उत्क धर द्रष्टुमवेक्ष्य शौरिमुत्कधर दारूक इत्युवाच।। शिशु0 4/18
सुहृत्तम सोऽथ सभासु हृत्तम प्रभाकरश्छेत्तुमिति प्रभाकर।
धरे क्षण व्यापृतकधरेक्षण तमीश्वर प्राह जगत्तमीश्वरम्।। धर्म0 10/15

इस प्रकार काव्य के विविध विधानो का जैसा चमत्कारी रूप कविवर हरिचन्द्र के ग्रन्थ मे उपलब्ध हुआ है वैसा वर्णन अन्यत्र कम मिलता है। इसकी ख्याति का यही कारण है कि इस महाकाव्य में जीवन की पवित्रता का वर्णन पद–पद पर किया गया है। 21वें सर्ग का जैन सिद्धान्त वर्णन बेहद रोचक एव प्रशसनीय है। इस ग्रन्थ का अध्ययन करने के बाद यह प्रतीत होता है कि इसकी काव्यशैली मे भले ही वैदर्भी पाञ्चाली आदि रीतियों के भाव समायोजित हो फिर भी यह किसी भी कीमत मे माघ, भारवि, रत्नाकर की शैली से कम नही है। इसी परम्परा को विरासत रूप मे आगे आने वाले कवियो ने अपनाया जैसे कि हरिचन्द्र ने अपने पूर्ववर्तियो से प्रेरणा ग्रहण किया था। इनकी रसानुरूप छन्दो की लयबद्धता रूपी काव्य भारती की प्रशसा करते हुए आचार्य क्षेमेन्द्र ने कहा है– कि कविवर हरिचन्द्र ने छन्दो का वैशिष्ट्य बडी छान–बीन के बाद किया।[1] इतना ही नहीं आगे आने वाले कवियों ने धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य को उपजीव्य बनाकर ही सस्कृत, अपभ्रंश प्राकृत आदि में कितने महाकाव्यों को नया जीवन एवं नया आयाम दिया। महाकवि हरिचन्द्र के विषय मे विद्वानो ने कहा है– "महाकवि हरिचन्द्र के हृदय मे न जाने कितने असख्य शब्दो का भण्डार भरा हुआ है। रस के अनुरूप काव्यगत शब्द सौष्ठव को प्रकट करना इनकी विशेषता है।"

**कविराजकृत – राघवपाण्डवीयम् :–** एक ही काव्यरत्न मे दो या दो से अधिक कथाशों का समावेश केवल श्लेष के माध्यम से सम्भव है, उसी को अन्य शब्दो मे सन्धान काव्य के पद से सम्बोधित किया गया है। इस द्विसन्धान काव्यरत्न का उद्भव एवं विकास जैन कवि धनञ्जय से आरम्भ हुआ है। एक ही काव्य ग्रन्थ मे दो, तीन, चार कथाशों को एक साथ सन्निहित करके विद्वद्गण अपनी चमत्कृति जन्य प्रतिभा को प्रदर्शित करते है। ऐसे ही अर्थो का द्योतन कराने वाली प्रवृत्ति क्रमश

---

1 क्षेमेन्द्रकृत – सुवृत्त तिलक

कवियो मे परिवर्धित होती चली गयी और लोगो ने इसी विशेष परम्परा से काव्य का समारम्भ किया। इन्ही सन्धान कवियो मे कविराज का राघवपाण्डवीयम् भी अपना विशेष एवं महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह महाकाव्य काव्यालङ्कार भामह, काव्यालङ्कार रूद्रट, काव्यादर्शकार दण्डी आदि द्वारा दिये गये महाकाव्य के लक्षण से पूरी तरह ओत–प्रोत है। मङ्गलाचरण के त्रिविध प्रकारो मे से 'राघवपाण्डवीयम्' महाकाव्य का प्रारम्भ नमस्कारात्मक मङ्गलाचारण से हुआ है। तेरह सर्गों मे ग्रथित इस महाकाव्य का वितान बेहद चमत्कृत शैली से परिपूर्ण है जिसमे पुरूषोत्तम राम तथा युधिष्ठिर जैसे धीरोदात्त नायक का चित्रण अत्यधिक परमार्जित रूप मे अङ्कित किया गया है।[1]

इतना ही नही इस महाकाव्य का काव्यकलेवर भी अद्‌भुत है जिसमे (अर्थात् इस राघवपाण्डवीयम् महाकाव्य मे) रामायण तथा महाभारत की कथा साथ–साथ स्फुरित होती है। इसीलिए इसे द्विसन्धान की श्रेणी मे परिगणित किया गया है। यद्यपि उक्त काव्यग्रन्थ राघवपाण्डवीयम् को महाकाव्य कहा गया है, किन्तु यह पूरी तरह महाकाव्य के लक्षण मे खरा नही उतरता है। क्योकि कवि ने अपना विशेष प्रयोजन प्रदर्शित करने मे ही इतनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है कि नगर, ऋतु, इत्यादि के वर्णन मे उसकी रूचि ही नही प्रतीत होती, क्योकि ऐसे द्विसन्धान काव्य की पदवी से मण्डित काव्यो मे प्राकृतिक प्रसङ्गों से सम्बन्धित चित्रण की कल्पना नही की जा सकती। ऐसे ग्रन्थो की रचना मे कवि के आश्रयभूत राजा कामदेव की ही प्रेरणा स्पृहणीय थी, क्योकि कवि ने स्वय उच्चरित किया है–

"तस्यावदातै कविसूक्तिसूत्रै संस्यूतनानागुणरत्नराशेः।<br>विनोदहेतोः कविराज सूरिर्निबन्धनद्वन्दमिद विधत्ते"।। राo पाo– 1/35

कविराज ने पूर्ववर्ती कवियों यथा– भारवि, माघ, रत्नाकर इत्यादि के ही समान अपने काव्य राघवपाण्डवीयम् के सभी सर्गों के अन्तिम श्लोक मे 'कामदेव' शब्द का प्रयोग किया है। अतः इस काव्य को 'कामदेवाङ्क' काव्य भी कहा जाता है। कदम्बवश के राजा कामदेव के आश्रित रहते हुए 'आचार्य कविराज' ने अपने पूर्ववर्ती धनञ्जय के

---

1 धीरोदत्त नायक का लक्षण – महासत्त्वो अतिगम्भीर क्षमावान विकत्थनः।<br>स्थिरोनिगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रत ।।<br>आचार्य धनञ्जयकृत– दशरूपक

राघवपाण्डवीयम् काव्य से अपने राघव पाण्डवीयम काव्य की ज्यादा, प्रशसा की है और उस धनञ्जय के राघवपाण्डवीयम् से अपने राघवपाण्डवीयम् काव्य को सर्वश्रेष्ठ भी बताया है। इन्होंने कामदेव राजा का वर्णन करते हुए लिखा है –

श्री विद्याशोभिनो यस्य श्री मुञ्जादियतो भिदा।
धारापतिरसावासीदयं तावद्धरापति ।।" राoपा – 1/18

इतना ही नही इन्होने – "सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराजइति त्रय । वक्रोक्ति मार्ग निपुणाश्चतुर्थो विद्यते वा"।। इत्यादि श्लोक लिखकर अपनी इस कृति को सुबन्धुकृत वासवदत्ता तथा बाणकृत कादम्बरी के तुल्य मानते हुए अन्य कवियों की सभी कृतियो को अध स्थित माना।

ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि वाल्मीकि की काव्य सरणि का अवलम्बन लेकर तथा अपने पर्वूवर्ती कवियो से प्रेरणा लेकर अपने–अपने काव्य कलेवर को पूर्ण रूप से परिवर्धित एवं विकसित किया तथा काव्य की अतिशयता को चरम बिन्दु पर पहुँचाया। शैली भले ही अपनी–अपनी थी लेकिन सभी का एकमात्र उद्देश्य अपने पूर्ववर्ती कवि को हर तरह से (भाषा, भावशैली) पराभूत कर उनसे आगे बढ जाने की थी। इस प्रकार प्रथम शताo से लेकर बारहवी शताo तक दिन प्रतिदिन काव्य का उत्कर्ष होता गया। ऐसे समयावधि मे कितने काव्य दीपो की भॉति प्रकाशित हुए और कितने काव्य रङ्गमञ्च पर आकर तिरोभूत हुए है। इस बात का पता लगाना असम्भव है।

ऐसे ही समय जब काव्य के भावपक्ष को पूरी तरह से गौण बना दिया गया था तथा कलापक्ष को प्रकृष्ट रूप से मुखरित करने एव विकास के चरमबिन्दु पर पहुँचाने के लिए कविजन विविध मार्गों का अवलम्बन ले बेहद परिनिष्ठत भाषा तथा अलङ्कारों से सुसज्जित कर अपनी काव्यकला के हस्तकौशल को प्रकट करने मे लग गये थे। उसी समय से श्लेष एव चित्रकाव्यो का निर्माण होने लगा था और लोग अपने काव्य–वैभव को यथासम्भव बेहद चमत्कृत शैली से सुसज्जित करने मे रत हो गये थे। वैसे भी ग्याहरवी बारहवी शताo का युग इस चमत्कार पूर्ण शैली का केन्द्र बिन्दु बन चुका था। इस प्रकार इस युग के कवियो ने अपने कलाजन्य काव्यशिल्प के मनोरथ को श्लेष एव चित्रबन्धो द्वारा पूर्ण करने में ही अपना मनोरथ समझा। चित्रकाव्य प्रधान उक्त

राघवपाण्डवीयम् ग्रन्थ के सदृश कई अनेक ऐसे काव्यबन्धो का निर्माण हुआ जिनमे धनञ्जयकृत 18 सर्गों मे बद्ध राघवपाण्डवीयम दशम शता0 का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। हरिदत्त सूरि का राघवनैषधीय जिसमें श्रीराम एव राजा नल क चरित्र को श्लेष के द्वारा निबद्ध किया गया है। विद्यामाधव का पार्वती रूक्मिणीय नामक नवसर्ग का काव्य जिसमे युगपद रूप मे पार्वती और रूक्मिणी के विवाह का श्लेष शब्दो में एक साथ वर्णन किया है। यादव राघवीय नामक एक 300 श्लोक मे लघु काव्य है। जिसमे विलोम पद्धति से राम और कृष्ण दोनो के चरित्रो का एक साथ वर्णन किया गया है। यह श्लेष काव्य तो नही कहा जा सकता, अपितु विलोम काव्य कहा जा सकता है, क्योकि साधारण दृष्टि से पढने पर इसमे राम के चरित्र का बोध होता है और उल्टे क्रम से पढने पर कृष्ण के चरित्र का बोध होता है। इसी प्रकार का एक काव्य चिदम्बरसुमति ने राघवपाण्डवयादवीय लिखा जिसमे श्लेषनिष्ठ भाषा के द्वारा रामायण, महाभारत तथा भागवत् की कथाओ का त्रिवेणी सगम दर्शाया गया है। ऐसे ही काव्यो की श्रेणी मे कविराज के राघवपाण्डवीयम् को भी परिगणित किया गया है, जिसमे कविराज ने श्लेष के विविध उपादानों द्वारा विविध प्रसङ्गों का दृष्टान्त उपस्थित किया है।[1]

प्राय प्रकरणैक्यैन विशेषण विशेष्ययो,
परिवृत्त्या क्वचित्तद्वदुपमानोपमेययोः। राघवपाण्डवीयम्– 1/37

इस महाकाव्य मे श्लेष के वैशिष्ट्य से सर्वत्र रामायण, महाभारत के प्रत्येक सर्ग की कथा को क्रमश चमत्कृतिजन्य शैली मे वर्णित किया गया है। कुशाग्रबुद्धि कवि अपनी उर्वर कल्पनाओ प्रतिभा एवं पाण्डित्य को शब्दालङ्कार संरचनाओ के माध्यम से प्रदर्शित करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि श्लेष काव्यों की रचना का कार्य केवल दुष्कर ही नहीं, अपितु अत्यधिक दुष्कर है। इस प्रकार के काव्यो में यथार्थ रूप से भावो की अभिव्यक्ति नही हो पाती। क्योंकि श्लेष काव्य के भी कुछ अपने परिनिष्ठित उद्देश्य होते हैं (1) कुछ श्लेष तो केवल अनेकार्य बोधक होते हैं। (2) कुछ काव्य श्लेष के द्वारा व्याकरणादि शास्त्र की सरस रूप में शिक्षा देते है। (3) कुछ श्लेष काव्य शब्द विन्यास के वैचित्र्य से युक्त होते है जैसे विलोम काव्य इत्यादि।

1 राघवपाण्डवीयम् एक अध्ययन – लेखिका – डॉ0 लक्ष्मी मिश्रा

यह तो सभी को विदित है कि पुरातन समय से ही सस्कृत भाषा मे प्रत्येक शब्द के अनेक अर्थ व्यवहृत होते रहे है। वैसे भी चाटूक्ति के क्षेत्र मे तीन ही कवियो को प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। 1– रामचरित के रचनाकार सन्ध्याकरनन्दी, द्विसन्धान महाकाव्य के प्रणेता जैन कवि धनञ्जय एव राघवपाण्डवीयम् के प्रणेता कविराजपण्डित। ऐसे श्लिष्ट काव्यो की श्रृङ्खला मे परिगणित कविराज के अद्भुत पाण्डित्य पूर्ण काव्यवैभव की जितनी भी प्रशसा की जाए उतनी ही कम है।

ऐसे ही विविध प्रसङ्गो को कविराज ने वक्रोक्ति के माध्यम से श्लेषनिष्ठ भाषा मे वर्णित किया है। इन्होने यथावसर श्लेष को सहृदय पण्डितो की जिह्वा तक पहुचाने के लिए विभिन्न कोशो की (मेदिनीकोश, विश्वकोष, एकाक्षरकोष) पक्तियों को भी अपने श्लोक के कई स्थलो मे वर्णित किया है। वक्रोक्ति (वैदग्ध्यभङ्गीभणिति) द्वारा काव्य की श्लेषनिष्ठ कथा मे कविराज ने अपने अभूतपूर्व वैभव का परिचय दिया है– देखिए ऐसे ही कुछ दृष्टान्त–

योसौ वितानाहितसोमकार्य क्षोणीभृताह जनकेन तेन।
लब्धायि कृष्णाजिनशोभिताया क्षितौ कलत्रे तनयेव सीता।।   राघ0 – 5/25

रामायण पक्षे– हे! जो यह राजा यज्ञ मे सोमरस पान करने वाले है उस राजा जनक के द्वारा पत्नी मे पुत्री के समान कृष्णमृगचर्म से सुशोभित भूमि मे प्राप्त हुई मै सीता हूँ।

महाभारत पक्षे– हे! जो यह यज्ञ मे सोमरस पान करने वाला है उस पिता द्रुपद राजा के द्वारा पत्नी के रहने पर भी यज्ञभूमि में राजा जनक के द्वारा पुत्री सीता के समान मृगचर्म से शोभित यज्ञभूमि मे प्राप्त की गई मै द्रौपदी हूँ।

कविवर कविराज के भाषा, भाव, शैली का चामत्कारिक विन्यास साथ ही विविध चित्रबन्धो का यथावसर विन्यास उनकी कृति को अलग ही काव्य जगत मे स्थान दिलाता है। कविराज अपने काव्य वैभव के प्रचार–प्रसार मे लगे होने पर भी वे अपने पूर्ववर्ती भारवि, माघ, रत्नाकर से प्रतिस्पर्धा करना नहीं भूलते। इनके प्रत्येक वर्णनो पर अभिव्यक्ति और कल्पना की अतीव समृद्धि वर्तमान होते हुए भी ओज एव माधुर्य के सौन्दर्य की न्यूनता नही है– इनकी लावण्यमयी भाषा निश्चय ही सहृदयो की हार है।

भाषा प्रासादिक प्रवाहपूर्ण एव प्राञ्जल है। इनकी शैली शुद्ध वैदर्भी रीति का उत्कृष्ट उदाहरण है। श्लेष प्रधान शैली से आच्छन्न इनकी कविता मे सुबन्धु और बाण के प्रत्यक्षर श्लेषमय शब्दो की लडिया विराजमान है। इस दृष्टि से कविराज का काव्य कौतूहलपूर्ण है, पाण्डित्यपूर्ण है, और चमत्कार युक्त भी। इनकी श्लेषपूर्ण शैली को देखिए –

वैदर्भी – गमनमलसयानै' कुम्भलक्ष्मी कुचाभ्या–
मविकलकरशोभामूरूकाण्डद्वयेन।
यदियमहरदेषां हेतुना तेन नून
निजवपुषि करीन्द्राः पासुपूर क्षिपन्ति"।। राघ0 – 2/18

"क्योकि इस सीता ने, दूसरे पक्ष मे– द्रौपदी ने इन हाथियो की गमन शोभा अपने मन्दगमन से, मस्तक की शोभा दोनो स्तनो से, सम्पूर्ण शुण्ड की शोभा दोनो ऊरूदण्डो से, छीन ली है इस कारण से निश्चित ये हाथी अपने शरीर पर अनादर की बुद्धि उत्पन्न होने से धूलियों का ढेर डाल लेते है।"

गौडी का उदाहरण देखिए –

लूनस्यन्दनकेतुपत्तितुरगच्छत्राक्षधूर्बन्धुरा,
सैन्यस्त्रीकुचकुम्भमौक्तिकबहिष्कारस्फुरत्साहसा।
वीरोरस्थलदारणारूणमुखा. सैन्येषुदेवद्विषा
प्राणोन्मोचननिर्विकारचरिताश्चेरूस्तदीया शरा.।। राघ0 – 8/22

पाञ्चाली का उदाहरण देखिए –

असन्तते· सन्ति कुत. सुखानीत्यसौ विचिनत्य प्रतिपन्नमन्यु·।
सार्धं स्वदारैर्नियतः सुतार्थे, राजा सुरप्रार्थनततरोऽभूत्।। राघ0– 1/62

अलङ्कारो में कविराज ने श्लेष, यमक, अनुप्रास आदि को प्रमुखता दिलायी तथापि श्लेष अलङ्कार इन सभी में सर्वाधिक अनुसरणीय बना। इस श्लेष का प्रयोग जब श्लोक के एक या दो पदों में न होकर समस्त पदो मे होने लगा तभी तो द्विसन्धान विधान का उद्‌भव हुआ। श्लेष के माध्यम से ही भावो का चमत्कार सम्भव था। देखिए–

नृपेण कन्यां जनकेन दित्सितामयोनिजा लम्भयितुं स्वयंवरे।
द्विजप्रवर्येण स धर्मनन्दन. सहानुजस्तां भुवमप्यनीयत्।। राघ0 2/1

रामायण पक्षे– जनक नामक राजा के द्वारा स्वयंवर मे देने के लिए निश्चित की हुई अयोनि अर्थात् भूमि से उत्पन्न पुत्री सीता को प्राप्त कराने के लिए भाई लक्ष्मण के

साथ धर्म का पालन करने वाले राम ब्राह्मण श्रेष्ठ विश्वामित्र के द्वारा जनकपुरा लाये गये।

महाभारत पक्षे – पिजा राजा द्रुपद के द्वारा स्वयवर में देने के लिए निश्चित की गयी अयोनि अर्थात् यज्ञ से उत्पन्न पुत्री द्रौपदी को प्राप्त कराने के लिए भाई भीम आदि के साथ वह राजकुमार युधिष्ठिर समीप मे रहने वाले ब्राह्मण श्रेष्ठ के द्वारा पाञ्चालनगरी पहुॅचा दिये गये।

कविराज की स्वाभावोक्ति का कहना ही क्या है? चतुर्थ सर्ग मे अर्जुन कृत तपस्या के फलस्वरूप भगवान शङ्कर के दर्शन को रामकृत अगस्त्य ऋषि के दर्शन से मिलाकर क्या ही वैचित्र्यपूर्ण स्वाभावोक्ति का प्रसङ्ग उपस्थित किया है– देखिए –

शिरासि तद्विशिखमुखार्पितान्यलं निषादिना नभसि निगृह्य चञ्चुभि ।
पतत्रिण· क्षणकृतमण्डलभ्रमा पद दधु परबलकेतुमूर्धसु।। राघ0 – 4/30

पॉचवे सर्ग के वर्षा वर्णन तथा शरद्वर्णन मे कविराज ने अपने कलात्मक सौष्ठव का निदर्शन किया है– इन्होने आवश्यक किसी वर्ण्यविषय का विस्तार न करके पण्डितों की अभिरूचि के अनुरूप अपने काव्य को सजाया है। इस युग तक शैली का वह माधुर्य, काव्यों का वह हृद्य वैशद्य सुकुमार संघटन, अलङ्कारों का मनोरम सौन्दर्य तथा रसो का वह दिव्य परिपाक अलभ्य हो गया जो वाल्मीकि, कालिदास इत्यादि के भावो में विद्यमान था। अलङ्कारो की भरमार इस काव्य मे सर्वत्र परिलक्षित होती है। जगह–जगह उत्प्रेक्षा, रूपक, उपमा इत्यादि अलङ्कारो का भी प्रावल्य वर्णित है। देखिए – चमत्कारपूर्ण उत्प्रेक्षा की भावभीनी भाषा –

कान्ति श्रीकण्ठकण्ठस्य जयत्यालिङ्गनोत्सुका।
स्कन्धारूढेव कालिन्दी मौलिमन्दाकिनीर्ष्यया।। राघ0– 1/5

"शिर पर अवस्थित गङ्गा जी की ईर्ष्या से मानो आलिङ्गन के लिए उत्सुक कन्धे पर चढी हुई यमुना की तरह भासमान शङ्कर जी के गले की कान्ति विजयी है अर्थात् सर्वश्रेष्ठ होने के कारण प्रणम्य है।

उपमा का चमत्कार देखिए –

निरस्तरत्नाभरणापि गेहाद्विनिर्गता सा निजयैव भासा।
विद्योतयामास नरेन्द्रमार्गं तडिल्लता मेघविनिर्गतेव।। राघ0– 3/33

निसन्देह कविराज की शैली का प्रभाव श्रीहर्ष इत्यादि की शैली पर भी पडा जिसमे यथास्थान उचित अनुचित प्रसङ्गो की कल्पना की गयी। रूढियो के पराधीन होकर ही इन्होने प्राकृतिक वर्णनों का विस्तार किया। शरदृऋतु का दृश्य देखिए—

अस्या स्फुट माल्यकदामशोभिवेणीगुणोत्कर्षमलिम्लुचानाम्।
कलापिना कल्पयतीव दण्ड शिखण्डभारक्षपणाद् घनान्त ।। रा0पा0 – 5/16

"शरदृऋतु का समय इस सीता के, दूसरे पक्ष मे— द्रौपदी के मालाओ की लरी से सुशोभित गूथे हुए बालो की श्रेष्ठता चुराने वाले मयूरो का बर्हसमूह काट देने से मानो स्पष्ट रूप से दण्ड करता है।"

उक्त प्रसङ्गों को देखकर विदित होता है कि इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। इनको चित्रकाव्य के प्रणयन में भी अभूतपूर्व सफलता मिली। इनका चित्रवंध केवल शब्दो के वैचित्र्य को ही नही वर्णित करता बल्कि शब्द और अर्थ के मञ्जुल सामञ्जस्य को अभिव्यक्त करता है।

कविराज ने राघवपाण्डवीयम् मे प्रसादगुण की अभिव्यक्ति के लिए क्लिष्ट छन्दो का परित्याग करके सरल छन्दो का प्रयोग किया है। स्त्रग्धरा, महास्त्रग्धरा, अनुष्टुप, उपजाति, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, मालिनी, वंशस्थ आदि छन्दों का प्रयोग बाहुल्येन दिखाई देता है। पदलालित्य हेतु कवि ने ऐसे चारू छन्दो का प्रयोग किया जिससे भाषा व लय मे समानता परिलक्षित होने लगी। देखिए कुछ छन्दो का वैविध्य—

अनुष्टुप – अस्ति कादम्बसन्तान—सन्तानकनवाङ्कुर.।
कामदेव' क्षमादेव—कामधेनुर्जनेश्वर ।।

कादम्बवश रूपी कल्पवृक्ष का नवप्ररोह स्वरूप ब्राह्मणो को अभिलषित वस्तु देने वाला कामदेव नाम का राजा है। इन्द्रवज्रा का प्रयोग तो कवि ने द्वितीय सर्ग मे राम के जनकपुर तथा युधिष्ठिर को पाञ्चाल नरेश द्रुपद के यहॉ द्रौपदी के स्वयम्बर मे पहुॅचने पर किया है— देखिए—

पुष्पैर्विचित्रैर्ग्रथितो विरेजे तस्या घन कुञ्चितकेशपाश ।
तद्वक्त्रपद्मोत्तमगन्धलोभात् सान्द्रीभवद्भृङ्गपरम्परेव।। रा0पा0— 2/12

द्रुतविलम्बित छन्द का स्पष्टतया प्रयोग 12वे सर्ग मे मिलता है – देखिए–

जनितशङ्खरवानर कुञ्जरक्षतजरञ्जितदिक् त्रिदिवौकसाम्।
प्रतिभटावटशल्य मुखोद्भटा परचमूर्मनुजेश्वरमावृणोत्।। रा०पा०– 12/42

इस प्रकार कविराज ने श्लेष काव्य का पूर्ण निर्वाह करते हुए विविध छन्दो का प्रयोग किया इतनाही नही अद्भुत कल्पना शक्ति का परिचय देते हुए इनको छन्दो के प्रयोग मे जो सफलता मिली वह नि.सदेह प्रशसनीय है।[1]

अन्तत: कविराज के काव्य शिल्प का विविध प्रकार से अध्ययन करने के उपरान्त हम यही कहेगे कि इन्होंने अपनी चमत्कारिणी एव अलौकिक प्रतिभा से संस्कृत वाड्मय को जिस प्रकार समृद्धता की चादर से परिवेष्टित कर उसे उस विकसित परम्परा की श्रेणी मे खडा किया जिसको भारवि, माघ, रत्नाकर इत्यादिने प्रवर्तित किया था तथा उसको सफलता की ऊँचाईयो पर पहुँचाया था रत्नाकर और कविराज जैसे कवियो ने। भावना की अनुचरी बनकर ही कवि की विम्ब योजना सर्वत्र फलीभूत हुई है। अलौकिक प्रतिभा के धनी कविराज का कवि कर्म भी इसका अपवाद है। उनका मुख्य उद्देश्यो पाठको के सामने सम्पूर्ण रामायण एवं महाभारत की कथा को सक्षेप मे रखना था न कि अपना प्रखर पाण्डित्य दिखाना था। हा इतना अवश्य है कि कवि के इस श्लेषालङ्कार के प्रयोग के कारण सर्वत्र दुरूहता आ गयी है। जो किसी भी टीका के अभाव में सुलझाना कठिन है। इतने से हम इसको निकृष्ट कोटि का काव्य नही कह सकते। इसमे न तो वह गर्वोक्ति है न प्रतिस्पर्धा और न पाण्डित्य प्रदर्शन की भावना या लालसा इसकी यत्किञ्चित् दुरूहता भी बोध्य है। इन सभी तर्कों के बाद हम यह अवश्य कह सकते है कि सस्कृत साहित्य मे यह एक अनूठा चित्रकाव्य है जिसमे शब्द अर्थ तथा भावो के चित्रो की एक साथ झाकी देखने को मिलती है।

**श्री हर्ष और उनका पञ्चनली :–** कवि कुलगुरू कालिदास द्वारा प्रवर्तित रचना शैली का आदर्श माघोत्तर कवियो ने स्वीकार न कर भट्टि, भारवि तथा माघ द्वारा प्रवर्तित शैली को ही स्वीकार किया। आचार्यों, कविगणो ने कालिदास की सहज स्वाभाविक कविता की अपेक्षा कलात्मक चाकचिक्य को ही अधिक प्रधानता दिया। काव्य मे शाब्दीक्रीडा को ही मात्र काव्य समझा जाने लगा। काव्य मे पाण्डित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति कालिदास के पश्चात् से बढती ही चली गयी। भारवि, माघ, भट्टि आदि कवियों की रचनाए कविता के रूप मे नही, पाण्डित्य के रूप मे व्यक्त होने लगी। इस परम्परागत प्रवृत्ति का विकास एक ओर विकट एव गाढबन्ध चित्रकाव्यो से हुआ, जिसमे नलोदय, युधिष्ठिरविजय आदि यमक अलङ्कारयुक्त काव्य तथा कविराजकृत राघवपाण्डवीयम् और हरिदत्तसूरिकृत राघवनैषधीय आदि श्लेषनिष्ठ काव्यरत्नो को लिया जा सकता है। दूसरी ओर चरित काव्यो में हुआ जिनमे प्रधानत. राजाओ के चरित का चित्रण अलङ्कृत शैली मे निर्मित किया गया। ऐसी रचनाओ मे विल्हणकृत ऐतिहासिक महाकाव्य विक्रमाकदेवचरित, और पद्मगुप्त कृत "नवसाहसाङ्कचरित" आदि को लिया जा सकता है।[1] उक्त ये सभी ग्रन्थ चमत्कृत एव अलङ्कृत शैली मे लिखे गये और इन लोगो ने कविता को पाण्डित्य प्रदर्शन का एक बहाना बनाया यह परम्परा भारवि और माघ से होती हुई श्रीहर्ष मे अपने चरम विकास पर पहुँचती है जिसने अपनी कृति नैषधीयचरित" मे नल–दमयन्ती के प्रणव के चित्रण के साथ–साथ अपने अतुल पाण्डित्य की अभिव्यक्ति की। उस समय के कविगणों की प्रकृति बौद्धिक चमत्कार जन्य प्रतिभा को अधिक पसन्द करती थी जिसकी सतुष्टि के लिए ही इस प्रकार की सरणि का काव्यरत्नो में निरन्तर विकास होता गया। ऐसे पण्डितो की कसौटी मे श्रीहर्ष के काव्य को अत्यन्त उच्च स्थान प्राप्त होना स्वाभाविक था और पुरातन पण्डितो ने इस काव्य को सबसे ऊँचा स्थान दिया भी –

"तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदय ।
उदिते नैषधेकाव्ये क्व माघ क्व च भारवि ।।

---

1 सस्कृत काव्यकार – डा0 हरिदत्त शास्त्री

तात्पर्य यह है कि माघ और भारवि की शोभा तभी तक भाती है जब तक नैषध काव्य का उदय नही होता है। नैषध काव्य के उदय होने पर तो कहॉ माघ और कहॉ भारवि? अर्थात् सभी पीछे छूट जाते है। यद्यपि श्रीहर्ष के पूर्व साहित्य का प्रवाह अपनी उन्नत परिपक्वावस्था को पहुॅच चुका था कला विज्ञान, साहित्य, सगीत के प्रत्येक विभाग मे अभिनव सर्जना का भाव प्रायः दशम शती0 तक समायोजित हो चुका था। साहित्य रचना मे मौलिक चिन्तन और नूतन रचनात्मक कार्य का अभाव स्पष्ट दिखाई देने लगा था। उस काल की काव्य रचना पूर्वकालीन कवियो की केवल अनुकृतिमात्र रह गयी थी, फलत उन्ही पुराने विषयो पर पुराने ढग से छन्द रचना होने लगी थी जिसकी कल्पना पूर्वचर्चित प्रत्येक काव्य को देखने से सहज ही मालूम हो सकती थी। इधर यदा–कदा किसी प्रतिभा सम्पन्न कवि की अवश्य उपलब्धि हो जाती है, किन्तु इस प्रदीर्घ युग की रचनाओ का एक सा स्वरूप उसे आच्छादित कर देता है। निश्चय से यह प्रगति न होकर अवनति थी। अस्तु, नैषधकार ने यद्यपि अपने नैषध को ऐसे काव्यमार्ग का पथिक बनाया है जिसे अन्य कवियों ने देखा तक नहीं है। इसे सदा अभिनय प्रमेयों से सम्पन्न कहा है। जैसा कि हमने पहले बताया है कि कालिदास द्वारा प्रवर्तित कुछ काव्य रूढियॉ परवर्ती कवियों को इतनी आकर्षित करती रहीं कि उन्होने अपने काव्य मे नियोजित कर काव्य को अलङ्कृत अवश्य किया है किन्तु वे कालिदास की रचना शैली की आत्मा को न पहचान पाये इसलिए कालिदास द्वारा वर्णित उन रूढियो का रूप इन परवर्ती काव्यों मे आकार और प्रकार में कुछ भिन्न हो गया।

कविवर श्रीहर्ष, भारवि और माघ की परम्परा के कवि है। अपनी रस प्रवर्तनी लेखनी से उन्होंने जो लिखा वह काव्यमर्मज्ञो हेतु लिखा है। उनके वर्ण्य विषय में नवीन कल्पनाओं का विलास सर्वत्र प्रतिबिम्बित है। नयी कल्पनाओ के निर्माण मे उनका मानस पटल भारवि और माघ से कही अधिक है। किसी भी बात को एक नया मोड देकर कहने की क्षमता श्रीहर्ष मे ही है, जो कि अत्यन्त श्लाघनीय है। इन्होंने अपने काव्य को आपादमस्तक अलङ्कारो से सजाया है। उनके विविध वर्णन उनके विविध शास्त्रज्ञान के स्पष्ट परिचायक है। उनकी भाषा में सुन्दर

प्रवाह है यमक और श्लेष के प्रयोग मे वे अतिनिष्णात् है। यमक व श्लेष का प्रयोग वे बडे सहज रूप मे करते है।[1] कविवर श्रीहर्ष ने माघ आदि कवियो के समान अनावश्यक वस्तु वर्णनों का सन्निवेश अपने काव्य मे नही किया है। उनके वर्णनो मे बौद्धिक चमत्कार अधिक है, हृदय पक्ष उतना नही झलकता है। इसलिए श्रीहर्ष अपने युग के सर्वश्रेष्ठ कविरत्न सिद्ध हुए। जिस प्रकार कविता का आरम्भिक युग कुलगुरू कालिदास को पाकर धन्य हुआ है उसी प्रकार यह युग भी सरस्वती के वरदपुत्र महाकवि श्रीहर्ष को पाकर कृतकृत्य हो गया है।[2]

यद्यपि श्रीहर्ष ने अपने सम्बन्ध मे कुछ विस्तार से नही कहा, लेकिन थेडे से शब्दो मे उन्होंने अपना परिचय बाइसवे सर्ग के अन्त मे अवश्य दिया है जो निम्नाकित कविप्रशस्ति है –

> ताम्बूलद्वयमासन च लभते य. कान्यकुब्जेश्वरात्,
> य· साक्षाद् कुरूते समाधिषु पर ब्रह्म प्रमोदार्णवम्।
> यत्–काव्य मधुवर्षि धर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तय.
> श्री श्रीहर्षकवे.' कृति कृतिमुदे तस्याभ्युदीयादियम्।। नैषधकाव्य का अन्त

महाकवि श्रीहर्ष की अमर कृति ''नैषधीयचरितम्' महाकाव्यो की बृहत्त्रयी मे प्रमुख स्थान रखती है। यह काव्य महाकवि भारवि द्वारा प्रारम्भ की गयी पाण्डित्य प्रदर्शन की शैली की पराकाष्ठा है। कवि ने विविध स्थले पर कथा की सरसता को गौण बनाकर पाण्डितय प्रदर्शन को प्रमुख स्थान दिया है। पाण्डित्य प्रदर्शन करने वाली यह कृति सम्भवत द्वादश शती मे निर्मित हुई थी। इस स्थल पर प्रबन्ध पर्यन्त जिस रस से सहृदय सर्वदा आप्लावित रहता है वह है श्रृङ्गार। कवि ने निषधराज नल का विदर्भराज की कन्या दमयन्ती से मधुर सयोग कराया है। समस्त काव्य इस एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सोपान परम्परा के रूप मे है। प्रारम्भ के 16 सर्ग इसी परम्परा के विभिन्न प्रस्तर खण्ड है। अन्त के 6 सर्ग भी इसी की पुष्टि के लिए विरचित है। श्रृङ्गार रस प्रधान इस महाकाव्य मे अन्य रसो के लिए स्थल की प्रचुरता का अभाव सा है। फिर भी यत्र–तत्र अन्य रसो की झाकी दृष्टिगत होती है।

---

1 वृहत्त्रयी – एक तुलनात्मक अध्ययन – डा0 सुषमा कुलश्रेष्ठ
2. सस्कृत साहित्य का इतिहास – शिवबालक द्विवेदी – पृ0 73

22 सर्गों मे निबद्ध इस नैषधीयचरित काव्य का उपजीव्य महाभारत के वनपर्व मे उपस्थितनलोपाख्यान है। इसके अलावा क्षेमेन्द्र की वृहत्कथामञ्जरी तथा सोमदेव के कथासरित्सागर मे भी यह कथा विस्तार से वर्णित है, लेकिन मूलरूपेण यह महाभारत पर ही अवलम्बित है श्रीहर्ष ने अपना कथानक यही से लेकर उनमे यथास्थान घटनाओ का सङ्कोच और विस्तार किया तथा कही—कही नूतन घटनाओ की उद्भावना का समावेश किया। श्रृङ्गार रस प्रधान इस काव्य को कवि ने काव्य के ब्याज से कामशास्त्र को ही काव्य का रूप दे दिया है, क्योकि उत्तम काव्य वही माना जाता है जिसमें कवि के हृदय का सच्चा स्वर सुनाई पडता है।

श्रीहर्ष सस्कृत साहित्य के उस युग मे हुये थे जब कविता केवल भाव तथा रस से पूर्ण एक लोकोत्तर आनन्द की ही वस्तु नही रह गयी थी, अपितु कवि की विभिन्न शास्त्रज्ञता के प्रदर्शन की रङ्गभूमि बन गयी थी।[1] दर्शन, आयुर्वेद, पशुविज्ञान, सगीत आदि सभी विभागो मे अधिक उन्नति होने के कारण तात्कालिक कवि को सबसे अभिज्ञ होना पडा था, संस्कृत काव्य का इतिहास लिखने वाले विद्वानो ने जब अपने को नैषधीयचरितम् के मूल्यांकन मे प्रवृत्त किया तब वे वाल्मीकि, कालिदास व बाणभट्ट सभी को भूल गये और उन्होने कवि प्रतिभा के सर्वोच्च निकष का सौभाग्य नैषधीयचरित को ही देना उचित समझा। वस्तुत होता यह था कि प्रणयजनोचित कहानियॉ कथा या आख्यायिका की परिभाषा मे गद्यकाव्यों में ही निबद्ध की जाती थी, जिसमे मानव मन की सैकडो सवेदनाओ एव कवि स्फुरित कल्पना की अनेक उडानों के लिए खुला आकाश होता था और काव्य प्रणयन की सरणि उससे अलग हो जाती थी।[2] तब उसका रूप न तो लोकोत्तर होता है न इस लोक का होता है फिर भी वह अनन्य होता है। उसे हम सर्वथा नवीन कहेंगे।[3] नैषध के लिए यह अतिशयोक्ति कि "उदिते नैषधेकाव्ये" बहुत पुरानी है। तीनों महाकाव्यों में नैषध का स्थान ऊँचा है। श्रीहर्ष केवल प्रथम श्रेणी के कवि

---

1 सस्कृत ललित साहित्य का इतिहास – डा0 कुँवरलाल व्यासशिष्य 'इतिहासविद्याप्रकाशन' दिल्ली प्रथम सस्करण

2. कवि ओर काव्यशास्त्र – सुरेश चन्द्र पाण्डेय – राका प्रकाशन, प्रथम सस्करण पृष्ठ 17

3 भामहकृत काव्यालङ्कार

ही नही थे प्रत्युत ऊँचे दर्जे के प्रकाण्ड पण्डित भी थे। उनमे पाण्डित्य तथा वैदग्ध्य का अनुपम सम्मिलन था। ये जिस प्रकार हृदयकली को खिलाने वाली स्वभावमधुरा कविता लिखने मे दक्ष थे, उसी प्रकार मस्तिष्क को आश्चर्यान्वित करने वाली, अनेक पण्डितो का मद चूर्ण करने वाली तर्क कर्कशा वाणी के गुम्फन में भी अत्यन्त प्रवीण थे। जिस श्रीहर्ष ने काव्यकला के अनुपम श्रृङ्गारभूत नैषधीयकाव्य की रचना की उसी श्रीहर्ष ने प्रखर पाण्डित्य प्रदर्शन रूप 'खण्डनखण्डखाद्य' की रचना की।[1] श्रीहर्ष का भाषा, अलङ्कार, भाव प्रकाशन पर पूर्ण अधिकार था। उन्होंने स्वय इस बात को साफ शब्दो मे कहा कि कोई भी विज्ञ पुरूष मेरे ग्रन्थ से खिलवाड न करे, क्योकि यह एक अत्यन्त दुर्भेद्य काव्य है जिसको हर कोई नही समझ सकता।[2] यह ग्रन्थ काव्य रसिको के लिए है जिसका अन्तर्मन इसको पढने के लिए उत्सुक रहता है।[3]

भाषा, अलङ्कार, शब्द सौष्ठव, अर्थवैचित्र्य, शब्दविच्छत्ति, ध्वनि, व्यञ्जना, रसमयता सभी मे नैषधकाव्य शिशुपाल वध और किरातार्जुनीयम् से बढ–चढ कर है। श्रीहर्ष का काव्य भारवि के नारिकेल फल सदृश कठोर ही नही अन्दर से और बाहर से मधुर रस युक्त भी है।[4] कविवर भारवि का अर्थगौरव जगत्प्रसिद्ध है माघ की प्रतिभा तीनो गुणो मे ख्यात है, परन्तु श्रीहर्ष के नैषध मे सभी गुण इन काव्यो से बढे हुए है। यथा श्लेष, अनुप्रास, यमक के साथ अर्थगौरव और पदलालित्य भी प्राय. प्रत्येक पद्य मे मिलता है।

"नलिनं मलिनविवृण्वती पृषतीमस्पृशतीतदीक्षणे।
चेतोनलकामयतेमदीयम् नाऽन्यत्रकुत्रापि च साभिलाषम्"। नैषध0 – 2/23
मेराचित्तनल को चाहता है अन्यत्र कहीं भी उसकी अभिलाषा नही है।
मेरा चित्त न लङ्का की ओर जाता है, न तो कही अन्यत्र भी उसकी अभिलाषा है।

---

1 पण्डित वल्देव उपाध्यायकृत – सस्कृत साहित्य का इतिहास
2 सस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ0 कुँवर लाल व्यास शिष्य
इतिहास विद्या प्रकाशन, प्रथम सस्करण
3 श्रीहर्ष ने कहा है– "प्रज्ञमन्यमना हठेन पठितीभास्मिन् खलखेलतु"।
देवनारायण मिश्र द्वारा सम्पादित नैषधीयचरित, पृ0 14
4 नैषध – 3/67

त्रयोदश सर्ग की रचना श्रीहर्ष के कुशल कवि कर्म की परिचायिका है। इस सर्ग को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो कवि ने नलरूपधारी प्रत्येक पुरूष को समान महत्त्व देने के लिए श्लोक संख्या पहले निश्चित कर तब सर्ग की रचना की है। सर्ग के प्रारम्भ के दो श्लोको मे दमयन्ती द्वारा तुल्याकृति पॉच पुरूषो के देखे जाने और सरस्वती द्वारा उनका परिचय देना प्रारम्भ करने का वर्णन है। इस सर्ग मे श्रीहर्ष ने अपने श्लेष रचना प्रावीण्य को प्रकट किया है। इस श्लेष रचना द्वारा वे अनेक प्रयोजन सिद्ध करने मे सफल हुए है। इस सर्ग के 21 श्लोक जिसमे श्लेष है अत्यन्त क्लिष्ट है, तथापि अवसर तथा प्रयोजन की दृष्टि से उनका विशिष्ट महत्त्व है। दमयन्ती की श्लेष रचना शक्ति दर्शनीय है –

"का नाम वाला द्विजराजपाणिग्रहाभिलाषकथयेदलज्जा"। नैषध0– 3/59

1– अर्थात् हे द्विज (पक्षी) कौन निर्लज्ज वाला (स्त्री) राजा (लल) से पाणिग्रहण की अभिलाषा कहेगी।

2– हे द्विजराज! कौन निर्लज्ज वाला (स्त्री) अपने पाणिग्रहण की अभिलाषा कहेगी।

3– कौन निर्लज्ज वाला द्विजराज (चन्द्रमा) को पकडने की अपनी अभिलाषा कहेगी।

इस वाक्य से तथा इसी प्रकार के अन्य वाक्यों से प्रभावित हुए हस द्वारा दमयन्ती को श्लेष कवि इस उपाधि की प्राप्ति हुई थी। इतना ही नही श्रीहर्ष ने अपनी द्वयर्थक भाषा के प्रयोग की शक्ति का पूर्णतया सदुपयोग उस प्रसिद्ध दृश्य के चित्रण में किया है, जिसमें दमयन्ती अपने सम्मुख आपातत बिल्कुल समान रूप मे पॉच व्यक्तियों को देखती है और उनमे से अपना प्रेमी कौन है इसका निर्णय नही कर पाती। उनकी इसबात मे कितना चमत्कार है जिसका अवलोकन कर सहृदय क्या, नीरस व्यक्ति को भी झूमने लगता है।

विष्णु के द्वारा सरस्वती को स्वयम्बर में दमयन्ती की अभिन्न सखी बनाकर भेजना कवि की अपनी योजना की चमत्कृतिधरता है। स्वयम्बर मे पुष्करद्वीप, शाकद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, कुशद्वीप, शाल्मलिद्वीप, प्लक्षद्वीप, जम्बूद्वीप के राजा आये। जिनके वर्णन को वैविध्य को कवि ने अपनी प्रतिभा के द्वारा

प्रकट किया है।[1] सरस्वती सर्वप्रथम दमयन्ती को देव समाज की ओर ले गई फिर क्रमश राक्षस, गन्धर्व, विद्याधर तथा यक्षो का परिचय दिया, किन्तु उसकी रूचि किसी ओर नही हुई क्योकि वह तो पूर्णरूपेण नल पर आसक्त थी। नल के सिवा उसे सभी कुछ नीरस प्रतीत होता था वह सरस्वती के द्वारा किसी और राजा का बखान या उनके गुणो को सुनना ही नही चाहती थी यहॉ तक कि मथुराधिनाथ पृथु का गुणवर्णन सुनते समय दमयन्ती दूसरी ओर देख रही थी। काशिराज की विशेषताए भी उसे न लुभा सकी। इतना ही नही स्वयम्बर समाज मे आये नवागतो अयोध्याधिपति, पाण्डेयश्वर, महेन्द्राधिपति मिथिलाधिपति के आने पर दमयन्ती की सखियो ने व्यङ्ग्य भरा उपहास किया साथ ही उत्कल नरेश के यशोगान के समय दमयन्ती ने नल के ध्यान मे ऑखे बन्द कर ली। बौद्धराज कीकटाधिप की लम्बी प्रशसा सुनकर भी दमयन्ती को कोई आकर्षण नही हुआ।

और अन्त मे हुआ क्या कि शिविका वाहक भीम पुत्री दमयन्ती को उस राजमण्डल से हटाकर नल रूप धारी पॉच वीरो के निकट ले गये। सर्वप्रथम देवी सरस्वती ने शचीपति इन्द्र को सङ्केत करके उनके विषय मे कहना शुरू किया जिससे इन्द्र का ही ज्ञान हो कपट रूपधारी नल का भाव न प्रकाशित हो दमयन्ती घबडा गयी और सोचने को मजबूर हुई कि ये नल है या इन्द्र तभी सरस्वती ने अग्निदेवता की ओर सङ्केत किया श्लेषनिष्ठ इस वर्णन को सुनकर भी दमयन्ती विह्वल हो गयी और उसके अन्तर्मन मे द्वैधभाव जाग्रत हो गया एक कहता है यह नल है दूसरा कहता है यह अनल (नल नही अग्नि) है। दमयन्ती इसी द्वैध भाव मे लिप्त रही कि देवी सरस्वती ने यमराज का वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया। यम तथा नल मे समान रूप से घटित होने वाली सरस्वती की वाग्रचना ने अनेक नल को देखकर सशयापन्न दमयन्ती के चित्त मे जो शङ्का उत्पन्न हुई थी उसे पुष्ट कर दिया और पुन वरूण की ओर लक्ष्य करके देवी सरस्वती ने उनका वर्णन करना प्रारम्भ किया। वह परिचय भी पूर्व की भॉति सशयकारक ही रहा। उसमे भी वरूण और नल दोनो का अर्थ निकलता था। अन्त मे उन्होने वास्तविक नल का भी वर्णन इस ढग से किया कि नल के साथ कभी इन्द्र का, कभी अग्नि का, कभी यम का,

कभी वरूण का अर्थ निकलता था और एक स्थल पर तो पाचो का अर्थ एक साथ। दमयन्ती अधीर हो उठी, उसे लगा जैसे उसके ऊपर विपत्ति कापहाड ही टूट पडा हो। वह कुछ भी निर्णय लेने मे असमर्थ हो रही थी। उसके मानसपटल को अनेक उथल पुथल बातो ने झकझोर कर रख दिया था। वह आश्चर्य चकित थी कि विधाता का यह कैसा प्रताप है? अन्तत विवश हो उसने नल प्राप्ति के लिए देवजनो को प्रसन्न करना ही अपना कर्तव्य समझा। स्वयम्बर गृह मे ही उनकी विधिवत् पूजा अर्चना की और एकाग्रचित होकर उनका स्मरण किया। शीघ्र ही देवगण प्रसन्न हो गये। तदुपरान्त दमयन्ती को सरस्वतीकृत पॉचो नलो के विषय का वर्णन अत्यन्त स्पष्ट हो गया। उसने पॉचवे नल को वास्तविक नल समझा और उसी समय देवी ने भी कपट रूप त्याग कर अपना–अपना वास्तविक रूप धारण कर लिया। भीमपुत्री दमयन्ती ने देवताओ की आज्ञा लेकर सात्विक भावों के साथ दूव और अड्कुर से सुशोभित बेहद सुगन्धयुक्त मधूक पुष्पो की माला राजा नल के गले मे पहना दिया। कल्याणकारी मगलगान होने लगे और सभी देवताओ ने प्रसन्न होकर अलग–अलग वर–वधू को वरदान दिये और नरेश दमयन्ती को न पाने के कारण क्षुब्ध तथा खिन्न थे। अत दमयन्ती ने अपने पिता से अनुनय –विनय कर प्रत्येक को अपनी एक–एक सुन्दरी सखी दिलवायी। उधर नल स्वयम्बर मण्डप से अपने निवास स्थान को गये। इधर दमयन्ती के विवाहोत्सव का समारम्भ करने मे विदर्भनरेश संलग्न हो गये। दोनो का विवाह यथाविधि सम्पन्न हुआ। अद्‌भुत दिव्य उपहारो से सपृक्त कर राजा भीम ने पुत्री दमयन्ती और जामाता नल को अपने राज्य की सीमा तक सहर्ष विदा किया। फिर जैसे पिता पति गृह जाने पर शिष्टाचार विषयक बातो को उपदिष्ट करता है– वैसे आचरण युक्त उपदेशों से पुत्री को रोते हुए विदा किया– "बेटी अब तुम्हारा अपना पुण्य ही पिता है तुम्हारी क्षमाशीलता ही तुम्हारी सारी विपत्ति को नष्ट करने वाली होगी, सतोष ही तुम्हारा धन होगा, महाराज नल ही तुम्हारे सर्वस्व होंगे और बेटी! अब से मै तुम्हारा कोई न रहा"।

"पितात्मन. पुण्यमनापद क्षमाधन मनस्तुष्टिरथाखिलं नल ।
अत पर पुत्रि न कोऽपि तेऽहमित्यदस्त्रुरेष व्यसृजन्निजौरसीम्" ।।[1]

तदुपरान्त वर–वधू अपनी नगरी के समीप पहुँचने पर राजा नल ने जिन मत्रियो पर राज्य का शासन भार सौपा था उन सबो ने कुतूहल से उत्कण्ठित हो उनका स्वागत किया। इस प्रकार राजा नल की कथा चिरकाल से लोकविश्रुत रही है। इतना ही नही काव्यप्रतिभा की दृष्टि से नैषध का अनुशीलन अत्यधिक प्रभावोत्पादक है। काव्य के विविध अवयव यथा– अलङ्कार, गुण, रीति, शैली, भाषा आदि विशिष्ट तत्त्वो का उचित सन्निवेश अपने ग्रन्थ मे यथावसर किया है। स्वयम्बर वर्णन मे श्रीहर्ष की सरस्वती विषयिणी कल्पना सबसे अधिक कलापूर्ण एव सफल है, उसका श्लेषनिष्ठ चमत्कृत वर्णन सरस्वती ही कर सकती थी। सरस्वती की वाग्रचना वस्तुत स्पृहणीय थी जो काव्योत्कर्ष को बढाने वाली थी। इस जगह श्रीहर्ष को अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन करना उद्देश्य नहीं था, बल्कि अपनी प्रतिभा को अवश्य प्रकट करना था। अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने के लिए उन्हे अच्छा अवसर मिला। वह (दमयन्ती स्वयम्बर) सभा कविवर श्रीहर्ष के अद्भुत कल्पना नेत्रो को प्रत्यक्ष सी थी– उन्होने स्वय श्लेष रूप से कहा है–क्या किन्नरो ने सानन्द उसका सेवन नहीं किया? अथवा क्या महर्षियो ने उसे हर्ष (1 आनन्द, 2 कवि श्रीहर्ष) के साथ न देखा?[1] स्वयम्बर मे राजपरिचय के लिए आने वाली सरस्वती श्रीहर्ष की अपनी ही सरस्वती है। उन्होने उसके स्वरूप का जो रूपक बाधा है उसके द्वारा अपने अधीन ज्ञान का परिचय दिया है।[2] अब जब स्वय सरस्वती ही वर्णन कर रही है तो किसी भी प्रकार की दुरूह कल्पना सम्भव हो सकती है, शैली कितनी भी उत्कृष्ट एव कितनी भी वक्र हो सकती है। उक्त वर्णन के देखने से विदित होता है कि– उनका भाषा सौष्ठव शब्दविन्यास की दुरूहता से अवश्य सवलित था लेकिन उनमे पूर्णतया रसमयता भी विद्यमान थी। उनके बीहड काव्य

---

1 सा किन्नरै कि न रसादसेवि नादर्शिहर्षेण महर्षिणावा? नैषध0– 10/56
2 नैषध0 – 10/74–88

रूपी गहन वन मे बिछे शब्दरूपी कण्टको और अलङ्कार रूपी झाड झखाडों से होकर जाना किसी भी मानव के लिए बिना किसी उचित मार्गदर्शन के पार करना असम्भव है।[1] उन्होने स्वय अपने ग्रन्थ मे अनेक उलझी हुई गॉठो को सम्मिट किया जिससे काव्य इतना दुरूह हो गया कि सामान्य पुरूष क्या पण्डितजन के मस्तिष्क को भी व्यायाम करना पडा।

"ग्रन्थ ग्रन्थिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया,
प्राज्ञमन्यमना हठेन पठतीमास्मिन् खल खेलतु।
श्रद्धाराद्धागुरूश्लथी कृतदृढग्रन्थि समायादय–
त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जन सुखव्या सज्जन सज्जन ।।" नैषध0– 22/150

उन्होंने अन्यत्र भी कहा है –

"यथा यूनस्तद्रत् परमरमणीयापि रमणी,
कुमाराणामन्त करण हरण नव कुरूते।
मदुक्तिश्चेदन्तर्मदयति सुधीभूय सुधिम किमस्या,
नामस्यादरसपुरूषाराधनरसै ।।[2] नैषध0 – 22/150

भाषा की कुटिलता तथा दुरूहता का प्रथम कारण अप्रचलित और अपरिमार्जित शब्दो का अंधाधुंध प्रयोग है। फाल, 1/17, अक्रपार, अगदङ्कार, इन्दिन्दिर, मिहिकारूच आदि अनेक अप्रचलित शब्द उनके काव्य मे यत्र–तत्र यथावसर सन्निविष्ट किये गये है। व्याकरण का सहारा लेकर उन्होने अनेक नये शब्दो का निर्माण किया यथा–शूननायक, प्रतीतचर अधिगामुका आदि।[3] इतना ही नही भाषा की जटिलता का दूसरा कारण प्रभूत मात्रा मे श्लेष और यमक जैसे अलङ्कारो का अत्यधिक प्रयोग है। जब दमयन्ती हस को पकडने का समुद्यत होती है तो वह स्वर्णिम हंस कितनी सुकुमारता से युक्त वचनों का प्रयोग करता है–

"धार्य· कथङ्कारमह भवत्या वियद्विहारी वसुधैकगत्या।
अहो! शिशुत्वं तव खण्डितं न स्मरस्य सख्या वयसाऽप्यनेन।।" नैषध–3/15

---

1 'नैषध परिशीलन' – डा0 चण्डिका प्रसाद शुक्ल पृ0 85
2 श्रीहर्ष विरचित नैषधीयचरित – डॉ0 देवनारायण मिश्र, पृ0– 23,
3 सस्कृत साहित्य का इतिहास– शिव बालक द्विवेदी

श्री हर्ष की भाषा मुहावरो की दृष्टि से भी प्रसिद्ध है। वे मुहावरे आढा भी प्रान्तीय भाषाओ मे रूपान्तर से प्रचलित है 'कथमास्य दर्शयिताहे' (मै अपना मुँह कैसे दिखलाऊँ) ''नवीनम्–श्रावि–तवाननादितम्'' यह तो मैने तुम्हारे मुख से एकदम नवीन बात सुनी इत्यादि। श्रीहर्ष ने जहॉ कही भी प्रतिभा का विलास दिखाना चाहा है वहॉ श्लेष का ही विधान किया है। श्रीहर्ष के पूर्ववर्ती जितने कवि हुए है यथा माघ, बाण, सुबन्धु, दण्डी, त्रिविक्रम आदि महाकवियो की प्रसिद्धि का कारण उनकी श्लेष पटुता ही थी। रसानुगुण भाषा मे प्रसाद, माधुर्य या ओजगुणो का समन्वय है। भाषा सजीव, शक्त एव नवीन पदावली से सपृक्त है। भाषा मे काव्य सौन्दर्य और नादसौन्दर्य का मणि–काञ्चन सयोग है। तभी तो पण्डितजन हर्षाकुलित होकर कहने 'उदिते नैषर्धकाव्ये'। इनकी शब्द श्रेणी भावभङ्गिमायुक्त भाषा सगीतमयी सुमधुर छन्दोयोजना को देखकर विद्वन्मण्डली मुक्तकण्ठ से प्रशसा करने लग गयी– 'नैषधे पदलालित्यम्'। एक ओर जहॉ कालिदास वैदर्भी का प्रवर्तक बनकर चलते है। वही नैषधकार श्रीहर्ष उसका सम्यक्रूपेण अनुधावन करते हुए प्रतीत होते है। जहॉ कालिदास ने वैदर्भी रीति का प्रयोग करते हुए भाषा मे समासो को लाकर उसे बोझिल नहीं बनाया है वही श्रीहर्ष ने उसको दुरूह शब्दविन्यासो की लडियो से समलङ्कृत कर दिया है। प्रसाद एव माधुर्य गुण के अनुपम सयोग से अनुस्यूत कवि की वैदर्भी रीति पाठकों को उसी तरह अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। जिस प्रकार अपनी भावभङ्गिमा एव हाव–भाव के वैविध्य से दमयन्ती नल को आकृष्ट कर लेती है–

''धन्याऽसि वैदर्भि! गुणैरूदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि।
इत स्तुति का खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति।। नै0 – 3/115

''हे विदर्भ देश की राजकुमारी! आप धन्य है, जिन आपने नल को भी आकृष्ट कर दिया है। जो चन्द्रिका समुद्र को भी क्षुब्ध कर देती है, इससे अधिक उसका क्या वर्णन किया जा सकता है''?

उक्त श्लोक को देखकर विदित होता है कि वाकई श्रीहर्ष का पदविन्यास उत्कृष्ट है भावो की सरिता श्लिष्ट छन्दो को पढकर स्वयं निःसृत होने लगती है

कितनी तीव्रता है भावों के प्रदर्शन मे कितनी ओजस्विता है। यह तो सर्वविदित है कि श्रीहर्ष सस्कृत साहित्याकाश के मूर्धन्य महाकवियों मे एक है। उन्होने स्वय अपनी शैली को 'वैदर्भी' के नाम से सम्बोधित किया। एक ओर तो ''धन्यासि वैदर्भी'' कहा तो दूसरी ओर चौदहवें सर्ग मे तो ''भवित्री वैदर्भीमधिकमधिकमधिक कण्ठ रचयितु परीरम्भक्रीड़ाचरणशरणामन्वाहनम हम्''। – नैषध0 – 14/90 स्वय ही उल्लिखित किया है और कहा कि नैषध वैदर्भी रीति, श्लेष के अतिशय चमत्कार, वक्रोक्ति विलास, गुण, रस आदि से मण्डित है।[1] प्रथम सर्ग मे ही हस के करूणार्द्र विलाप का क्या सजीव चित्रण वैदर्भी रीति के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है– देखिए–

''मदेक पुत्रा जननी जरातुरा, नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो! विधे! त्वा करूणा रूणद्धिनो।।[2]

किन्तु इतना ही नही यत्र तत्र श्रीहर्ष की शैली लम्बे समासो से ओतप्रोत होकर गौडी शैली के भी निकट पहुँच जाती है।

''रसैः कथा यस्य सुधाऽवधीरिणी नल स भूजानिरभूद्गुणाद्भुत.।
सुवर्णदण्डैकसितापतत्रितज्वलत्प्रतापावलिकीर्तिमण्डल.।।'' नैषध0– 1/2

''जिन (नल) का उपाख्यान, स्वाद वा श्रृङ्गार आदि रसो से अमृत को भी तिरस्कार करने वाला है, ऐसे महाराज नल दीप्यमान प्रतापपङ्क्ति को सुवर्णदण्ड और कीर्तिमण्डल को एक सफेद छत्र बनाने वाले अतएव शौर्य एव दाक्षिण्य आदि गुणो से आश्चर्य रूप थे।''

डॉ0 भोलाशकर व्यास ने तो श्रीहर्ष की शैली को पाञ्चाली शैली कहा है' उनका कहना है कि नैषध के कवि के लिए उसकी रीति कुछ भी हो हमें उसमे पाञ्चाली के ही लक्षण विशेष दिखाई पडते है।[3]

---

1 सस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डा0 कपिल देव द्विवेदी पृ0– 226
2 नैषध0 – 1/135
3 श्रीहर्ष विरचित – नैषधीयचरित – डा0 देव नारायण मिश्र पृ0 25

वैदर्भी के परम उपासक श्रीहर्ष की शैलीगत विशिष्टताओ मे ललित कल्पनाओ का हृद्यवैशद्य इतना आकर्षक है कि पाठक हठात् उसकी ओर मुड जाता है।

इस प्रकार नल और दमयन्ती का चरित्र वर्णित करने मे कवि ने तो अपनी कल्पनाओ की सीमा को ही तोड दिया है। यह कल्पना अत्यन्त चमत्कारिणी है, जिसकी उडानो मे स्फुरित हो कवि ने कलम ही तोड दी। वस्तुत उनकी कल्पना शक्ति कल्पनातीत दौड करने मे पूर्णतया सक्षम है। श्रीहर्ष वस्तुत कल्पना के शिल्पी ही है। ऐसा प्रतीत होता है। इनमे काव्य प्रतिभा का अभाव नही है, बल्कि प्रतिभा का दुरूपयोग है, जो अपने चमत्कार के लिए स्वाभाविक चित्रो की उपेक्षा करके कृत्रिमता की अद्भुत पराकाष्ठा को अपनाती हैं।[1] सच है श्रीहर्ष युगीन काव्यरूढियॉ नितान्त कामुकतापूर्ण थी। नैषध की पञ्चनली प्रसिद्ध ही है जिसमे कवि ने चार–चार श्लोकों के माध्यम से क्रमश इन्द्र, अग्नि, यम, वरूण का अलग–अलग चमत्कारिक वर्णन किया है फिर चार श्लोको के द्वारा राजा नल का वर्णन किया जाता है। तदुपरान्त एक श्लिष्ट वर्णन के द्वारा क्रमश इन्द्र, अग्नि, यम और वरूण का वर्णन करते हुए पुन एक श्लोक मे चार देवों तथा नल इन पॉचो का वर्णन होता है।[2] इन श्लेष निष्ठ श्लोको के माध्यम से कवि ने अपने कई उद्देश्यो को सार्थक बनाया है।[3] देव–सन्देश कहते समय नल ने दमयन्ती को कई बार 'विदुषी' कहा है।[4] पन्द्रहवे सर्ग से लेकर 22वे सर्ग तक की सारी कथाए यथा– विवाह का समारम्भ, नगर की सजावट इत्यादि प्रसङ्गों का अत्यन्त हृदयग्राही चित्रण हुआ है। सम्पूर्ण पञ्चदश सर्ग तो इन चित्रो की वीथी जैसा प्रतीत होता है। इसके पश्चात् वरयात्रा, वर स्वागत इत्यादि प्रसङ्गो का सारा विशद वर्णन प्रस्तुत किया गया है। ऐसे विभिन्न प्रसङ्गो से सम्बन्धित चित्रण प्रस्तुत करने पर भी वर्णन में कही नीरसता का आगम नही हो पाया है।

---

1 'काल किरात स्फुटपद्मकस्य, वध व्यधाद् यस्य दिनद्विपस्य।
2 तस्येव सन्ध्या रूचिरास्त्र धारा, ताराश्च कुम्भस्थलमौक्तिकानि।। नैषध0–22/9
3 श्लिष्यन्ति वाचो यदमूरमुष्या कवित्वशक्ते खलु ते विलास। नै0– 14/16
4 विद्याविदर्भेन्द्रसुताधरोष्ठे नृत्यन्तिकत्यन्तरभेदभाज।
इतीवरेखाभिरपश्रमस्ता सख्यातवान् कौतुकवान् विधाता।। नै0 7/41
5 विदुषिब्रुवा – नै0 9/43, विदुषि नै0 – 9/49

इतना ही नही श्रीहर्ष प्रकाण्ड दार्शनिक भी थे। लेकिन इनका सबसे अधिक दुर्निवार अह नैषध पर था जैसा कि उन्होने स्वय कहा है– षष्ठ खण्डन खण्डतोकृपि सहजात्" 6/113। इसके अलावा उनके तर्कशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान का परिचय हमे 'वर्कष्वप्यसमश्रम' इस वाक्य से ही हो जाता है। महाकवि श्रीहर्ष श्रृङ्गार व्यञ्जना मे भी भारवि और माघ से बढकर है। इनके नैषध मे प्रारम्भ से अन्त तक श्रृङ्गार की धारा अबाध गति के साथ प्रवाहित होती हुई दृष्टिगत होती है। सातवे सर्ग के नखशिख सौन्दर्य मे कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियो का अनुकरण करते हुए दमयन्ती के अङ्ग–प्रत्यग का चित्राङ्कन कर दिया है।

"यानेन तन्वया जितदन्तिनायौ, पदाब्जराजौ परिशुद्ध पार्ष्णी।
जाने न शुश्रूषयितु स्वमिच्छू नतेन मूर्ध्ना कतरस्य राज्ञ ।।" नै0–

श्रीहर्ष का कहना है कि काव्य का प्रधान आह्लादक तत्त्व होता है– भावानुभूति या रसानुभूति। किन्तु अलङ्कारवादी कवियो के लिए काव्यानन्द वह है जो चमत्कार जन्य होता है, जिसमें अलङ्कार, रीति, गुण इत्यादि की प्रधानता रहती है। रस मे तो आलम्बन विभाव का चित्रण यदि सफल हो गया तो पाठक या सहृदय सभी को रसोद्बोध निश्चत हो जाता है। उदाहरणार्थ– करूण रस का आलम्बन जिस प्रकार वाल्मीकि के आश्रम में लक्ष्मण द्वारा परित्यक्त उन्मुक्त रोदन करने वाली सती सीता हो सकती है[1] उसी प्रकार राम के स्वर्गारोहण के पश्चात् कुश द्वारा परित्यक्त उजडी अयोध्या भी हो सकती है।[2] दमयन्ती का प्रेम सती का प्रेम था। क्योकि वह नल को ऑख भर इसीलिए नही देख सकती थी कि पर पुरूष को देखना उसके सतीत्व के प्रतिकूल पड़ता था–[3]

वृणेदिशीशानिति का कथा तथा त्वयीति नेक्षेनलभामपीहया।
सतीवृतेऽग्नौ तृणयामि जीवित स्मरस्तुकिंवस्तुतदस्तु मस्गयाः।। नै0 9/70

---

1 रघु0– 14 सर्ग
2 रघु0 – 16 सर्ग
3 नैषध परिशीलन – डा0 चण्डिकाप्रसाद शुक्ल – पृ0 164

स्वयम्बर मे पॉच नलो के समक्ष पहुँचने पर दमयन्ती के उद्विग्नता, सन्देह, विकल्प आदि भावों का अत्यन्त रमणीय चित्रण किया गया है।[1] श्रृङ्गार रस के सभोग पक्ष का आरम्भ तो स्वयम्बर मण्डल से ही हो जाता है।[2] "जब दमयन्ती ने देव प्रसाद से नल को स्पष्ट रूप से पृथक् देखा तो वरमाला पहिनाने के लिए उसकी मानसी धारा मे त्वरा जनित वेग कुछ वैसा ही हुआ होगा जैसे– वर्षा से उमडी नदी की धारा मे बॉध के टूटने पर होता है। किन्तु लज्जा की अर्गला भी वहॉ उतनी ही प्रबल है। अत त्वरा और त्रपा के बीच दमयन्ती की अद्भुत दशा हो जाती है।[3] श्री हर्ष ने सुन्दरी की लज्जा का एक अत्यन्त मनोरम चित्र दिया है–

"कर स्त्रजा सज्जतरस्तदीय प्रियोन्मुख सन्विरराम भूय ।
प्रियाननस्यार्ध पथ ययौ च प्रत्याययौ चातिचल कटाक्ष ।।" नैषध0–14 / 28

वैसे भी दमयन्ती द्वारा नल को वरमाला डालने के बाद प्रेम की पक्की रजिस्ट्री तो हो ही गयी थी और उसमे सात्त्विक काव्यो का उदय होना स्वाभाविक था। यद्यपि श्रीहर्ष ऊॅचे दर्जे के कवि है। लेकिन कालिदास की शैली ने जिस बहुमुखी अद्वितीय चमत्कार को योजना अपने काव्य मे किया है उसकी तुलना श्रीहर्ष से कथमपि नही की जा सकती। श्रीहर्ष अलङ्कृत शैली के सर्वश्रेष्ठ रचयिता है। उनका श्रृङ्गार वर्णन कवि हृदय का स्वाभाविक उद्गम न होकर वात्स्यायन के कामसूत्र पर आधारित शास्त्रीय विवेचन की अपेक्षा करता है।[4] ऐसे स्थलो मे कलापक्ष का अतिशय चमत्कार प्राधान्य है। वियोग श्रृङ्गार मे कवि ज्यादा सफल नही हुआ है इनकी वियोगात्मक उक्तियॉ उहोक्तिपूर्ण लगती है। इस प्रसङ्ग मे चन्द्रोपालम्भ के विषय में उनकी उक्तियॉ बडी ही अनूठी है।

'विरहिभिबर्हुमानमवापि य. स बहुलः खलु पक्ष इहाजनि।' नै0–4 / 63

---

1 अस्ति द्विचन्द्रमतिरस्ति जनस्य तत्र भ्रान्तौ दिगन्तचिपिटीकरणादिरादि ।
स्वच्छोपसर्पणमति प्रतिमाभिमाने भेदभ्रमे पुनरमीषु न मे निमित्तम् ।। नै0 13 / 42

2 विशेष अध्यन हेतु देखे– नैषध0– 13 / 46

3 सस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय – पृष्ठ 233 नैषध0 14 / 25

4 सस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय – पृष्ठ 233

स्थान–स्थान पर कवि ने वीररस के चित्रण मे निपुणता प्राप्त की है। दमयन्ती स्वयम्बर मे कवि को इसी रस मे सफलता मिली है। यह प्रस्तुत प्रसङ्गो को देखकर यह विदित होता है कि सर्वत्र पाण्डित्य ही विद्यमान नही है सरसता और सौकुमार्यता भी विराजमान है। जब नल ने हस को पकड लिया तो उसके साथी अन्य हसो ने निनाद किया। कवि कल्पना करता है कि वह कलहस निनाद, मानो सुवर्ण हस के पकडे जाने से रूष्ट होकर उस सर को छोडकर जाती हुई लक्ष्मी के चरणो के नूपुरो की झङ्कार है–

"पतत्रिणा तद्रचिरेण वञ्चित श्रिय प्रयान्त्या प्रविहाय पल्लवम्।
चलत्पदाम्भोरूहनूपरोपमा चुकूज कूले कलहसमण्डली।। नैषध0– 1/127

वास्तव मे उत्प्रेक्षाओ मे कवि ने अत्यधिक मौलिकता और अद्‌भुत चमत्कार प्रदर्शित किया है। अपने लिए दी गयी 'उत्प्रेक्षाकवि' की पदवी उन्हे बिना हिचक दी जा सकती है। श्री हर्ष की शैली पर वक्रोक्ति समुदाय का भी प्रभाव प्रतीत होता है। यही इनकी शैली की विशेषता है। वह दमयन्ती को साधारण सा विशेषण कृशोदरी न कहकर 'सदसत्संशयगोचरोदरी' (नै0–2/40) तथा ईशाणिमैश्वर्य विवर्तमध्ये–(नै0–3/64) आदि विशेषणो का प्रयोग करते है। क्योकि काव्य मे चमत्कार के लिए वैदुष्य प्रदर्शन वाले युग मे कवियो ने तो अलङ्कार तथा वक्रोक्ति को अपनाया। भणितिभङ्गी ही उनका प्रधान लक्ष्य होता है। देखिए –

"निषेधवेषो विधिरेष तेऽथवा तवैव युक्ता खलुवाचि वक्रता।
विजृम्भितं यस्य किल ध्वनेरिदं विदग्धनारीवदनंतदाकार.।।" नैषध0–9/50

उक्त श्लोक द्वारा श्रीहर्ष ने बडे कौशल के साथ अपने नैषध की रचना शैली का भी परिचय दे दिया है। ध्यान से देखा जाय तो नैषध में प्राय सर्वत्र विदग्ध (विदुषी) नारियो के मुख से कही हुई बातें हैं। सर्वप्रथम दमयन्ती की वचनभङ्गी का प्रदर्शन हंस के साथ, चन्द्रमदनोपालम्भ मे, सखियों के साथ, देवदूतियो के साथ तथा नल के साथ होता है। फिर पञ्चसर्गात्मक स्वयम्वर वर्णन (10–14) मे विदग्ध सरस्वती का वचनभङ्गी का चमत्कार है बीसवे सर्ग मे सखियों के हास–परिहास मे भी थोडी वक्रता नही है। इक्कीसवे सर्ग के अन्त मे शुक–सारिका प्रलाप मे भी

नारी की ही विदग्धता है और अन्त मे सन्ध्याचन्द्र वर्णन मे भी दमयन्ती की वचन भङ्गी का वैभव देखने को मिलता है। इतना ही नही श्रीहर्ष ने चमत्कार प्रदर्शन के लिए अतिशयोक्ति का भी सहारा लिया। नैषध की अतिशयोक्ति भामह की वक्रोक्ति ही है, किन्तु श्रीहर्ष ने उस अतिशयोक्ति को सभी अलङ्कारो का मूल नही माना है क्योकि भणिति भङ्गी के अभाव वाले भामह कुन्तक द्वारा अस्वीकृत स्वाभावोक्ति, विशेषोक्ति, हेतु सूक्ष्म, लेश आशी. आदि अलङ्कारो का भी सौन्दर्य नैषध मे पर्याप्त मात्रा मे देखने को मिलता है।

सा भङ्गिरस्या. खलुवाचिकापि पद्भारती मूर्तिमतीयमेव।
श्लिष्ट निगद्यादृत वासवादीन्वितशिष्य मे नैषधमप्यवादीत्।।   नै0 14/14

नैषधकार श्री हर्ष ने यमक, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति का भी यथावसर प्रयोग किया है– लेकिन यमक के मुरजबन्ध, सर्वतोभद्र आदि चित्रबधो का कोई आदर नही किया है। क्योकि श्लेषानुपाणित अलङ्कारो मे बुद्धिवैभव का ही चमत्कार देखा जाता है। हृदयपक्ष का नही। श्रीहर्ष ने स्वय अपनी रचना को "परिरम्भक्रीडाचरणशरण" कहा है। अभङ्ग श्लेष मे चमत्कार देखिए– "स्वयम्वर सभा मे नल से अपना कपटपूर्ण परिचय देते हुए देवगण कहते है– जो आपके सौन्दर्य को स्वयं देखकर भी हम मूर्खता में पडे बैठे है। इससे हमारी इस दुराशाधीनता को धिक्कार है, तथा हमारे इस विवुधत्त्व को धिक्कार है।"[1]

यहॉ अधिगत्य (जानकर, लेकर) आशापतिता (आशा मे पडे हुए, दिशाओ के स्वामित्व) तथा विवुधत्व (देवत्व पण्डितत्व) मे अभङ्ग पद श्लेष है। कवि का कहना है कि अभङ्ग की अपेक्षा सभङ्ग श्लेष रचना मे अधिक चमत्कार अपेक्षित होता है। त्रिविक्रम भट्ट ने विनय–निगूढ गर्व के साथ अपनी सभङ्ग श्लेष रचना को "बाहुओ से तैरकर समुद्र पार करने के समान एक दुष्कर कार्य बताया है–[2]' श्लेष

---

1 "असाम यन्नाम तवेह रूप स्वेनाधिगत्य श्रितमुग्धभावा।
तन्नो धिगाशापतितान्नरेन्द्र! धिक्चेदमस्मद्विवुधत्वमस्तु।।   नै0–10/48

2 भङ्गश्लेष–कथाबन्ध दुष्कर कुर्वता मया।
दुर्गस्तरीतुमारब्धोबाहुभ्याममम्भसा पति ।।   नलचम्पू – 1/22

का अत्यन्त प्रौढरूप स्वयम्बर मे बैठे पॉच नलो के परिचय मे दिखाई पडता है। प्रत्येक के परिचय में अनेक श्लोक कहे गये है। उदाहरणार्थ– प्रत्येक का एक–एक श्लोक उद्धृत किया जाता है। इन्द्र का परिचय देती हुई दमयन्ती किस युक्ति के साथ इन्द्र नल दोनो का परिचय दे डालती है।

इन्द्र पक्ष मे– "सुन्दरि, बलनामक शत्रु के विजयी पराक्रम वाले इनकी वीर सेना के सामर्थ्य का मै क्या वर्णन करूँ? स्वय भगवान गजवदन तथा विष्णु इनकी सेना मे सैनिक के रूप मे रहते है। तभी तो इनका रण–पराक्रम दानवो को भयभीत किये हुये है।"

नल पक्ष मे– "सुन्दरि, मैं यह क्या कहूँ कि ये महाराज वीरसेन के पुत्र है। इन्होने अपने पौरूष से सदा शत्रु सैन्य की विजय की है, और रणभूमि इनके सैन्य गजो के मदजल की सुगन्ध से सुगन्धित हो उठती है।"

यहॉ वीरसेनोद्मुति (1 वीरो की सेना का सामर्थ्य, वीरसेन नामक राजा से उत्पत्ति) द्विषद्वलं–विजित्वर–पौरूषस्य (1. शत्रु बल नामक दैत्य के विजेता पराक्रम वाले 2 शत्रु सेना के विजेता पराक्रम वाले) मे अभङ्ग श्लेष तथा सेनाचारी–भवदिभानन–दानवारिवासेन (1. सैनिक के रूप में इभाननगणेश और दानवारि विष्णु के रहने से, 2 सेना के गजो के मुख–दान जल की गध से) एव जनिता–सुर भी (1 असुरों को भय देने वाली, 2 जो सुगन्धित हुई हो) मे सभङ्ग श्लेष है।[1]

अग्नि पक्ष मे– "हे शोभनश्रवणे, इनकी उग्र ज्वालाए अपनी दक्षता से जिन पार्थिव द्रव्यो को अपना ग्रास बनाती है, उन्ही से बनी भस्म तपशील महादेव के भी शरीर मे लेप बनती है।"

नल पक्ष में– 'सुश्रवे', इनकी सम्पत्ति के लिए महाधन और तपस्वी लोग भी अपने दारूण शस्त्रो के कुशल प्रयोग द्वारा शत्रु राजाओ का विनाश करने से उत्पन्न हुई है वह क्षात्र तेज का ऐश्वर्य है।

---

1 ब्रूम. किमस्य वरवर्णिनि। वीरसेनोद्भूति द्विषद्वलविजित्वरपौरूषस्य।
सेनाचरी भवदिभाननदानवारिवासेन यस्य जनिनतासुरभीरणश्री । नै0 13/3

यहाँ भूति (1 भस्म 2 ऐश्वर्य) महेश्वर (1 शिव, 2 महाधनिक) मे अभङ्ग श्लेष एव अत्यर्थ हेति पटुताकवली भक्तत्तत्पार्थिवाधिकरणप्रभव' (1 अतिशय ज्वालाओ के ग्रास बनने वाले पृथ्वी के पदार्थों क आधार से उत्पन्न, 2 अतिशय अस्त्र कौशल द्वारा पराभूत शत्रु नरेशो के साथ किये गये रण से उत्पन्न एव अङ्गराग (1 शरीर का लेप, 2 शरीर मे मात्सर्य) मे सभङ्ग श्लेष है।[1] यम का परिचय देती हुई सरस्वती कहती है –

यमपक्ष में– और, महाराज यम के पिता मनोहर–मूर्ति साक्षात् सूर्यदेव है जिनके प्रताप के सम्मुख चन्द्रदेव का समस्त तेज क्षीण हो जाता है। इनकी उत्क्रान्ति नाम की शक्ति (अस्त्रविशेष) भला किसके ऊपर नही चल सकती है। अन्य लोगो मे रोग उत्पन्न करने के कारण महाराज यम का वर्ण श्याम हो गया है।

नल पक्ष मे– और, भगवान सूर्य तथा कामदेव के समान मनोहर मूर्तिवाले तथा अपने प्रताप से समस्त राजमण्डल के तेज को क्षीण करने वाले महाराज इनके पिता थे। इनका शक्तिशस्त्र किसके प्राणो को नही हर सकता? शत्रुओ पर गदा प्रहार करने मे ये स्वय कृष्ण ही है या उत्कृष्ट बाणो की वेदना पैदा करने मे यह स्वय अर्जुन ही है।

यहाँ ''प्रभावनमितारिवलराजतेजा'' (1 अपनी प्रभा से सम्पूर्ण राज (चन्द्र) के तेज को पराभूत करने वाले 2 अपने प्रभाव द्वारा सारे राजाओ के तेज को परास्त करने वाले) 'अम्बरमणीरमणीयमूर्ति' (1 रमणीयमूर्ति वाले सूर्य 2 अम्बर मणि (सूर्य) तथा कामदेव के समान सुन्दर शरीर वाले) तथा ''कृष्णत्वमस्य च परेषु गदान्नियोक्तु'' (1. दूसरो में रोग उत्पन्न करने वाले इनकी कालिमा 2 परेषु (उत्कृष्ट बाणो) की पीडा से उत्पन्न करने वाले इनका कृष्णत्त्व (अर्जुनत्व)) मे सभङ्ग श्लेष एव देव (1 सूर्यदेव 2 राजा) तथा शक्ति (1 शक्ति नामक अस्त्र 2 सामर्थ्य) मे अभङ्ग श्लेष है।[2]

---

1 अत्यर्थहेतिपटुताकवलीभवत्तत्पार्थिवाधिकरण प्रभवास्यभूति ।
अप्यङ्गरागजननाय महेश्वरस्य सञ्जायते रूचिरकर्णि तपस्विनोऽपि।। नै0 13/11

2 किं च प्रभावन मिताखिलराजतेजा देव पिताम्बरमणी रमणीयमूर्ति ।
उत्क्रान्तिदा मकनु न प्रतिभाति शक्ति कृष्णत्त्वमस्य च परेषुगदान्नियोक्तु ।। नै0 13/18

वरूण का परिचय देती हुई सरस्वती कहती है—

वरूण पक्ष मे — देखो, शोणनद इनके चरणो का अनुरागी एक साधारण सेवक है और की क्या, स्वयं सरस्वती नदी इनकी सेवा मे रहती है। तो सुन्दरि, तुम भी इन जलाधिपति को स्वीकार करो। क्या सभी कमलाशय (जलाशय) इनकी सेवा नही करते।

नल पक्ष मे — सौभाग्यशालिनि, देखो अरूणवर्ण स्वय इनके चरणो का अनुरागी है। (इनके चरण अरूण है)। स्वय सरस्वती इन्हे नही छोडती। सुन्दरि, तुम इन लोकनाथ को स्वीकार करो। धन की आशा से इनकी सेवा कोन नही करता?

यहॉ 'शोण' (1 सोननदी, 2. रक्तवर्ण) 'सरस्वती' (1 सरस्वती नदी 2 वाणी या विद्या) तथा भुवनाधिनाथ (1. जलाधिप 2 जगत्पति) मे अभङ्ग श्लेष और 'कमलाशया' (1 जलाशय 2 लक्ष्मी या धन के आशा से) में सभङ्ग श्लेष है।[1]

फिर पॉचवे (वास्तविक) नल का परिचय चार श्लिष्ट श्लोको मे दिया गया है जिनमे नल के साथ क्रम से इन्द्र, अग्नि, यम तथा वरूण का भी बोध होता है उदाहरणार्थ एक श्लोक देखिए— नल के साथ महेन्द्र का भी परिचय देती हुई देवी कहती है—

नल पक्ष मे — अनेक संग्रामो में विजय पाने वाले श्रीमान महाराज नल को क्या तुम नही जानती? याचको को दान देने मे तत्पर रहने के कारण इन्हे कौन व्यक्ति साक्षात् जीमूतवाहन नहीं समझेगा।

इन्द्र पक्ष मे— क्या तुम महेन्द्र को नही पहचानती? पुत्र विजय (अर्जुन, जयन्त) के द्वारा इनके वंश की वृद्धि हुई है। आप अत्यन्त तेजस्वी तथा उत्सवशील है। सैकडों दानव शत्रुओ का सहार करने वाले इन्हे देखकर कौन इन्द्र न समझेगा?

---

1 शोण पदप्रणयिन गुणमस्य पश्च कि चास्य सेवन—परैव सरस्वती सा।
एन भजस्व सुभगे। भुवनाधिनाथ कि वा भजन्ति मिर्म कमलाशया न।। नै0 — 13/25

यहाँ 'अत्याजिलब्धविजयप्रसर' (1 जिसे सग्राम मे विपुल विजय मिली है 2 अनेक संग्रामो वाले तथा अर्जुन या जयन्त द्वारा वश के विस्तार वाले) और 'प्रत्यर्थिदानवशताहित चेष्टया' (1 प्रत्येक याचक के प्रति अपने दानीपन के कारण की गयी चेष्टा से 2 सैकडो शत्रु दानवो का अहित करने से) मे सभङ्ग श्लेष है तथा महीमहेन्द्र (1 पृथ्वी का श्रेष्ठ राजा 2 उत्सव वाले इन्द्र) एव जीमूतवाहन (विद्याधरो का प्रसिद्ध दानी राजा 2 इन्द्र) मे अभङ्ग श्लेष है। और अन्त मे देवी सरस्वती अपनी सुमधुर वाणी से इन्द्र, अग्नि, यम, वरूण चारो दिक्पालो तथा नल का भी क्रम से परिचय एक श्लोक के द्वारा ही देती है–

देव पतिर्विदुषि नैघधराजगत्या निर्णीयते न किमु न व्रियते भवत्मा।
नाय नल खलु तवातिमहानलाभो यद्येनमुज्झसि वर कतर परास्ते।। नै0 –13/34

इस श्लोक के माध्यम से श्रीहर्ष ने अपने श्लेष विलास को पूर्ण रूप से प्रदर्शित कियाहै। यही नही कि इसके केवल पॉच नलो मे घटित होने वाले पॉच ही अर्थ हो अपितु एक–एक के प्रति भी अनेक अर्थ उन्ही पदो से सभङ्ग श्लेष द्वारा निकलते है। चमत्कार होने के कारण प्रत्येक के प्रति घटित होने वाला केवल एक–एक प्रदर्शित किया जा रहा है–

1 इन्द्र पक्ष मे– हे विदुषि, एष देव धरा जगत्या (पृथ्वी के) पतिर्न भवत्या किमु न निर्णीयते, न व्रियते। अय खलु नलो न। (अयम्) तव नलाभ (नल के समान कान्तिशाली) (यत) अतिमहा (अतितेजस्वी) यदि एनम् (अ (विष्णु) के इन (स्वामी) अर्थात् बडे भाई को) उज्झसि, ते पर कतर. वर।

हे चतुरे! ये देव पृथ्वी के स्वामी नही है। आप क्या विचार नही कर रही है? इन्हे नहीं वर रही है? ये नल तो नहीं हैं (किन्तु) तुम्हारे नल के समान कान्तिवाले है। ये अत्यन्त तेजस्वी है। यदि विष्णु के बडे भाई इनको त्यागोगी तो तुम्हारा दूसरा कौन वर होगा?

2 अग्नि पक्ष मे– हे विदुषि, धरा जगत्या (अपने वाहन अज की गति से) पति (रक्षक) एष देव भवत्या न निर्णीयते (इति) न (तर्हि) किमु न व्रियते अय खलु

तव नलो न (अपितु) अति महान लाभ (अत्यन्त महान अग्नि की कान्ति वाले) यदि इन्हे छोडोगी तो तुम्हारा दूसरा कौन वर होगा? यदि एन उज्झसि ते पर. कतरः वर.। हे कुशले, अपने वाहन अज (वकरे) की गति से उपलक्षित रक्षक इन देव को आप नही पहचान रही है यह बात नही है, फिर क्यो नही वर रही है? ये आपके नल तो नही है (किन्तु) अति महान् अग्नि की कान्ति वाले है। यदि इन्हे छोडोगी तो तुम्हारा दूसरा कौन वर होगा?

3 यम पक्ष मे – हे विदुषि, एष धरा जगत्या (पर्वतो को उखाड फेकने वाले भैसे की गति से उपलक्षित) पति (धर्मरूप पालक) देव न निर्णीयते (इति) न (पर) किमु न व्रियते। अय खलु नलो (गहन) न (वक्रोक्त्या अपितु धर्मरूपत्वात् गहन एव) यदि एनम् उज्झसि (तदा) तव अति महानलाभ ते पर वर कतर।

हे कुशले, पर्वतो को उखाड फेकने वाले भैसे की गति से धर्म के रक्षक इन देव को तुम नही पहचान रही हो, यह बात नही है, फिर क्यो नही वर रही हो? ये धर्मरूप होने के कारण अत्यन्त महान है। यदि इन्हे छोडा तो तुम्हारी बडी हानि होगी। तुम्हारा दूसरा वर ही फिर कौन होगा?

4 वरूण पक्ष मे– हे विदुषि, एष धरा जगत्या (पृथ्वी पर उत्पन्न होने वालो के जीवनोपाय जल के) पतिर्नदेवः भवत्या किमु न निर्णीयते, न व्रियते, (अपितु निर्णेय वरणीयश्च) अति महान लाभ· (अति महत अति पूज्यस्य अनलस्य अभा कान्त्यभावो यस्य– वरूणोहि जलरूपत्वादग्नि विरोधीत्यर्थः) अय खलु नलो न। यदि एनम् उज्झसि (तदा) ते वर (श्रेष्ठ) क पर· (शत्रु) (अपि तु अयमेव शत्रु·)–

हे कुशले, पृथ्वी पर उत्पन्न होने वालों के जीवनोपाय जल के पति को क्या तुम नही पहिचान रही हो? (क्या इन्हे) नही वर रही हो? ये अति महान् अग्नि की कान्ति के अभाव है। ये नल नही है। यदि इन्हे छोडा तो तुम्हारा (इनसे बडा) कौन शत्रु होगा?

5 नल पक्ष मे– हे विदुषि, अयम नैषधराजगत्या (निषध देश के राजा के ज्ञान द्वारा, रूप मे) पति देव ना (मनुष्य) किमु न निर्णीयते (किमु वा) न व्रियते। खलु तव अति महानलाभ (अति महान अस्य (विष्णो·) लाभ) यदि एनम् उज्झसि (तर्हि) ते कतर वर पर (अधिक)–

हे विदुषि, इन नर देव को निषध देश के राजा के रूप मे तुम नही पहचान रही हो? क्या इन्हे नही वर रही हो? (इसमे तुम्हे (साक्षात्) विष्णु का ही महान लाभ होगा। यदि इन्हे छोडती हो तो तुम्हारा कौन वर इनसे बडा (या) अधिक होगा?

इतना ही नही यहॉ श्लेष वक्रोक्ति (जहॉ वक्ता द्वारा कही बात की व्याख्या उत्तरदाता पदो को तोड–मरोड कर दूसरे ढग से करता है उसे श्लेष वक्रोक्ति कहते है।)[1] के द्वारा चारो दिक्पालो के न वरने की भी ध्वनि निकलती है इसके अलावा श्रीहर्ष ने अर्थ श्लेष (जहॉ एक ही वाक्य मे अनेक अर्थ निकले वहॉ अर्थ श्लेष होता है)[2] के द्वारा भी चमत्कार का प्रदर्शन किया है– देखिए–

"निपीय यस्य क्षितिरक्षिण· कथास्तथाद्रियन्ते न वुधा सुधामपि।
नल· सितच्छत्रित कीर्तिमण्डल स राशिरासीन् महसा महोज्वल"। नै0–1/1

उपरोक्त वर्णन को देखकर यह विदित होता है कि श्रीहर्ष श्लेष प्रयोग मे बहुत ही ज्यादा दक्ष थे। इसके द्वारा इन्होने दो बाते सिद्ध की। पहली बात तो अपनी काव्य रचना कीप्रौढता सिद्ध की है। दूसरी बात सरस्वती की प्रतिष्ठा की रक्षा की, क्योकि यदि ये वास्तविकता पूर्ण वर्णन करती तो देवो के रहस्य का भडाफोड हो जाता, ओर इस प्रकार देवो का क्रोध भाजन बनती। तीसरी बात, श्लेष के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नही था। जिससे उन पॉचो का ऐसा वर्णन किया जाता। स्व0 श्री कीथ· महोदय का कहना है कि "दमयन्ती चाहे सस्कृत जानती भी रही हो पर देवी की बात को व्याख्या के बिना नही समझ सकती थी।" तथा

---

1 वक्रातदन्यथोक्त व्याचष्टे चान्यथातदुत्तरद·।
वचन यत् पदमभङ्गैर्ज्ञेया सा श्लेषवक्रोक्ति।। रूद्रट – काव्यालङ्कार – 2/14

2 श्लेष स वाक्ये एकस्मिन् यत्रानेकार्यता भवेत्। का0प0 – 10/14

सुशील कुमार डे' महोदय का कहना है कि बेचारी दमयन्ती के लिए इससे एक बडी भ्रान्ति कारक परिस्थिति उपस्थित होती थी, क्योकि टीका के बिना ये श्लोक सम्भवत उसे बोधगम्य नही हो सकते थे।''[1] इस वैदग्ध्य पूर्ण भङ्गिभणिति के युग मे भट्टि और माघ ही श्रीहर्ष के प्रेरणास्रोत रहे एवं उनके आदर्श बने।[2] अब छन्दो और अलङ्कारो की कलाबाजी मे ही सारी नवीनता प्रतिबद्ध हो गयी। स्वय माघ मे सहज काव्यप्रतिभा अवश्य थी, किन्तु उनकी कविता मे उस प्रतिभा से अधिक कृत्रिमता है और उसका यह कृत्रिमॉश ही उत्तरकालीन काव्यो का आदर्श बन गया। बाद के चित्रकाव्यों तथा द्वयाश्रय एव श्लेषनिष्ठ काव्यो मे माघ के प्रभाव की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। ऐसी परिस्थिति मे कला–चातुरी दिखाने के श्रम आदि की ओर अधिक ध्यान होने के कारण प्रबन्ध कल्पना का सौष्ठव कही दिखाई ही नही पडता।[3] श्रीहर्ष ने वर्णन शैली की प्रेरणा मात्र रघुवश से ली, इसका यह तात्पर्य कदापि नही कि नल के विषय भोग का वही आदर्श था जो अग्निवर्ण का रहा।[4] रघुवश के पञ्चम सर्ग के प्रभात वर्णन का पूर्णतः अनुकरण श्रीहर्ष ने किया। रघुवश की तरह कुमार सम्भव के प्रथम सर्ग मे वर्णित पार्वती रूप सौन्दर्य का अनुकरण करके ही श्रीहर्ष ने अपने नैषध का सप्तम सर्ग दमयन्ती के नखसिख वर्णन मे खर्च कर डाला। कुमार सम्भव के पञ्चम सर्ग की शैली पर नैषध का नवम् सर्ग पूर्णरूपेण अवलम्बित है एव सातवे सर्ग पर नैषध पञ्चदश और अष्टम सर्ग की शैली पर लगभग नैषध के 18 से लेकर 22 तक सभी सर्गों की रचना हुई जान पडती है। भले ही श्रीहर्ष ने नल दमयन्ती का कथानक महाभारत से ग्रहीत किया हो लेकिन पूर्ण रूपेण उसकी शैली का आधार कुमार सम्भव का शिवपार्वती सवाद (पञ्चम सर्ग) ही है।

श्रीहर्ष को माघ से जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रेरणा मिली थी वह थी श्लेष निष्ठ काव्य रचना पद्धति की जिसके लिए नैषध का पंचनली विषयक त्रयोदश सर्ग और सप्तदश सर्ग है क्योंकि प्राचीन काल से सस्कृत कवियो को श्लेष निष्ठ रचना

---

1 दे0 – सस्कृत साहित्य का इतिहास – पृ0 328
2 दे0 सस्कृत साहित्य का इतिहास, प्रथम भाग, पृष्ठ 304
3 नैषधपरिशीलन – डा0 चण्डिका प्रसाद शुक्ल, पृष्ठ – 108
4 रघुवश – 19/5

करने का कौतुक था यहाँ तक कि सुबन्धु, बाण, भारवि आदि ने यथावसर उसके प्रसङ्ग भी उपस्थित किये। इतना ही नही वे हरिचन्द्रकृत धर्मशर्माभ्युदय काव्य से भी पूर्णत परिचित थे, उन्होने अपने श्लिष्ट रचना के माध्यम से नैषध मे एक स्थान पर उनका उल्लेख भी किया।[1] वरूण स्वयम्वर के अन्त मे नल को वरदान देते हुए कहते है– "आपके अङ्ग का सयोग पाकर पुष्पो मे म्लानि (मुरझाहट) न होगी, और उनमे दिव्य सगुन्ध आ जायेगी। मुझे पुष्प के अतिरिक्त कोई ऐसी वस्तु न दिखाई पडी जो धर्म तथा श्रेय (धर्मशर्म) दोनो का साधक हो। यद्यपि धर्मशर्म को एक साथ सयुक्त देखकर उससे धर्म शर्माभ्युदय का सङ्केत समझना द्राविड प्राणायाम ही है, किन्तु वर्णन शैली का 11वी शता0 के उत्तरार्ध मे होने वाले कृष्ण मिश्र के प्रतीकात्मक नाटक 'प्रबोधचन्द्रोदय' का भी कुछ प्रभाव नैषध पर था। नैषधकार को कलिसैन्य वर्णन तथा चार्वाक सिद्धान्त आदि दार्शनिक शास्त्रार्थ के प्रसङ्गो को रखने की प्रेरणा इसी प्रबोध चन्द्रोदय से मिली प्रतीत होती है। भतृहरि के नीतिशतक का भी प्रभाव कुछ–कुछ श्रीहर्ष पर प्रतिविम्बित होता है। भतृहरि ने सत्पुरूषो की वृत्ति बताते हुए उन्हे अपने स्वार्थ को त्याग कर के भी परार्थ साधने वाला कहा है–[2] नैषध मे उसी उक्ति के आधार पर मदन व्यथा के सागर मे डूबते हुए नल हस को अपना अवलम्ब बताते हुए कहते है– आपको इस काम मे प्रवृत्त होने की प्रेरणा देना तो पिष्टपेषण ही है, क्योकि सत्पुरूष स्वय परार्थ साधने वाले होते है।[3] मुरारिकृत अनर्घराघव का भी श्रीहर्ष ने अपनी काव्य प्रतिभा मे कुछ पर्यवसान किया। मुरारि का कहना है कि लक्ष्मी विष्णु के उस स्थल को नही छोडती कि उन्हे वहाँ अपने भाई कौस्तुभ का साथ मिलता है।[4] श्रीहर्ष ने इस भाव को कुछ परिवर्तित करके लिया है– "नल कहते है– हे विष्णु! सागर तनया लक्ष्मी स्वभाव से ही परम चञ्चला है पर वह आपके पास सदा स्थिर निवास करती है क्यो?

---

1 अम्लानिरामोदभरश्चदिव्य पुष्पेषुभूयाद्भवदङ्सङ्गात्।
दृष्ट प्रसूनोपमयामयान्यन्न धर्मशर्मामयकर्मठयत्।। नैषध0 – 14/85

2 एके सत्पुरूषा परार्थघटका स्वार्थं परित्यज्य ये। नी0श0 74, बाम्बे सस्कृत सीरीज प्रकाशन, 1885

3 अथवा भवत प्रवर्तना न कथ पिष्ट मिय पनष्टिन।
स्वतएव सता परार्थता ग्रहणाना हि यथा यथार्थता।। नै0– 2/61

4 नाभ्रातृसगमसुखासिकयाजहाति विष्णो।
सकौस्तुभमुरश्चपलापिलक्ष्मी।। अनर्घराघव – 7/142

"जाह्नवीजलजकौस्तुभचन्द्रान् पादपाणिहृदयेक्षणवृत्तीन्।
उत्थिताब्धिसलिलात्वयि लोला किं स्थिता परिचितान्परिचिन्त्य।।

नैषध0 – 31/106

उक्त वर्णनो को देखकर श्रीहर्ष की कल्पना एव शैली की भूरि–भूरि प्रशसा की जाय तो भी कम है। वह तो श्रीहर्ष का पाण्डित्य ही है मुरारी की शैली की समता देखते हुए यह निर्णय निकलना अनुचित नही होगा कि श्रीहर्ष ने न्याय के "कारण गुणा कार्य गुणानारभन्ते" वाले सिद्धान्त को नैषध मे कई बार कहने की प्रेरणा मुरारी से ही ली है। मुरारी ने चन्द्रमा को अत्रि मुनि का नेत्रमल कहा है।[1] श्रीहर्ष ने यही से प्रेरणा लेकर चन्द्रवर्णन करते हुए 22/73, 98, 110, 133 मे कई बार चन्द्रमा को अत्रिन्नेत्रोद्भव कहा है।" ऐसे वर्णनो को देखकर लगता है कि यदि इस काव्य को व्याकरण तथा वेदशास्त्रो के पाण्डित्य का पानकरस कहा जाए तो कोई अत्युक्ति नही होगी। इस ग्रन्थ को पढने से लगता है कि कथावस्तु की कथारस धार अत्यन्त क्षीण रूप से व्याकरण और शास्त्र की बीहड, लम्बी, बेडौल चट्टानो के नीचे खोई हुई कही–कही बहती दिखाई देती है। इसलिए वह अपने काव्य को पण्डितो एव कवियों के बीच दर्प के साथ कहता है कि यह काव्य श्रृङ्गाररूपी अमृत का चन्द्रमा है। "श्रृङ्गारामृतशीतगु." (नैषध0–10/24) श्रीहर्ष ने अपने पाण्डित्य का दर्प प्रकट करने के लिए ही अपने काव्य की रचना की है। इस प्रकार अनेक काव्य रूढियो का ज्वलंत प्रतीक नैषध वह घना जगल है जिस जगल के वृक्ष फूल और फल से हीन है। सातवी शदी मे होने वाले 'बाण' ने भी जब अपना कादम्बरी कथा काव्य लिखा तो उन्होने भी कथा के सौन्दर्य के आधान हेतु ऐसे अभाव की सृष्टि पहले ही कर ली थी। राजा शूद्रक का वर्णन करते हुए बाण ने लिखा है– कि वह महान प्रतापी है पृथ्वी का सारा वैभव उसके पास है–

"तस्यचाति विजिगीषुतया महासत्त्वतया च तृणमिव लघु–वृत्ति
स्त्रैणमाकलयत प्रथमे वयसि वर्तमानस्यापि चावरोधजने।" काद0–पृ0 50

---

1 आ कीद्दगत्रिमुनिलोचनदूषिकाया पीयूषदीधितिरितिप्रथितोऽनुरागा। अ0रा0 2/83

जब बाणभट्ट अपने नायक शूद्रक का ऐसा चित्रण करते है और यह स्पष्ट हो जाता है, कि शूद्रक के मन का अधिकाश धरातल किसी महान् अभाव से पीडित है, जिसके कारण वह युवतियो को अपने मन मे स्थान नही दे पा रहा है। तब पाठक की मनोवृत्ति कुछ सोचे या न सोचे कवि बाणभट्ट कथा को एक नया मोड देते है। जिस "चाण्डाल कन्या को देखकर अचिरोपारूढ यौवनाम् अतिशय रूपाकृतिम् अनिमेषलोचनो ददर्श" लिखा है। उसी चाण्डाल कन्या को देखकर राजा की मनोवृत्ति दूसरी हो गयी और सोचने लगा— अहो! ब्रह्मा द्वारा गलत स्थान पर सौन्दर्य की सृष्टि करना अच्छा नही है।

"अहो विधातुरस्थाने सौदर्य निष्पादन प्रयत्न। तथाहि यदि नामेयमात्म–रूपोपहसिताशेष–रूप–सम्पदुत्पादिता ––––कुलेजन्म।।" कावद0–पृ0 92

इस प्रकार कथावस्तु की वक्रता एव सुसम्बद्धता ही कवि का सबसे बडा गुण होता है और उसकी विश्रृङ्खलता ही सबसे बडा दोष है। इन्ही वर्णनो से प्रभावित होकर श्रीहर्ष ने अपने पाण्डित्य को शिखर पर बैठाने का प्रयत्न किया। तभी तो कहा भी गया है कि "नैषधविद्वदौषधम्" अर्थात् नैषध विद्वानो की विद्वता की कसौटी है। इनकी विद्वता असाधारण थी भी।[1] इनकी शैली वेद परिनिष्ठित शैली है। जो शब्द और अर्थ के नवीन सन्निवेश से एकार्थमत्यजतोनवार्थघटनाम्' की पदवी से मण्डित हो जाती है। अलङ्कारो का यथास्थान उपयुक्त प्रयोग नैसर्गिक चारूता का सभार कर देता है। काव्य के बहुविध उपादानो यथा शैली, अलङ्कार, रीति, गुण आदि इसमें सौष्ठव से विराजमान है। काव्योचित कल्पनाओ का विशेष उत्कर्ष यथास्थान दृष्टिगत होता है। इन्ही गुणो के कारण पण्डित मण्डली को यह कहने के लिए बाध्य होना पड कि सचमुच "नैषध विद्वदौषधम्" उक्ति सर्वश्रेष्ठ है।—

12वी शता0 तक सस्कृत वाड्मय का जो रूप उपस्थित था। धीरे–धीरे वह आगे–आने वाले कवियों के द्वारा ह्रास की ओर उन्मुख होने लगा। इतना ही नही शनै–शनै. विचारों की सतह पर भाषा का गेय रूप कुण्ठित होने लगा, और मनीषी जन उस भाषा को कबिता की ओर बलात् ले जाने का प्रयास करने लगे। यह

प्रयास क्योकि कविता की सहज प्राणशक्ति (रसाभावादि व्यञ्जना) और उन्मुक्त तरलता से वञ्चित होता है इसलिए अधिकतर कवि बाहरी उपादानो से उसमे यमकानुप्रासादि शब्दालङ्कार आकर्षण भरने लगते है। कही–कही भाषा का अन्तरङ्ग स्वरूप अलङ्कारो के अनुकूल होता है। वे अलङ्कार सहज ढग से आते है और उनके बिना सारा वाक्य विन्यास या अर्थ–सगठन अधूरा लगता है। भाषा मे प्रवाहमयता का भाव तभी तक रहता है, जब तक भाषा समाज तथा व्यक्ति के आन्तरिक सम्बन्धो तथा उनमे हो रही परिवर्तन की परिस्थितियो को वहन करती रहती है।

12वी शता0 मे मिथ्याप्रयुक्त चातुर्य का उत्कर्ष तीन लेखको को प्राप्त हुआ। जिनमे सन्ध्याकर नन्दी प्रथम थे उनके रामपाल चरित के प्रत्येक पद्य मे राम के चरित का और बगाल मे 11वी शता0 के अन्त मे विद्यमान राजा रामपाल का वर्णन है। उनके बाद जैन लेखक धनञ्जय द्वितीय (1124–1250) थे जो दिगम्बर सम्प्रदाय के थे। तीसरे कविराज थे जिन्होने राघवपाण्डवीयम् नाम से अपने ग्रन्थ का उल्लेख किया। उक्त दोनो ग्रन्थो की पद्धति का शुभारम्भ बाण और सुबन्धु के शब्द श्लेष से हुआ। क्योकि कविराज ने स्वय इस बात को कहा है कि वक्रोक्ति के प्रयोग मे उक्त दोनों कवियो को छोडकर उनकी बराबरी कोई नही कर सकता। अनिश्चित समय के हरदत्तसूरिकृत राघवनैषधीयम् जिसमे श्लेष निष्ठ भाषा मे राम और नल की अद्भुत कथाओ का समायोजन है। यह काव्य ह्रासकालीन कविता का सुमधुर उदाहरण है। इसमे तत्कालीन समाज की रूढि व्यवस्था के अनुसार ऐसे बहुचर्चित दो नायको को लिया गया है जिनकी उत्तम राजप्रकृति और आदर्श आज तक किसी न किसी रूप मे आदर और प्रतिभा के प्रात्र बने हुये है। कालिदास के उपरान्त जैसे ही संस्कृत कविता लोक जीवन से दूर होती गयी वैसे ही क्रमश भारवि, माघ, नैषध आदि काव्यो मे कृत्रिमता एव क्लिष्टता सन्निविष्ट होती गयी। रघुवश महाकाव्य के नवम् सर्ग की समस्त पक्तियॉ शब्दालङ्कारों से गुथी हुई है। यथा– द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् इत्यादि। यह अत्यन्त उत्कृष्ट अलङ्कार योजना अपने चरम परिपाक को पहुँचकर ऐसे–ऐसे काव्यो में दृष्टिगत होती है। जिससे प्रत्येक शब्द प्रत्येक भाव, दो

अलग–अलग अर्थों मे व्यक्त करता हुआ प्रतीत होता है। इन काव्यो का अर्थ निकालना सामान्य जन क्या पण्डित जनो के मस्तिष्क को भी अच्छा खासा व्यायाम करा देता है। इसका एक उदाहरण तो कविराज का 'राघवपाण्डवीयम्' है। जिसकी भाषा–शैली एव भावो के विन्यास को पहले ही वर्णित किया जा चुका है। ऐसे ही भावो से मिलता हुआ राघवनैषधीयम् महाकाव्य है। जिसमे कवि ने राम के साथ–साथ एक और युगीन महत्त्व का चरित अङ्कित किया गया है। जिस प्रकार भगवान राम राज्यसत्ता के सर्वश्रेष्ठ प्रतिष्ठाता के रूप मे लिये जाते है उसी प्रकार राजा नल, नारी, सत्ता और अनिवार्य चारित्रिक पतन के बीच मानवीय अन्तर्द्वन्द्व के प्रतीक नायक कहे जा सकते है। कवि ने मानव नल के सौन्दर्य आकर्षण को देवताओ की तुलना मे अधिक प्रभावशाली दिखाकर इस चरित के द्वारा कवि देवताओ पर मनुष्य की अनिवार्य विजय घोषित करते हुए प्रतीत होता है। साथ ही सत्त्ता के प्रभाव मे आने पर मनुष्य के भीतर आयी हुई विलासिता और चारित्रिक शिथिलता किस तरह उसे दु खद परिस्थितियो की तरफ खीच ले जाती है। इस बात का उदाहरण नल का चरित्र पूर्णरूपेण है।[1] सत्य ही है कि इस अलङ्कृत युग मे भावना सवेगो की कमी हो जाती है। जहॉ कवि का प्रधान उद्देश्य दो व्यक्तियो को एक वाक्य मे गूथकर पाठक वर्ग को शाब्दिक चमत्कार से प्रसन्न करना है वहॉ भावसवेग और तदनुकूल रसानुभूति के प्रति शैथिल्य स्वाभाविक ही है।[2] देखिए –

स राजहसोवचनं महार्थं निगद्य मौन जुजुषऽभिरामम्।
आरामभूत· प्रससाद रामो मध्येसभ सज्जनवन्दनीय ।। राo नैo–1 / 18

समय चक्र चलता गया ऐसे ही समय जब हरिदत्तसूरि के राघवनैषधीय महाकाव्य को ख्याति प्राप्त हो रही थी उसी समय असदिग्ध रूप से पिछले काल की रचना चिदम्बरकृत 'राघवपाण्डवपादवीय' महाकाव्य का उद्भव हो चुका था। इस महाकाव्य मे तीन कथाओ के रहने की हास्यास्पदता देखी जाती है।

---

1 हरिदत्त सूरि कृत – राघवनैषधीयम्–भूमि का भाग, पृष्ठ 7, 9
2 सस्कृत साहित्य का इतिहास – कीथ – मगलदेव शास्त्री भाषान्तरकार

सर्वप्रथम राम, पाण्डव और कृष्ण की कथाए युगपद् प्रवर्तित होती है। तीसरी कथा भागवत पुराण से ली गयी है। इस ग्रन्थ का भी काव्य वैभव श्लेष की उसी प्रतृत्ति के व्यवस्थित ढग को दर्शाता है, जिसका वर्णन कविराज ने अपने राघवपाण्डवीयम् ग्रन्थ मे सुव्यवस्थित ढग से किया था। 1542ई0 में अयोध्या मे लक्ष्मण भट्ट के पुत्र रामचन्द्र द्वारा विरचित "विचित्ररसिकरञ्जन काव्य भी इसी प्रकार का है क्योकि इस ग्रन्थ के पद्य भी एक प्रकार से पढने पर प्रेम सम्बन्धी कविता के रूप मे और दूसरे प्रकार से पढने पर वैराग्य की प्रशसा के रूप में प्रतीत होते है। अलङ्कृत एव चामत्कारिक शैली के होड की प्रवृत्ति उक्त सभी महाकाव्यों और जैन महाकाव्यो मे भी विद्यमान थी। कनकसेन वादिराज द्वारा रचित यशोधर चरित ऐसा ही काव्य है, जिसमे चार सर्ग और 296 पद्य है। इसी उपाख्यान का एक अन्य रूप मणिक्यसूरी के 'यशोधरचरित' मे भी पाया जाता है जो श्वेताम्बर जैन ग्रन्थ है जबकि वादिराज का दिगम्बर जैन काव्य है। परन्तु दोनो के वर्णन एक दूसरे से स्वतत्र है। 13वी शता0 मे देवप्रभसूरि द्वारा रचित पाण्डवचरित और 'मृगावतीचरित' का उल्लेख करना भी समुचित होगा। चारित्र सुन्दरगणी का महापाल चरित भी इसी कोटि की रचना है इसमे 14 सर्ग और 1159 पद्य है। परन्तु इन सभी महाकाव्यो का महत्त्व उनके भाषा शैली सम्बन्धी साहित्यिक गुण की अपेक्षा ज्ञानवर्धक कथाओ की दृष्टि से अधिक है। बुद्धघोषाचार्य के नाम से प्रसिद्ध पद्मचूडामणि महाकाव्य मे यद्यपि कोई नवीन मौलिकता का समावेश नही है फिर भी यह कही–कही उपयुक्त दृष्टि से ही महत्त्व प्रदान करता है। 15वी शता0 के वामन भट्ट बाण ने 30 सर्गो मे रघुनाथ चरित महाकाव्य की रचनाकी जिसमें राम चरित के इतिवृत्त को निबद्ध किया गया है। 1608 ई0 मे अद्वैत कवि ने 18 सर्गो मे राम–लिङ्गामृत की रचना की। इसी अद्वैत कवि ने 12 सर्गो में राघवोल्लास महाकाव्य का प्रणयन किया। 17वी शता0 के चक्रकृत ने 'जानकीपरिणय' लिखा, जिसमें वाल्मीकि रामायण से मिलती जुलती जानकी की कथा का समावेश है। इतना ही नहीं काहन स्वामी का रमरहस्य एव 18वी शता0 का राम–विजय महाकाव्य जो कि रघुनाथ उपाध्याय द्वारा प्रणीत है। ऐसे ही अनेक रामकथा सम्बन्धी स्फुट काव्य ग्रन्थ लिखे गये जो

भिन्न–भिन्न कोटियो मे विभाजित थे। यथा श्लेष काव्य, द्विसन्धान काव्य, विलोम काव्य आदि। इन सभी काव्यो मे रामायण एव महाभारत की कथा को एक ही साथ एक ही काव्य मे प्रतिपादित करने की परम्परा को देखकर दण्डी आदि ने इस प्रकार के काव्यो को 'द्विसन्धान काव्य' कहा।

इसी प्रकार विलोम काव्यो मे चिदम्बर सुमतिकृत राघवपाण्डवयादवीय (16वी शता0) तथा वेकटाध्वरिकृत यादवराघवीयम् (17वी शता0) एव सूर्यदेव कृत रामकृष्ण विलोम काव्य मे भी रामकथा का साङ्गोपाङ्ग वर्णन मिलता है। इन सभी महाकाव्यो मे एकाधिक विषयो का समिश्रण कर कवि ने अपनी पटुता एव विद्वता का सम्यक् परिचय दिया है। 'यादवराघवीयम्' जिसके प्रणेता वेकटाध्वरि महाकवि है। यह महाकाव्य कुल तीस श्लोको मे बद्ध है। जिनमे सीधे पढने से राम की कथा का तथा उल्टे पढने से कृष्ण की कथा का यथोचित भाव मालूम होता है। ऐसा शाब्दिक कौतूहल सस्कृत के अतिरिक्त और किस भाषा में हो सकता है। इसकी चामत्कारिक शैली कविजनो के मानस को उद्वेलित कर बरबस उसे अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। ऐसे विलोम काव्यो की स्फुरणा उसी समय हुई जब शाब्दिक कौतूहल चरम कोटि पर पहुँच चुका था। ऐसे युगपद् वर्णन सामान्य जन को भले ही रोचक न प्रतीत हो किन्तु सहृदयो एव विद्वानो के लिए तो वे अमृत तुल्य ही होते है। वेकटाध्वरिमहाकवि ने अपने शब्द वैभव का विलास जिस हस्तपटुता से प्रदर्शित किय है उसका वर्णन सामान्य कवि नही कर सकता है। वेकटाध्वरि ने अपनी प्रतिभा के बल से काव्यरूढियो और परम्पराओ को चरम सीमा पहुँचाने हेतु जितनी खीचतान दिखाई है इतनी ही रसबोधता उनके काव्य के वैभव से बाहर होती गयी। इनमे महाकाव्य के पूरे लक्षण कौन कहे आधे भी नही है। रस का भी भाव सर्वत्र व्याप्त नही है केवल बीच–बीच मे कुछ–कुछ रसों की झलक केवल प्रतिविम्बित हो गयी है वास्तव में यह नीरस ही है केवल कथामात्र प्रधान है तथा शाब्दीक्रीडा का अप्रतिम चमत्कार ही सर्वत्र छाया हुआ है। जिस कारण इसको इतनी प्रसिद्धि मिली हुई थी। इनका काव्य कवियों के चित्त पर जबरदस्त आघात

करने वाला है। फलत ऐसे काव्यो के प्रणयन से साहित्य मे कलात्मकता का सचारहोता गया और पण्डित तथा सहृदय केवल इसी उद्देश्य हेतु काव्य रचना मे प्रवृत्त होने लगे। सस्कृत साहित्य मे ऐसा काल आया, जिसमे अधिकाशत कवियो ने ऐसे ही चरित काव्यो को लक्ष्य बनाना प्रारम्भ किया जिससे भाषा मे उस अपूर्व लावण्य का अभाव हो गया जो कालिदास वाल्मीकि, अश्वघोष इत्यादि के काव्यो मे विद्यमान था। अब सर्वत्र नक्काशी एव पच्चीकारी का ही बोल–बाला हो गया और इसी युग ने क्रमश धीरे–धीरे इस युग की कलाओ को भी अपने अधिकार मे लेना शुरू कर दिया।

यह उल्लेखनीय है कि छठी शता0 से लेकर 12वी शता0 तक का काल अलङ्कृत शैली के चरमोत्कर्ष का काल था। भारवि द्वारा जिस मार्ग का संधान किया गया था, वह रत्नाकर, बाण, माघ, शिवस्वामी, क्षेमेन्द्र इत्यादि कवियो के समय अपने चरमोत्कर्ष को पहुॅचकर विशेष ख्याति को प्राप्त कर चुका था। इस युग ने अलङ्कृत शैली के विकट रूप का प्रतिविम्बन तो किया ही साथ ही सगीत, कला, नाट्य, वास्तु, स्थापत्य, शिल्प, मूर्ति आदि सभी विधाओ को भी अपनी अलङ्कृत एव चामत्कारिक शैली से अभिभूत किया। इस शैली ने सभी मे अलङ्करण की बहुश सर्वातिशयी प्रवृत्ति को जन्म दिया। युग भी ऐसा था कि पण्डित एव सहृदय इसी अलङ्कृत शैली की मॉग करने मे डटे रहते थे, क्योकि सीमान्त प्रदेशो मे होने वाले विदेशी आक्रमणो ने कला एव साहित्य को झकझोर कर रख दिया था। उस समय इन कलाओं में परिवर्तन होना स्वाभाविक था। परवर्ती कला अपनी पूर्ववर्ती कला से परम्परा ग्रहण करती है, यह एकदम सही है। कालिदास ने लिखा भी है कि एक दीपक से दूसरा दीपक प्रज्ज्वलित होता है। इसलिए वास्तु, मूर्ति तथा चित्रकला की विभिन्न शैलियो तथा चित्रकाव्यो मे एक अतिरञ्जित समन्वय परिलक्षित होता है। ''डा0 राधाकमल मुखर्जी'' ने लिखाहै – ''भारतीय मानव वाद वास्तव में भरहुत, सॉची, बोधगया और भाजा की कृतियो मे

एक सूत्र मे बॉधने वाले एक आत्मिक बंधन का प्रतीक है, किन्तु उन कृतियो की गत्यात्मक स्वाभाविकता तो सिधुघाटी की कला की ही विरासत है।''[1]

भारतीय कला मे वास्तु, मूर्ति और चित्र इन तीनो विधाओ का एक समन्वय परिलक्षित होता है। रामायण और महाभारत जैसे आर्षग्रन्थो के समय कला का इतना चमत्कृत रूप नही प्रसृत था। इन ग्रन्थों ने तो अपने युग की नवीन परिस्थिति मे वैदिक काल की विराट दृष्टि को लाने का प्रयत्न किया था। युद्ध के भयङ्कर रूप का जैसे ही उपशमन हुआ, त्यो ही लोगो मे निर्मल और स्वच्छ आनन्द की भावाना जगी। यज्ञो का प्रचार और विस्तार होने लगा, कला और साहित्य के सृजन के लिए उत्साह और प्रेरणा मिली तथा नाट्य, नाटक, काव्य और सहित्य की दिशा मे लोगो की अभिरूचियॉ जागृत होने लगी। अब जीवन व्यापक, सर्वाङ्गीण और सर्वतोमुख हो गया। इस समय के शान्त वातावरण मे साहित्य कला और दर्शन केवल अकुरित ही नही हुए, बल्कि वे पुष्ट और विकसित भी हुए। इस युग मे हमे साहित्य, कला और दर्शन–ग्रन्थो के अतिरिक्त मूर्ति, भित्ति, चित्र आदि के रूप मे कुछ नही मिलता। केवल ईसापूर्व चतुर्थ तृतीय शता0 के कला अवशेषो के आधार पर इस युग की सौन्दर्य चेतना के विषय मे हम केवल अनुमान कर सकते है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के आधार पर जिसमे क्रमश नाटक, नाट्य, रस, सगीत, विभाव, अनुभाव आदि का साङ्गोपाङ्ग वर्णन मिलता है, अवश्य ही वह कई शताब्दियो की विचारधारा का समन्वय और समष्टि है। नाटको में भित्तिचित्र, चित्रपट आदि का उल्लेख साथ ही अलङ्कार और वस्त्रभूषा आदि का वर्णन है। इन सभी बातो से महाभारत के उत्तरकाल की सामूहिक और सृजन के लिए उत्सुक चेतना तथा उर्वर प्रतिभा का स्पष्ट पता लगता है। इस समय जीवन कई धाराओ मे दिखाई पडने लगा था। एक ओर शास्त्रीय यज्ञो का जीवन है तो दूसरी ओर लोगों मे वैराग्य की प्रवृत्ति अङ्कुरित होती हुई दिखाईपडती है। तीसरी ओर लोग आनन्द और भोग मे

---

1 हिन्दी मे ललित कला साहित्य – जगदीश चन्द्र चतुर्वेदी, पृ0 17

सलग्न दिखाई देते है, जिसमे सगीत, नृत्य, मूर्तिकला, वास्तुकला , चित्रकला आदि का सृजन करने वाली प्रवृत्तियो पर लोगो का मनन कार्य चलता है। चौथी और महत्त्वपूर्ण दिशा जनता के साधारण जीवन की है जिसमे दर्शन की गम्भीरता और शास्त्रो की उलझन तथा राजदरबारो मे पली हुई कला का विलास तो नही है, किन्तु धर्म और नीति की मर्यादा है। साथ ही कला की सरसता और जीवन मे अमित आनन्द की उत्कट कामना है। इन चारो दिशाओ मे विस्तार और विकास के लिए जीवन को अनन्त अवकाश मिल गया है।[1] फलस्वरूप पहली और दूसरी शता0 ई0 पूर्व मे सॉची, भरहुत, तथा अन्य कई स्थानो पर पाये गये यक्ष और यक्षणियो की मूर्तिया आदि उस समय की कला के प्रतिनिधि स्वरूप हमे प्राप्त हुए है। ये उत्तरमौर्यकाल की सौन्दर्य भावना के प्रस्तर खण्डो मे अकित अमर प्रतीक है। यह नियम सत्य है कि प्रत्येक युग चूडान्त पर पहुचने से पूर्व ही अपनी विरोधी प्रतिक्रियाये भी उत्पन्न कर देता है। एक ओर चेतना की वह धारा जिसका उद्गम महाभारत के उदात्त आदर्शो से हुआ था अनेक स्त्रोतो और प्रवाहो को लेकर बह रही थी। इसमे दर्शन की गम्भीर दृष्टि तथा नृत्य, सगीत, काव्य के विकास से रस की अनुभूति आदि सभी विद्यमान थे, तो दूसरी ओर बुद्ध की वैराग्यमयी करूणा का आर्विभाव था। फलत इस शून्यता मे सरस कल्पनाओ और भावो का आर्विभाव होने लगा। उनके वैराग्यमय जीवन को व्यक्त करने के लिए पहाडो, गिरी गुहाओ को खोदकर अनन्त धन और अथक परिश्रम द्वारा मदिरो और भित्तिचित्रो का आयोजन किया गया जिसकी तरल धारा ने उस शून्यता को रस, आनन्द और सौन्दर्य के वैभव से भर दिया। जीवन की इस बहुमुखी धारा की अभिव्यक्ति 'मथुरा की कला' मे हुई। इतनाही नहीं अजता की चित्रकारी का प्रारम्भ इसी युग की सौन्दर्य चेतना को रग और रूप देने के लिए हुआ। जीवन के बहुमुखी विकास और वैभव से अवश्य ही आनन्द की प्रखर अनुभूति उत्पन्न हुई होगी, उल्लास और उत्साह उमडा क्योंकि होगा इनके बिना पहाडो को खोदकर स्तम्भो प्रकोष्ठों और मदिरो का निर्माण करना रेखाओ और रगो से ओज, ऐश्वर्य, अनन्तकरूणा, वैराग्य, आनन्द

आदि का व्यक्त करना, पत्थर की बुद्ध मूर्तियो मे टॉकी के बल से आध्यात्मिक चेतना और उदात्त जीवन को जागृत कर देना सम्भव नही था।

आश्चर्य नही कि यह चेतना यही तक सीमित न रह सकी, और तिब्बत, श्याम, कम्बोडिया, चीन आदि देशो मे स्तूपो, मन्दिरो और मूर्तियो मे अभिव्यक्त हुई। इस प्रकार बौद्धधर्म ने जिस नवीन चेतना को जागृत किया थावह हमारे सामूहिक जीवन की धारा मे पूर्णरूपेण घुल–मिल गयी। एक ओर अद्वैतवाद का जागरण हुआ तो दूसरी ओर अवतारवाद भी फलीभूत हुआ। देश के वैभव सम्पन्न और शान्त वातावरण मे फला सहित्य, काव्य, दर्शन और शास्त्रो का सृजन हुआ। यह भारतीय इतिहास मे गुप्तकाल था। यह स्वर्ण–युग था, क्योकि देश की आनन्दचेतना और उर्वर प्रतिभा ने अपने चरम विकास पर पहुँचकर अजता, सारनाथ, मथुरा, यहॉ तक कि देशान्तरो मे मध्यएशिया से लेकर लका तक और फारस से लेकर चीन तक मूर्तियो और चित्रो की सृष्टि की। अजता की कला मे जो प्रौढ परिणति और अत्यन्त उदात्त अभिव्यक्ति प्रकट हुई है वह अन्यत्र दुर्लभ है।[1] यह एक दिव्य अलौकिक कृति है। यह कला प्रेरित कला है, जिसमे सत्य शिव सुन्दरम् तीनो का पुञ्जीभूत समन्वय है। अजता की चित्रकला देवलोक की गाथा मर्त्यलोक के उपकरणों मे जाती है। वाकई अजंता के गुहा मदिर देखने योग्य है। इनमें चैत्य, विहार, स्तम्भ, तोरण तो स्थापत्य के भव्य आकर्षण तो है ही लेकिन सर्वाधिक आकर्षण का केन्द्र तो चित्रकला है। यहॉ के चित्रकार साधारण चित्रकार ही नही थे, बल्कि कलामर्मज्ञ चित्रकार थे। "रेखांप्रशसन्त्याचार्य" इस सिद्धान्तानुसार अजता की कला रेखा का सर्वाधिक माहात्म्य का था तथा यही सर्वप्रमुख गुण था। क्षय और विन्यास के द्वारा रेखा–विन्यास और भी निखर उठता था। चैत्यो के बायी ओर बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर की प्रतिमा उसकी शोभा को द्विगुणित कर देती थी। जहॉ पर उनका महाभिनिष्क्रमण चित्रित है, वह स्थान काफी महत्त्वपूर्ण है। ऐसे ही एक चित्र

---

1 सौन्दर्यशास्त्र – हरद्वारी लाल शर्मा, पृ0 27

भगवान बुद्ध का है जिसमे (बुद्ध मे) पूर्ण रूपेण अमोध शक्ति का चित्र है जिसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इस चित्र मे कलाकार नेनवाणी का प्रयोग किया है न लेखन का केवल रेखाओ के विन्यास से वह कथा को कह रहा है यह इतना विलक्षण है कि देखकर प्रतीत होता है इस पर चित्रशास्त्रो के सम्यक् अनुकरण का बलपूर्वक प्रयोग किया गया है। क्योकि भारत की कला मे विशेषकर नाट्य, मूर्ति तथा चित्र मे मुद्राओ का विनियोग एक सामान्य सिद्धान्त है, अत यह निष्कर्ष ठीक ही है कि चित्र सिद्धान्तो की जो प्रौढता हमने प्राचीन शिल्पग्रन्थो मे देखी। उसके कलात्मक निदर्शनो मे अजता की चित्रकारी वास्तव मे एक बहुत बडे अभाव की पूर्ति करती है। स्थापत्य कौशल शास्त्र तथा कर्म दोनो की सयुक्त बुनियाद पर प्रतिष्ठित हुआ है। इतना ही नही बौद्ध चित्रकला का दूसरा रूप हमे सिहलद्वीपीय सिगरिया मे भी मिलता है। यहॉ के भित्तिचित्रो मे वर्णविन्यास और वर्तनी रेखा का पूर्ण पालन दिखाई पडता है। बाघ की चित्रकला परतो अजता के उत्तरवर्ती चित्रणो का प्रभाव पडता है। इस चित्रकला की सर्वप्रमुख विशेषता लोक चित्रण है, जबकि अजता की प्रमुख विशेषता धर्मचित्रण है।[1] पांचवी–छठी शता० मे बौद्ध धर्म की पकड ढीली पड चुकी थी। ऐसे समय मे लोक मनोवृत्ति का प्रतिविम्बन सहज था। अपने चूडान्त विकास को पहुॅच कर गुप्त युग की पल्लवित और पुष्पित आनन्द चेतना शाखाओ मे विभक्त होने लगी। एक ओर मदिरो और मूर्तियो अवतार और जातक के कथानकों का अङ्कन हुआ और दूसरी ओर केवल सौन्दर्य के आस्वादन हेतु सुन्दरी और उनकी लीला और विलासों का ललित कला के रूप मे सृजन हुआ। इस प्रकार धार्मिक कला और लोक कला का भेद स्पष्ट होने लगा। दोनो धाराओ का अलग–अलग विकास हुआ। धार्मिक कला में मन्दिरों मूर्तियो धाराओ का अलग–अलग विकास हुआ। धार्मिक कला मे मन्दिरों मूर्तियों का निर्माण और चित्रण प्रधान था। मध्यकाल के उदय होते–होते वराह, सूर्य नन्दीश्वर, सरस्वती, लक्ष्मी

---

1 भारतीय इतिहास–सस्कृति, कला, राजनीति, धर्म दर्शन – डा0 ईश्वरी प्रसाद प्रकाशन– मीनू पब्लिकेशन्स म्योर रोड, इलाहाबाद, सस्करण– पॉचवा

आदि की अनगिनत मूर्तियो से सारा देश परिपूर्ण हो गया। वैष्णव, शैव, शाक्त की शाखाए कला के क्षेत्र मे प्रविष्ट होने लगी। फलस्वरूप उत्तर मे विष्णु और वैष्णव धर्म की मूर्तिया और मन्दिर बने तथा दक्षिण मे शिवमूर्तियो और शैव मन्दिरो का निर्माण हुआ। एलोरा, एलीफैटा के मंदिर, नटराज की धातुमूर्तियॉ, जगन्नाथ, द्वारिका, सोमनाथ आदि का आविर्भाव इसी धार्मिक कला के पीछे न रही। नायक और नायिकाओ के अनगिनत भेद उनके लीला–विलासो आदि सभी आनन्द पूर्ण अवसरो का चित्रण हुआ। भुवनेश्वर खजुराहो आदि की कला ललित कला के विकास के ही नमूने है। कला का शास्त्रीय रूप भी स्पष्ट होने लगा तथा अनेक शिल्प तथा मुद्रा ग्रन्थो की रचना हुई । गुप्तोत्तर काल मे तो विशाल मदिरो ने कला को और भी प्रोत्साहन दिया। इन्ही कलाओ से वास्तुशिल्पियो एव कलाकारो की आजीविका पूर्ण होती थी। मदिरो की भित्तियो पर उभरी आकृतियॉ तथा स्वतत्र मूर्तियॉ जो अनेक पौराणिक घटनाओ को चित्रित करती थी।[1] शिल्पियों की कला निपुणता का बोध कराती है। कास्य मूर्तिया देवी देवताओ तथा सतों से सम्बद्ध थी। इतना ही नही अलङ्करण के लिए जो आभूषण एवं जवाहरात बनाये जाते थे उनसे स्वर्णकार की शिल्पकारिता का सङ्केत मिलता है। इस युग ने सगीत, नाट्य तथा कला को भी विकास के चरम बिन्दु पर पहुॅचाया। तजौर मदिर के अभिलेख स्पष्ट बताते है कि देवदासियॉ नर्तको तथा गायको के लिए भूमि तथा आवास व्यवस्था करती थी। चोलो और पाण्ड्यों के लेख यह बताते है कि महाभारत से सम्बद्ध पौराणिक घटनाओ का अभिनय मण्डपो में होता था। इस कला की यूरोप की मध्ययुगीन कला से तुलना करने पर विदित होता है कि यह कला गुप्तकालीन कला की प्रौढता की चरमावस्था है। कला के सभी प्रकारो यथा–वास्तुकला, चित्रकला, लक्षणकला सभी मे शास्त्रीय नियमों का प्रयोग किया गया था। इन्ही का अनुसरण करते हुए कलाकारो ने अपनी कला की स्फुटता का परिचय दिया।[2]

---

1 भारतीय मूर्तिकला – रायकृष्ण दास – नागरीप्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग।

2 प्राचीन भारत का राजनीतिक एव सास्कृतिक इतिहास – डा0 आर0एन0 पाण्डेय, पृ0 139

गुप्तोत्तरकालीन वास्तुकला मे शास्त्रकारो ने तीन शैलियो (नागर, द्रविड, वेसर) द्वारा कला का निर्धारण किया। उडीसा के मदिर शुद्ध नागर शैली का प्रतिनिधित्व करते है जो सातवी से 13वी शता0 के मध्य निर्मित हुए थे। इसका आकर्षक भाग तो शिखर है। शिखर मे स्थित खडी सभी धारिया उसकी अलङ्कृत शैली को प्रभावशाली बना रही है। इतना ही नही भारतीय प्रशस्तियो की वास्तुकला का गुणानुवाद करने वाला कोणार्क का सूर्य मदिर भी अपनी प्रकृष्ट सुन्दरता हेतु विख्यात है। इसके विमान का निर्माण वास्तुकलाविद् तथा तक्षणशिल्पी की सम्मिलित प्रतिभा का परिणाम है। इसमे चारो ओर पत्थर के तराशे हुए पहिए लगे है जिससे इस मदिर की प्राचीनता एव भव्यता का अनुमान लगाया जा सकता है। मुख्य भवन के प्रवेश द्वार के सामने नाट्य मदिर है। बनावट मे कोणार्क का मदिर कई कारणो से अद्वितीय है। मन्दिर के सभी अङ्ग शिखर, मण्डप, देवुल, जगमोहन इस प्रकार एक मे समन्वित है कि वे एक ही भवन के अविच्छिन्न अङ्ग दिखाई देते है। इसके अतिरिक्त इसके सभी वाह्य भाग उकेरी हुई आकृतियो से सजे है ये सभी आकृतियॉ वात्स्यायनके कामसूत्र मे वर्णित चित्रणो का आभास करती है।

आठवी शता0 मे ध्वनि का आविष्कार हो जाने पर वह दो शाखाओ मे विभक्त हो गया। एक ओर रसप्रधान तो दूसरी ओर ध्वनि–प्रधान शास्त्रो का निर्माण हुआ। इसका प्रभाव कला पर पडा। रस प्रधान कला मे भॉति–भॉति से रसो का साक्षात्कार कराने का प्रयत्न किया गया। 12वीं शता0 के आरम्भ मे जब कला को जन्म देने वाली प्रतिभा और प्रेरणानिर्बल हुई तब इसी प्रवृत्ति के कारण कुछ ऐसे चित्र, साहित्य और मूर्तियों का निर्माण हुआ जिनमें श्रृङ्गार के स्थान पर कुरूचि और वासना की गन्ध आती है। उधर ध्वनि–प्रधान विचार धारा में सहानुभूति के प्रकारको समझने के लिए वक्रोक्ति, काव्यनुमिति आदिका आविष्कार हुआ। प्रत्येक रूप, रग और रेखा के स्पष्ट सापाद् अर्थ को छोडकर उनके ध्वन्यात्मक अथवा ध्वनित अर्थों का पता लगया गया। फलत. काव्य और कला मे गम्भीरता के स्थान पर गूढता और अस्पष्टता आ गयी। चित्रों की भङ्गिमा और मुद्राओ का तान्त्रिक अर्थ लगाया

जाने लगा। इस प्रकार 12वी शता0 के साहित्य और कला रचनाओ मे प्रसाद गुण का अभाव खटकने लगा तथा वे क्लिष्ट और दुरूह कल्पनाओ से ढक सी दी गयी है। अब मध्य युग आरम्भ होता है। इसके दो भाग हुए (1) पूर्वी मध्यकाल (2) उत्तर मध्य काल। पूर्व मध्यकाल 600ई0 से 900 ई0 तक दोलायमान रहा और उत्तर मध्यकाल 900–1300 ई0 तक। यद्यपि पूर्व मध्यकाल मे गुप्त कला के कुछ घटक विद्यमान है इस कला के गङ्गावतरण के लिए भागीरथी की तपस्या, शिव का त्रिपुरदाह, रावण का कैलाश उत्तोलन आदि पौराणिक एवं सजीव चित्रण है। इस काल मे मूर्तिकला के तीन केन्द्र (एलोरा, एलीफैटा, मामल्लपुरम्) मन्दिर स्थापत्य के नमूने है। क्योकि यहॉ के मन्दिर पहाड काटकर बनाये गये है।

एलीफैटा के गुहामदिर एलोरा के समान ही प्रसिद्ध है। भारतीय स्थापत्य के अद्‌भुत निदर्शन त्रिमूर्ति का कहना ही क्या है? सुमात्रा, जावा और बोरोबुदूर के स्तूपो का कहना ही क्या है? कलामर्मज्ञो ने इन्हे पत्थर मे तराशे हुए महाकाव्य की उपाधि दी है जिनमे जातक तथा बुद्ध की जीवनी के अनेक दृश्य है। उत्तरी मध्यकाल के स्थापत्य में खजुराहो के समस्त मदिर निर्माण कला की उत्तम पच्चीकारी को अभिव्यक्त करते है। यहॉ के मंदिर वास्तुकला की विशेषता शिखर है। इसकी दूसरी विशेषता दीवारो के मध्य भाग का अलङ्करण है।[1] दीवारो का मदिर बेहद उत्कृष्ट है। यहॉ की वास्तुकला मानव चेतना से स्पन्दित है। मन्दिर के अन्दर का भाग, मण्डपो के स्तम्भ शीर्ष आदि सभी सुष्ठ आकृतियो से सुसज्जित है। इन सभी दृश्यो को देखकर प्रतीत होता है कि कलाकार ने कुरूपता पर सौन्दर्य की विजय या पाशविकता तथा अध्यात्मिकता का विपर्यास कला मे उभारने का सफल प्रयास किया है।[2] गुप्तोत्तरकाल के राजस्थान के 5 जैन मदिर वास्तुकला तथा तक्षण कला की दृष्टि से सुन्दर है। इनमे से दो मदिर पञ्चायतन शैली के है। मदिरो के स्तम्भ का प्रत्येक भाग सुरूचिपूर्ण नक्काशी से परिवेष्टित है। ओसिया का

---

1. प्राचीन भारत का इतिहास तथा सस्कृति – के0सी0 श्रीवास्तव, पृ0 109
2 कला और आधुनिक प्रवृत्तियॉ – रामचन्द्र शुक्ल – पृ0 37

मदिर उसका आकार उसका अलङ्करण उसकी शोभा को तथा उसकी शैली की चमत्कार प्रियता को बढा देते है। इन मदिरो के स्तम्भ पूर्ण विकसित अवस्था मे है। मङ्गलघट स्तम्भो के आधार एव शीर्ष दोनो को अलङ्कृत करता है। इतना ही नही लताओ को उकेरना, गङ्गा यमुना के दृश्य इत्यादि विभिन्न वितानो से मन्दिरो का अलङ्करण किया गया है। द्वारो पर दतुरावमेहराव ऊँचे–ऊँचे ऊरूश्रृङ्ग आदि से मन्दिरो को यथावत अलङ्कृत एव सुसज्जित किया। इतना होते हुए भी प0 भारत के मदिरो की निर्माण शैली का चरमोत्कर्ष दिलवाडा के जैन मदिरो मे मिलता है। हिन्दू चित्रकला का उद्‌भव भी 8वी शता0 के लगभग हो चुका था और यह 16वी शता0 तक अपने प्रकर्ष को द्योतित करता रहा। 17वी शता0 तक तो चित्रकला का पूर्ण रूप से विराम हो गया था। क्योकि सभी कलाए एक कालावच्छेदन नही पनप सकती, चित्रकला के ह्रास पर प्रसाद कला तथा मूर्ति कला पनपी। इसी कला धारा मे भारत की कला की अजस्त्र धारा बहती रही और आगे चलकर इसी ने मरूस्थलो को सिञ्चित करने के लिए राजपूत चित्रकला को प्रोत्साहित किया। यद्यपि यह समय प्रसादो के उदय का समय था। इस समय के स्थापत्य की दूसरी विशेषता 'शास्त्रीयता' है। इस काल की कला की सबसे बडी विशेषता अध्यात्म की अभिव्यञ्जना है। इन अलङ्करणो की विशेषता यह है कि ये स्वय अभिप्रायो के रूप मे चित्रित हुए है। कला की इससे बढकर और क्या अभिव्यक्ति हो सकती है। जहॉ भूषण ही भूष्य बन जाता है। अत. मूर्ति स्थापत्य की समीक्षा मे प्रासाद वास्तु को हम अलग नही कर सकते।[1] जहॉ रही बात पल्लव शिल्पकारों की उनकी वास्तुकला मे तो हमे द्रविड शैली के प्रारम्भिक रूप का विन्यास हमे भारवि के काव्य मे तथा उसका परिवर्धित एवं विकसित रूप माघ, रत्नाकर इत्यादि के ग्रन्थो मे मिलता है। क्योंकि कालिदास जैसे आदर्शमय चित्रो को और आदर्शीभूत करना परवर्ती कवियो के वश के बाहर था, इसलिए उन लोगो ने एक नये पक्ष को अङ्गीकार कर चमत्कार

---

कला और साहित्य की दार्शनिक भूमिका – शिवशकर अवस्थी, पृ0 103

प्रियता की नई शैली को जन्म दिया। वहॉ कला प्रधान हो उठी, शाब्दिक चमत्कार प्रदर्शन की होड सी लग गयी। विषयवस्तु से असम्बद्ध विस्तारी उत्प्रेक्षा, प्रधानविम्बयोजना पाठक को उद्विग्न करने लगी। तब रत्नाकर, माघ, क्षेमेन्द्र आदि कवियो ने अपनी उच्च कोटि की प्रतिभा से काव्य को उन्मेषित किया तथा उनमें सुन्दर शिल्प का हृदयग्राही वितान फैलाकर उस अलड्कृत शैली को चरम बिन्दु पर पहुँचाया। गुप्तो मौर्यों की कलाओ मे जो सजीवता एव जीवन्तता विद्यमान थी उसका पूर्णरूपेण समापन करके एक नई विधा से उसको सजा–सवार कर कृत्रिमता की भीनी चादर से आवेष्टित किया जिससे वह स्वाभाविकता तो नही रह पायी, लेकिन चमत्कृत धरता एव अलड्करणप्रियता का तो कहना ही क्या था? पल्लवो ने तो वास्तुकला को काष्ठकला एव कन्दराकला से मुक्त कराने का सोचा। क्योकि इन्होने अपनी चारो शैलियो से वास्तुकला को भिन्न–भिन्न आकार देना चाहा। इनके मदिर मण्डप एव रथ थे।[1] जिसे सप्तपैगोडा के नाम से भी अभिहित करते थे। मदिर का आयताकार होना, चैत्य का त्रिकोण होना छत को ढोलाकार होना गवाक्षो पर गोपुरम का निर्माण होना उनकी विराट एवं भव्य शोभा का द्योतक था। मदिरो का जो प्रारूप पल्लवो ने प्रकट किया वह चोलो के समय अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हो गयी। चोलो के पश्चात् पाण्ड्य आये और इनकी शैली मे मदिरो का निर्माण कार्य बद हो गया। और नई प्रवृत्तियो का जन्म होने लगा। इन लोगो ने अपनी कुशलता का प्रमाण शिखरो और विमानो मे दिखाया था, किन्तु पाण्ड्यो के काल से वह अपने कौशल का प्रदर्शन मदिरो के वाह्यवर्ती भागो मे करने लगे।[2] मदिर तो लगभग पूर्णरूपेण उसी शैली मे होते थे, लेकिन सजावट में फर्क हो गया। अब मदिर चारो ओर से प्राचीरो से आवेष्टित होने लगे। जावा मे तो 13वी शता0 तक के मूर्तिकला के अनुपम उदाहरण प्राप्त होते है। चौदहवी शता0 के बाद तो मूर्तिकला एक प्रकार से पगु बन गयी थी। क्योकि यह मुसलमानी युग था। कुम्मा के काल मे

---

1 प्राचीन भारत का इतिहास – विमलचन्द्र पाण्डेय

2 कालिदास साहित्य एव वादनकला – सुषमा कुलश्रेष्ठ – पृ0 26

कीर्तिस्तम्भ तथा कुछ मूर्तिया बनी परन्तु उ0भारत इस काल मे एक प्रकार से मूर्ति स्थापत्य के लिए दरिद्र ही कहा जाएगा। पू0 मध्यकाल मे निर्मित शिव नटराज की प्रतिमा का विकास उत्तर काल तक चलता रहा जो भारतीय स्थापत्य की एक महनीय निष्ठा है।[1] इसके अलावा इस काल मे कृष्णदेवराय और उसकी रानियो का चित्र, विजयनगर के विष्णु का विट्ठल स्वामी मंदिर, राम के हजारा रामस्वामी नामक मदिर दाक्षिणात्य शैली के सुदर निदर्शन है। अभी रह गयी थी चित्रकला की बात। जिसकी दो धाराए प्रस्फुटित हुई (1) राजपूत कला (2) मुगल कला। जिनमे राजपूत कला 19वी शता0 तक तथा मुगलकला 18वीं शता0 तक ही दोलायमान रही। राजपूत कला पूर्णरूपेण हिन्दू थी। इसने अजन्ता की बौद्धकला का विलोपकर राजपूत कला को पनपने का एक अच्छा अवसर प्रदान किया। इस कला का प्रधान केन्द्र जयपुर था लेकिन इस शैली का विकास कॉगडा मे हुआ। इस कला मे न धार्मिक चेतना है न अध्यात्म का उन्मेष बल्कि इसकी प्रमुख विशेषता 'अतिरजन' है।

'मुगलकला'— जहॉ राजपूतकला जनतात्रिक एवं रहस्य प्रधान है वही मुगल कला राजप्रधान और यथार्थमय है। मुगलचित्रकला का श्रीगणेश तो अकबर के समय मे होता है। इसने ईरानी, हिन्दू सभी कलाकारो को सरक्षण दिया। जहॉगीर के समय तो यह चित्रकला विकास के चरमबिन्दु पर पहुॅच गई। लेकिन शाहजहॉ के समय यह चित्रकला ह्रास की ओर झुकी क्योंकि शाहजहॉ का काल तो वास्तु स्थापत्य का स्वर्णयुग था। औरगजेब के समय तो प्राय सभी कलाए मर गई। मुगल चित्रकला के दो प्रतिमान थे — (1) क्षुद्राकृति चित्रण (2) पूर्णाकार चित्रण। इसमे प्रथम कला की दृष्टि से जयादा उपयोगी थी। इनमे श्रृङ्गार, युद्ध, चित्र, दरबार पौराणिक चित्र इत्यादि सभी विषय थे। 'पूर्णाकार चित्रण' मे तो इतिहास का आदिम स्त्रोत, उषा के स्वप्न की चित्रकला है।

---

1 भारतीय चित्रकला — रायकृष्ण दास — पृ0 10

18वी शता0 मे पूर्णरूपेण मुगल चित्रकला का लोप हो गया। उन्नीसवी शता0 के अन्तिम क्षण मे बगाल मे चित्रकला का नवप्रभात अवनीन्द्रनाथठाकुर के हाथों द्वारा हुआ। पराधीनता की बेडियो मे जकडे देश के लिए यह स्वाभाविक था कि उसे नई रोशनी मिले जिससे चित्रकला का सास्कृतिक नवजागरण प्रस्फुटित हो उठे। इन्होने अजता, सिगरिया, बाघ आदि की देनो का सम्यक् अनुकरण किया और एक नयी परम्परा पल्लवित की। अतएव कला का विकास सस्कृति का विकास है। कविता, नाट्य, नृत्य, सगीत के सदृश चित्रकला की भी अपनी प्राचीनता है। सस्कृत के काव्यो की भी एक बहुत बडी सूची है। जिसमे चित्ररचना के सम्बन्ध मे संदर्भ भरे पडे है। कालिदास के तीनो नाटको (अभि0, माल0 विक्र0) मे यथा मालविकाग्निमित्रम् मे नृत्य, विक्रमोर्वशीय मे सगीत, तथा शाकु0 मे चित्रकला का समयक् ज्ञान परिलक्षित होता है। इतना ही नही रघुवश एव कुमारसम्भव के परिशीलन से प्रतीत होता है कि प्राय प्रेमी एव प्रेमिका अपने चित्रो को बडे मनोयोग से सजाते थे। भावनामय चित्र की एक सुलभ कल्पना देखिए – ''मत्सादृश्यय विरहतनु वा भावगम्य लिखन्ती''। वाक्य से केवल चित्रकला का ही प्रमाण नही प्राप्त होता बल्कि कालिदास के सभी शास्त्रो मे निष्णात् होने की भी जानकारी प्राप्त होती है। निम्न वाक्यो से उनकी प्रतिभा ऑकी जा सकती है–

''विद्युत्वन्त ललितवनिता सेन्द्रचाप सचित्रा,<br>
सगीताय प्रहतमुरजा स्निग्धगम्भीरघोषम्।<br>
अन्तस्तोय मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रलिहाग्रा,<br>
प्रासादास्त्वातुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेषै ।।'' उत्तरमेघ– 1/1

तेनोष्टौ परिगमिता समा कथचिद्बालत्वादवितथसूनृर्तन सूनो ।<br>
सादृश्यप्रतिकृतिदर्शनै प्रियापा स्वप्नेषु क्षणिक समागमोत्सवैश्च ।।

रघु0 8/92

वेश्मानि राम. परिबर्हवन्ति विश्राण्य सौहार्दनिधि· सुहृन्मय·।<br>
वाष्पायमाणो बलिमन्निकेतमालेख्यशेषस्य पितुर्विवेश।। रघु0 – 14/15

''कार्यासैकतलीनहसमिथुना स्त्रोतोवहामालिनी<br>
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरो पावना.।<br>
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निमातुमिच्छाम्यध.,<br>
श्रृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयन कण्डूयमानां मृगीम्।। अभि0 6/17

कालिदास की इस सरस्वती मे जिस काव्य गङ्गा और चित्र यमुना के सगम का प्रोत्थान हुआ है वह बडा मार्मिक है। ऐसे ही उदाहरण बाण ने कादम्बरी और हर्षचरित मे प्रकट किया ऐसा प्रतीत होता है। बाण के प्रत्येक प्रासाद वर्णनो मे चित्रशाला का अनिवार्य साहचर्य है। चित्र प्रसार, चित्रभित्ति, चित्रभूमिबधन सभी का उद्घाटन यथावसर किया गया है। देखिए—

''सकलदेशादिश्यमानशिल्पिसार्थागमनम्'' हर्षचरित – 142

''चित्रलेखादर्शित विचित्रसकल त्रिभुवनाकाराम्'' कादम्बरी, पृ0 176

कालिदास के ''त्वामालिख्य प्रणय कुपितां'' (उ0मे0) श्लोक मे चित्रमयता पूर्ण प्रसङ्गो को बाण देख चुके थे। उसी परम्परा को और आगे पल्लवित करते हुए बाण ने कहा— ''रूपलेखयोन्मीलनकालाञ्जनवर्तिका''। कादम्बरी, पृ0 455

बाण के इन वर्णनो को देखकर प्रतीत होता है कि शायद कुशल चित्रकार को भी इतना ज्ञान न हो जितना बाण, कालिदास, भवभूति, धनपाल इत्यादि कवियो को चित्रकला का सम्यक् ज्ञान था। 12वी शता0 के उद्भट विद्वान् श्रीहर्ष में प्रौढ पाण्डित्य का उत्कट विलास दृष्टिगत होता है परन्तु उनके चित्र शास्त्रीय ज्ञान से कम ही लोग परिचित है ये मध्यकाल के कवि है। इनके समय सभी शिल्प विकास के चरम बिन्दु पर थे। इस काल की पत्रभङ्गि रचना तो प्रसिद्ध ही थी। अक्षरालेख भी पूर्णरूपेण प्रचलित था। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीहर्ष ने दमयन्ती के मुखसौष्ठव, के वर्णन प्रसङ्ग मे भौहो, तिलक की उपमा मे ॐ (दो दल, बिन्दु तथा अर्धचन्द्र) समुत्थापित किया है। बालिका दमयन्ती के कुचो की उपमा विसर्गों से दी गयी है।

''आकल्पविच्छेदविवर्जितो य· स धर्मशास्त्रव्रज एव यस्या·।
पश्यामि मूर्द्धा श्रुतमूलशाली कण्ठे स्थित. कस्यमुदे न वृत्त·।।
भ्रुवौदलाभ्यां प्रणवस्य यस्यास्तद्विन्दुना भालतमालपत्रम्।
तदर्द्धचन्द्रेण विधिर्विपञ्ची निक्वाणनाकोणधनु. प्रणिन्ये।।'' नै0– 10/85,86

इस प्रकार श्रीहर्ष के नैषध से चित्रशास्त्र के परम्परित सिद्धान्तो का ही ज्ञान नही होता, बल्कि कुछ नये उन्मेष भी दिखाई देते है। ओकार, विसर्ग आदि की उद्‌भावना चित्रकला की देन है। शरीरावयवो का तो सुन्दर उद्‌घाटन इन्होने नवे सातवे सर्ग मे दमयन्ती के नखशिख वर्णन मे किया– देखिए –

"अस्यायदास्येन पुरस्तिरश्च तिरस्कृत शीतरूचान्धकारम्।
स्फुटस्फुरद्भङ्गकचच्छलेन तदेव पश्चादिदमस्ति बद्धम्।।" नैषध0–7/21

इसी प्रकार चित्रशालाओ का समयक् दिग्दर्शन तो इन्होने 18वे अध्याय मे कराया है। जिस प्रकार महाकवि कालिदास ने शरीर मुद्राओ से सम्बन्धित चित्रो को नई उद्‌भावनाओ से मण्डित किया उसी प्रकार नैषधकार ने भी महनीय चित्रकार के लोकोत्तर कौशल का सफल प्रदर्शन किया। इसके अलावा ये सभी गुणवत्ताए माघ, दण्डी, भारवि, रत्नाकर, भवभूति, राजशेखर इत्यादि कवियो मे भी किसी प्रकार कम नही है।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि भारतीय जीवन मे मूर्तिकला, वास्तु, चित्रकला, सगीत, नाट्य, नाटक आदि का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्योकि किसी देश ओर साहित्य का कलात्मक जीवन ही उसका परिचायक होता है। कवियो की कृतियो मे चित्रोन्मेष की इस भावना से सर्वशास्त्र विशारद् एव सर्वकलापटु होने का प्रमाण मिलता है। इस प्रकार ईसा की शताब्दियो मे स्थापत्य सरल नही रह गया था, बल्कि वह भी शनै शनै अतिरञ्जित होता गया जो उन युगो की चमत्कार प्रियता को ठीक उसी प्रकार द्योतित करता है जैसे समकालिक सस्कृत काव्य–परम्पराएं करती रही। साहित्य और कला समाज की दर्पण ही नही, बल्कि समाज मे मानवमन की नित्य बदलती प्रवृत्तियो की अभिप्रेरक भी है।

□

# उपसंहार

सस्कृत काव्य–जगत मे उपस्थित प्रत्येक युग के महाकाव्यो मे चामत्कारिक शैली का जो रूप मिलता है उसका वर्णन पिछले अध्यायो मे किया जा चुका है। इतना ही नही सस्कृत साहित्याकाश मे काव्य का उद्भव कैसे हुआ? काव्य किसे कहते है? काव्य का क्या प्रयोजन है? साथ ही काव्य के कौन–कौन से शोभाधायक तत्त्व है? इन सभी का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

लौकिक काव्य–जगत् मे आर्षकाव्य रामायण एव महाभारत ही माने जाते है। इन्ही दोनो महाकाव्यो से महाकाव्यो की सुदृढ परम्परा का आरम्भ होता है। इनमे वाल्मीकि कृत रामायण पहला आदिकाव्य है। काव्यारम्भ इसमे उपस्थित क्रौञ्चवध की मर्मस्पर्शिनी घटना से होता है। तभी ब्रह्मा द्वारा उपदिष्ट वाल्मीकि ने साक्षात् धर्म स्वरूप राम को लेकर जिस कथा का प्रणयन किया उसमे इहलोक मे ही परलोक की रचना करके सत्य की असत्य पर, धर्म की अधर्म पर विजय दिखाई है।

रामायण के पश्चात् व्यास प्रणीत महाभारत आता है। व्यास का आदर्श उच्च था जिनमे मानव पुरूषार्थ अपने चरम को पहुॅच गया है। महाभारत का सन्देश है कि मानव धर्म ही सब कुछ है। उसी से अर्थ और काम दोनो सिद्ध हो सकते है। जिस प्रकार दम्पत्ति वियोग का क्रन्दन रामायण मे था उसी प्रकार धर्म और मानवता के वियोग का क्रन्दन महाभारत मे है।

आर्ष कवियों के उपरान्त हम कालिदास और अश्वघोष के काल मे प्रवेश करते है। इस काल के महाकाव्य उन सहृदयो को लक्ष्य करके लिखे गये थे जो काव्यशास्त्र से अभिज्ञ हो चुके थे। इसलिए इन महाकाव्यो के रचयिताओ का व्यक्तित्त्व वाल्मीकि और व्यास से भिन्न हो गया। कला के प्रति जितने जागरूक कालिदास और अश्वघोष दिखाई दिये उतने वाल्मीकि, व्यास नही। यह भेद युग के अनुसार था। कालिदास की सारस्वत–प्रधान शैली को अपनाते हुए अश्वघोष ने उच्चतम आदर्श, पारलौकिक वैराग्य को अभिव्यक्ति करने के लिए महात्मा बुद्ध जैसे उदात्त चरित्र को अपने महाकाव्य का नायक बनाया। कथाप्रवाह, वर्णनशैली, भाव–व्यञ्जना सभी में पूर्ण प्रभावोत्पादकता यहॉ विद्यमान है।

कालिदासोत्तर काल मे अश्वघोष, भारवि, भट्टि, कुमारदास, माघ, रत्नाकर, बाण, सुबन्धु इत्यादि कवियो के काव्यो मे भावपक्ष का प्रभाव गौण होता गया तथा उच्च कलात्मकता ने सर्वत्र अपना साम्राज्य स्थापित किया। इतना ही नही इतिवृत्तात्मक प्रसङ्गो के साथ ही भावात्मक प्रसङ्गो की योजना भी बडी सामञ्जस्यपूर्ण शैली मे होने लगी थी। अब महाकाव्यो की रचना रूढिबद्ध होती चली गयी और उसका रूप भी बडा ही कलापूर्ण हो गया।

माघोत्तर काल मे यह प्रक्रिया अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर गयी। अब काव्यो मे केवल नक्काशी और सजावट ही रह गयी और रस का नामोनिशान मिट गया। माघ, रत्नाकर इत्यादि कवियों ने भी अपने–अपने महाकाव्यो मे इसी विधि का अनुकरण किया। इस समय तक चामत्कारिक शैली ने सर्वत्र अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था।

12वी शता0 के आस–पास जैनकवियो ने लोकप्रचलित कथाओ का आश्रयण कर ऐसे चरित काव्यो का निर्माण किया जिनमे प्रेम–भाव को अधिक प्रमुखता मिली। हरिश्चन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय इसी कोटि का है जिनमें धार्मिक उपदेश ही सर्वत्र दिये गये है। इसके अनन्तर कुछ द्विसन्धान काव्य रचे गये जिनमे कविराज (12वी शता0) का राघवपाण्डवीयम् कविराजमाधवभट्टकृत राघवपाण्डवीयम्, हरदत्तसूरिकृत राघवनैषधीय तथा चिदम्बरकृत राघवपाण्डवयादवीय (16वी शता0) विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इसी प्रकार विलोम काव्यो मे वेकटाध्वरिकृत यादवराघवीय एवं सूर्यदेवकृत रामकृष्णविलोमकाव्य है। राघवपाण्डवीयम् जैसे द्विकथात्मक महाकाव्यो मे एकाधिक विषयो का समिश्रण कर कवियो ने अपनी चामत्कारिक शैली की अभिव्यक्ति की है। ऐसी ही चमत्कारप्रियता इस युग की कलाओ मे भी विद्यमान थी। यह ठीक उसी प्रकार प्रतिबिम्बित होती थी जिस प्रकार इस युग की काव्य परम्पराए। निःसन्देह साहित्य और कला समाज के परिवर्तित ही नही करते बल्कि मानव मन की सहज प्रवृत्तियो को अभिप्रेरित भी करते है। इसलिए कहा गया है कि– साहित्य समाज का दर्पण है।

# सहायक ग्रन्थों की सूची


1 अभिनवसाहित्यचिन्तन – डा0 भगीरथ दीक्षित – इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, प्र0स0

2 अभिनन्द कृत रामचरित –

3 अश्वघोषकृत बुद्ध चरित –

4 अश्वघोषकृत सौन्दरानन्द – रमाशकर त्रिपाठी – शान्ति त्रिपाठी, वाराणसी।

5 आनन्दवर्धनकृत ध्वन्यालोक–आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि–ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, तृ0 स0

6 कवि और काव्यकार – डा0 सुरेश चन्द्र पाण्डेय –

7 कला के सिद्धान्त – आर0जी0 कलिङ्गवुड – राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

8 कला और आधुनिक प्रवृत्तियॉ– रामचन्द्र शुक्ल – 1958, 1963, 1974, तीनो स0

9 कला और साहित्य की दार्शनिक भूमिका – शिवशकर अवस्थी – सातवाहन पब्लिकेशन, दिल्ली, प्र0 स0, 1983

10 कविराज कृत राघव पाण्डवीयम् –

11 कालिदासकृत कुमारसम्भव (पुसवनी टीका) – प0 गगाधर शास्त्री – चौखम्बा सस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, तृ0 स0

12 काव्य के मूल स्त्रोत और उनका विकास – डॉ0 शकुन्तला दुबे – हिन्दी प्रचारक प्रतिष्ठान, वाराणसी।

13 कालिदासकृत रघुवंश – डॉ0 कृष्णमणि त्रिपाठी – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, प्र0 स0

14. कालिदास के पक्षी – हरिदत्त वेदालङ्कार –

15 कालिदास और उनकी काव्यकला – वागीश्वर विद्यालङ्कार – मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, प्र0 स0

16 कालिदास कृत मेघदूत – डॉ0 शिवराज शास्त्री – साहित्यभण्डार, मेरठ, नवीन स0

17. कालिदास साहित्य एवं वादनकला – सुषमा कुलश्रेष्ठ – ईस्टर्न बुक लिकर्स प्रकाशन प्र0 स0, 1986

18 काव्यस्वरूप सौन्दर्य एव चमत्कार – डॉ0 महेश भारतीय – शारदा बुक एजेन्सी, गाजियाबाद, प्र0 स0, 1987

19 कालिदास कृत अभिज्ञान शाकुन्तलम् – रमाशंकर त्रिपाठी –

20 कालिदासकृत मालविकाग्निमित्रम् –

21 कालिदास का बिम्बविधान – डॉ0 अयोध्या प्रसाद द्विवेदी – अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, स0, 1986

22 कादम्बरी का बानस्पतिक वैभव – डॉ0 माया त्रिपाठी – राका प्रकाशन, इलाहाबाद।

23 कालिदास की समीक्षा परम्परा – राधावल्लभ त्रिपाठी – हरिसिह गौर वि0वि0, प्र0सं0 1988,

24 कुन्तक कृत – वक्रोक्तिजीवित –

25 कुमारदासकृत – जानकीहरण – ब्रजमोहन व्यास जी

26 जयदेव कृत चन्द्रालोक – डा0 श्रीकृष्ण मणि त्रिपाठी (विमला सुधा सस्कृत हिन्दी टीका) – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, स0 1988

27 जैन शोध और समीक्षा – डा0 प्रेम सागर जैन –

28 जैन सस्कृत महाकाव्य परम्परा और अभय देवकृत जैन महाकाव्य जयत विजय – राम प्रसाद त्रिपाठी – साहित्य निकेतन, कानपुर, स0 1984,

29 दण्डीकृत काव्यादर्श –

30 धनञ्जयकृत दशमरूपकम् – श्री गोवर्धन जी शास्त्री एव प्रो0 चन्द्र शेखर जी पाण्डेय

31 धनञ्जयकृत दशमरूपकम् – रमाशकर त्रिपाठी – वि0वि0 प्रकाशन, वाराणसी तृतीय स0 2001

32 नैषधपरिशीलन – डॉ0 चण्डिका प्रसाद शुक्ल – हिन्दुस्तान एकेडमी, इला0

33 पण्डित राज जगन्नाथ कृत – रसगगाधर – पण्डित श्री बदरीनाथ झा– चौखम्बा, विद्याभवन, वाराणसी, नवम स0 2001

34 प्रकृति और काव्य – डॉ0 रघुवश –

35 प्रवरसेन कृत – सेतुबन्ध

36 प्राचीन भारत का इतिहास – डॉ0 विमलचन्द्र पाण्डेय – केदारनाथ रामनाथ प्रकाशन, मेरठ, 11वा स0

37 प्राचीन भारत का इतिहास – द्विजेन्द्र नारायण झा, एव कृष्ण मोहन श्री माली – हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

38 प्राचीन भारत का इतिहास तथा सस्कृति – के0सी0 श्रीवास्तव – यूनाइटेड बुक डिपो प्रकाशन, इला0, पञ्चम स0

39 प्राचीन भारत का राजनीतिक एव सास्कृतिक इतिहास – डा0 आर0एन0 पाण्डेय –

40 प्राचीन भारत का इतिहास – रमाशकर त्रिपाठी –

41 बाणभट्ट का साहित्य अनुशीलन – अमरनाथ पाण्डेय – भारतीय विद्या प्रकाशन वाराणसी, नई दिल्ली, स0 1974

42 बाणकृत कादम्बरी कथामुखम् – तरणीश झा – रामनारायण बेनी माधव, इलाहाबाद, चतुर्थ स0

43 बाणकृत हर्ष चरितम् (शकर कवि विरचित हिन्दी टीका) – प0 श्री जगन्नाथ पाठक – चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, तृ0 स0

44 वाल्मीकि की बिम्ब योजना – डा0 रामनरेश त्रिपाठी – स्मृति प्रकाशन, इलाहाबाद।

45 भरतकृत नाट्य शास्त्र –

46 भवभूति कृत उत्तररामचरित – – रामनारायणलाल विजयकुमार इलाहाबाद, 1995 स0

47 भट्टिकृत भट्टिकाव्यम् – आचार्य शेषराज शर्मा शास्त्री (चन्द्रकला विद्योतिनी सस्कृत–हिन्दी व्याख्या) – चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, चतुर्थ स0

48 भामहकृत काव्यालङ्कार –

49 भारवि कृत किरातार्जुनीयम् – डॉ0 राजेन्द्र मिश्रा – अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद।

50 भारवि कृत किरातार्जुनीयम् – समीर शर्मा – चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, चतुर्थ स0, 1979,

51 भारवि काव्य मे अर्थान्तरन्यास – उमेश प्रसाद रस्तोगी –

52 भारवि कृत किरातार्जुनीयम् – शिवबालक द्विवेदी एव महेश नाथ चतुर्वेदी – ग्रन्थम प्रकाशक, कानपुर, पाचवा सस्करण,

53 भारतीय मूर्ति कला – रायकृष्ण दास –

54 भारतीय चित्रकला – रायकृष्ण दास –

55 भारतीय स्थापत्य – द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल – इलाहाबाद वि0वि0 प्र0स0 1968

56 भारवि कृत किरातार्जुनीयम् – प0 जनार्दन शास्त्री पाण्डेय – मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली पटना, वाराणसी,

57 भारतीय सस्कृति का उत्थान – डा0 राम जी उपाध्याय –

58 भोजकृतसरस्वतीकण्ठाभरण –

59 मम्मट कृत काव्य प्रकाश – आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि – ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, षष्ठ स0

60 महाभारत का काव्यविमर्श – मृदुला त्रिपाठी – समीक्षा प्रकाशन, बस्ती,

61 महाभारत मे धर्म – डॉ0 शकुन्तला रानी तिवारी –

62 महाकवि बाणभट्ट – विजय लक्ष्मी त्रिवेदी –

63 महाभारत मे लोक कल्याण की राजकीय योजनाए – डा0 कामेश्वर नाथ मिश्रा – प्र0 स0 1972,

64 महाकवि हरिचन्द्र एक अनुशीलन – डॉ0 पन्ना लाल साहित्याचार्य – भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र0 स0

65 मलिक मो0 जायसी और उनका काव्य – प0 शिवसहाय पाठक – साहित्य भवन इलाहाबाद, प्र0स0 1976

66 मध्ययुगीन हिन्दी कृष्ण भक्ति धारा और चैतन्य सम्प्रदाय – डॉ0 मीरा श्रीवास्तव – हिन्दुस्तान एकेडमी, इलाहाबाद, प्र0 स0 1968,

67 माघकृत शिशुपालवधम् – देव नारायण मिश्रा – साहित्य भण्डार मेरठ,

68 माघकृत शिशुपालवधम् – श्री रामजी लाल शर्मा – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी,

69 माघकृत शिशुपालवधम् – डॉ0 आद्याप्रसाद मिश्र –

70 मोहभङ्गकाव्यम् – कु0 बेलाहॉग – श्री पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र0स0 1987

71 रत्नाकर कृत हरिविजय – डॉ0 जी0सी0 त्रिपाठी – राष्ट्रीय सस्कृत सस्थान, नई दिल्ली।

72 रसा से सदानीता तक – डा0 हरिशकर त्रिपाठी – वेदपीठ प्रकाशन, इलाहाबाद प्र0 स0 1991

73 रामायण मञ्जरी का साहित्यिक का साहित्यिक अनुशीलन – योगेशचन्द्रदेव – अक्षय्यवट प्रकाशन, नई दिल्ली,

74 राघव पाण्डवीयम् एक अध्ययन – लक्ष्मीमिश्रा –

75 रीति और शैली – नन्द दुलारे बाजपेई –

76 रूय्यक कृत अलङ्कार सर्वस्व –

77 रूद्रट कृत काव्यालङ्कार –

78 वामनकृत काव्यालङ्कार सूत्र – डॉ० वेचन झा – चौखम्बा वि० भारती, वाराणसी, द्वि० स० 1976

79 विभिन्न युगो मे सीता का चरित्र चित्रण – डॉ० सुधा गुप्ता – प्रज्ञा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र०स०

80 विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण (विमला व्याख्या) – शालिग्राम शास्त्री – मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली, नवम् स०

81 विश्वनाथ कृत साहित्य दर्पण – देवदत्त कौशिक – भारतीय विद्या प्रकाशन देहली, वाराणसी, प्र० स०

82 विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस – आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र – चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, सं० स० 1994,

83 वृहत्त्रयी – विजय बहादुर सिह – प्रथम सं०

84 वृहत्त्रयी एक तुलनात्मक अध्ययन – डॉ० सुषमा कुलश्रेष्ठ ईस्टर्न बुल लिकर्स प्रकाशन, दिल्ली, प्र० स० 1983

85 शैली विज्ञान का स्वरूप डॉ० गुप्तेश्वर नाथ उपाध्याय – वि०वि० प्रकाशन, वाराणसी, प्र० सं० 1976

86 शूद्रक कृत मच्छकटिक – श्री निवास शास्त्री – साहित्यभण्डार, मेरठ,

87 श्रीहर्ष कृत नैषधीयचरितम् – शेषराज शर्मा – द्वितीय सस्करण

88 श्रीहर्ष कृत नैषधीयचरितम् (जीवातु मणिप्रभा) – प० श्री हरगोविन्द शास्त्री – चौखम्बा अमर भारती प्रकाशन, वाराणसी, षष्ठ स०

89 श्रीहर्ष कृत नैषधीयचरितम् – डा० देवनारायण मिश्र – साहित्य भण्डार, मेरठ, तृ० स० 1995

90 श्रीहर्ष कृत नैषधीयचरितम् – वायुनन्दन पाण्डेय – चौखम्बा ओरियन्टालिया वाराणसी, प्र० सं० 1976

91 सुरथ चरित महाकाव्य एक परिशीलन – सतीश चन्द्र झा – कैपिटल पब्लिशिग हाउस, नई दिल्ली, स0 1984,

92 सस्कृत साहित्य का इतिहास – कलानाथ शास्त्री – यूनिक ट्रेडर्स, जयपुर, स0 1995

93 सस्कृत को रघुवश की देन – डॉ0 शकरदत्त ओझा –

94 सस्कृत साहित्य चिंतन – डॉ0 प्रभुदयाल अग्निहोत्री – अनादि प्रकाशन इलाहाबाद, प्र0स0 1973

95 सस्कृत सुकवि समीक्षा – बलदेव उपाध्याय – प्र0 स0

96 सस्कृत साहित्य का सरल सुबोध इतिहास – जितेन्द्र चन्द्र भारतीय शास्त्री – उ0प्र0 हिन्दी अकादमी, लखनऊ, प्र0स0 1977

97 सस्कृत साहित्य मे नीति एक विमर्श – डॉ0 प्रभा किरण – वाणी मन्दिर प्रकाशन, वाराणसी,

98 सस्कृत साहित्य की रूपरेखा – प0 चन्द्रशेखर एव डॉ0 शान्ति कुमार नानू राम व्यास – साहित्य निकेतन कानपुर, सशोधिक बीसवां स0

99 सस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ0 राजकिशोर सिह एव आचार्य देवी शकर मिश्रा – प्रकाशन केन्द्र सीतापुर रोड, लखनऊ, पूर्णत सशोधित स0

100 सस्कृत काव्यकार – हरिदत्त शास्त्री – द्वितीय स0

101 सस्कृत साहित्य का इतिहास – वी0 वरदाचारी – स0 1962

102 सस्कृत वाड्मय का विवेचनात्मक इति0 – डा0 सूर्यकान्त –

103 सस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय – शारदा निकेतन, वाराणसी, दशम स0,

104 सस्कृत साहित्य का इतिहास – वाचस्पति गैरोला – चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, तृतीय स0,

105 सस्कृत साहित्य का विशद् इतिहास – डॉ0 पुष्पा गुप्ता –

106 सस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास – डॉ0 कपिल देव द्विवेदी – शान्ति निकेतन वाराणसी, पचम स0

107 सस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना –

108 सस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ0 राम चन्द्र मिश्र –

109 सस्कृत कवि दर्शन – भोलाशकर व्यास –

110 सस्कृत साहित्य मे राष्ट्रीय भावना – हरिनारायण दीक्षित – देववाणी परिषद दिल्ली, प्र0स0 1983

111 सस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास – राधावल्लभ त्रिपाठी – विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम स0

112 सस्कृत साहित्य का इतिहास – रामदेव साहू –

113 सस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास – राम जी उपाध्याय – चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, स0 1993

114 सस्कृत साहित्य का इतिहास – कीथ–अनुवादक मगल देव –

115 संस्कृत के महाकवि और काव्य – डॉ0 राम जी उपाध्याय – रामनारायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद, प्र0स0 1965

116 सस्कृत गद्यालोक – सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव –

117 सस्कृत साहित्य का इतिहास – महेश चन्द्र प्रसाद

118 हरिदत्त सूरिकृत राघवनैषधीय – प0 रामकुमार मालवीय – चौखम्बा सस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, प्र0स0

119 हिन्दी नाटको मे भारतीय संस्कृति का स्वरूप – डॉ0 कात्यायनी सिह – शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद स0 1987

120 हिन्दी मे ललित कला साहित्य – जगदीश चन्द्र चतुर्वेदी – साहित्य संगम, इलाहाबाद, प्र0सं0

121 हिस्ट्री ऑफ क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचर – कृष्ण भाचारी – मोती लाल बनारसी दास, प्र0 सं0, 1970